ओ३म्

ज्योतिष विवेक

लेखक

आचार्य वेदव्रत मीमांसक

आर्ष गुरुकुल, वडलूर, कामारेड्डि

निजामाबाद जिल्ला, आ.प्र.

लेखक— वेदाङ्गों तथा दर्शनों के विद्वान् ब्रह्मचारी वेदव्रत मीमांसक

प्रकाशक—स्वामी सत्यपति परिव्राजक, ब्र० वेदव्रत मीमांसक
गुरुकुल सिंहपुरा, रोहतक, हरयाणा

पत्राचार के लिए

☐ ब्र० वेदव्रत मीमांसक—गुरुकुल सिंहपुरा, रोहतक, हरयाणा (भारत)

☐ ब्र० वेदव्रत मीमांसक—श्री रामचन्द्र जी आर्य द्वारा
वेंकटेश्वर बुक वायंडिङ्ग वर्क्स,
६/६/६६२/ शंकरवीथी, नाला बाजार, सिकन्दराबाद, आन्ध्र प्रदेश

प्रथम संस्करण—विक्रमाब्द २०३३
मूल्य सोलह रुपये (भारत में) डाक व्यय पृथक्

भूमिका

१३ वर्ष पूर्व मैं अजमेर में मीमांसा दर्शन पढ़ता था। एक बार गुरुवर श्री पंडित युधिष्ठिर जी मीमांसक ने वार्तालाप के प्रसङ्ग में किसी सज्जन के समक्ष यह कहा था, "वेद तथा वैदिक ग्रन्थों में से केवल एक ज्यौतिष शास्त्र का मेरा अध्ययन नहीं हो सका।" इसको सुनकर ज्यौतिष पढ़ने की मेरी अभिलाषा तीव्र हुई। अध्ययन के पश्चात् मैं गुरुकुल सिंहपुरा में पढ़ाता था। ज्यौतिष की जिज्ञासा को पूर्ण करने के लिए मैंने आर्य जगत् के उच्च-कोटि के विद्वानों को सोत्तर पत्र लिखकर उनसे इस शास्त्र को पढ़ने के लिए परामर्श करने की चेष्टा की। विद्वानों ने जो पत्रोत्तर दिया उसका सारांश यह था कि, "आर्य जगत् में ज्यौतिष को जानने वाले कोई नहीं हैं। हमने भी नहीं पढ़ा। इस विषय में हम आपको कोई परामर्श नहीं दे सकते।" किसी विद्वान् ने यह भी लिखा था कि, "आप सूर्यसिद्धान्त पढ़ें।" महर्षि दयानन्द प्रदर्शित पाठविधि के अनुसार सूर्यसिद्धान्त पढ़ने की मेरी इच्छा थी। इसके पश्चात् मैंने ज्यौतिष पढ़ाने वाले गुरु का पता लगाकर उज्जैन जाकर श्री पं० पुरुषोत्तम जी जोशी से पढ़ना प्रारम्भ किया। उन्होंने मुझे सिद्धान्त शिरोमणि पढ़ाना प्रारम्भ किया। दूसरे ही दिन के पाठ में ज्यौतिष शास्त्र किस रूप में वेद का अङ्ग है इसका प्रतिपादक श्लोक समक्ष आया—

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञा प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्याद्वेदाङ्गत्वं ज्यौतिषस्योक्तमस्मात्॥

वेद यज्ञ कर्म में प्रवृत्त हैं (अर्थात् यज्ञ में पढ़ने के लिए वेदों का आविर्भाव हुआ) यज्ञ काल से सम्बद्ध हैं। इस शास्त्र से काल का बोध होता है। इसलिए यह शास्त्र वेद का अङ्ग है। इसको पढ़कर मन में आन्दोलन हुआ। १२ वर्षों से निरन्तर मैं गुरुकुल में यही पढ़ता और पढ़ाता रहा कि वेद सब विद्याओं का पुस्तक है। अब यह अन्वेषण प्रारम्भ हुआ कि ज्यौतिष क्या है और उसका वेद से क्या सम्बन्ध है। इसके परिणाम का एक भाग ही प्रस्तुत ग्रन्थ ज्यौतिषविवेक है।

ज्यौतिष को तीन भागों में बांटा जा सकता है। १—सिद्धान्त ज्यौतिष। इसमें सम्पूर्ण भूगोल और खगोल विद्या का वर्णन होता है। इसको जनसामान्य से लेकर विद्वानों तक सब पढ़ सकते हैं और समझ सकते हैं। २—सिद्धान्त-ज्यौतिष सगणित। इसमें प्रथम भाग में वर्णित सिद्धान्तों को गणित के द्वारा साक्षात् किया जाता है। इसको केवल गणित के विद्वान् ही जान सकते

हैं। इसको आचार्य मुख से पढ़ना पड़ता है।'[1] ३—ज्यौतिषविवेक। इसमें ज्यौतिष के स्वरूप को बतलाया जाता है। ज्यौतिष के नाम से प्रचलित समस्त बातों का विस्तृत विवेचन होता है। कल्पित तथा भ्रान्त बातों का निराकरण किया जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'ज्यौतिषविवेक' में ज्यौतिष क्या है इस को संक्षेप में बतलाया गया है। इसके अध्ययन से होने वाले लाभ तथा न पढ़ने से होने वाले अनर्थों का वर्णन है। ज्यौतिष के नाम से प्रचलित सहस्रों मिथ्या बातों तथा अन्धविश्वासों की मार्मिक समीक्षा की है। इन मिथ्या बातों से मनुष्य का किस प्रकार आत्मिक, नैतिक, बौद्धिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्तर गिरा है, यह इसके अध्ययन से ज्ञात होगा। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा विश्व की पतनावस्था का इसमें दिग्दर्शन है। इनसे प्रचलित कुरीतियों तथा दुष्कर्मों का चित्रण सोदाहरण किया है। इनसे मनुष्य किस प्रकार दीनहीन, आलसी, प्रमादी, क्रूर, निर्दयी, नास्तिक, विवेकहीन बन जाता है यह बतलाया गया है। ज्यौतिष के नाम से प्रचलित ग्रन्थों के प्रच्छन्न स्वरूप को उपस्थित किया गया है। उन ग्रन्थों की अयुक्त मिथ्याकल्पित प्रकट वा गुप्त बुरी बातों को जैसे मैं समझ पाया वैसे ही इस ग्रन्थ के द्वारा सर्वसाधारण के समक्ष प्रस्तुत किया है।[2] जो २ विद्या की बातें हैं वे सबके लिए मान्य हैं। किन्तु विद्या के नाम से जो मिथ्या बातें हैं जिनको सब नहीं जानते हैं उनका सब लोगों को ज्ञान हो जाए जिससे सब पर सबका विचार होकर सत्य का ग्रहण तथा असत्य का परित्याग किया जा सके। इसमें किसी की हानि अथवा मन दुःखाना अभिप्रेत नहीं है। मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अविद्या के कारण धन मान तथा जीविका के लिए मनुष्य सत्य को ग्रहण करना और असत्य को छोड़ना नहीं चाहता। सत्य से अतिरिक्त मनुष्य जाति की उन्नति का अन्य कोई उपाय नहीं है किन्तु जब तक मनुष्य सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने का उद्यम नहीं करता तब तक वह सत्य विद्या को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए सज्जनों का यही कर्तव्य है कि सत्य की वृद्धि के लिए तथा असत्य के क्षय के लिए वाणी से लेख से तथा व्यवहार से प्रयत्न करें।

समस्त विश्व में व्याप्त इस अज्ञान वा मूर्खता को जब तक दूर

१. इन दोनों ग्रन्थों को रचने की इच्छा है और प्रयत्न चल रहा है।

२. फलित के ग्रन्थ ऋषियों के नाम से प्रचलित हैं परन्तु ये प्रमाण विरुद्ध होने से ऋषियों के नहीं हो सकते। तथाकथित कोई ग्रन्थ आर्ष कोटि में नहीं आता।

नहीं किया जाएगा, तब तक मनुष्यों को अन्योन्य से सुख नहीं होगा। आज भी ज्यौतिष के बहुत सारे विद्वान् विश्व में हैं। वे सब मिलकर वास्तविक ज्यौतिष को स्वीकार करके उसी का त्रिकरण (वाणी, लेख, व्यवहार) से प्रचार प्रसार करें तो सब भ्रान्तियां, पाषण्ड दूर हो जायें। यह विद्वानों का काम है। विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर अनेकविध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। इस हानि ने जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है, मनुष्यों को दुःख-सागर में डुबो दिया है। यदि विद्वान् पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो २ बातें सबके अनुकूल हैं, सब में सत्य हैं उनका ग्रहण और जो २ एक दूसरे के विरुद्ध बातें हैं उनको छोड़कर परस्पर प्रीति से वर्तें और वर्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे। ये जितने गुरु, आचार्य, मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर पीठाधीश्वर, महन्त, पादरी, पोप, मौलवी, नेता, वैज्ञानिक, समाजसुधारक और विचारक विद्वान् हैं वे सब मिलकर वा पत्रादि से परस्पर विचार कर प्रीति से ज्यौतिष में एकमतस्थ हो जायें। जब तक वे एक मतस्थ नहीं होंगे तब तक जनसामान्य एक मतस्थ नहीं हो सकता। इसमें देश के कर्णधारों को विशेषतः आगे आना चाहिए। जो कोई सार्वजनिक हित के लिए प्रवृत्त होता है उससे स्वार्थी लोग विरोध करते हैं। "सत्यमेव जयते नाऽनृतं, सत्येन पन्था विततो देवयानः।" अर्थात् "सदा सत्य का विजय होता है असत्य का नहीं, सत्य से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है।" इसको दृष्टि में रखकर आप्तपुरुष परोपकार से उदासीन नहीं होते। इसका आश्रय लेकर मैंने यह ग्रन्थ बनाया है।

ज्यौतिष के नाम से प्रचलित अनेक ग्रन्थों का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि ज्यौतिष के नाम से बहुत जालग्रन्थ प्रचलित हैं। इसके कारण मनुष्य अनेक कल्पित बन्धनों में जकड़ा हुआ दुःखी है। इससे यह भी ज्ञात हुआ कि यह शास्त्र मनुष्य मात्र के दैनन्दिन उपयोग में आने वाला और समझ में आने वाला है। इसके सम्बन्ध में प्रचार करना प्रारंभ किया। इस अत्यावश्यक सर्वजनोपयोगी तथा रोचक विषय को लिपिबद्ध करने के लिए कइयों ने आग्रह किया। मेरी भी इच्छा थी। उनमें से जितनी बातों को आबद्ध किया जा सकता था किया। उसी का परिणाम यह ग्रन्थ है।

इस ग्रन्थ को बनाने का मुख्य प्रयोजन 'ज्यौतिष क्या है और क्या नहीं है' इसका विवेचन करना है। इसमें ज्यौतिष वा उसके नाम से प्रचलित विचारों का युक्ति वा प्रमाणों से विवेक किया गया है। इसी को मैंने ज्यौतिषविवेक समझा है। वैदिकों में यह शास्त्र लुप्तप्राय हो गया है। महर्षि

दयानन्द ने दिव्य दृष्टि से देखकर इस शास्त्र की रूपरेखा बतला दी। उसकी विस्तृत व्याख्या एवं मूर्तिमान रूप ही यह ग्रन्थ है। आर्यसमाज ने इस शास्त्र की उपेक्षा की। उसके उद्धार तथा प्रतिष्ठा के लिए यह मेरा प्रयास है। उपेक्षित तथा तिरोहित यह शास्त्र पठनपाठन में स्थान प्राप्त करे यह इच्छा है। वेदार्थ तथा लोक व्यवहार में इसका यथेच्छ उपयोग हो सके। विद्वज्जनों से लेकर जनसामान्य तक इसका विस्तार हो। अपने स्थान से च्युत वेद का यह अङ्ग पुनः अपने पद को प्राप्त कर ले, यह मेरी कामना है। विद्वान् इसके लिए श्रम करें, इस विषय में चिन्तन करें। अनुसन्धान चले और विद्वान् सृष्टिविद्या रहस्य को अधिकाधिक प्राप्त करके प्राणिमात्र के उपयोग में लावें, इसके लिए यह मेरा प्रयत्न दिग्दर्शनमात्र है।

मातृभाषा आर्यभाषा न होने से और अध्ययन संस्कृत भाषा के माध्यम से होने के कारण मुझे इस भाषा का विशेष ज्ञान नहीं है। इस कारण भाषाजन्य त्रुटियां हैं। ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर पुनरुक्त प्रतीत होता है। विषय को स्पष्ट तथा पुष्ट करने के लिए यह आवश्यक था। कई कारणों से मुद्रणदोष बहुत रह गए हैं; इसका हमें खेद है। उनमें से कुछ अन्त में दिये जाते हैं। शेष को विज्ञ पाठक स्वयं सुधार कर पढ़ें।

पूज्य श्री स्वामी सत्यपति जी के विशेष प्रोत्साहन से यह ग्रन्थ शीघ्र प्रकाशित हो पा रहा है। इसको शीघ्र प्रकाशित करने के लिए श्री सूरतसिंह जी ने बहुत उत्साह दिखाया। एवं इसके मुद्रणार्थ ५००० रु० दान दिया। मैं अपने ज्योतिष के गुरु श्री पं० पुरुषोत्तम जी जोशी का चिरकृतज्ञ रहूँगा, जिनकी कृपा से मैं इस शास्त्र के अध्ययन में कृतकार्य हुआ। इस ग्रन्थ के निर्माण में जिन विद्वानों के ग्रन्थों वा वचनों से मुझे लाभ हुआ है, उन सब का मैं कृतज्ञ हूँ। इसके मुद्रण के लिए आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट के प्रधान श्री लाला दीपचन्दजी आर्य तथा उनके पुत्र श्री धर्मपाल जी आचार्य ने मुद्रणादि का प्रबन्ध अपने हाथों में लेकर मुझे इस विषय में निश्चिन्त किया। इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

जो कोई इस ग्रन्थ को ग्रन्थकर्ता के तात्पर्य के विरुद्ध-मनसा देखेगा उसको ग्रन्थ का अभिप्राय विदित न होगा। वाक्यार्थबोध में आकाङ्क्षा, योग्यता, आसत्ति, तात्पर्य नामक चार कारण होते हैं। इनको दृष्टि में रख जो ग्रन्थ को देखेगा उसी को ग्रन्थ का अभिप्राय यथायोग्य विदित होगा। बहुत से पूर्वाग्रही ग्रन्थ को पढ़कर भी ग्रन्थकार के अभिप्राय के विरुद्ध कल्पना कर लेते हैं। उनको ग्रन्थ का अभिप्राय विदित नहीं होगा। ग्रन्थस्थ विषय को मानें चाहे न मानें किन्तु प्रथम ग्रन्थकर्ता के अभिप्राय को जान लेवें। पश्चात् पांच परीक्षाओं से सत्यासत्य का निर्णय कर सत्य को ग्रहण करें और असत्य को छोड़ देवें।

मैंने यह ग्रन्थ सत्य के आग्रह से लिखा है। इस ग्रन्थस्थ विषयों पर मैं विद्वानों से वार्तालाप, विचार-विनिमय करने के लिए सदा उद्यत रहूँगा। इसमें भूल के कारण कोई बात प्रमाण-विरुद्ध सिद्ध होगी तो मैं उसको उसी समय छोड़ दूंगा। जो कोई पक्षपात से अन्यथा शंका वा खण्डन-मण्डन करेगा, उसकी बात नहीं मानी जाएगी। यद्यपि इस ग्रन्थ को देखकर अविद्वान् लोग अन्यथा ही समझेंगे तथापि गुणी विद्वान् इसके अभिप्राय को समझ लेंगे। जो भी हो ज्योतिष के सम्बन्ध में इस ग्रन्थ के द्वारा बीजारोपण होगा। ओ३म् अपनी कृपा से इस आशय को विस्तृत और चिरस्थायी करे।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वरशिरोमणिषु

दिल्ली — ब्र० वेदव्रत मीमांसक

चान्द्र माघ कृ० ४/२०३३ विक्र० माघमासेऽसिते पक्षे चतुर्थ्यां मन्दवासरे।

सौर १७ सहस्य — सहस्येत्यष्टिसौरेब्दे भूमिका पूर्णतां गता॥

विषय सूची

ओ३म्

आशीर्वचन

श्री स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक[1]

ज्यौतिषविवेक ग्रन्थ के कुछ भाग का मैंने अध्ययन किया है। ज्यौतिष के सम्बन्ध में मैंने वेदव्रत जी के अनेक व्याख्यान सुने हैं। वार्तालाप के द्वारा अनेक विषयों को सुनने का अवसर प्राप्त हुआ है।

ब्रह्मचारी वेदव्रत जी मीमांसक ने अनेक वर्षों तक तपस्या करके ज्यौतिष शास्त्र का अध्ययन किया है। पश्चात् बड़े परिश्रम से इस ग्रन्थ की रचना की है। ऋषि दयानन्द के ज्यौतिष के विषय में सूत्र रूप से लिखित विचारों की यह ग्रन्थ विस्तृत व्याख्या है। मेरे अध्ययनानुसार ज्यौतिष के विषय में इस शैली से लिखा ग्रन्थ देखने वा सुनने में नहीं आया। इससे ऋषि दयानन्द के ज्यौतिष सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रचुर मात्रा में परिज्ञान होगा। इस ग्रन्थ के पठन-पाठन से वेदार्थ परिज्ञान में पर्याप्त सहायता मिलेगी। इससे इस ग्रन्थ में सत्य ज्यौतिष क्या है, इसको प्रमाण और युक्तियों से अच्छे प्रकार सिद्ध किया है। जिस प्रचलित मिथ्या ज्यौतिष फलित से समस्त संसार का नैतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिकादि सब प्रकार का पतन हुआ है और अनेक निराधार मतों की उत्पत्ति हुई है, जिनसे निर्दोष मनुष्यों को नाना प्रकार का महान् दुःख भोगना पड़ता है, उसको प्रमाण और तर्क की कसौटी से धराशायी कर दिया है। इस पुस्तक के प्रचार-प्रसार से मिथ्या भाग्यवादों की जड़ें उखड़ जायेंगी और लोग परिश्रमी बनेंगे और जो ज्यौतिष के नाम से सहस्रों वर्षों से चली आ रही भोले लोगों को लूटने की अन्ध परम्परा है वह समाप्त हो जायेगी। इस ग्रन्थ के अध्ययन से केवल विशेष विद्वानों को ही नहीं किन्तु साधारण योग्यता रखने वालों को भी महान् लाभ होगा। इसके अध्ययन से अनेक विषयों का परिज्ञान एवं उक्त प्रयोजन सिद्ध होगा।

स्वामी सत्यपति परिव्राजक

---

१. श्री पूज्य स्वामी जी महाराज वेद वेदाङ्ग वा दर्शनों के असाधारण विद्वान् एवं योग में कृतभूरिपरिश्रम हैं। आप वर्तमान में गुरुकुल सिंहपुरा में दर्शनशास्त्र पढ़ाते हैं।

—लेखक

ओ३म्

ज्यौतिषविवेक

ओ३म् नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारम्॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव॥

ज्योतिषा बाधते तमः।

अथ प्रथमसमुल्लासः

अथोद्देशं व्याख्यास्यामः

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्··· ॥ मनु० २। ६॥
सर्वज्ञानमयो हि सः ॥ मनु० २। ७॥

सम्पूर्ण वेद धर्म का मूल है। वेद सम्पूर्ण विद्याओं का भण्डार है।

भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति ॥ मनु०। १२। ९७॥

भूत, भविष्य और वर्तमान में जो कुछ कर्म हैं वे सब वेद से प्रसिद्ध होते हैं।

बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम्।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम्॥ मनु० १२। ९९॥

सनातन वेद सब जीवों को धारण करता है। इसलिए वेद को प्राप्त करना मनुष्य का मैं परम धर्म मानता हूँ।

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। —आर्यसमाज का तृतीय नियम

नावेदविन्मनुते तं बृहन्तमिति **यो मनुष्यो वेदार्थान्न वेत्ति स नैव तं बृहन्तं**

परमेश्वरं धर्मं विद्यासमूहं वा वेत्तुमर्हति । कुतः ? सर्वासां विद्यानां वेद एवा-धिकरणमस्त्यतः ।

अर्थः—वेदों को नहीं जानने वाला मनुष्य उस महान् परमात्मा, धर्म और पदार्थविद्या को अच्छी प्रकार से नहीं जान सकता । क्योंकि वेद ही सब विद्याओं का आधार है ।

मनुष्यैर्वेदार्थविज्ञानाय व्याकरणाष्टाध्यायीमहाभाष्याध्ययनम्, ततो निघण्टुनिरुक्तछन्दोज्योतिषाणां वेदाङ्गानाम् । ततो मीमांसावैशेषिकन्याय-योगसांख्यवेदान्तानां वेदोपाङ्गानां षण्णां शास्त्राणाम् । तत ऐतरेयशतपथ-सामगोपथब्राह्मणानामध्ययनं च कृत्वा वेदार्थपठनं कर्तव्यम् । यद्वा एतत्सर्व-मधीतवद्भिः कृतं वेदव्याख्यानं दृष्ट्वा च वेदार्थज्ञानं सर्वैः कर्तव्यमिति ।

अर्थः—मनुष्य लोग वेदार्थ जानने के लिए अर्थ योजना सहित व्याकरण अष्टाध्यायी, धातुपाठ, उणादिगण, गणपाठ और महाभाष्य; शिक्षा, कल्प, निघण्टु, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छः वेदों के अंग; मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त ये छः शास्त्र जो वेदों के उपाङ्ग अर्थात् जिनसे वेदार्थ ठीक-ठीक जाना जाता है; तथा ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ये चार ब्राह्मण, इन सब ग्रन्थों को क्रम से पढ़ के अथवा जिन्होंने उन सम्पूर्ण ग्रन्थों को पढ़के जो सत्य-सत्य वेद व्याख्यान किए हों उनको देख के वेद का अर्थ यथावत् जान लेवें ।" ऋ० भा० भू० पठन-पाठन वि०

"पाणिनिपतञ्जलियास्कादिमहर्षिभिश्च वेदव्याख्यानानि वेदाङ्गानि कृतानि...... ।" ऋ० भा० भू० भाष्य० क० शं०

पाणिनि पतञ्जलि और यास्कादि महर्षियों द्वारा वेदव्याख्यानरूप वेदाङ्ग बनाए गए ।

महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं कि "ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च" दृष्ट कारण की अपेक्षा किए विना ही ब्राह्मण को षडङ्ग वेद पढ़ना चाहिये और जानना चाहिए । आगे चलकर मनु जी महाराज कहते हैं कि—

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ मनु० २ । १६८ ॥

जो द्विज वेद का परित्याग करके अन्य विषयों में परिश्रम करता है वह जीते हुए ही वंश सहित शूद्रता को प्राप्त करता है ।

वेदाङ्गों का वर्णन करते हुए आचार्य भास्कर ने ज्यौतिष को वेद के चक्षुस्थानीय माना है ।

शब्दशास्त्रं मुखं ज्यौतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पः करौ ।
या तु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः ॥

शब्दशास्त्र=व्याकरण वेद के मुख के, ज्योतिष् नेत्रों के और निरुक्त श्रोत्र के तुल्य है । कल्प हाथों के समान शिक्षा नासिका के तुल्य है । पैर छन्द के समान हैं ऐसा प्राचीन विद्वानों ने कहा है । ऋषिवर पतञ्जलि ने कहा है कि "षट्स्वङ्गेषु प्रधानं व्याकरणं प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति ।" छः अङ्गों में से व्याकरण प्रधान है और प्रधान में किया हुआ यत्न सफल होता है । इसी प्रकार आचार्य भास्कर ने ज्यौतिष के विषय में लिखा है कि—

वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं मुख्यता चाऽङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते ।
संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषाङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः ॥

यह ज्यौतिष वेद का चक्षुस्थानीय है अतः सब अङ्गों के मध्य में यह मुख्य कहा जाता है । जैसे कि कान नाक आदि अन्य अङ्गों से संयुक्त भी नेत्रों से हीन अकिञ्चित्कर होता है । यदि यह शास्त्र प्रधानाङ्ग न भी हो तो भी वेदार्थज्ञान में अनन्यरूप में सहायक है अतः किसी अङ्ग से न्यून वा अप्रधान नहीं है । वेद का यह अङ्ग है इसलिए इस शास्त्र को पढ़ना ही होता है । इसके अध्ययन के विना वेद को नहीं जाना जा सकता । अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इस शास्त्र में किस विषय का प्रतिपादन है । प्रमुखता से किस विषय का प्रतिपादन है और प्रसङ्गवशात् कौन-कौन विषय उपस्थित होते हैं ।

प्रश्न—ज्यौतिष किसको कहते हैं ?

ज्योतिर्विदाभास—किसी कार्य की सफलता के लिए जिसमें मुहूर्त बतलाये गए हों वह ज्यौतिष है ।

ज्योतिर्वित्—आप के कथनानुसार मान लें तो ज्यौतिष नाम निरर्थक है । आप्त, शिष्ट पुरुषों के द्वारा जो नामकरण होता है वह अन्वर्थक होता है । ज्यौतिष आप्त पुरुषों द्वारा कृत नाम है, यह निरर्थक नहीं है । ऋषियों ने इसको वेदाङ्ग कहा है । यदि मुहूर्तों को बतलाने वाले ग्रन्थ को ज्यौतिष माना जाय तो यह वेद का अङ्ग नहीं बन सकता । क्योंकि वेदाङ्ग वही होगा जो वेद के प्रत्येक मन्त्र के अर्थज्ञान में उपयोगी हो । अतः मुहूर्तों को बतलाने वाले पुस्तक को ज्यौतिष कहा नहीं जा सकता ।

ज्योतिर्विदाभास—भूत, भविष्यत् और वर्तमान की बातों को जिससे जान लेते हैं वह ज्यौतिष है। जैसे हस्तरेखा, जन्मपत्रिका, शरीरलक्षण, तिल, लग्न, प्रश्न, शकुन, ग्रह, नक्षत्र, राशियां स्वप्न आदि। इनके द्वारा मनुष्य वा मनुष्यसमाज, देशदेशान्तर के भूत भविष्यत् वर्तमान को और सृष्टि में होने वाली इष्टानिष्ट घटनाओं को जान सकते हैं।

ज्योतिर्वित्—इनसे वेदार्थ में कोई उपयोग नहीं होता। अतः वेद के अङ्गभूत शास्त्र से इनका कोई सम्बन्ध नहीं। भूतकाल की समस्त बातों को कोई भी मनुष्य नहीं जान सकता। न इनको जानने के लिए कोई उपाय ही है। नाही भविष्य की बातों को जान सकता है। न जानने का कोई उपाय ही है। वर्तमान की बातों में से भी स्वयं अपनी कुछ बातों को ही जानता है जान सकता है। दूसरों की बातों को नहीं जान सकता। इनकी व्याख्या तथाकथित फलित ज्यौतिष के प्रसङ्ग में की जाएगी और उसकी असत्यता का भी खण्डन किया जाएगा। यह भी दोष इस पक्ष में उपस्थित होता है कि ज्यौतिष शब्द अन्वर्थक नहीं होगा।

ज्यो० वि० आ०—काल को बतलाने **वाले शास्त्र को ज्यौतिष** कहते हैं। जैसा कि सायण ने अपने ऋग्वेदभाष्यभूमिका में लिखा है।

ज्यौतिषस्य प्रयोजनं तस्मिन्नेव ग्रन्थेऽभिहितम् "यज्ञकालार्थसिद्धये" इति। (वे० ज्यो० ३)

"यज्ञकाल की सिद्धि के लिए" कह कर उसी ग्रन्थ में ज्यौतिष का प्रयोजन कहा गया है।

कालविशेषविधयश्च श्रूयन्ते "संवत्सरमेतद् व्रतं चरेत्।"

तै० आ० १.३२.१

संवत्सरमुख्यं भृत्वा। तै० सं० ५.६.५.१ इत्येवमादयः संवत्सरविधयः।

वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत। ग्रीष्मे राजन्य आदधीत। शरदि वैश्य आदधीत। तै० ब्रा० १.१.२.६-७ इत्याद्या ऋतुविधयः। **मासि मासि पृष्ठान्युपयन्ति। मासि मास्यतिग्राह्या गृह्यन्ते।** (तै० सं० ७।५।१५) इत्याद्या मासविधयः। **यं कामयेत वसीयान्त्स्यादिति तं पूर्वपक्षे याजयेत्।** तै० सं० २.२.३-१ इत्याद्या पक्षविधयः। **एकाष्टकायां दीक्षेरन्, फाल्गुनीपूर्णमासे दीक्षेरन्।** तै० सं० ७।४।८।१। इत्याद्यास्तिथिविधयः।

प्रातर्जुहोति, सायं जुहोति। तै० ब्रा० २।१।२ इत्याद्या: प्रातःकालादिविधयः। **कृत्तिकास्वग्निमादधीत** तै० ब्रा० १।१।२।१ इत्याद्या नक्षत्रविधयः। अतः कालविशेषानवगमयितुं ज्योतिषमुपयुज्यते।"

काल विशेष को लेकर विधियाँ शास्त्रों में हैं "संवत्सर पर्यन्त इस व्रत को करे" "संवत्सर उख्य को धारण करके" आदि संवत्सर विधियां हैं। "वसन्त में ब्राह्मण अग्नि का आधान करे। ग्रीष्म में राजन्य आधान करे। शरद् में वैश्य आधान करे" इत्यादि ऋतु से सम्बद्ध विधियां हैं। 'प्रत्येक मास में पृष्ठों को प्राप्त होता है। प्रतिमास अतिग्राह्यों का ग्रहण होता है'। इत्यादि मासविधियाँ हैं। 'जिसको चाहें कि वसीयान् होवे उससे पूर्वपक्ष में यजन करावें' आदि पक्षविधियां हैं। 'एकाष्टका में, दीक्षा को प्राप्त होवें, फाल्गुनपौर्णमास में दीक्षित होवें'। इत्यादि तिथिविधियां हैं। 'प्रातः होमता है सायं होमता है' इत्यादि प्रातःकालादिविधियां हैं। कृत्तिका में अग्नि का आधान करे, इत्यादि नक्षत्रविधियां हैं। इसलिए काल की विशिष्टताओं को जनाने में ज्यौतिष का उपयोग होता है।

ज्यो० वि०—यह भी ठीक नहीं। इस पक्ष में निरर्थक संज्ञा माननी पड़ेगी जो अमान्य है। दूसरा दोष यह है कि काल को यज्ञाङ्ग कहा है। यज्ञ अङ्गी है काल उसका अङ्ग है। वेद यज्ञ का अङ्ग है अर्थात् यज्ञ अङ्गी है वेद उसका अङ्ग है। यज्ञरूपी अङ्गी के ये दोनों काल और वेद अङ्ग हैं जैसा कि वेदांग ज्योतिष में लिखा है—

प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः॥
ज्योतिषामयनं कृत्स्नं प्रवक्षाम्यनुपूर्वशः।
विप्राणां सम्मतं लोके यज्ञकालार्थसिद्धये॥
वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ता कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्यौतिषं वेद स-वेद यज्ञान्॥

शिर से काल को प्रणाम करके सरस्वती का अभिवादन करके महात्मा लगध के कालज्ञान को कहूँगा। लोक में ब्राह्मणों के सम्मत ज्योतियों के पुण्य अयन (गति) को यज्ञकाल की सिद्धि के लिए क्रमशः कहूँगा। वेद यज्ञ के लिए उत्पन्न हैं और यज्ञ कालाधीन है। इसलिए कालविधायक इस ज्यौतिषशास्त्र को जो जानता है वह यज्ञों को जानता है।

इसमें विचारणीय विषय यह है कि यज्ञ के अङ्गभूत काल और वेद, ये दोनों (यज्ञाङ्ग) क्या परस्पर अङ्गाङ्गी भाव को प्राप्त हो सकते हैं? यदि

हो सकते हैं तो किस रूप में, यह सिद्ध कर दिया जाय। यदि सिद्ध नहीं होता है तो साध्य होने से प्रमाण कोटि में नहीं आता।

प्रश्न—कालाधीन यज्ञ है, यज्ञाधीन वेद है। इस प्रकार कालविधायक ज्योतिष् को वेदाङ्ग माना जाय ?

उत्तर—यदि कालाधीन यज्ञ है तो काल मुख्य है यज्ञ गौण है उसके आधीन वेद है तो मुख्य (काल) का विधायक ज्यौतिष, गौण वेद का अङ्ग कैसे बनेगा ? यदि ज्योतिष् वेदाङ्ग है तो वेदाधीन होगा न कि वेद ज्यौतिष के आधीन।

यदि इस मान्यता को कथमपि स्थान देवें तो वेदों के साथ अनर्थ हो जाएगा। यह मानना पड़ेगा कि वेद यज्ञ के लिए प्रवृत्त हैं। महर्षि मनु से लेकर ऋषि दयानन्द पर्यन्त आप्तों ने वेदों को सब विद्याओं का भण्डार मान लिया है। महर्षि दयानन्द ने लिखा है **"यत् सायणाचार्येण वेदानां परमार्थमविज्ञाय 'सर्वे वेदा क्रियाकाण्डतत्पराः सन्तीत्युक्तम्' तदन्यथास्ति। कुतः तेषां सर्वविद्यान्वितत्वात्**······। जैसे देखो सायणाचार्य ने वेदों के श्रेष्ठ अर्थों को नहीं जानकर कहा है कि सब वेद क्रियाकाण्ड का ही प्रतिपादन करते हैं। यह उनकी बात मिथ्या है।········· ऋ० भा० भू० भाष्यकरण

अतः कालविधायक शास्त्र को ज्यौतिष नहीं माना जा सकता। हां ज्यौतिष से काल का भी बोध होता है। यह प्रासङ्गिक है मुख्य नहीं है।

ज्यो० वि० आ०—पञ्चाङ्ग निर्माण तिथि आदि का ज्ञान जिससे होता है उसको ज्यौतिष कहते हैं।

ज्यो० वि०—पञ्चाङ्ग में वार-योग करण की उत्पत्ति फलित के लिए हुई है। फलित कल्पित है। यह आगे सिद्ध किया जाएगा। अब रह गए तिथि नक्षत्र दो अङ्ग।

तिथि नक्षत्र को बतलाने वाला शास्त्र वेदार्थ में किस प्रकार उपयोगी होगा ? क्या प्रत्येक मन्त्र में अनुपयोगी इस पुस्तक को वेदाङ्ग कहा जा सकता है ? यदि कहा जा सकता हो तो आयुर्वेद, गन्धर्ववेद वेदाङ्ग क्यों नहीं ? संज्ञा निरर्थकत्व दोष भी उपस्थित होगा। अतः यह भी ज्यौतिष का प्रतिपाद्य नहीं।

ज्यो० वि० आ०—ग्रहस्पष्टीकरण जिसमें हो वह ज्यौतिष है ?

ज्यो० वि०—ग्रहस्पष्टीकरण से वेदार्थ में कोई उपकार नहीं होता है। ग्रहस्पष्टीकरण को भी आज लोग फलित के लिए करते हैं।

ज्यो० वि० आ०—अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित का जिसमें वर्णन हो, बोध कराया गया हो उसे ज्यौतिष शास्त्र कहते हैं।

ज्यो० वि०—गणित का जिसमें वर्णन हो वह गणित शास्त्र हो तो हो किन्तु ज्यौतिष शास्त्र नहीं कहा जा सकता। इसमें नाम को अनर्थक मानना पड़ता है और गणित से वेद के कुछ मन्त्रों के अर्थ में उपकार हो सकता है सब मन्त्रों में नहीं अतः यह भी ज्यौतिष नहीं कहा जाएगा।

द्युत दीप्तौ धातु से 'द्युतेरिसिन्नादेश्च जः' इस सूत्र से ज्योतिष शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ है कि जो ज्योतियों के विवरण को प्रस्तुत करे वह ज्यौतिष है। उस शास्त्र को ज्यौतिष शास्त्र कहते हैं। उसमें निम्नलिखित विषय होते हैं।

सृष्टि की उत्पत्ति में परमात्मा के द्वारा साम्यावस्था में स्थित परमाणुओं को किस प्रकार गति प्रदान की जाती है ? उस क्षोभ से महत्तत्व, अहंकार, इन्द्रिय, तन्मात्राएं स्थूलभूत किस प्रकार उत्पन्न होते हैं ? विराट् पुरुष, सूर्य, पृथिवी, चन्द्र, नक्षत्र, उल्काएं, पुच्छलतारे कैसे उत्पन्न होते हैं ? ब्रह्माण्ड क्या है ? सूर्य क्या है ? पृथिवी क्या है ? सूर्य का पृथिवी के साथ क्या सम्बन्ध है ? ये कैसे चलते हैं ? गति का कारण कौन है ? असमान गति से क्यों चलते हैं ? पृथिवी का आकार क्या है ? गोल कैसे है क्यों है ? व्यास कितना है ? परिधि का परिमाण क्या है ? किस प्रकार घूमती है ? किस गति से घूमती है ? घूमने पर भी उस पर रहने वाले पदार्थ स्थिर क्यों हैं ? सदा एक समान क्यों नहीं घूमती ? उसके घूमने से उस पर क्या परिणाम होते हैं। आकर्षण क्या है ? कहां है ? उसका परिमाण और परिणाम क्या है ? प्रकाश क्या है ? दिन क्या है ? रात्रि क्या है ? कैसे बनते हैं ? दिन कब क्यों बढ़ जाता है ? कितना बढ़ता है ? रात्रि कब क्यों बढ़ जाती है ? दिन कहां से प्रारम्भ होता है ? छः मास का दिन कहां और क्यों होता है ? छः मास की रात्रि कब कहां क्यों होती है ? वहां रहनेवालों का व्यवहार कैसे होता है ? सूर्यबिम्ब कभी छोटा कभी बड़ा क्यों दीखता है ? कभी उत्तर में कभी दक्षिण में क्यों जाता है ? ऋतुएं क्या हैं ? इन का कारण क्या है, कहां कहां होती हैं ? कितनी हैं ? इनका पुनः पुनः क्रम कब क्यों आता है ? क्या सम्पूर्ण पृथिवी पर ऋतुएं हैं ? सर्वत्र एक समय में एक ही ऋतु क्यों नहीं रहती ? पृथिवी पर मनुष्य कहां कहां रहते हैं, कैसे रहते हैं ? ऊपर का क्या अर्थ है ? नीचे का अर्थ क्या है ? समुद्र क्या है ? कहां है ? चन्द्र क्या है ? कैसा है ? किस प्रकार और क्यों घूमता है ?

क्रमशः क्यों बढ़ता जाता है ? पूर्ण होकर क्यों घटता है ? एक दिन अदृश्य क्यों होता है ? उस पर अहोरात्र कैसे होते हैं ? उनका क्या परिमाण है ? उस पर जाकर देखें तो पृथिवी कैसी दीखेगी ? पृथिवी क्यों प्रकाशित है ? चन्द्र के घूमने से पृथिवी पर क्या क्या परिणाम होते हैं ? उसका व्यास और परिधि क्या है ? चन्द्र पर चिह्न क्या है ? चन्द्र का भी चन्द्र कोई है वा नहीं ? चन्द्र में दिन रात कैसे होते हैं ? वे हमारे दिन रात से छोटे होते हैं वा बड़े ? ऐसा क्यों ? मास क्या होता है ? चन्द्र पर मास का क्या परिमाण है ? चन्द्र पर ऋतुएं हैं वा नहीं ? हैं तो कितनी हैं ? चन्द्र किस पर खड़ा है ? पृथिवी किस पर टिकी है ? क्या एक ही पृथिवी है अथवा अनेक हैं ? उनके आकार प्रकार और स्थिति गति क्या है ? वे घूमती हैं वा स्थिर रहती हैं ? वहां दिन रात होते हैं वा नहीं ? होते हों तो उनका परिमाण क्या है ? हमारे दिन रात के समान होते हैं वा न्यूनाधिक ? हमें जितना प्रकाश दिन में मिल रहा है क्या वहां पर उतना ही है अथवा न्यूनाधिक ? क्यों ? मास वा वर्ष का परिमाण क्या है ? उन पृथिवियों के चन्द्र हैं वा नहीं ? एक-एक चन्द्र है वा अनेक ? यदि अनेक चन्द्र हों तो शुक्ल-कृष्ण पक्ष की कैसी व्यवस्था होगी ? सूर्य क्या है ? उसका व्यास कितना है और परिधि कितनी है ? वह किस पर टिका है ? उसमें दिन रात मास वर्षादि होते हैं वा नहीं, क्यों ? सूर्य में चिह्न क्या हैं ? वह कैसे घूमता है ? सूर्य एक है वा अनेक ? ग्रहण क्या है ? कितने प्रकार के हैं ? क्यों होते हैं ? ग्रहणों का क्या प्रभाव होता है ? पृथिवी घटती बढ़ती है वा नहीं ? ग्रह क्या हैं और कितने हैं ? उनका मनुष्य पर क्या कोई प्रभाव होता है ? होता हो तो किस प्रकार का ? हम जिस सूर्य को देखते हैं वह सबसे छोटा है वा बड़ा है वा मध्यम परिमाण का ? एक दूसरे सूर्य का परस्पर क्या सम्बन्ध है ? तारे क्या हैं ? कितने हैं ? स्थिर हैं वा घूमते हैं ? दिन में कहां रहते हैं ? क्यों नहीं दीखते ? रात्रि में क्यों दीखते हैं ? पुच्छल तारे क्या हैं ? कितने हैं ? वे कहां रहते हैं ? कभी कभी क्यों दीखते हैं ? उनसे हमें क्या हानि लाभ होते है ? उल्काएं क्या हैं ? क्यों दीखती हैं ? घटी पल मुहूर्त्त क्या हैं ? दिन, मास, ऋतु, उत्तरदक्षिणायन, वर्ष, युग, मन्वन्तर, कल्प, महाकल्प क्या हैं ? प्रलय महाप्रलय क्या हैं ? कितने प्रकार के दिन मास वर्ष आदि हैं ? उनका क्या उपयोग है ?

आकाशगंगा क्या है ? नक्षत्र क्या हैं ? कितने हैं ? राशियां क्या हैं ? कितनी हैं ? उनके आकार प्रकार क्या हैं ? उनका मनुष्य पर क्या प्रभाव

होता है ? इन तारों का कहीं अन्त है वा नहीं ? ये कैसे बने ? क्यों बने ? इसी प्रकार रहते हैं वा इनका कभी विनाश होता है ? विनाश क्यों होता है ? प्रलय किसको कहते हैं ? उसका क्या प्रयोजन है ? उसमें क्या रहता है ? सृष्टि प्रलय अब तक कितने वार हुए हैं ? सब लोकों का एक वार प्रलय होता है वा कभी किसी का और कभी किसी का ?

प्रकाश क्या है ? ज्योति क्या है ? प्रकाश का क्या स्वरूप है ? उसकी गति क्या है ? कितनी है ? उसकी कोई सीमा है वा नहीं ? कितने प्रकार की ज्योतियां हैं ? ज्योतिष् पिण्डों का आकार प्रकार क्या है ? विद्युत् क्या है ? आकाश क्या है ? आकाश का क्या कोई परिमाण है ? इत्यादि-इत्यादि समस्त बातों का जिसमें विचार हो उसको ज्यौतिष शास्त्र कहते हैं। दिव्यद्रष्टा महर्षि दयानन्द ने अपने अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि—**"दो वर्ष में ज्योतिष् शास्त्र सूर्य सिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित, अङ्क, भूगोल, खगोल और भूगर्भ विद्या है इसको यथावत् सीखें।"**—तृ० समु०

अथ द्वितीयसमुल्लासः

अथ ज्यौतिषाध्ययननस्य प्रयोजनानि व्याख्यास्यामः ।

प्राचीन काल में वेदज्ञान के लिए ज्यौतिष का अध्ययन होता था। वेदार्थबोध के लिए इस शास्त्र का ज्ञान आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य था। इस को आचार्य भास्कर के शब्दों में पढ़िए —

वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते ।
संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषाङ्गेनहीनो न किञ्चित्करः ॥ १ ॥
तस्माद् द्विजैरध्ययनीयमेतत् पुण्यं रहस्यं परमं च तत्त्वम् ।
यो ज्यौतिषं वेद नरः स सम्यक् धर्मार्थकामान् लभते यशश्च ॥ २ ॥

अर्थ :—यह ज्यौतिष शास्त्र वेद के चक्षुस्थानीय है। अतः अङ्गों में इस की मुख्यता है। चक्षु से हीन अन्य नासिकादि से युक्त भी अकिंचन होता है ॥ १ ॥ अतः पुण्यदायक, रहस्य और परमतत्त्व युक्त इस का अध्ययन द्विज करें। जो ज्यौतिष का विद्वान् है वह धर्म, अर्थ, काम और यश को अच्छे प्रकार प्राप्त करता है ॥ २ ॥

ऋषिवर यास्क ने लिखा है—**"साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुरुपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च" ॥ निरु० १ । २० ॥**

साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने वेदार्थ बोध के लिए वेदाङ्गों का निर्माण किया, उसके लिए आवश्यक साधनों का वर्णन छः अङ्गों में किया है। इसका अभ्यास करके ही वेद को जानने का अधिकारी हो सकता है।

वर्तमान में कुछ लोग वेद के छः अङ्गों के अध्ययन के विना ही एक, दो, तीन, चार अथवा पांच अङ्गों को यथातथा पढ़कर वेद पढ़ने में प्रवृत्त होते हैं। कुछ लोग इन सब को पढना व्यर्थ समझ संस्कृत भाषा में चञ्चु-पात (चोंचमार) कर वेद के विद्वान् बनने के लिए लालायित हैं। अन्य लोग यह प्रचार करते हैं कि "वेद पढ़ने के लिए व्याकरणादि पढ़ने की आवश्यकता ही नहीं है।" उनको हम नमोनमः ही कहेंगे। इन पर आश्चर्य है कि **"पीनो-**

ऽयं देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते।" हृष्ट पुष्ट देवदत्त दिन में नहीं खाता है। अर्थापत्ति से यह सब जान सकते हैं कि रात्रि में खाता है इसी प्रकार ये देवदत्त भी छिप-छिपकर वेदाङ्गप्रकाश घोटा करते हैं। ऐसा छिपकर क्यों करते हैं इसके दो कारण हैं। १—एक तो यह है कि सस्ते वेदभाष्यकार बनना चाहते हैं। २—दूसरा यह है कि विद्वानों को ही मूर्ख बनाना चाहते हैं जिस से कि विद्वान् इन को ही मूर्ख घोषित न कर बैठें।

कुछ लोग ऐसे भी हैं कि लौकिक संस्कृत का ज्ञान करके वेदाध्ययन वा वेदभाष्य करने में झटिति प्रवृत्त होते हैं। एतद्देशीय कुछ लोग तथाकथित वेदभाष्य वा वेदों पर पाश्चात्यों की की हुई टीका टिप्पणियों को देख पढ़-कर अपने को वेदज्ञ मानने और कहने लग जाते हैं।

आज इन वेदाङ्गों को परमपावन वेदोपलब्धि के लिए न पढ़ा जाता है न ही सुना जाता है। इस प्रयोजन को लेकर पढ़ने वाले न मेरे देखने में आए न सुनने में ही। इस उद्देश्य से इन शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना वैदिकों की परम्परा में कहीं दृष्टिगत नहीं होता। होवे कहां जब कि वेदार्थबोधक पद्धति ही विद्यमान नहीं है। मैं इनमें से प्रस्तुत ज्यौतिष को लेकर विचार कर रहा हूँ। अब वेदार्थ बोधक ज्यौतिष शास्त्र नहीं है न उसका उपयोग ही ज्ञात है। सहस्रों वर्षों के इस काल में वेदार्थ का लोप हुआ, साथ ही वेदार्थ बोधक ज्यौतिष भी अनेक रूपों को धारण करता हुआ अपने स्वरूप से च्युत हुआ। इस स्थानभ्रष्ट ज्यौतिषशास्त्र के प्रयोजनों पर विचार करते हुए ज्योतिर्विद्याविहीन नामधारी ज्यौतिषियों ने लोक में इसकी अन्त्येष्टि ही कर दी। इस शास्त्र के साथ सर्वथा अन्याय हुआ। आज ज्यौतिष का अर्थ भविष्य का जानना समझा जाता है जैसा कि भास्कर ने व्यक्त किया है—

"ज्योतिश्शास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते" ज्योतिष शब्द भविष्य में होने वाली बात के ज्ञान के लिए रूढ हो चुका है। इस शब्द के सुनते ही भविष्यत् की कल्पना दौड़ने लग जाती है। इस के साथ यह भी आभास होता है कि भविष्यत् को जाना जा सकता है और जाना जाता है। इसको जानने के लिए उपाय के रूप में हस्तरेखा, अङ्गलक्षण, तिल, जन्मपत्रिका, मुहूर्त, वार, तिथि, ग्रह, नक्षत्र, राशि, शकुन, प्रश्न, स्वप्न आदि आदि माने जाते हैं।

हन्त ! क्वास्ताः क्व पतिताः ? कहां फेंकना चाहते थे और गिरा कहां ? उद्दिष्ट स्थान क्या था और हम कहां पहुँच गए ? आश्चर्यं महदाश्चर्यम् ।

वेद और ज्यौतिष शास्त्र में विप्रतिपन्न बुद्धियों के हितार्थ ज्यौतिष के प्रयोजन बतलाये जाते हैं जिससे ज्यौतिष के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो और उससे यथावत् उपकार लें।

ज्योतिष शास्त्र के प्रयोजन

१. **सृष्टिविज्ञान**—जिस भूमि पर हमने जन्म लिया और जीवित है उसके कुछ ही भाग को हम देख रहे हैं, वहुत बड़ा भाग हम से तिरोहित है। पृथिवी गोल है और बहुत बड़ी है अतः हम उसकी गोलाई को देख नहीं सकते हैं। इतनी बड़ी है कि हमारी दृष्टि में आने वाला अति स्वल्प भाग हमें चपटा ही दीखता है। इस का व्यास ७९२६ मील और परिधि २४९०२ मील वतलाई जाती है। ज्योतिर्विदों का अनुमान है कि पृथिवी का भार ६,६०,००,००,००,००,००,००,००,००,००० टन है। यह प्रति सेकण्ड १८.५ मील की गति से लगभग ९३०००००० मील दूरी पर स्थित सूर्य के चारों ओर घूमती है। एक वर्ष में सूर्य की एक परिक्रमा करती है। यह मार्ग दीर्घ वृत्ताकार में है जो ५८३७२५७६५ मील का है। एक सहस्रमील प्रति घण्टे की गति से एक अहोरात्र में अपनी प्रदक्षिणा भी पूर्ण कर लेती है। इसके साथ २३९००० मील दूर पर एक उपग्रह=चन्द्र भी है। उसका व्यास २१६० मील है। वह अपनी प्रदक्षिणा करता हुआ पृथिवी की परिक्रमा करता है। ये दोनों पिण्ड सूर्य-परिवार के सदस्य हैं। सूर्य यहां से ९३०००००० मील पर है। उसका व्यास ८६४००० मील है। वैज्ञानिकों का कथन है कि इसका भार २००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००० टन है और इस के गर्भ में एक साथ हमारी पृथिवी जैसी १३००००० पृथिवियां समा सकती हैं। यह अपनी प्रदक्षिणा लगभग २५ दिन में कर लेता है। साथ ही अनेकों ग्रहों, उपग्रहों, ग्रहखण्डों और धूमकेतुओं को अपने चारों ओर घुमा रहा है। इसका प्लूटो नामक दूरतम ग्रह है जो ३६७००००००० मील दूरी पर है। निकटतम ग्रह बुध है। इस का व्यास २९०० मील है। सूर्य से इसका निकटतम अन्तर २९०००००० मील और दूरतम अन्तर ४३०००००० मील है। इसी प्रकार ६७२७५००० मील पर पृथिवी के समान आकार वाला शुक्रनामक ग्रह है। यह कुछ मास तक पश्चिम में सूर्यास्तानन्तर और पूर्वदिशा में सूर्योदय से पूर्व उदित होने वाला सर्वाधिक प्रकाश युक्त तारा है। चन्द्र के पश्चात् क्रम में इसी का प्रकाश आता है। इसके अनन्तर हमारा भूगोल है। तदनन्तर मंगल नामक ग्रह है जो सूर्य से ४१६६०००० मील पर है। इसका व्यास ४२२१ मील हैं। इसके साथ दो

चन्द्र हैं जैसा कि पृथिवी के साथ एक चन्द्र है। इससे आगे १६०० से अधिक ग्रहखण्ड हैं। इनमें से अधिकतर खण्डों का १०-१० मील २०-२० मील व्यास है। कुछ का सैंकड़ों मील है। कुछ ऐसे भी खंड हैं जिनका व्यास एक दो मील से बढ़कर नहीं होगा। छोटे छोटे कंकड़ों वा पत्थरों जैसे तो करोड़ों वतलाये जाते हैं। ये लगभग सूर्य से २५ करोड़ मील पर हैं। ये सब सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इनको पार करके आगे बढ़ते ही गुरु नामक ग्रह है। यह आकार में पृथिवी से १३०० गुना बड़ा है। यह सूर्य से ४८३३००००० मील पर है। सौर परिवार में यह महत्त्वपूर्ण ग्रह है। यह सूर्य का छोटा भाई है। जहां पृथिवी का एक और मंगल के दो उपग्रह हैं, वहां गुरु के १२ उपग्रह* हैं। इसके पश्चात् शनिग्रह का क्रम आता है। ईश्वरीय सृष्टि का अनुपम वा दर्शनीय, तीन वलयों से सज्जित और दश चन्द्रों से सुभूषित यह ग्रह ८८६३००००० मील दूरी से अहर्निश सूर्य की परिक्रमा करता है। यह आकार में पृथिवी से ७६३ गुना बड़ा है। आगे चलकर हमें एक अन्य ग्रह दीखेगा जो यूरेनस नाम से जाना जाता है। आकार में यह शनि से कुछ छोटा है। इसके ५ चन्द्र हैं, यह सूर्य से १७८४०८०००० मील पर है। इससे आगे नेप्च्यून नामक ग्रह है। यह सूर्य से २७९६७००००० मील दूर पर है। इसके दो चन्द्र हैं। इससे भी परे एक अन्य ग्रह है जिसका नाम प्लूटो है और यह सूर्य से लगभग ३६७००००००० मील दूरी पर है।

इससे बहुत आगे अर्थात् सूर्य से १३००००००००००० मील दूरी पर धूमकेतुओं की कक्षा है। ये धूमकेतु संख्या में १००००००००००० से अधिक ही होंगे। ये सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं। इनकी पूंछ लाखों मील लम्बी रहती है। किसी किसी की तो २०००००००० बीस करोड़ मील तक रहती है।

ये सारे ग्रह आदि सूर्य की परिक्रमा करते हैं। परिक्रमा करने वाले समस्त ग्रह, उपग्रह, ग्रहखण्ड, धूमकेतु उल्कापिण्डों सब की सम्मिलित द्रव्य-राशि को ·१५ मान लिया जाय जो अकेले सूर्य की द्रव्य राशि ९९.८५ होगी। सम्पूर्ण सौर परिवार का भार दस सहस्र १०००० मान लिया जाय तो अकेले सूर्य की द्रव्य राशि ९९८५ है जब कि शेष ग्रहों का १५ है। अर्थात् सब की द्रव्यराशि से सूर्य ६६५.६६ गुणा अधिक है।

इतना ही नहीं इस सूर्य से बड़े अनेक लोक हैं जिनके सामने इसका

* "गुरुग्रह के १३ चन्द्र हैं"—आन्ध्रप्रभा तेलगु दैनिक पत्रिका ३ दिसम्बर, ७४।

वेद और ज्यौतिष शास्त्र में विप्रतिपन्न बुद्धियों के हितार्थ ज्यौतिष के प्रयोजन बतलाये जाते हैं जिससे ज्यौतिष के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो और उससे यथावत् उपकार लें।

ज्योतिष शास्त्र के प्रयोजन

१. **सृष्टिविज्ञान**—जिस भूमि पर हमने जन्म लिया और जीवित है उसके कुछ ही भाग को हम देख रहे हैं, बहुत बड़ा भाग हम से तिरोहित है। पृथिवी गोल है और बहुत बड़ी है अतः हम उसकी गोलाई को देख नहीं सकते हैं। इतनी बड़ी है कि हमारी दृष्टि में आने वाला अति स्वल्प भाग हमें चपटा ही दीखता है। इस का व्यास ७९२६ मील और परिधि २४९०२ मील बतलाई जाती है। ज्योतिर्विदों का अनुमान है कि पृथिवी का भार ६,६०,००,००,००,००,००,००,००,००,००० टन है। यह प्रति सेकण्ड १८.५ मील की गति से लगभग ९३०००००० मील दूरी पर स्थित सूर्य के चारों ओर घूमती है। एक वर्ष में सूर्य की एक परिक्रमा करती है। यह मार्ग दीर्घ वृत्ताकार में है जो ५८३७२५७६५ मील का है। एक सहस्रमील प्रति घण्टे की गति से एक अहोरात्र में अपनी प्रदक्षिणा भी पूर्ण कर लेती है। इसके साथ २३९००० मील दूर पर एक उपग्रह=चन्द्र भी है। उसका व्यास २१६० मील है। वह अपनी प्रदक्षिणा करता हुआ पृथिवी की परिक्रमा करता है। ये दोनों पिण्ड सूर्य-परिवार के सदस्य हैं। सूर्य यहां से ९३०००००० मील पर है। उसका व्यास ८६४००० मील है। वैज्ञानिकों का कथन है कि इसका भार २००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००० टन है और इस के गर्भ में एक साथ हमारी पृथिवी जैसी १३००००० पृथिवियां समा सकती हैं। यह अपनी प्रदक्षिणा लगभग २५ दिन में कर लेता है। साथ ही अनेकों ग्रहों, उपग्रहों, ग्रहखण्डों और धूमकेतुओं को अपने चारों ओर घुमा रहा है। इसका प्लूटो नामक दूरतम ग्रह है जो ३६७०००००००० मील दूरी पर है। निकटतम ग्रह बुध है। इस का व्यास २९०० मील है। सूर्य से इसका निकटतम अन्तर २९०००००० मील और दूरतम अन्तर ४३०००००० मील है। इसी प्रकार ६७२७५००० मील पर पृथिवी के समान आकार वाला शुक्रनामक ग्रह है। यह कुछ मास तक पश्चिम में सूर्यास्तानन्तर और पूर्वदिशा में सूर्योदय से पूर्व उदित होने वाला सर्वाधिक प्रकाश युक्त तारा है। चन्द्र के पश्चात् क्रम में इसी का प्रकाश आता है। इसके अनन्तर हमारा भूगोल है। तदनन्तर मंगल नामक ग्रह है जो सूर्य से १ ४१६९०००० मील पर है। इसका व्यास ४२२१ मील है। इसके साथ दो

चन्द्र हैं जैसा कि पृथिवी के साथ एक चन्द्र है। इससे आगे १६०० से अधिक ग्रहखण्ड हैं। इनमें से अधिकतर खण्डों का १०-१० मील २०-२० मील व्यास है। कुछ का सैंकड़ों मील है। कुछ ऐसे भी खंड हैं जिनका व्यास एक दो मील से बढ़कर नहीं होगा। छोटे छोटे कंकड़ों वा पत्थरों जैसे तो करोड़ों बतलाये जाते हैं। ये लगभग सूर्य से २५ करोड़ मील पर हैं। ये सब सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इनको पार करके आगे बढ़ते ही गुरु नामक ग्रह है। यह आकार में पृथिवी से १३०० गुना बड़ा है। यह सूर्य से ४८३३००००० मील पर है। सौर परिवार में यह महत्त्वपूर्ण ग्रह है। यह सूर्य का छोटा भाई है। जहां पृथिवी का एक और मंगल के दो उपग्रह हैं, वहां गुरु के १२ उपग्रह* हैं। इसके पश्चात् शनिग्रह का क्रम आता है। ईश्वरीय सृष्टि का अनुपम वा दर्शनीय, तीन वलयों से सज्जित और दश चन्द्रों से सुभूषित यह ग्रह ८८६३००००० मील दूरी से अहर्निश सूर्य की परिक्रमा करता है। यह आकार में पृथिवी से ७६३ गुना बड़ा है। आगे चलकर हमें एक अन्य ग्रह दीखेगा जो यूरेनस नाम से जाना जाता है। आकार में यह शनि से कुछ छोटा है। इसके ५ चन्द्र हैं, यह सूर्य से १७८४०८०००० मील पर है। इससे आगे नेप्च्यून नामक ग्रह है। यह सूर्य से २७९६७००००० मील दूर पर है। इसके दो चन्द्र हैं। इससे भी परे एक अन्य ग्रह है जिसका नाम प्लूटो है और यह सूर्य से लगभग ३६७००००००० मील दूरी पर है।

इससे बहुत आगे अर्थात् सूर्य से १३०००००००००००० मील दूरी पर धूमकेतुओं की कक्षा है। ये धूमकेतु संख्या में १००००००००००० से अधिक ही होंगे। ये सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं। इनकी पूंछ लाखों मील लम्बी रहती है। किसी किसी की तो २००००००००० बीस करोड़ मील तक रहती है।

ये सारे ग्रह आदि सूर्य की परिक्रमा करते हैं। परिक्रमा करने वाले समस्त ग्रह, उपग्रह, ग्रहखण्ड, धूमकेतु उल्कापिण्डों सब की सम्मिलित द्रव्य-राशि को ·१५ मान लिया जाय जो अकेले सूर्य की द्रव्य राशि ९९.८५ होगी। सम्पूर्ण सौर परिवार का भार दस सहस्र १०००० मान लिया जाय तो अकेले सूर्य की द्रव्य राशि ९९८५ है जब कि शेष ग्रहों का १५ है। अर्थात् सब की द्रव्यराशि से सूर्य ६६५.६६ गुणा अधिक है।

इतना ही नहीं इस सूर्य से बड़े अनेक लोक हैं जिनके सामने इसका

---

* "गुरुग्रह के १३ चन्द्र हैं"—आन्ध्रप्रभा तेलगु दैनिक पत्रिका ३ दिसम्बर, ७४।

विशेष महत्त्व नहीं होगा। ज्येष्ठा नक्षत्र का व्यास सूर्य के व्यास से ४५० गुणा बड़ा है। अर्थात् ३६०० लाख मील है जब कि सूर्य का केवल ८.६४ लाख मील है। उसके गर्भ में हमारे सूर्य के समान सूर्य एक साथ ९ नौ करोड़ समा सकते हैं।

हमारी आकाश गंगा के पास एक अन्य आकाश गंगा है। उस में एसडोराडस नामक नक्षत्र है। उसको हम चर्मचक्षुओं से नहीं देख सकते। दूरवीक्षण यन्त्रों से ही देखा जा सकता है। वह लगभग यहां से १०२ प्रकाशवर्ष दूरी पर है। उसका व्यास सूर्य के व्यास से १४०० गुणा अधिक है। अर्थात् एक अरब इक्कीस करोड़ मील लम्बा है। उसको व्याध नक्षत्र के पास लाकर रखें तो सप्तमी के चन्द्र के समान प्रकाशित होगा। उसका वास्तविक प्रकाश हमारे सूर्य से ४००००० चार लाख गुणा अधिक है। यदि उसको अपने सूर्य के पास लाकर रखा जाय तो हमारा सूर्य वैसे ही दीखेगा जैसे कृष्ण पक्ष की तृतीया का चन्द्र हमें दिन में निस्तेज दीखता है। यह ध्यान रखने योग्य बात है कि इतने अधिक प्रकाश को हमारे नेत्र नहीं सह सकते जैसे कि लोहे को जोड़ने के लिए जिस यन्त्र से काम लेते हैं उसमें से अत्यधिक प्रकाश आता है उसको नेत्र सह नहीं सकते उसके लिए काला कांच आंखों पर पहन लेते हैं। उस ओर यदि हमारी दृष्टि चली जाय तो हम तत्क्षण मुख फेर लेते हैं।

वैज्ञानिकों का कथन है कि इससे भी बड़े-बड़े नक्षत्र हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि हमारा सूर्य सबसे छोटा है। इससे छोटे भी अनेक सूर्य हैं। स्यात् कनिष्ठ सूर्य "वानमानेन्स" नामक होगा। उसका व्यास सूर्य से ११० एक सौ दसवां भाग है अर्थात् अपनी पृथिवी से कुछ छोटा ही होगा। उसका प्रकाश सूर्य के प्रकाश से १/६००० छः सहस्रवां भाग है।

यह सूर्य का एक परिवार है। यही सूर्य इन समस्त ग्रहोपग्रह, ग्रह-खण्ड, धूमकेतुओं का आधार और जीवन है। उन तथा तत्रस्थ चराचर पदार्थों का आत्मा "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" सूर्य है।

इस सौर परिवार से निकटतम दूसरा सौर परिवार २५-३०००००००००० मील दूरी पर है। लाखों मीलों की कल्पना कर सकते हैं। करोड़ों मीलों की भी किसी प्रकार कर सकते हैं किन्तु अरबों और खरबों मीलों की कल्पना करना क्लिष्ट है। वास्तव में वहां मनुष्य की कल्पना शक्ति भी कुण्ठित हो जाती है। इस समस्या के समाधान के लिए ज्योतिर्विदों ने एक युक्ति सोची जिसमें विना प्रयास के दूरी को समझने में किञ्चित् समर्थ

ग्रह	व्यास मीलों में	द्रव्य राशि	दिनपरिमाण	वर्ष परिमाण	गति मील से० में	ग्रहों पर तौल में भार	उपग्रह	सूर्य से दूरी मीलों में
चन्द्र	२१६०	१/८१	२९ दिन १२ घंटे			१७		९३००००००
बुध	२६००	१/२५	५९ दिन	८५ दिन	३२	२५		३५९६००००
शुक्र	७६१०	८१/१००	२४५ दिन	२२५ दिन	२२	८५		६७२०००००
भूमि	७९२६	१	२४ घंटे	३६५ दिन ६ घं०	१८.५	१००	१	९३००००००
मंगल	४२२१	११/१००	२४ घंटे ३७ मि०	६८७ दिन	१५.५	३७	२	१४१६०००००
गुरु	८६६००	३१८	९ घंटे ५५ मि०	११.८६ वर्ष		२६५	१२	४८३३०००००
शनि	७१५००	९५	१० घंटे २ मि०	२९.५ वर्ष	४.२५	११७	१०	८८६२०००००
यूरेनस	३०८८०	१४.५	१० घंटे ४८ मि०	८४ वर्ष ४ दिन	३.२५	१०७	५	१७८३००००००
नेप्च्यून	२७७००	१७.५	१५ घंटे ४८ मि०	१६४ वर्ष २९२ दिन	३			२७९४००००००
प्लूटो				२४७ वर्ष ९ मास				३६७००००००००
सूर्य	८६४०००							

होते हैं। वह युक्ति है प्रकाशवर्ष। वैज्ञानिकों का कथन है कि प्रकाश की गति एक सेकण्ड में १८६२८२ मील है। इस गति से चलता हुआ प्रकाश एक वर्ष में ६०००००००००००० मील जाता है। अर्थात् एक प्रकाशवर्ष का अर्थ हुआ साठ खरब मील। इस गणना से हमारे सौर परिवार का निकटतम अन्य सौर परिवार २५०००००००००००० मील पर अर्थात् ४·१७ प्रकाश वर्ष दूरी पर है। इससे कुछ ही अर्थात् ४·३ प्रकाश वर्ष दूरी पर पास-पास में दो सौर परिवार हैं। व्याधनामक नक्षत्र (सूर्य) ८·६, हंसानक्षत्र १०·९ श्रवण १६·५, आर्द्रा ६५०. प्रकाश वर्षों में हैं। इसी प्रकार अगणित नक्षत्र हैं। कहीं एक-एक सौर परिवार है और कहीं-कहीं पास-पास में दो, तीन नक्षत्र हैं। इनको नक्षत्रों का गुच्छा कहते हैं। इस प्रकार के लगभग एक खरब नक्षत्रों का एक समूह है जिसको हम आकाश गंगा कहते हैं इसी को नीहारिका भी कहा जाता है। रात्रि में विशेषकर अमावस्या की रात्रि में आकाश में तारों का घना समूह दीखता है किसी स्थान पर अधिक घने हैं। इतने घने हैं कि केवल थोड़ा उजाला, बादल का टुकड़ा जैसा दीखता है। इसी प्रकार खगोल को दो भागों में बांटता हुआ यह सारा समूह आकाश गंगा है। इसी आकाश गंगा का हमारा सूर्य भी सदस्य है। यह आकाश गंगा सर्प की कुण्डली के सदृश (आकार में) है। इसका व्यास एक लाख प्रकाशवर्ष है। इसके केन्द्र से लगभग ३५ सहस्र प्रकाशवर्ष दूरी पर हमारा सूर्य है ऐसा कहा जाता है।

इस प्रकार की आकाश गंगाएं (नीहारिकाएं) भी कुछ अकेले-अकेले हैं कुछ नीहारिकाएं गुच्छों के रूप में हैं। किसी-किसी गुच्छे में सहस्रों नीहारिकाएं भी रहती हैं। इस प्रकार की नीहारिकाएं एक खरब से भी अधिक बताई जाती हैं, इन नीहारिकाओं की मध्य दूरी लगभग २० लाख प्रकाशवर्ष है। किन्तु कोई भी वैज्ञानिक यह कहने का साहस नहीं रखता नाही सिद्ध कर सकता है कि "नीहारिकाएं इतनी ही हैं आगे नहीं"।

लगभग एक खरब नीहारिकाएं और एक-एक में एक-एक खरब नक्षत्र और एक-एक नक्षत्र के अनेकानेक ग्रहों के अनुपात से इस सृष्टि का क्या पारावार है? इससे यह न समझें कि यह सारा विश्व ग्रहनक्षत्रादि से ठसाठस भरा हुआ होगा। यह एक दृष्टान्त से स्पष्ट हो जायेगा।

सूर्य जिसका व्यास ८६४००० मील है सौर परिवार के मध्य में है। ःर से ३८०००००० मील दूरी पर बुध ग्रह (जिसका २९०० मील है) घूमता है। सूर्य से ६७२७५००० मील दूर पर शुक्र है इसका व्यास ७६१० मील है।

आगे ९३०००००० मील पर पृथिवी है जिसका व्यास ७९२६ मील है अर्थात् ९३० लाख मील व्यासार्ध (त्रिज्या) से बनाये वृत में (व्यास १८६० लाख मील है) केवल चार ग्रह हैं इसका स्वरूप ऐसा है जैसा कि एक मील व्यासार्ध (व्यास दो मील) से एक वृत बना लीजिए इसके मध्य में उसी केन्द्र से ८ गज व्यासार्ध से एक वृत बना लीजिए। यह वृत सूर्य बिम्ब हो जायगा। केन्द्र से लगभग ७०० गज पर नारंगी जितना वृत्त बना लीजिए यह बुध ग्रह हो जायगा। इससे ५६० गज पर ५ अंगुल त्रिज्या से एक वृत्त बना लीजिए यह शुक्र ग्रह हो जायगा और सूर्य के केन्द्र से मील पर शुक्रग्रह से ४०० गज पर ६ अंगुल त्रिज्या से एक वृत्त बना लीजिए यह पृथिवी हो जायेगी। दो मील व्यास वाले भूभाग पर नारंगी जितना बुध ग्रह छोटे खरबूजे जितना शुक्रग्रह जितनी भूमि का आक्रमण करेगा। लगभग इसे आकाश में भी हमारे सौर परिवार ने भी इतने ही स्थान का आक्रमण किया हुआ है। शेष आकाश रिक्त है=शून्य है। इसी प्रकार, एक सौर परिवार और दूसरे सौर परिवार (अथवा एक नक्षत्र और दूसरे नक्षत्र) के मध्य में अनेक प्रकाश वर्षों का अन्तर है। एक नीहारिका दूसरी नीहारिका से लगभग २० लाख प्रकाश वर्ष दूर पर है। इस प्रकार देखते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि सारा विश्व इस अनन्ताकाश में नहीं के समान है। लगभग एक लाख प्रकाश वर्ष की नीहारिका है। दो नीहारिकाओं के मध्य में २० लाख प्रकाश वर्ष की दूरी है इससे स्पष्ट है कि यह विश्व ग्रह नक्षत्रों से सघन नहीं है।

इस कल्पनातीत सृष्टि का ज्ञान इसी शास्त्र से होता है। इसलिए ज्यौतिष शास्त्र को पढ़ना चाहिए।

२. **आस्तिक्य**—इस अचिन्त्याप्रमेय अनाद्यनन्त विश्व का ज्ञान होने पर मनुष्य सहजतया इसके निर्माता के अस्तित्व को जानने लग जाता है। एक वैज्ञानिक की बात हो क्या लाखों करोड़ों वैज्ञानिक मिलकर भी इसकी रचना की कुशलता वा रचयिता की बुद्धि की निपुणता का पार नहीं पा सके। इस की बुद्धिमत्ता का जितना आभास प्राप्त करते हैं वह सारा समुद्र में बिन्दु के समान भी नहीं प्रतीत होता। बुद्धिमत्ता के साथ अद्भुत विचित्रता दीखती है **"नाना प्रकार के रत्नधातु से जडित भूमि, विविध प्रकार वट वृक्ष आदि के बीजों में अति सूक्ष्म रचना असंख्य हरित श्वेत पीत कृष्ण चित्र-मध्य रूपों से युक्त पत्रपुष्प फल मूल निर्गाण मिष्ट क्षार कटुक कषाय तिक्त अम्लादि विविधरस सुगन्धादि युक्त पत्रपुष्प फल अन्न कन्दमूलादि रचना**

अनेकानेक क्रोड़ों भूगोल सूर्य चन्द्रादि लोक निर्माण धारण भ्रामण नियम में रखना आदि परमेश्वर के विना कोई भी नहीं कर सकता।"[1] "जो विद्यादि उत्तम गुणों का देने वाला परमेश्वर है उसी के जानने के लिए सब जगत् दृष्टान्त है"।[2]

आस्तिक[3] बनने के लिए ज्योतिष पढ़ना चाहिए।

३. तत्वज्ञान—वैदिक परम्परा में "यथापिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" "यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे" "पुरुषोऽयं लोकसंमितः। यावन्ति हि लोके भावविशेषास्तावन्तः पुरुषे यावन्तः "पुरुषे तावन्तो लोके" "यथापिण्डे तथाण्डे, यथाण्डे तथा पिण्डे" यह मान्यता बहुत्र देखने में आती है।

सौर परिवार=ब्रह्माण्ड का आधार सूर्य है। सूर्य से अनुप्राणित सहस्रों ग्रहोपग्रह, ग्रहखण्ड और धूमकेतु आदि उसके चारों ओर अहर्निश घूमते हैं। सूर्य के विना इनका बना रहना संभव नहीं। प्रकाश भी नहीं होगा और जीवन भी नहीं रहेगा। उसी के आकर्षण से आकृष्ट हो अपने गन्तव्य पथ पर चलायमान हैं। इसी प्रकार यह मनुष्य-शरीर है। इसमें शिर आधार है। यह जीवन है। सारा शरीर उसके नियन्त्रण में है। आदिष्ट पथ पर चलायमान है। इसके विना शरीर नहीं रह सकता। बल, विद्या और व्यवहारादि उसी के दिये हुए हैं। सब कुछ उसी का है। उसी के चारों ओर शरीर सावयव घूम रहा है। इन सब के मध्य में शिर है। यही उपरिलिखित यथापिण्डे तथा ब्रह्माण्डे···आदि वाक्यों का अर्थ है। जैसी शरीर में रचना है वैसी रचना इसके अण्ड रूपी वीर्य में भी है। जो रचना वट वृक्ष में है वही रचना उसके अतिसूक्ष्म बीज में भी है। कारणरूप बीज में वर्तमान शरीर कार्यरूप में आता है। यदि ऐसा न होता तो मनुष्यों से पशु और पशुओं से मनुष्य जन्म लेते। ऐसा न होने का कारण "कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः" सिद्धान्त ही है।

पिण्ड का आत्मा अधिपति है ब्रह्माण्ड का अधिपति परमात्मा है। वही इस विश्व का निर्माता है। शेष प्रकृति है। प्रकृति से इसको बनाता है। इसी प्रकार गहराई में जाकर बन्धनों से मुक्ति के कारणरूप समस्याओं का

१. सत्यार्थप्रकाश ८ समु०।

२. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका। पृथिव्याकर्षणभ्रमणविषयः।

३. जब तुम ईश्वर की सृष्टि का हाल नहीं जानते तो ईश्वर को कैसे जानते होगे। सत्यार्थप्रकाश १३ समु० समीक्षा सं० १।

समाधान प्राप्त करता हुआ मोक्ष का अधिकारी और मुक्त भी होता है। ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन के विना यह तत्त्वज्ञान नहीं हो सकता।

४. अघमर्षण—पूर्वत्र यह कहा जा चुका है कि प्रकाश की गति एक सेकण्ड में १८६२८२ मील है। एक वर्ष में ६० खरब मील चलता है। वैज्ञानिकों का यह कथन है कि अबतक ४।। अरब प्रकाश वर्षों की दूरी तक ये नीहारिकाएं दीख रही हैं। इससे आगे देखने के लिए अभी मानव यन्त्र नहीं बना पाया। पृथिवी पर खड़ा मनुष्य यन्त्रों के माध्यम से अब चारों ओर ४।।, ४।। अरब प्रकाश वर्षों तक देख पा रहा है। एक प्रकाश वर्ष की संख्या से ४।। अरब को गुणने पर २७०००००००००००००००००००० मील आते हैं। अपने चारों ओर इतने मीलों तक देख पा रहा है मनुष्य की दृष्टि जहां-जहाँ तक पहुँच रही है उसको वृत्त मान लिया जाय। उसके मध्य में मनुष्य खड़ा है। इसमें बीस लाख प्रकाश वर्षों के अन्तर से एक-एक लाख प्रकाश वर्षों को नीहारिका है। एक-एक नीहारिका में कई-कई प्रकाश वर्षों के अन्तर से एक-एक नक्षत्र=ब्रह्माण्ड है। उसका भी अपना-अपना परिवार है जो अरबों मीलों तक व्याप्त है उसमें कई करोड़ मीलों के अन्तर से अनेक ग्रह आदि हैं उनमें से एक पृथिवी। पृथिवी में भी एशिया महाद्वीप उसमें भी एक देश भारत। उसमें एक प्रान्त। प्रान्त में एक मण्डल। मण्डल में भी एक नगर अथवा ग्राम उसमें एक घर। उसका भी एक सदस्य। उस अनन्त अपार विश्व के समक्ष मनुष्य का कितना अस्तित्व है? इसके लिए एक वास्तविक घटना दी जाती है। "सन् १९१२ का जून महीना था जब सारे अमेरिका में नये प्रेसिडंट के चुनाव की धूम थी, उस समय लिक वेधशाला के ज्योतिषी ने दर्शकों को एक तारा समूह दिखलाया जिसमें एक साथ ही ६००० तारे दिखलाई पड़ते थे। एक दर्शक ने पूछा "क्या कहा? क्या सचमुच इनमें से प्रत्येक तारा एक सूर्य है?" ज्योतिषी ने कहा "जी हां"। "और प्रत्येक सूर्य के साथ कई एक ग्रह हो सकते हैं?" उत्तर मिला "जी हां"

"और इन ग्रहों में प्राणी रह सकते हैं?" फिर उत्तर मिला 'जी हां' दर्शक ने गम्भीर भाव से कहा "तब हमें रत्ती भर भी चिन्ता नहीं है कि आगामी सप्ताह में रूजवेल्ट प्रेसिडेण्ट चुने जायेंगे या टैफ्ट।"[1] अधिक जीवे तो मनुष्य की सौ वर्ष की आयु है। उसमें से भी कुछ समय सोने में, कुछ बाल्य में, कुछ वृद्धावस्था में, कुछ व्याधि में, वियोगादि में शेष राग द्वेष काम-

१. गोरखप्रसाद रचित 'सौर परिवार', पृ० ९ से उद्धृत।

क्रोध लोभ मोह उदरपोषण तथा विषयसेवन में समाप्त होता है। सौ वर्ष में सुख की घड़ियां कितनी हैं इसका ज्ञान हम नहीं कर पाते हैं। क्या ये सौ वर्ष बहुत बड़ा समय है ? जहां हम अब हैं वहां सौ वर्ष पूर्व कौन थे ? कोई न कोई थे अवश्य। हम से पूर्वज पिता, पितामह, प्रपितामह आदि का जन्म कब हुआ, उनका बाल्य किनके साथ व्यतीत हुआ, कैसे व्यतीत हुआ, उनके कौन-कौन मित्र थे, वे सब जीवन पर्यन्त साथ रहे क्या ? कहां-कहां रहे ? क्यों रहे ? सब एक साथ मरे क्या ? क्या एक साथ जन्मे ? उनके भी पूर्वज रहे होंगे, उनके सम्बन्ध में भी ऐसे ही प्रश्न होंगे; इस प्रकार चलते-चलते हमें कोई आदि नहीं मिलता। परम्परा से यह सुनते आ रहे हैं कि वर्तमान मनुष्य-सृष्टि लगभग दो अरब वर्षों से है। यदि पच्चीस वर्ष की एक पीढ़ी भी मान लेवें तो लगभग ८ करोड़ पीढ़ियां एक के पश्चात् एक समाप्त हो चुकी हैं इससे पूर्व भी सृष्टि थी। ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष की सृष्टि इतने ही वर्ष का प्रलय ऐसे ३० अहोरात्रों का एक मास, १२ मासों का एक वर्ष, सौ वर्षों का परान्तकाल ऐसे परान्तकालों की कोई संख्या नहीं। इसी प्रकार भविष्यत् में होता रहेगा। तब अनन्तकाल वा देश के मध्य में अनन्त अगाध समुद्र के समक्ष एक बिन्दु के समान मैं अकिञ्चन, शरीर को अलंकृत करने खाने पीने ओढ़ने पहनने के लिए क्यों पाप कर रहा हूँ ? किसके लिए कर रहा हूँ; ऐसे सोचने समझने वाले मनुष्य के पापमय विचार, संकल्प शनैः शनैः निर्बल वा दग्धबीज भाव को प्राप्त करेंगे। यही अघमर्षण है। इसके विषय में एक दृष्टान्त उपयुक्त होगा।

"राजा मुञ्ज ने राज्य के लोभ से अपने भ्राता के पुत्र भोज को जंगल में मरवाने को भेजा। भोज ने अन्तिम संदेश के रूप में एक श्लोक मुञ्ज को लिख भेजा जो निम्न था—

मान्धाता स महीपतिः कृतयुगालङ्कारभूतो गतः,
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते,
नैकेनापि समं गता वसुमती मुञ्ज त्वया यास्यति॥

अर्थ :—सत्य युग में मान्धाता नामी बड़ा प्रतापी राजा था जो पृथिवी का भूषण समझा जाता था, चल बसा। जिस राम ने समुद्र पर पुल बांधा, महा पराक्रमी रावण का वध किया, वह भी चल बसा। और युधिष्ठिर भीम भीष्म आदि बड़े-बड़े शूरवीर राजा दिवंगत हुए। यह पृथिवी किसी के साथ नहीं गई। ऐसा लगता है कि आपके साथ जायगी।

जब मुञ्ज ने इस को पढ़ा अघमर्षण हुआ। हृदय परिवर्तन हुआ। मन का पाप धुल गया। मन पवित्र हुआ। बुद्धि में प्रकाश हुआ। राजगद्दी आदि सब भोज को दे जङ्गल में जा तपस्या करने लगा। इस ज्ञान से ओत-प्रोत मनुष्य जब-जब इस ज्ञान को बुद्धि में स्थान देगा, सोचेगा, समझेगा, तब-तब उसके आत्मा में अघमर्षण होता रहेगा। प्रातः सायं बैठकर परमात्मा के समक्ष उसी को वाणी में अघमर्षण के लिए सन्ध्या करेगा। सन्ध्यास्थ अघमर्षण मन्त्रों का प्रयोजन यही है। यह ज्यौतिष शास्त्र के ज्ञान से होता है। जीवन में अघमर्षण करने अर्थात् निष्पाप होने के लिए ज्यौतिष को पढ़ना चाहिए।

५. **वेदार्थज्ञान**—वेद ईश्वरीय ज्ञानराशि है। सृष्टि ईश्वरीय ही है। सृष्टि जीवों के कर्मफलोपभोग के लिए और परमात्मा के बोध के लिए है। सृष्टि शब्द विस्तृत अर्थ को लेकर है। इस 'सृष्टि' शब्द में जगत् की उत्पत्ति, इसका सञ्चालन पालन प्रलय आदि अर्थ निहित हैं। महत्तत्त्व से लेकर पृथिव्यादि स्थूलभूत चराचर पदार्थ जीवों के समस्त शरीर लोकलोकान्तर सब सृष्टि है। इसी में पदार्थविज्ञान उनकी रचना, गुणकर्मस्वभाव भूतों का निर्माण उनके लक्षण, गुणकर्मलोकों की भूतभविष्यद्वर्तमान में होने वाली स्थिति, परिवर्तन का कारण प्रकाश प्रकाश्य प्रकाशक धारणाकर्षण धारक धार्यमाण आकर्षक आकृष्यमाण जीवन तत्साधन वा रचना जन्म-मरण आदि समस्त सृष्टि के रहस्य हैं, इनका ज्ञान ज्यौतिष से होता है। इसी का बोध वेद से होता है। वेदों से संगृहीत, एकत्रित इस विद्या का नाम ही ज्यौतिष शास्त्र है। इसलिए इसको पढ़ना चाहिए। इसके बिना वेदार्थ को नहीं जान सकते। वेद को न जानकर जीवन में धर्मार्थकाममोक्षरूपी फलों से संयुक्त नहीं हो सकते। **"कुतः 'नाऽवेदविन्मनुते तं बृहन्तं' यो मनुष्यो वेदार्थान्न वेत्ति स नैव तं बृहन्तं परमेश्वरं, धर्मं, विद्यासमूहं वा वेत्तुमर्हति···"**

ऋ० भा० भू० पठन-पा०

जो मनुष्य वेदार्थों को नहीं जानता है वह उस महान् परमेश्वर, धर्म और विद्यासमूह को जान नहीं सकता······।

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुरुपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च॥ निरुक्त १।२०।

साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने वेदार्थ बोध के लिए वेदाङ्गों का निर्माण

किया उसके लिए आवश्यक साधनों का वर्णन छः अङ्गों में किया है इसका अभ्यास करके ही वेदार्थबोध का अधिकारी हो सकता है।

पाणिनिपतञ्जलियास्कादिमहर्षिभिश्च वेदव्याख्यानानि वेदाङ्गानि कृतानि······ ॥ ऋ० भा० भू० शंकासमा० वि० ॥

पाणिनि पतञ्जलि यास्कादि महर्षियों ने वेदव्याख्यान रूपी वेदाङ्ग बनाए।

मनुष्यैर्वेदार्थविज्ञानाय व्याकरणाष्टाध्यायीमहाभाष्याध्ययनम्। ततो निघण्टुनिरुक्तछन्दोज्योतिषां वेदाङ्गानाम्।··· पठ० वि०

मनुष्यों को वेदार्थ विज्ञान के लिए व्याकरणाष्टाध्यायी महाभाष्याध्ययन करना चाहिए। पश्चात् निघण्टु निरुक्त छन्द ज्यौतिष वेदाङ्गों का अध्ययन करना चाहिए।

अङ्गाङ्गिभावत्वात्—अङ्गों के विना अङ्गी नहीं पहचाना जा सकता ज्यौतिष वेद का चक्षुस्थानीय होने से इसका अध्ययन करना अनिवार्य है। इस विषय में पूर्वत्र सविस्तर लिखा है।

६. **वैदिकलौकिकशब्दज्ञान**—वैदिक शब्द सर्वज्ञ ईश्वर द्वारा प्रयुक्त होने से व्यापक अर्थों को लेकर हैं। ईश्वर नित्य होने से उसका गुण रूपी ज्ञान भी नित्य है। अतः ईश्वर प्रयुक्त शब्दार्थसम्बन्ध नित्य हैं। ईश्वरीय शब्दों को लेकर मनुष्यों ने अभीष्ट अर्थों में प्रयुक्त किया है। जीवों का यह नैमित्तिक (अनित्य) ज्ञान होने से जीवों द्वारा प्रयुक्त शब्दार्थसम्बन्ध अनित्य है। उसके साथ ही लोक में एक ही शब्द को कालान्तर में भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है।

वेदों में ऐसे बहुत से शब्द हैं जिनका अर्थज्ञान लोक से नहीं होता। कुछ ऐसे शब्द हैं जिनका लोक में एक अर्थ है तो वेद में दूसरा। इस प्रकार के शब्दों का यथार्थज्ञान ज्यौतिष से होता है। इसके विना नहीं हो सकता। यथा—विराट्, ब्रह्माण्ड, ऋत, गौः, पशु, शश, वराह, सर्प, अद्रि, पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, उल्का, धूमकेतु, ग्रह, अग्नि, सवितृ, लोक, विद्युत्, स्तनयित्नु, रजस्, आकाश, व्योम, खं, द्यु, अन्तरिक्ष सिनीवाली, राका, अनुमति, कुहू, दर्श, पौर्णमास, ज्योतिषामयन, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, विषुवान्, संसर्प, अंहसस्पति, अहः, दिवस्, रात्रि, अहोरात्र, मास, संवत्सर, परिवत्सर, युग आदि आदि। इन शब्दों का अर्थ ज्यौतिष के विना यथावत

नहीं होता। इसलिए वैदिक लौकिक शब्दों के ज्ञान के लिए ज्यौतिष को पढ़ना चाहिए।

७. **वेदनित्यत्वज्ञान**—जिस समय सृष्टि में आदि मानव उत्पन्न होता है उसको जिस प्रकार आज भी माता पिता आदि विद्या देते हैं बालक उन से विद्या सीखकर ही विद्यावान् होता है उसी प्रकार मनुष्य को परमेश्वर ही विद्या देता है। इसी से मनुष्य ने अपने सम्पूर्ण व्यवहारों को सिद्ध किया। यदि ईश्वर ने वह ज्ञान न दिया होता तो कारणाभावात्कार्याभावः के अनुसार ज्ञान=कारण=निमित्त न होने से ज्ञान=कार्यनैमित्तिक भी न प्राप्त होता।

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥ ऋ० १०।७१।१॥
अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥

महा० भा० शा० अ० २३२। २४॥

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥ मनु० १। २१॥

मनुष्य ने स्वप्रयोजनानुसार समस्त पदार्थों के नाम वेद के आधार पर दिए। परन्तु पश्चाद्वर्ती समाज ने इस रहस्य को विस्मृत कर ब्रह्माण्डस्थ व मानव इतिहासस्थ नाम के सामान्य से वेद को अनित्य कल्पित कर वेद में अनित्य इतिहास को ढूंढने का प्रयास किया। यथा—अगस्त्य अहल्या, सप्तर्षि, गौतम, त्वष्टा, रोहिणी आदि शब्द सृष्टि में किन-किन अर्थों में हैं यह ज्यौतिष शास्त्र से सम्यक् प्रकार से अधिगत होता है। इसको ठीक-ठीक न जान कर ईश्वरीय वेदज्ञान के साथ अनर्थ किया और उसके उपकार से वञ्चित होकर मानव जन्म का भार ढोते रहे।

वेदनित्यत्व ज्ञान करने के लिए ज्यौतिष पढ़ना चाहिए।

८. **वेदरक्षा**—वेदों की रक्षा के लिए ज्यौतिष पढ़ना चाहिए। जो ज्यौतिषानभिज्ञ है वह वेदों की रक्षा नहीं कर सकता है। लोकलोकान्तरों और पृथिवीभ्रमण आदि प्रतिपादक मन्त्रों को पढ़कर चर्मचक्षुओं से उस प्रकार न दीखने के कारण वेद को ही मिथ्या मान कर वेद की ही निन्दा करेगा। शब्द का यौगिक अर्थ जानकर भी तद्वत् लोक में प्रत्यक्ष न दीखने पर चर्मचक्षुओं से अज्ञेय विषय को मिथ्या भी मान सकता है। जो इस

शास्त्र को जानता है वह ऐसी भ्रान्ति में नहीं आ सकता।

जैसा कि :—

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्।
इत्था चन्द्रमसो गृहे॥ ऋ० १। ८४। १५॥
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः॥ यजु० ३। ६॥

इन मन्त्रों में समस्त लोकों का भ्रमण, सूर्य से चन्द्र का प्रकाशित होना और सूर्य से परितः पृथिवी का भ्रमण वर्णित है। ज्यौतिषानभिज्ञ इसको न जानकर वेद का अनर्थ ही करेगा। वेद के मन्त्रों का अर्थ इस ज्यौतिषविद्या के अभाव से नहीं जान सकेगा। वेदार्थ न जानकर वेद की रक्षा नहीं कर सकेगा। वेद की रक्षा के लिए ज्यौतिषशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए।

९. ऊह—पृथिवी का भ्रमण होता है। दिन होता है। रात्रि होती है। दिन में ह्रासवृद्धि होती रहती है। उत्तरायण दक्षिणायन होते हैं। सूर्य-ग्रहण चन्द्रग्रहणादि होते हैं। इनसे दिग् देश काल आदि का ज्ञान होता है।

वेदों में लोकालोकान्तरों का ज्ञान बीज रूप में है। विस्तृत रूप में नहीं है। पृथिवी के समान सूर्य चन्द्र आदि सम्पूर्ण लोकों में उस प्रकार की गति होती है। वेदों में पृथिवी, सूर्य चन्द्र आदि के सम्बन्ध में जो ज्ञान प्रस्तुत है वह उपलक्षण मात्र है। यह क्रम सम्पूर्ण ग्रहोपग्रह सूर्य और सौर परिवारों में होता है। यही ऊह है इस शास्त्र के अध्ययन से इस विषय का ज्ञान होता है इसके विना इसका ज्ञान नहीं होता सम्पूर्ण पृथिवी का ज्ञान मनुष्यमात्र के लिए सुलभ वा संभव नहीं है। गोल यन्त्र को बनाकर उसमें जो स्थिति गति होती है उसी के समान पृथिवी में होती है यह ऊहजनित ज्ञान है। ज्यौतिष विद्या में प्राचीन वा अर्वाचीन सभी वैज्ञानिक इसी प्रकार अन्वेषण करते हैं आज भी कर रहे हैं। इस ऊह ज्ञान के लिए ज्यौतिष का अध्ययन करना चाहिए।

१०. आगम—आप्त प्रमाण का अनुसरण करके भी इस शास्त्र का अध्ययन करना चाहिए"'"**ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च**"'" यह महाभाष्य में पतञ्जलि द्वारा उद्धृत आप्तप्रमाण है।

प्रतिफल की आशा को छोड़कर ब्राह्मण साङ्गवेद को पढ़े और धर्म को जाने।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने लिखा है कि—**मनुष्यैर्वेदार्थविज्ञानाय व्याकरण अष्टाध्यायीमहाभाष्याध्ययनम्। ततो निघण्टनिरुक्तछन्दो ज्यो-तिषां वेदाङ्गानाम्**"'"।

इसी को भास्कराचार्य जी ने लिखा है कि—

वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते।
संयुतोपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषाङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः॥
तस्माद् द्विजैरध्ययनीयमेतत् पुण्यं रहस्यं परमं च तत्त्वम्।
यो ज्यौतिषं वेत्ति नरः स सम्यक् धर्मार्थकामान् लभते यशश्च॥
इनका अर्थ पूर्वत्र लिखा है देख लेवें।

इस शास्त्र के अध्ययन में किया हुआ परिश्रम व्यर्थ नहीं जाता। अपितु वेदाध्ययन वा वेदार्थज्ञान के समय ज्ञात होगा। इसलिए भी इस शास्त्र का अध्ययन करना चाहिए।

११. लघ्वर्थम्—इस शास्त्र में वर्णित गोल आदि विभिन्न यन्त्रों वा उपकरणों द्वारा अनन्तानन्त विश्व का ज्ञान सरल रीति से स्वल्पकाल में स्वल्प प्रयत्न से करतलामलकवत् स्पष्ट होता है। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए इसके समान वा अधिक, इससे भिन्न, इससे संक्षिप्त वा सरल उपाय अन्य कोई नहीं है जिससे लोक संस्थान का ज्ञान हो सके। विश्व विज्ञान के बोध को लघुतम रीति से प्राप्त करने के लिए ज्यौतिष शास्त्र को पढ़ना चाहिए।

१२. असन्देहार्थम्—पृथिवी स्थिर प्रतीत होती है और समतल भी किन्तु गतिशील और वर्तुल कही जाती है। नक्षत्र और ध्रुव स्थिर प्रतीत होते हैं किन्तु अस्थिर=चल कहे जाते हैं। प्रति अमावस्या को सूर्यग्रहण और प्रति पौर्णिमा को चन्द्रग्रहण क्यों नहीं होता। सूर्य चन्द्र पूर्व से पश्चिम को जाते दीखते हैं किन्तु कहा जाता है कि पश्चिम से पूर्व को जाते हैं। तारे दिन में कहाँ जाते हैं? रात्रि में कहाँ से आते हैं? सूर्य में दिन रात होते हैं वा नहीं इत्यादि सहस्रशः सन्देहों की निवृत्ति के लिए ज्यौतिष पढ़ना चाहिए।

१३. दिग्ज्ञान—दिशा क्या है? पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान, ऊपर, नीचे आदि किस-किस को कहते हैं; इन सब का सविस्तर ज्ञान इस शास्त्र से होता है। पृथिवी पर हम कहाँ हैं? हमसे लंका पाताल आदि किस दिशा में हैं? अमुक ग्राम किस दिशा में है? अमुक

प्रांत की सीमा किस-किस दिशा में कहां तक है ? उसकी चारों दिशाओं में कौन से प्रान्त हैं। घर का द्वार किस दिशा में है ? ध्रुवतारा क्या है ? नौका में यात्रा करते समय यह ज्ञान परमावश्यक है। बम्बई से चलकर किस कोण में यात्रा करने पर अफ्रीका आता है ? उत्तरायण दक्षिणायन का अर्थ क्या है ? इत्यादि विषयों का परिज्ञान दिशाओं से सम्बद्ध है। दिशाओं का व्यवहार न करके एक दिन व्यतीत करना कठिन है। किमधिकेन, मार्ग में चलते समय भी 'बाईं ओर चलना' भी दिशा से सम्बद्ध है। दिशा निश्चित है वा परिवर्तनशील आदि समस्त विषयों का इस शास्त्र से ज्ञान होता है।

दिशाओं के ज्ञान के लिए ज्यौतिष शास्त्र पढ़ना चाहिए।

१४. देशज्ञान—पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है। अपनी मध्यरेखा पर न होकर २३॥ अंश झुककर चलती है जिसके कारण ऋतुएं उत्पन्न होती हैं सम्पूर्ण पृथिवी पर एक ही समय एक प्रकार की ऋतु होती नहीं, किन्तु उत्तर गोलार्ध में जो ऋतु होती है उस से तीसरी ऋतु दक्षिण गोलार्ध में होती है। जब उत्तर में शरद् है तो दक्षिण में उसी समय वसन्त होता है। यह ज्ञान ज्यौतिष जानने वाले को अपने स्थान पर बैठे-बैठे होगा। यह भी ज्ञात होगा कि हम पृथिवी के किस भाग में हैं। हम से हमारी राजधानी, आसाम, राजस्थान, आन्ध्र, पंजाब किस ओर और कहां हैं ? हम से अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि देश कितनी दूर पर हैं। जब हम जलपोत पर यात्रा करते हैं तो यह जानना कि हम समुद्र तल के किस भाग पर हैं ? भूमि कितनी बड़ी है ? उसका क्षेत्रफल क्या है ? भारत का क्षेत्रफल क्या है ? कहां से कहां तक व्याप्त है ? जर्मन वा जापान के मध्य कितनी दूरी है ? कितने क्षेत्रफल वाले देश में वा प्रान्त में कितनी जनसंख्या है ? वह अनुपात में अन्य देश वा प्रान्तों से न्यून है वा अधिक है ? कितनी भूमि उपजाऊ है ? कितनी पर्वतादियों से आक्रान्त है ? हम समुद्रतल से कितनी ऊंचाई पर हैं ? कौन से प्रान्त में कब कितनी गर्मी वा सर्दी और वर्षा होती है ? भूमि से कितने क्रोश दूर तक वातावरण है ? अमुक ग्राम कितना दूर है ? अमुक नगर को जाने का मार्ग कहां-कहां होकर जाता है ? इत्यादि अनेक प्रकार की विद्याओं का ज्ञान कर सकते हैं। इस शास्त्र के बिना देशज्ञान नहीं हो सकता। अतः देशज्ञान के लिए ज्यौतिष का अध्ययन करना चाहिए।

१५. कालज्ञान—ज्यौतिष के अध्ययन से काल का सम्यक् ज्ञान होता है। काल क्या है ? इसकी उत्पत्ति कैसे होती है ? इसकी गणना किस प्रकार है ? यह इसी का विषय है। काल का व्यवहार मनुष्य मात्र

करता है तथापि काल क्या है इसको प्रत्येक मनुष्य नहीं जानता। इस शास्त्र के अध्ययन से यह विषय करतलामलकवत् हो जाता है।

काल के लिए क्षण, त्रुटि, निमेष, घटी, पल, होरा, दिन, रात्र, सन्धि, तिथि, अमावस्या, पौर्णिमा, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संक्रान्ति वर्ष, युग, कल्प, प्रलय, परान्त काल, मानवमान, चान्द्रमान, देवमान, बार्हस्पत्यमान, ब्राह्ममान, आर्तवमान और नाक्षत्रमान आदि विषयों का अति विस्तृत और स्पष्टज्ञान केवल इसी शास्त्र से होता है। दिन की उत्पत्ति कैसे होती है ? आरम्भ कब से होता है कहां से प्रारम्भ होता है ? दिन, मास, वर्ष, युग कितने प्रकार के हैं ? कहीं दस घण्टे का अहोरात्र कहीं २४५ दिन का, कहीं ८५ दिन का वर्ष है कहीं ४३३३ दिन का, कहीं २४७ वर्ष का। तब वहां दिन मास वर्ष युग का क्या अर्थ होगा ? तिथि का क्षय होना, दो दिनों तक एक तिथि का रहना क्या है इस का ज्ञान भी इसी शास्त्र से होता है। सारी पृथिवी पर एक ही समय नहीं होता है। कहीं दिन है तो कहीं रात्रि, कहीं अर्धरात्रि है तो कहीं मध्याह्न कहीं सूर्योदय है तो कहीं सूर्यास्त। इसका ज्ञान इस की गणना इसी शास्त्र से संभव है। काल के अवयव भूत इन तिथि दिन आदि शब्दों का व्यवहार करते हुए भी ज्यौतिष शास्त्र को न जानने वाला इन से उसी प्रकार अनभिज्ञ रहता है जैसा निरक्षर व्यक्ति भाषा के विषय में अनभिज्ञ रहता है।

इस के बिना सन्ध्याग्निहोत्रादि नित्यकर्म तथा अन्य यागादि वैदिक कर्म षोडश संस्कार, पर्व, नैमित्तिक इष्ट्यादि ऋतुसम्बद्ध पर्व संक्रान्ति, उत्तरायण-दक्षिणायन से सम्बद्ध कर्म यात्रा, यन्त्र संचालन, कला कौशल की उन्नति, व्यापार आदि शास्त्रोक्त रीति तथा समुचित पद्धति से सम्पन्न नहीं हो सकते। अतः इस सर्वदा सर्वजनोपयोगी सर्वव्यवहारोपयोगी शास्त्र को पढ़ना चाहिए।

१६. गणित-ज्ञान—गणित का ज्ञान ज्यौतिष से होता है। रेखा-गणित, क्षेत्रमिति, अङ्क तथा बीजगणित आदि विविध विभागयुक्त गणित का ज्ञान ज्यौतिष के अध्ययन के साथ साथ हो जाता है। महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि—

(१) **"एक वर्ष में सूर्य सिद्धान्तादि में से कोई एक सिद्धान्त से गणित विद्या जिसमें बीजगणित रेखागणित और पाटीगणित जिसको अङ्कगणित भी कहते हैं पढ़ें और पढ़ावें······"** सं० विधि वेदारम्भसंस्कार ॥

(२) **"दो वर्षों में ज्यौतिष शास्त्र, सूर्यसिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित, अंक, भूगोल, खगोल और भूगर्भ विद्या है इसको यथावत् सीखें।"**

स० प्र० ३ समु०

(३) वेदाङ्ग ज्यौतिष में लिखा है कि—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ॥

जैसे मयूरों के शिर पर शिखा, सर्पों के शिर पर मणियां हैं उसी प्रकार वेदाङ्ग शास्त्रों में गणित सब से ऊपर शिर पर विराजमान है।

(४) आचार्य भास्कर ने भी लिखा है कि—

ते गोलाश्रयिणोऽन्तरेण गणितं गोलोऽपि न ज्ञायते।
तस्माद्यो गणितं न वेत्ति स कथं गोलादिकं ज्ञास्यति ॥

स्पष्ट ग्रहों का ज्ञान गोल[1] के जानने पर ही हो सकता है उसके विना नहीं। गणित के विना गोल भी समझ में नहीं आता। इसलिए जो गणित को नहीं जानता है वह गोलादि को कैसे जान सकेगा?

इस शास्त्र से गणित का ज्ञान होता है अतः गणित के ज्ञान के लिए ज्यौतिष का अध्ययन करना चाहिए।

१७. देशभक्ति—जिसके आत्मा में देशभक्ति दधकती नहीं है वह निस्तेज मृतक तुल्य है कृतघ्न तथा पापी है। देशभक्त बनना किसी का उपकार करना नहीं है, अपितु अपने ऊपर देश का जो ऋण है उस को अन्तरात्मा से पहचानना, स्वीकार करना तथा विस्मृत नहीं होने देना न भूलना है। जो ऋणी होता है वह प्रशान्त नहीं होता अतः देशभक्त हाथ पर हाथ धरे बैठे नहीं रह सकता। ना ही देश की अवनति की कल्पना ही कर सकता है न ही सह सकता है। मातृभक्त वही है जो माता से प्राप्त उपकार को चुकाने के लिए तिल-तिल कर जलने में आत्मानन्द की अनुभूति करता है। जिस देश के अन्न जल वायु वस्त्र फूल-फल से जन्म लिया हो जीवित रहता हो जीवित रहकर उसकी ज्ञाननदी से भरपूर मात्रा में आनन्द की अनुभूति करता हो और मस्तिष्क का निर्माण किया हो और करता हो सुख का श्वास ले रहा हो उस मातृभूमि के कणकण की रक्षा वा उसके गौरव को सुरक्षित

१. भूगोल वा खगोल के प्रतीक के रूप में निर्मित यन्त्र 'गोल' वा 'गोलयन्त्र' कहा जाता है।

रखने हेतु हंसते-हंसते प्राणों को उसके चरणों में अर्पित करते हुए गौरव वा आनन्द की अनुभूति जो करता हो वही देशभक्त है। ऐसा देशभक्त मानवमस्तकमुकुटमणि है। पावन और पूजनीय है।

हमारे पूर्वजों ने किस प्रकार अविच्छिन्न परम्परा से ईश्वरीय ज्ञान वेद वा अपने से पूर्वज ऋषियों की ज्ञानराशि को हम तक पहुँचाया, इस को जानने की चेष्टा यदि की जाय तो निश्चित ही हम में उनके प्रति आदरभाव उत्पन्न होगा। उस ज्ञान राशि का आस्वादन कर अगली पीढ़ियों तक पहुँचाना अपना कर्त्तव्य दीखने लगेगा। आदि काल से आजतक के ज्योतिर्विदों ने क्या-क्या अद्भुत अनुसन्धान किए, इनका इतिहास पढ़ते हैं तो अवाक् रहना पड़ता है। उन सभी की तपस्या का फल हम विज्ञान के अनेक रूपों में आज देख रहे हैं और उससे उपकार ले रहे हैं। विशेष कर मध्यकाल में जब कि देश गहन अन्धकार में निमग्न वा पराधीनता की शृङ्खलाओं में जकड़ा हुआ था। समुचित साधनों के अभाव में बांस की चोपटों वा नलिकाओं से धूलि में गणित कर कर के चर्मचक्षुओं द्वारा कितने आश्चर्यजनक अनुसन्धान किए, इस की कल्पना नहीं की जा सकती। वही आचार्य यदि पुष्कल साधन सम्पन्न आज के युग में होते तो उनके अनुसन्धान का कोई पारावार न होता। वह समय ऐसा था कि विभिन्न स्थानीय दो आचार्य समकालीन होते हुए भी परस्पर परिचय प्राप्त नहीं कर पाते थे। नहीं परस्पर अपने-अपने अनुसन्धान वा क्रिया कलापों से लाभ दे ले सकते थे।

उनके वे आविष्कार आज हमें चकित नहीं कर सकते होंगे किन्तु जिस काल में उन्होंने उनका आविष्कार किया होगा उस काल की कल्पना करके देखें तो स्पष्ट हो जायगा कि उनके वे आविष्कार आश्चर्यजनक नहीं महान् आश्चर्यजनक होंगे।

किन्तु आज मेरे देश के विद्वान् विद्यार्थी, विचारक, नेता, युवावर्ग पाश्चात्य शिक्षा के चकाचौंध में अपने गौरवमय इतिहास को न जानते न जानना चाहते न जानने देते हैं। इतना ही नहीं प्राचीनों को असभ्य जंगली सिद्ध करने में तुले हुए हैं इसी में अपनी बुद्धिमत्ता समझे हुए हैं। आश्चर्यं महदाश्चर्यम्।

यदि हम ज्यौतिष शास्त्र को पढ़ेंगे तो उसके इतिहास का ज्ञान होता जायगा। अपने पूर्वजों के बुद्धि चातुर्य का पता चलेगा। हम अपने पूर्वजों के

गौरव से अपने को विभूषित करते हुए उछल पड़ेंगे। हम ऐसा अनुभव करेंगे कि ज्ञान विज्ञान की उन्नति में हम किसी देश से पीछे नहीं हैं। अपितु आगे हैं। यह ज्यौतिष शास्त्र के अध्ययन से होगा। इसके लिए ज्यौतिषशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए।

१८. फलित का अन्धकार निवारण—ज्यौतिष के स्थान में फलित के अन्धविश्वासों को ज्यौतिष मानकर ज्यौतिष को स्थान भ्रष्ट कर दिया। ज्यौतिष का प्रयोजन ही फलादेश मान लिया। फलित को ज्यौतिषमूलक कहने लगे। इतना ही नहीं यहां तक प्रयत्न किया और हाथ पैर मारने लगे कि इसको वेदमूलक सिद्ध करें। इसके लिए लिखित प्रयास करने का दुस्साहस भी किया तब ही तो इनका बन पड़ा। "इस भौतिक विज्ञान युग में कहीं हम अन्धविश्वासों में फंसे हुए मूर्ख हैं।" इसका भाण्डाफोड़ न हो जाय एतदर्थ और आधुनिक शिक्षा में शिक्षित होकर मूर्खतापूर्ण वा उपहास जनक कृत्यों को अलंकार मानने वाले लोगों तथा भौतिकवाद में अधिकाधिक प्रवृत्त लोगों को अपनी ओर खींचकर अपना उल्लू सीधा करने के लिए फलित को धींगामस्ती से मान न मान मैं तेरा मेहमान उक्ति के अनुसार विज्ञान की वेशभूषा पहनाना चाहते हैं। एतदर्थ रात दिन यह जपना प्रारंभ कर दिया कि फलित, विज्ञान के आधार पर है और यह भी एक बहुत बड़ा विज्ञान है। ज्यौतिष का अर्थ आज के लगभग ९९९ प्रति सहस्र मनुष्य फलित के अन्धविश्वासों को ही समझते हैं। इसको इतना बढ़ावा दिया कि जिससे आज ज्यौतिष के सच्चे अर्थ को लोग लगभग नहीं जानते। धर्म, कर्म, पुण्य, स्वर्ग, मोक्ष, सफलता सब कुछ इसी में मान कर पुरुषार्थ हीन निष्कर्मा, आलसी, प्रमादी हो हाथ पर हाथ धर भाग्य, ग्रहचार, मुहूर्त, राशि, शकुन आदि पर विश्वास करके बैठ गए। भारत के पतन के अनेक कारणों में 'फलित में अन्धविश्वास' एक बहुत बड़ा कारण है।

इससे देश का अनेक प्रकार से पतन हुआ। शरीर से, मन से, बुद्धि से, अर्थ से, नैतिकता से, वीरता से, सामाजिकता से बहुविध पतन हुआ। लुट पिटकर दिवाला निकाल कर बैठ गए। तथापि फलित के अन्धकार ने इनको जकड़ रखा है। इस विश्वास ने कितने हो विदेशियों से स्वदेशीय अपार धनराशि का हरण कराया। कितने निरीह मनुष्यों की हत्या कराकर हाहाकार मचवाया। कितने ही दुधमुहे बच्चों को मौत के घाट उतरवाया। कितने ही परिवारों को रौरव नरक बनाया। कितने पतियों को पत्नियों से बिछुड़वाया। कितनी पत्नियों को पतियों से बिछुड़वाया। एक दूसरे में कलह

करवाया, बिछुड़वाया, इसका बीभत्स इतिहास प्रत्येक सुधारक वा देशभक्त के लिए ध्यान से पढ़ने योग्य है।

इसने मनुष्य को भ्रान्तधारणा, अन्धविश्वास, बुद्धिनाशक मान्यताओं वा मानसिक दासताओं में किस प्रकार जकड़ रखा है; इसको न जानकर न अपना उद्धार हो सकता है न समाज का। इसको जानना प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है। अन्यथा इस जाल में फंसकर सदसद्विवेक से सर्वथा शून्य हो पुरुषार्थ चतुष्टय से विमुख हो सर्वदा पराधीन परमुखापेक्षी सब प्रकार के उत्तम गुणों से रहित होकर उच्चतम मानव जन्म को विनष्ट कर जीवन्मृत होकर श्वास लेने के लिए जीवित रहता है।

ज्यौतिष को पढ़ने से इस पापजाल से छुटकारा पाकर जीवन को महोन्नत बनाने में सक्षम हो सकता है। देशोन्नति में भी कृतोपकार हो जाता है। कथमपि मनुष्यसमाज के कुछ हित को ही साधेगा। अन्धविश्वासों से मुक्ति के लिए ज्यौतिष को पढ़ना चाहिए।

१९. शिल्पज्ञान—विश्वस्रष्टा विश्वनियन्ता की अद्भुत सृष्टि को जानने के लिए उसकी सृष्टि के सदृश उसकी प्रतिकृति बनाता है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ध्रुव, भूमध्यरेखा, राशि आदि अनेक बातों के ज्ञान के लिए अनेक यन्त्रों को बनाया जाता है। उन-उन बातों को जानने के लिए स्वतः किस प्रकार से यन्त्र बनाये जा सकते हैं, इसके लिए प्रयास करते हुए हस्तक्रिया कौशल आदि को प्राप्त करता है। उस महाशिल्पी के शिल्प का अनुकरण करता हुआ मनुष्य भी बहुत बड़ा शिल्पी बन जाता है।

शिल्प विद्या को प्राप्त करने के लिए ज्यौतिष का अध्ययन करना चाहिए।

२०. लोकलोकान्तरगमन—जैसा कि ज्यौतिष से विश्व का परिज्ञान होने लगता है उसी प्रकार उन लोकों को साक्षात् देखने की इच्छा का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। दूर से देखकर जितना ज्ञान संभव है उससे कई गुणा अधिक ज्ञान उसमें पहुँचकर किया जा सकता है। इसके लिए योग्य यानों का बनाना पहुँचना और वहां से आगे का ज्ञान विज्ञान प्राप्त करना, उससे अपना वा समाज का उपकार अधिकाधिक करना इस प्रकार लोकलोकान्तरों में गमनागमन ज्यौतिष विद्या से कर सकता है। जैसे कि आधुनिक ज्योतिर्विन्, चन्द्रयात्रा के पश्चात् (मंगल में यान को उतार दिया) यूरेनस् नेप्च्यून वा प्लूटो तक यात्रा करने के लिए प्रयत्न में संलग्न हैं।

१६ अगस्त, १६७५ के दिन मैंने किसी दैनिक पत्रिका में (दिल्ली) में पढ़ा था कि किसी विदेशीय वैज्ञानिक का कथन है कि प्राचीन भारतवासी लोकलोकान्तरों में जाते आते थे। इसी के अन्वेषण के सम्बन्ध में वह वैज्ञानिक प्रयत्न कर रहा है।

लोकलोकान्तरगमनागमन के लिए ज्यौतिष पढ़ना चाहिए।

२१. **इतिहासकालनिर्णय**—इतिहास में कई घटनाएं ऐसी होती हैं जिनके काल निर्णय का कोई उपाय नहीं मिलता। उसमें यदि ग्रहादिक वा तिथि मास नक्षत्रादि का कहीं प्रसङ्ग हो तो उनकी स्थिति की गणना करके वास्तविक काल को जाना जा सकता है और जाना जाता है। वह इतिहास किस देश में किस प्रान्त में किस स्थान पर लिखा गया इन सबका ज्ञान भी हो सकता है और होता है। कहीं मिथ्या कल्पित तिथि वार आदि अथवा ग्रह नक्षत्रों का नाम आता है। ज्यौतिष के द्वारा गणित करके उसकी वास्तविकता का ज्ञान किया जा सकता है इसलिए इतिहास के काल निर्णय करने के लिए ज्यौतिष पढ़ना चाहिए।

यहां संक्षेप में ज्यौतिष में रुचि उत्पन्न करने के लिए लिखा गया है। ज्यौतिष से सिद्ध होने वाले प्रयोजनों का सविस्तर ज्ञान तो उसका अध्ययन करने पर ही प्राप्त होगा।

अथ तृतीयसमुल्लासः

अथानर्थान् व्याख्यास्यामः।

ज्योतिषा बाधते तमः। ज्योति से अन्धकार दूर होता है।

ज्यौतिष के अध्ययन से क्या-क्या उपलब्धियां होती हैं यह पूर्व समुल्लास में बतला दिया।

ज्यौतिष के न जानने से और अन्यथा समझने से वा जानने में भ्रान्तियों के रह जाने से क्या-क्या अनर्थ और हानियाँ होती हैं इस विषय का विचार इस समुल्लास में किया जायगा।

प्रयोजन वा उपलब्धियां पूर्व समुल्लास में बतला दिये हैं। उनके जानने से अर्थापत्ति से यह अपने आप स्पष्ट हो जायगा कि ज्यौतिष के न जानने से पूर्वोक्त प्रयोजन सिद्ध नहीं होंगे। तथापि इतने से सबकी बुद्धि कृतकार्य नहीं होगी। विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं होगा। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि "ज्यौतिष के न जानने से क्या-क्या अनर्थ होते हैं, हुए हैं और होते रहेंगे।"

१. **वेदों के साथ अनर्थ**—वेद को जानने के लिए वेदाङ्गों का ज्ञान आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है। वेदाङ्गों के अध्ययन के बिना ही वेदों को पढ़ने का प्रयास करते हैं। ऐसा (कुछ लोग) इसलिए करते हैं कि व्यर्थ में इनको क्यों पढ़ें और समय वा शक्ति का दुरुपयोग क्यों करें। माथापच्ची करने की आवश्यकता ही क्या है। ऐसे लोग सीधा वेदों में ही हाथ डालते हैं। कुछ लोग इसलिए भी पढ़ते हैं कि उन पर कुछ लिखें और वेदज्ञ विद्वान् कहलावें। कुछ लोगों की यह प्रवृत्ति है कि उनको लोग वेदव्याख्याता= भाष्यकार कहें। वेदभाष्यकार के रूप में उनकी प्रख्याति हो। ऐसे लोग वेदार्थ को समझ नहीं सकते। वे अधिकारी नहीं हैं अपितु अनधिकारी हैं। उनकी वह चेष्टा अनधिकार चेष्टा है। जो अङ्क गणित नहीं जानता वह बीजगणित कैसे पढ़ेगा? यदि ये लोग वेद पर लेखनी उठाएंगे तो अनर्थ किए बिना नहीं रह सकते। दृष्टान्त के रूप में निम्नलिखित मन्त्र उपस्थित किया जा सकता है। मन्त्र और उसका अर्थ देखें—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ यजु० ३ । ६ ॥

इस पर उव्वट का भाष्य—"आयं गौः पृश्निः । सार्पराज्ञ आर्षम् । गायत्रस्तृचः आहवनीयाग्न्युपस्थाने विनियुक्तः । अग्निः परापररूपेण स्तूयते । आयं गौः पृश्निरक्रमीत् । आक्रमीत् आक्रमते ऐश्वर्यरूपेणायमग्निः गौः, गन्ता । सर्वासु तासु तासु क्रियासु पृश्निर्नानारूपः असदन्मातरं पुरः इमं लोकमग्निरूपेणानुगृह्य ततः प्रातरादित्यात्मना सीदति मातरं पृथिवीं पुरः पुरस्तात् प्राच्यां दिशि । किं च पितरं च प्रयन्त्स्वः पितरं द्युलोकं च प्रयन् गच्छन् सीदतीत्यनुवर्तते स्वः स्वर्गे आदित्यः ।

अब महीधर कृत भाष्य को उद्धृत करता हूँ ।

महीधरभाष्य—आयं गौरिति चोपतिष्ठते सार्पराज्ञीभिर्दक्षिणाग्निमादधातीति (का० ४ । ६ । १८-१६) आयं गौरित्यादीनां तिसृणामृचां सार्पराज्ञीति नामधेयम् । सर्पराज्ञी कद्रूः पृथिव्यभिमानिनी । तया दृष्टत्वात् ताभिर्ऋग्भिराहवनीयमुपतिष्ठते । ततो दक्षिणाग्निमादध्यादिति सूत्रार्थः । गायत्रस्तृचः । अग्निः परावररूपेण स्तूयते । अयं दृश्यमानोऽग्निः आ अक्रमीत् । सर्वत आहवनीयगार्हपत्यदक्षिणाग्निस्थापनेषु सर्वतः क्रमणं पादविक्षेपं कृतवान् । किं भूतोऽग्निः । गच्छतीति गौः यज्ञनिष्पत्तये तत्तद्यजमानगृहेषु गन्ता । गमेर्डो प्रत्ययः (उ० २ । ६६) तथा पृश्निः चित्रवर्णः । लोहितशुक्लादिबहुविधज्वालोपेतः । आक्रमणमेवाह । पुरः प्राच्यां दिशि मातरं पृथिवीमसदत् आसीदत् । आहवनीयरूपेण प्राप्तवान् । तथा स्वः प्रयन् आदित्यरूपेण स्वर्गे संचरन् पितरं च द्युलोकमपि असदत् प्राप्तवान् । स्वः शब्देन सूर्यः (निघं० १ । ४ । १) द्युलोकभूलोकयोर्मातापितृत्वमन्यत्रापि श्रूयते । द्यौः पिता पृथिवी माता इति ॥

॥ शु० यजुर्वेद संहिता, तृ० अ०, ६ मन्त्र ॥

अब वेदतत्त्वज्ञ महर्षि दयानन्द सरस्वती के भाष्य को उद्धृत किया जाता है ।

पदार्थः—(आ) अभ्यर्थे (अयम्) प्रत्यक्षः (गौः) यो गच्छति स भूगोलः । गौरिति पृथिवीनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १ ॥ गौरिति पृथिव्या नामधेयम् । यद् दूरं गता भवति । यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति ॥ निरु० २ । ५ ॥ (पृश्निः) अन्तरिक्षे । अत्र सुपां सुलुगिति सप्तम्येकवचने प्रथमैकवचनम् । पृश्निरिति साधारणनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । ४ ॥ (अक्रमीत्)

क्राम्यति । अत्र लडर्थे लुङ् । (असदत्) स्वकक्ष्यायां भ्रमति । अत्रापि लडर्थे लुङ् । (मातरम्) स्वयोनिमपः । जलनिमित्तेन पृथिव्युत्पत्तेः (पुरः) पूर्वं पूर्वम् (पितरम्) पालकम् (प्रयन्) प्रकृष्टतया गच्छन् (स्वः) आदित्यम् । स्वरादित्यो भवति ॥ निरु० २ । १४ ॥ अयं मन्त्रः श० २ । १ । ४ । २६ निगदव्याख्यातः ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्यस्माज्जलाग्निनिमित्तोत्पन्नोऽयं भूगोलोऽन्तरिक्षे स्वकक्ष्यायामाकर्षणेन रक्षकस्य सूर्यस्याभिः प्रतिक्षणं भ्रमति तस्मादहोरात्रशुक्लकृष्णपक्षर्त्वयनादीनि कालविभागाः क्रमशः सम्भवन्तीति वेद्यम् ॥ ६ ॥

उव्वट ने 'गौः' शब्द का अर्थ बलात् अग्नि किया है जब कि निरुक्तकार आचार्य यास्क ने स्पष्ट शब्दों में 'गौरिति पृथिव्या नामधेयम्' कह कर पृथिवी किया है ।

महीधर ने भी इसी प्रकार किया है । यदि इनको भूगोल खगोल का ज्ञान होता तो कदाचित् ये आचार्य ऐसा नहीं करते ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने गौः शब्द का अर्थ निरुक्त के अनुसार पृथिवी किया है जो प्रामाणिक होता हुआ युक्ति युक्त भी है । इसका कारण उनका ज्योतिर्विद्याविशेषज्ञ होना ही है ।

२. **अन्धविश्वास**—(मकरसंक्रान्ति के विषय में) पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है । समझने के लिए कुछ देर के लिए यह मानते हैं कि पृथिवी के चारों ओर सूर्य घूम रहा है । जैसा कि पृथिवी पर रहने वाले हमे दीख रहे हैं । दोनों ध्रुवों के समानान्तर पर भूमि के उपरि भाग को दो समभागों में विभक्त करने वाली रेखा **भूमध्यरेखा** है ।

पृथिवी के चारों ओर घूमता हुआ जिस वृत्त को सूर्य बना रहा है उस का नाम **क्रान्तिवृत्त** है ।

भूमध्यरेखारूपी वृत्त का इस कल्पना से विस्तार करें कि क्रान्तिवृत्त से स्पर्श करने लगे । ये दोनों वृत्त दो स्थानों पर स्पर्श करेंगे । इन दो स्थानों को सम्पात कहेंगे । क्रान्तिवृत पर चलने वाला सूर्य जहां भूमध्यरेखा को स्पर्श करता हुआ उत्तर में चला जायगा वह वसन्तसम्पात है । सूर्य वसन्तसम्पात से (भूमध्य रेखा से) उतर में चलने लगेगा । तीन मास में परम दूरी पर पहुँच जायेगा वहां से लोटकर तीन मास में पुनः भूमध्यरेखा पर आयेगा । जहां क्रान्तिवृत्त भूमध्यरेखा का स्पर्श करेगा उसका नाम शरत्सम्पात है । अब सूर्य शरत्सम्पात से तीन मास तक (भूमध्यरेखा से

दक्षिण में चलने लगेगा। तीन मास में परम दूरी पर पहुँच जायेगा। वहाँ से तीन मास में पुनः लौटकर भूमध्यरेखा पर आएगा। इस प्रकार सूर्य का एक चक्रभोग होता है। वास्तव में देखें तो सूर्य भूमध्यरेखा का जहां स्पर्श करके चलना प्रारम्भ करता है चक्र भोग करके पुनः उसी स्थान पर भूमध्यरेखा से स्पर्श नहीं करता। अपितु कुछ पश्चिम में ही स्पर्श करता है। पूर्व स्थान (आरंभ बिन्दु) पर आने में ५० पल लगते हैं। आरंभ बिन्दु पर आकर स्पर्श करने में जो समय लगता है वह नाक्षत्रसौरवर्ष कहा जाता है। भूमध्यरेखा से चलकर पुनः उसी पर आने में जो समय लगता है वह आर्तवसौरवर्ष कहलाता है। यह नाक्षत्रसौरवर्ष ५० पल=२० मिनट बड़ा होता है। वसन्तसम्पात नव वर्षारम्भ है। यहाँ से सूर्य मेषादि राशियों में चलता हुआ तीन मास में उत्तर में परम दूरी पर जाता है। वहां मिथुन राशि का अन्त होकर कर्क राशि का आरंभ है। उसमें सूर्य का संक्रमण होता है। वहां से चलकर दक्षिण में परम दूरी पर पहुँच जाता है। इसमें छः मास लगते हैं। यह धनुष् राशि का अन्त है और मकर राशि का आरंभ है। इसमें सूर्य का संक्रमण होता है इसी को हम पर्व के रूप में स्मरण करते हैं। मकरसंक्रमण के दिन से सूर्य उत्तरायण प्रारम्भ करता है। यह मकर संक्रांति ठीक २२ दिसम्बर के दिन होती है उसी दिन इस पर्व को मनाना चाहिए।

इसका साक्षात् करना हो तो समतल भूमि पर एक १२ अङ्गुल शङ्कु को खड़ा कर दीजिए। मध्याह्न के समय उसकी छाया को चिह्नित कर दीजिए (उसकी छाया उत्तर को बढ़ेगी। बढ़ते-बढ़ते एक दिन बढ़ना रुक जायेगा। उसके पश्चात् शनैः-शनैः प्रतिदिन घटती चली जायगी) छाया जिस दिशा में होगी सूर्य उसके विरुद्ध दिशा में होगा। छाया उत्तर की ओर बढ़ती है तो इसका अर्थ होगा कि सूर्य दक्षिण की ओर जा रहा है। जब छाया का बढ़ना बन्द हो जायगा तब सूर्य का दक्षिण में जाना स्थगित हुआ। अगले दिन पुनः छाया का वेध लेंगे (अवलोकन करेंगे) तो छाया घटती हुई मिलेगी अर्थात् दक्षिण की ओर जा रही है। इसका अर्थ हुआ कि सूर्य का उत्तर की ओर बढ़ना आरंभ हुआ। यह २२ दिसम्बर के दिन होता है। यही सूर्य का उत्तरायण है यही मकर राशि में संक्रमण है। यही मकरसंक्रान्ति है। यही पर्व का दिन है।

किन्तु आज हम २२ दिसम्बर को संक्रान्तिपर्व नहीं मनाते किन्तु १४ जनवरी को मनाते हैं। यदि हम इसको नहीं समझेंगे और नहीं सुधारेंगे तो

एक समय भविष्य में ऐसा भी आ जायेगा कि सूर्य दक्षिण की ओर चल पड़ेगा और हम यह समझकर पर्व मना रहे होंगे कि सूर्य उत्तर की ओर चल पड़ा है। इसका कारण हमें ज्यौतिषशास्त्र का ज्ञान न होना है। इसलिए यह पता नहीं कि मकरसंक्रमण क्या है? कब होता है?

कुछ लोगों का यह मत है कि निरयण संक्रांति ही मान्य है। उनका यह पक्ष अर्धजरतीन्याय है। वर्ष, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, तिथि आदि जब सायन से हैं तो मकरसंक्रांति क्यों नहीं? फलित के अन्धविश्वास के अतिरिक्त इसमें अन्य कोई कारण नहीं है।

३. मोक्ष का कारण उत्तरायण नहीं—मकर संक्रमण से लेकर सूर्य उत्तर दिशा में चल पड़ता है। इसको उत्तरायण कहते हैं।

ऐसा सुनते हैं कि भीष्म पितामह शरशय्या पर पड़े हुए थे। उन को ग्रास बनाने के लिए मृत्यु बार-बार आता रहा किन्तु भीष्म ने यह कहकर उसको उलटे पैर भगा दिया कि अब सूर्य दक्षिणायन में है। जब उत्तरायण में होगा तब मैं शरीर त्यागूंगा। क्योंकि उत्तरायण में शरीर त्यागने पर मुक्ति मिलती है और दक्षिणायन में त्यागने से आवागमन के चक्र में फंस जाता है। जैसा कि गीता में है—

यत्रकाले त्वनावृत्तिमावृत्तिञ्चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिः योगी प्राप्य निवर्तते॥ ८। २३॥

अर्थ—हे भरत श्रेष्ठ जिस काल में योगीजन देह छोड़कर फिर नहीं आते हैं और जिस काल में आते हैं उसको कहता हूँ। हे अर्जुन अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्लपक्ष और उत्तरायण के छः मासों में जो ब्रह्मवेत्ताजन प्रयाण करते हैं, वे पुनः नहीं आते हैं। धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन के छः मास, चन्द्रज्योति इनमें जो योगी प्रयाण करते हैं वे पुनः संसार में आते हैं। गीता का यह मत वेद विरुद्ध है। उस मन्त्र को प्रस्तुत करता हूँ जिसके विरुद्ध ये श्लोक गीता में लिखे गये हैं।

द्वे सृती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥

यजु० १६ । ४७ ॥

"इस संसार में हम दो प्रकार के जन्मों को सुनते हैं। एक मनुष्य शरीर को धारण करना और दूसरा नीच गति से पशु पक्षी कीट पतङ्ग वृक्ष आदि का होना। इसमें मनुष्य शरीर के तीन भेद हैं। एक पितृ अर्थात् ज्ञानी होना। दूसरा देव अर्थात् सब विद्याओं को पढ़के विद्वान् होना। तीसरा मर्त्य अर्थात् साधारण मनुष्य शरीर का धारण करना। इसमें प्रथमगति अर्थात् मनुष्यशरीर पुण्यात्माओं और पुण्यपापतुल्य वालों को होता है। और दूसरा जो जीव अधिक पाप करते हैं उनके लिए है। इन्हीं भेदों से सब जगत् के जीव अपने-अपने पुण्य और पापों के फल भोग रहे हैं। जीवों को माता और पिता के शरीर में प्रवेश करके जन्म धारण करना पुनः शरीर का छोड़ना फिर जन्म को प्राप्त होना वारं वारं होता है।" ऋ० भा० भू० पुनर्जन्मविषय। ज्यौतिष न जानने वाले पौराणिक लोग देवयान पितृयान नाम से सूर्य को दक्षिणायन उत्तरायण से चिपकाकर शेखचिल्ली बनते रहे।

गीता का मत वेद तथा वैदिक परम्पराओं के विरुद्ध है। तर्क से भी सिद्ध नहीं होता, इसलिए मान्य नहीं है। यदि इसको मान लेवें तो बन्धमोक्ष के लिए अविद्या को कारण नहीं माना जा सकता। काल को बन्ध मोक्ष का किसी भी शास्त्र में कारण नहीं माना गया है।

महर्षि कपिल ने सांख्य में बन्ध के कारणों पर विचार किया। देशकाल आदि को बन्ध का कारण यदि मान लें तो मुक्त पुरुषों को बन्धन में आना पड़ेगा। इसलिए काल को बन्धन का कारण नहीं माना जा सकता। ऐसा ही सिद्ध किया है। सांख्य १ । १२ । न कालयोगतो व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात्।

वेद में लिखा है कि—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥ यजु० ४० । १४ ॥

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तर के विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है। स० प्र० ६ समु०।

वेदान्त में महर्षि व्यास ने भी वेद के अनुकूल पक्ष को सिद्ध किया है।
अतश्चायनेऽपि दक्षिणे ॥ वेदांत ४ । २ । २० ॥

अर्थ—दक्षिणायन में शरीर त्यागने वाले योगी भी अनावृत्ति अर्थात् मुक्ति को प्राप्त कर सकते हैं।

यह मन्तव्य केवल भीष्म का ही रहा हो ऐसा नहीं अपितु अनेकों का रहा होगा। भीष्म जी तो उन विचारों के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। यह मन्तव्य आज भी होगा। यह भ्रान्ति ज्यौतिष विज्ञान को न जानने से हुई और न जानने वालों में रहेगी। इस प्रकार न जाने कितने लोगों ने उत्तरायण आदि को मुक्ति का निमित्त मान ज्ञानकर्मोपासना को छोड़ दिया होगा। अपने जन्म में धर्मार्थकाममोक्षरूपी पुरुषार्थ को छोड़ अकर्मण्य बन बैठे होंगे, आज भी बैठे होंगे और न जाने कब तक बैठे रहेंगे। ज्यौतिष विज्ञान को प्राप्त करके ही इस प्रकार की भ्रान्तियों से मुक्त हो सकेंगे।

४. अद्वैतवाद की असत्यता—सृष्टि के विषय में वैदिक मान्यता—४३२००० वर्षों का कलियुग, ८६४००० वर्षों का द्वापर, १२९६००० वर्षों का त्रेता और १७२८००० वर्षों का सत्ययुग होता है। इन चारों युगों को मिलाने से एक महायुग होता है जो ४३२०००० वर्ष का होता है। एक सहस्र महायुगों अर्थात् ४३२०००००० चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों का ब्राह्मदिन होता है। जिसमें सृष्टि बनी रहती है। इतने ही काल का प्रलय होता है जिसको ब्राह्मरात्रि कहा जाता है। अर्थात् ८६४००००००० आठ अरब चौंसठ करोड़ वर्षों का ब्राह्म अहोरात्र होता है। ३० ब्राह्म अहोरात्रों का एक ब्राह्ममास होता है। १२ ब्राह्ममासों का एक ब्राह्मवर्ष होता है और १०० ब्राह्मवर्षों का काल ब्राह्म आयु अथवा परान्त काल होता है[1]। इसी को मुण्डकोपनिषद् ३ । २ । ६ में **'ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे।'** कह कर व्यक्त किया है। यह ऋग्वेद (१ । २४ । २) के निम्नलिखित मन्त्रानुसार है—

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारुदेवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥

अर्थ—"हम इस स्वप्रकाश स्वरूप अनादि सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें। जो हम को मुक्ति में आनन्द भुगाकर पृथिवी में पुनः

१. इतना समय जीव का मुक्ति में सुख भोगने का है। यह मुक्ति काल की अवधि है।

माता-पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता-पिता का दर्शन कराता है। वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता सब का स्वामी है।" स० प्र० ६ समु० ॥

इसी प्रकार युग आदि व्यवस्था को महर्षि मन्वादि ने यथावत् स्वीकार किया है। इसी को वेद में **'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्'** कहकर व्यक्त किया है। इस व्यवस्था को किसी ऋषि, महर्षि, वैदिक विद्वान् ने विचलित नहीं किया अपितु सब ने स्वीकार किया। इसी व्यवस्था को आर्य लोग नित्य प्रति, सङ्कल्प में स्मरण करते हैं। इस को अन्यथा नहीं कहा जा सकता। अन्यथा कहने में कोई प्रमाण नहीं है।

आचार्य शंकर स्वामी ने इस वैदिक मान्यता को समूलोच्छिन्न करने का प्रयास किया। उनका मायावाद इस सिद्धान्त को नहीं मानता।

"जब जीव को यह ज्ञान होता है कि "मैं ब्रह्म हूँ" तब यह जगत् नहीं रहता, न जीव ही रहता है क्योंकि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः' जीव और जगत् मिथ्या हैं। जब ज्ञान हो जायगा तब यह संसार नहीं रहेगा। जब जगत् ही नहीं रहेगा तब युग, महायुग, मन्वन्तर, सृष्टि, प्रलय, परान्तकाल आदि का क्या अस्तित्व रहेगा?" अर्थात् ये सब उनके कथनानुसार असत्य हैं मिथ्या हैं।

शंकर स्वामी ने वेदादि सत्य शास्त्रों से विरुद्ध अपनी मान्यता खड़ी कर ली। उन्हीं का यह साहस था कि सब वेद वा वैदिक शास्त्रों के सिद्धान्तों को मिथ्या कह जाते हैं।

शंकर की यह मान्यता वैदिक सिद्धान्त, परम्परा और सृष्टिक्रम के विरुद्ध है। जो ज्योतिष को जानता है उसको करतलामलकवत् स्पष्ट हो जायेगा कि स्वामी शंकर की मान्यता वेद वा सृष्टिक्रम के विरुद्ध है।

ज्यौतिष का ज्ञान न होने से ही शंकर वा उनके अनुयायियों को यह भ्रम हुआ।

५. सृष्टि की उत्पत्ति और भ्रम—सृष्ट्युत्पत्ति के सम्बन्ध में शिवपुराण में लिखा है कि "शिव ने इच्छा की कि मैं सृष्टि करूँ तो एक 'नारायण' जलाशय उत्पन्न कर उसकी नाभि से कमल, कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। उसने देखा कि सब जलमय है, जल की अञ्जलि उठा, देख जल में पटक दी उससे एक बुदबुदा उठा और बुदबुदे में से एक पुरुष उत्पन्न हुआ. उसने ब्रह्मा से कहा कि हे पुत्र सृष्टि उत्पन्न कर। ब्रह्मा ने उससे कहा कि मैं तेरा पुत्र नहीं तू मेरा पुत्र है, उनमें विवाद हुआ और दिव्य

सहस्र वर्ष पर्यन्त दोनों जल पर लड़ते रहे, तब महादेव ने विचार किया कि जिनको मैंने सृष्टि करने के लिए भेजा था वे दोनों आपस में लड़-झगड़ रहे हैं; तब उन दोनों के बीच में से तेजोमय लिङ्ग उत्पन्न हुआ और वह शीघ्र आकाश में चला गया, उसको देख दोनों साश्चर्य हो गए। विचारा कि इसका आदि अन्त लेना चहिए। जो आदि अन्त लेके शीघ्र आवे वह पिता और जो पीछे वा थाह लेके न आवे वह पुत्र कहावे। विष्णु कूर्म का स्वरूप धर के नीचे को चला और ब्रह्मा हंस के शरीर को धारण करके ऊपर को उड़ा, दोनों मनोवेग से चले। दिव्य सहस्रवर्ष पर्यन्त दोनों चलते रहे तो भी उसका अन्त न पाया तब नीचे से ऊपर विष्णु और ऊपर से नीचे ब्रह्मा ने विचारा कि जो वह छेड़ा (अन्त) ले आया होगा त मुझको पुत्र बनना पड़ेगा, ऐसा सोच रहा था कि उसी समय एक गाय और केतकी का वृक्ष ऊपर से उतर आया। उनसे ब्रह्मा ने पूछा कि तुम कहां से आए। उन्होंने कहा हम सहस्र वर्षों से इस लिङ्ग के आधार से चले आते हैं। ब्रह्मा ने पूछा इस लिंग का थाह है वा नहीं? उन्होंने कहा कि नहीं; ब्रह्मा ने उनसे कहा कि तुम हमारे साथ चलो और ऐसी साक्षी देओ कि मैं इस लिंग के शिर पर दूध की धारा बरसाती थी और वृक्ष कहे कि मैं फूल वर्षात था, ऐसी साक्षी देओ तो मैं तुमको ठिकाने पर ले चलूं। उन्होंने कहा कि हम झूठी साक्षी नहीं देंगे, तब ब्रह्मा कुपित होकर बोला जो साक्षी नहीं देओगे तो मैं तुमको अभी भस्म करे देता हूँ। तब दोनों ने डर के कहा कि हम जैसी तुम कहते हो वैसी साक्षी देवेंगे तब तीनों नीचे की ओर चले। विष्णु प्रथम ही नीचे आ गए। ब्रह्मा भी पहुँचा, विष्णु से पूछा कि तू थाह ले आया वा नहीं तब विष्णु बोला कि मुझ को इसका थाह नहीं मिला। ब्रह्मा ने कहा मैं ले आया। विष्णु ने कहा कोई साक्षी देओ। तब गाय और वृक्ष ने साक्षी दी हम दोनों लिङ्ग के शिर पर थे। तब लिंग में से शब्द निकला और वृक्ष को शाप दिया कि जिससे तू झूठ बोला इसलिए तेरा फूल मुझ वा अन्य देवता पर जगत् में कहीं नहीं चढ़ेगा और जो कोई चढ़ावेगा उसका सत्यानाश होगा। गाय को शाप दिया कि जिस मुख से तू झूठ बोली उसी से विष्ठा खाया करेगी। तेरे मुख की पूजा कोई नहीं करेगा किन्तु पूंछ की करेंगे और ब्रह्मा को शाप दिया कि जिससे तू मिथ्या बोला, इसलिए तेरी पूजा संसार में कहीं नहीं होगी और विष्णु को वर दिया कि जिससे तू सत्य बोला इससे तेरी पूजा सर्वत्र होगी। पुनः दोनों ने लिङ्ग की स्तुति की उससे प्रसन्न होकर इस लिंग में से एक जटाजूट मूर्ति निकल आई और कहा कि

तुमको मैंने सृष्टि करने के लिए भेजा था झगड़े में क्यों लगे रहे। ब्रह्मा और विष्णु ने कहा कि हम बिना सामग्री सृष्टि कहां से करें। तब महादेव ने अपनी जटा में से एक भस्म का गोला निकाल कर दिया जाओ इसमें से सब सृष्टि बनाओ इत्यादि······ ।। सत्यार्थ प्र० ११ समु०

भूगोल खगोल और उनकी सृष्टि विद्या को पढ़ते तो ऐसा न लिखते न मानते न कहते न सुनते, न भ्रम में पड़कर अपने पराए जीवनों को दुःखों के गर्त में ढकेलते, नाही मानव जन्म को वृथा गवांते। इसी दृष्टि से महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखते हैं कि "भला जो कोई इन पुराणों के बनाने वाले पोपों से पूछे कि जब सृष्टि तत्व और पञ्च महाभूत भी नहीं थे तो ब्रह्मा, विष्णु, महादेव के शरीर, जल, कमल, लिङ्ग, गाय और केतकी के वृक्ष और भस्म का गोला क्या तुम्हारे बाबा के घर में से आ गिरे ?"

वैसे ही भागवत में विष्णु की नाभि से कमल, कमल से ब्रह्मा, ब्रह्मा के दाहिने पग के अंगूठे से स्वायंभुव और बायें अंगूठे से सत्यरूपा राणी, ललाट से रुद्र और मरीच्यादि दश पुत्र, उससे दक्ष प्रजापति, इनकी तेरह लड़कियों का विवाह कश्यप से, उनमें से दिति से दैत्य, दनु से दानव, अदिति से आदित्य, विनता से पक्षी, कद्रू से सर्प, सरमा से कुत्ते, स्याल आदि और अन्य स्त्रियों से हाथी, घोड़े, ऊंट, गधा, भैंसा, घास, फूंस और बबूलादि वृक्ष कांटे-सहित उत्पन्न हो गए। वाह रे वाह भागवत के बनाने वाले लालबुझक्कड़ क्या कहना तुमको ? ऐसी-ऐसी मिथ्या बातें लिखने में तनिक भी लज्जा और शरम न आई। निपट अन्धा ही बन गया। भला स्त्री पुरुष के रजवीर्य के संयोग से मनुष्य तो बनते ही हैं परन्तु परमेश्वर की सृष्टिक्रम के विरुद्ध पशु पक्षी सर्प आदि कभी उत्पन्न नहीं हो सकते और हाथी, ऊंट, सिंह, कुत्ता, गधा और वृक्षादि का स्त्री के गर्भाशय में स्थित होने का अवकाश भी कहाँ हो सकता है और सिंह आदि उत्पन्न हो कर अपने मा बाप को क्यों न खा गए और मनुष्य शरीर से पशु पक्षी वृक्षादि का होना क्यों कर सम्भव हो सकता है।

धिक्कार है पोप और पोपरचित इस महा असंभव लीला को जिसने संसार को अभीतक भ्रमा रखा है। भला इन महा झूठ बातों को वे अन्धे-पोप और बाहर भीतर की फूटी आंखों वाले उनके चेले सुनते और मानते हैं। बड़े ही आश्चर्य की बात है कि ये मनुष्य हैं वा अन्य कोई। इन भागवतादि पुराणों के बनाने वाले क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गए वा जन्मते समय

मर क्यों न गए। क्योंकि इन पोपों से बचते तो आर्यावर्त देश दुःखों से बच जाता।

जैसे शिवपुराण वाले शिव से, भागवत वाले विष्णु से सृष्टि की उत्पत्ति प्रलय आदि लिखते हैं वैसे ही विष्णु पुराण वालों ने विष्णु से, देवी-पुराण वाले देवी से, गणेशखण्ड वाले ने गणेश से, सूर्यपुराण वाले ने सूर्य से और वायुपुराण वाले ने वायु से सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय लिखा है। ज्यौतिष के न जानने से ऐसी वेद शास्त्र वा सृष्टिक्रम विरुद्ध कल्पनाएँ बना ली गई।

जैनी तो जगत् की उत्पत्ति ही नहीं मानते। उनका कहना है कि जगत् अनुत्पन्न है। यह अनादि काल से है और अनन्तकाल तक रहेगा।

ईसाई लोगों का कहना है कि "आरंभ में ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को सृजा······

मुसलमानों का कहना है कि निश्चय परवरदिगार तुम्हारा अल्लाह है जिसने पैदा किया आसमानों और पृथिवी को बीच छः दिन के··· । स० प्र० पृ० ४७२

अल्लाह वह है जिसने खड़ा किया आसमान को विना खम्बे के······
स० प्र० १४ समु०, पृ० ४७६

किसी स्थान पर लिखा है कि अल्लाह को बनाने की आवश्यकता नही पड़ती; कह देता है 'हो जा' हो जाता है। अन्य स्थानों में सृष्टि का बनाना लिखा है।

ये कथन परस्पर विरुद्ध हैं। दोनों ही असत्य हैं। विज्ञान तथा प्रत्यक्ष के विरुद्ध हैं। ऐसा लेख ज्यौतिष न जानने के कारण लिखा गया है।

६. **सृष्टिकाल में भ्रम**—सृष्टि को उत्पन्न होकर वैदिक परम्परा के अनुसार लगभग दो अरब वर्ष पूर्ण होने वाले हैं। सब मतवाले इसमें भ्रान्त हैं कोई भी इस संख्या को नहीं मानता। पुराण, कुरान, बायबिल, त्रिपिटक आदि से अज्ञान ही फैला है।

७. **विश्व का स्वरूप कल्पित=गप्प है**—यह ब्रह्माण्ड बहुत बड़ा है। सब से प्रथम यह पृथिवी लोक है। इस (निरक्ष देश) को भूर्लोक कहा जाता है। इससे उत्तर में भुवर्लोक है। यह पितृलोक है। इससे ऊपर स्वर्लोक

है यही मेरुपर्वत है। उसके पश्चात् क्रमशः महः, जनः, तपः, सत्यलोक हैं। उत्तरोत्तर लोक पुण्य पुण्यतर कर्मों से प्राप्तव्य हैं।

यह पृथिवी इन सब के मध्य में है। यह ४६ कोटि योजन है। इसके अन्तः पर्तों में सात पाताल भूमियां हैं। ये क्रमशः अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल नामक हैं। इनमें नाग और असुर रहते हैं। वहां रसीले दिव्य वृक्ष हैं। भूगोल के आरपार, मध्य से होता हुआ उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों पर निकला हुआ नाना रत्नों से भरा स्वर्णमयी जम्बू नदी से सुशोभित सुमेरु नामक पर्वत है। इसके ऊपर की ओर देवता ऋषि इन्द्रादि रहते हैं। नीचे की ओर असुर रहते हैं। ये देवता और राक्षस परस्पर शत्रु हैं इत्यादि·········।

पृथिवी को पोली कहने मानने और लिखने वालों और उसमें सात-लोकों को मानने वालों को भूमि पर न रखकर उन सातों लोकों में पहुँचाना चाहिए। वे वहां आनन्द करते रहेंगे। भूमि पर व्यर्थ में अतिवृष्टि अनावृष्टि आदि मे दुःख भोग रहे हैं।

गंजेडी, भंगेडी लोगों ने नशे में लिखा होगा कि "पृथिवी में सातलोक हैं और वहां नाग असुर आदि रहते हैं।" उन ही के मूण्डे हुए चेले इसको सत्य मानते होंगे।

वेदविद्या विज्ञान शून्य कल्पना के घोड़े दौड़ाने में चतुर भोजन भट्टों ने मध्यकाल में इन्द्रियों के लिए अगोचर पदार्थों के विषय में मनमानी कल्पनाएं कीं। इनको लोग इन्द्रियों से देख नहीं सकते थे अतः इन के मिथ्यात्व को समझ नहीं सकते थे, मान लेते थे। इनके मन में जैसा आया गपोड़े लिखते थे, मानते थे, मनवाते थे, जिसमें न प्रमाण होता था न हेतु। कोई प्रमाण मांगता तो श्लोक बनावना कर दिखाते जाते थे और कहते जाते थे "अमुक पुराण में लिखा है।" यदि कोई पूछता कि हम पुराण को प्रमाण कैसे मानें तो उत्तर देते कि परमात्मा के अवतार महर्षि व्यास के बनाए हैं इसलिए प्रामाणिक हैं।

आज जब विद्या-विज्ञान की उन्नति हो गई है उनसे पूछा जा रहा है कि इन बातों को सत्य सिद्ध करके बता दो। इसका इनके पास उत्तर है कि "पुराणों में जो लिखा है सो सत्य है। आधुनिक वैज्ञानिक पुराणों की बातों को समझ नहीं सकते हैं।"

ईसाई और मुसलमानों ने भी इसी प्रकार कई-कई आकाशों की

कल्पना करलीं। न आजतक ये इन आकाशों का लक्षण कर पाये हैं और न कर सकेंगे। यह सारा प्रमाण, युक्ति, तर्क शून्य लोगों का बर्डाना है।

ज्योतिष विद्या के न पढ़ने न सुनने से ऐसी अविद्या लोगों में फैल गई जो लोगों को भ्रमा रही है।

८. पृथिवी करोड़ों योजना है—प्रश्न : पृथिवी का परिमाण[1] क्या है? उत्तर : ४६ कोटि योजन लम्बी है। एक योजन लगभग ५ मील की होती है। इस प्रकार २४५ कोटि मील है। क्योंकि ३० करोड़ कोस दूर पर तो वैतरणी नदी ही है। ३७५०००००० मील दूरी पर है।

ज्योतिष के मान्य विद्वान् आचार्य भास्कर ने पृथिवी का व्यास १५८१$\frac{1}{2}\frac{1}{4}$ योजन और परिधि ४६६७ योजन लिखा हैं अर्थात् ७६०५ मील व्यास और २४८३५ मील परिधि है।

आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार पृथिवी का व्यास ७६२६ मील है और परिधि २४६०२ मील है। अब बतलाइए किसका सत्य है और किसका असत्य?

आपके कथनानुसार कहीं भी पृथिवी पर वैतरणी नहीं दीखती। कहीं ऐसा तो नहीं कहीं आपने स्वप्न देखा हो और उसी को लिखा हो।

८. पृथिवी स्थिर है तथा चपटी है—पृथिवी गोल है यह हमारे देश के विद्वानों को सदा ज्ञात रहा है। इस का एक यही प्रमाण पर्याप्त है कि हमारे साहित्य में पृथिवी का भूगोल नाम से व्यवहार होता है। भूमि को गोल न मानने वाले भूगोल नहीं कहते न लिखते।

ईसाई, मुसलमान पृथिवी को गोल नहीं मानते। चाहे कितने ही विद्वान्, युक्ति वा तर्कों द्वारा सिद्ध करें क्योंकि बायबिल और कुरान के विरुद्ध सत्य को भी ये मानने को उद्यत नहीं हैं। आज लगभग १५० करोड़ व्यक्ति (ईसाई, मुसलमान) पृथिवी को चपटी ही मानते हैं।

ऐसा सुनते और पढ़ते हैं कि इटली के प्रसिद्ध ज्योतिर्वित् गेलीलियो ने यह सिद्ध किया कि पृथिवी गोल है। तब ईसाइयों ने गेलीलियो को अपने सिद्धान्त को छोड़ने के लिए बाधित किया। गेलीलियो ने निषेध किया तब ईसाइयों ने गेलीलियो को कारावास में बन्द किया।[2]

---

१. द्र० सत्यार्थ प्र०, पृ० ३६० "अब सुनिए·········।

२. गेलीलियो ही ने पहले पहल दूरदर्शक से ज्योतिषसम्बन्धी कई एक आविष्कार

जब इटली के वैज्ञानिक ब्रूनो ने प्रचार करना आरम्भ किया कि "समस्त ग्रह हमारे सूर्य की भांति सूर्य ही हैं और उपग्रह इनके चारों ओर घूमते हैं।" क्योंकि यह शिक्षा बायबिल के विरुद्ध थी अतः पादरियों ने उसे कैद किया और अन्त में १६ फरवरी, १६०० ई० को जिन्दा जला दिया।[1]

आत्मदर्शन, पृ० ४५०, ले० महात्मा नारायण स्वामी

इस प्रकार की घटनाओं से यूरोप का मध्यकालीन इतिहास भरा पड़ा है। ऐसा इतिहासज्ञों का कथन है।

ज्योतिष से अनभिज्ञ लोगों ने ऐसे ग्रन्थ बनाए जिनको मानकर संसार में अगणित अत्याचार हुए। जब तक बायबिल, कुरान और पुराणादि मत-मतान्तरों के नामधारी धर्मग्रन्थ भूमि पर बने रहेंगे तब तक संसार में मनुष्यों को विद्या की प्राप्ति नहीं हो सकेगी और न सुख ही प्राप्त हो सकेगा। ईसाई पादरी यह कहते हैं कि "हम ईसा मसीह की अहिंसा का सन्देश लेकर आये हैं। ईसा ने यह कहा कि कोई एक गाल पर मारे तो उसके सामने दूसरा गाल भी करो।" किन्तु यह अमानुषिक जघन्य पाप बायबिल को सत्य मानने वाले ईसा के सन्देशवाहक ईसाइयों ने ही किया है। ईसाइयों का यह स्वरूप विज्ञजनों से अपरिचित नहीं है।

१०. **परमुखापेक्षा**—आक्षेप : पञ्चमी, दशमी आदि भारतीय तिथियाँ ठीक नहीं हैं। क्योंकि कभी तो तिथि कट जाती है। कभी-कभी दो दिन तक एक ही तिथि रहती है और कभी ३० दिन का मास होता है तो कभी २६ दिन का। तीन वर्षों में एक बार १३ मास का वर्ष आता है। कोई कहता है कि आज एकादशी है तो और, कोई कहता है एकादशी तो कल होगी। अंग्रेजी का दिनाङ्क देखिये, सदा एक समान बालक से लेकर वृद्ध तक अनपढ़ से लेकर विद्वान् तक सरल ढंग से सब को समझ में आता है। कोई

किए। नई नई बातों के प्रचार करने का और इसलिए बायबिल में लिखे ईश्वरीय वचन को सत्य न मानने का अभियोग उस पर उस समय के पोप ने लगाया था। उस को तो……जीते ही जला देने का दण्ड मिल जाता परन्तु मित्रों की सलाह से बूढ़े गेलीलियो ने अपने वैज्ञानिक आविष्कारों को झूठा मान लिया और इस प्रकार अपनी जान बचाई…… । सौर परिवार, पृ० १८० से

१. बायबिल के अनुसार 'तारे ग्रह नक्षत्रादि जो आकाश में दीखते हैं वे गूलरों के समान छोटे-छोटे पदार्थ हैं।' परन्तु ये सब तारे नक्षत्र हैं। बड़े-बड़े लोक हैं, यह बायबिल बनाने वाले और उसको धर्मपुस्तक मानने वालों को पता नहीं है।

गड़बड़ी नहीं है। पञ्चाङ्ग वालों से पूछकर जैसा तिथि को जानना होता है वैसी कोई समस्या नहीं है।

समाधान—आपको यह पता नहीं कि आप किस बात का खण्डन कर रहे हैं और किस का मण्डन। आप को यह पता होना चाहिए कि मान एक प्रकार का नहीं है। सैकड़ों प्रकार के हैं। लोक व्यवहार में और ज्यौतिषशास्त्र में उपयोग में आने वाले ६ प्रकार के मान हैं।

ब्राह्मं दिव्यं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं गुरोस्तथा।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव॥ सू० सि० १४।१॥

ब्राह्म, दिव्य, पित्र्य, प्राजापत्य, बार्हस्पत्य, सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र ये नौ प्रकार के मान हैं। अमावस्या से अमावस्या तक जो काल है वह चन्द्र से सम्बन्ध होने से चान्द्र है। एक स्थान से चला हुआ सूर्य (पृथिवी) जितने काल में पुनः आरम्भ बिन्दु पर आ जाता है उसको सौर वर्ष कहते हैं। सूर्योदय से सूर्योदय तक का काल सावन दिन कहलाता है। एक सौर वर्ष में सौर दिन तो ३६० ही होंगे। जो हम दिनाङ्क के रूप में गिन रहे हैं वे सावन दिन वर्ष में ३६५ और ६ घण्टे होते हैं। चार वर्ष में एक दिन बढ़कर ३६६ दिन होते हैं। ३६५ सावन दिनों को सौरवर्ष के साथ चिपका दिया, इसी कारण किसी मास में २८ दिन होते हैं तो किसी मास में २९, किसी में तीस हैं तो किसी में ३१ होते हैं। यदि वर्ष जैसे सौर लिया वैसे ही सौर दिन लेवें तो ३६० दिन ही होंगे और प्रत्येक दिन २४ घण्टे २१ मिनट का हो जायेगा। तीसरा दिन २५ घण्टे का हो जायगा। यह गिनने में नहीं आयेगा इसलिए दिन सावन लिये और वर्ष सौर। हमारे यहां भी यह गणित है। व्यवहार में लाया जा सकता है, इससे पूर्व सर्वत्र व्यवहार में रहा। भारत के बंगाल तामिल आदि कई प्रान्तों में आज भी व्यवहार में है, देखा जा सकता है। (यहाँ आदिकाल से ही समीचीन कालगणना थी जब कि आज के जुलाई अगस्त मासों का अभी जन्म ही नहीं हुआ था।) यह अंग्रेजी गणना से अधिक सुविधाजनक है। अंग्रेजी मास के दिन न्यूनाधिक क्यों हैं? २१ मार्च को वसन्त सम्पात होता है नववर्षारम्भ तब ही होना चाहिए। १ अप्रैल को क्यों होता है इसका कोई कारण नहीं है। यह विसंवाद भारतीय कालगणना में नहीं है। हमारे भारतीय ज्यौतिषशास्त्र की परम्परा इससे उत्तम है जो कि चैत्रादि पांच मास ३१-३१ दिन के हैं शेष ७ मास ३०-३० दिन के हैं। चतुर्थ वर्ष का षष्ठ मास ३१ दिन का है। वर्षारंभ वसन्तसम्पात से होता है। आज जो अंग्रेजी मास की दासता सरमाथे मानते हैं, उसमें इस प्रकार की कई भूलें थीं

और हैं जिनका समाधान अभी होना शेष है जिस समय समाधान हो चुकेगा वह भारतीय गणना के आसन्न ही रहेगा।[1]

अब चान्द्रमास की बात लीजिए। चान्द्रमान के अनुसार १२ चान्द्र-मासों का एक चान्द्रवर्ष होगा जो ३५५ दिन कुछ घण्टे का होगा। इसको व्यवहार में रखना पड़ेगा। इससे हमें मुक्ति नहीं मिलेगी। सूर्य ग्रहण, चन्द्र ग्रहण के ज्ञान के लिए चान्द्रमान ही काम देगा, जनवरी फरवरी नहीं। ज्वार-भाटे का ज्ञान भी दिनाङ्कों से नहीं होता। चन्द्र का ज्ञान करना होगा। विज्ञान की उन्नति करनी होगी तो चान्द्रमान जानना होगा। रात्रि में चन्द्र का कितना प्रकाश है इसका ज्ञान भी इसी से होगा यह तो नित्य जीवन में उपयोगी है। विश्व का अधिकाधिक ज्ञान इस मास से कर सकते हैं अंग्रेजी मास से नहीं।

वारों की एक गणना है। वारों का मासों के साथ कोई तालमेल नहीं। क्या इतने मात्र से वारों के अनुसार गणना अथवा व्यवहार त्याज्य है ? वार त्याग कर हमारा एक दिन का व्यवहार चलना कठिन होगा। वारों का सम्बन्ध न तो मासों के साथ बैठता है न, वर्ष के साथ तो क्या इसको छोड़ देंगे ? इसी प्रकार चान्द्रमान भी है। तिथि का घटना बढ़ना भी हमें सृष्टिविद्या भूगोल और खगोल की ओर प्रेरित करती है। इन सब को न जानकर लूली लंगड़ी जनवरी फरवरी को लेकर तिथि ठीक नहीं कहना अज्ञान तथा पक्षपात की बात है।

११. पृथिवी अचलत्वभ्रान्ति—पृथिवी घूमती है। ऐसा प्राचीन वा आधुनिक विद्वानों ने अनेक युक्तियों से सिद्ध किया है। इनको स्वीकार न करना हठ और महती मूर्खता है। पृथिवी न घूमती तो कई कई वर्षों के दिन होते।

पृथिवी घूमती है इस बात को मध्यकाल में भूल गये। इसी कारण जब आचार्य आर्यभट्ट ने यह कहा कि पृथिवी घूमती है तो अन्धपरम्परा से दूषित बुद्धियों ने हठता से उसका खण्डन ही किया है। यदि उसी समय इस सिद्धान्त को जानते मानते तो हम ज्योतिषशास्त्र में और भी अद्भुत आविष्कार, अनुसन्धान करते। इतना ही नहीं भट्ट ने जो यह कहा कि पृथिवी घूमती है उसको भट्ट का ही भ्रम मानकर उनके ग्रन्थ के टीकाकार परमा-

१. इसके सम्बन्ध में गणित ज्योतिष मीमांसा नामक समुल्लास में विस्तार से लिखा जायगा।

दीश्वर ने मूलग्रन्थ का ही विरुद्धार्थ किया। इस का कारण अन्धविश्वास है। अन्धविश्वासों में फंसे हुए लोगों की बुद्धि ज्ञान-विज्ञान को सत्यासत्य को समझने में असमर्थ होती है। इन अन्धपरम्पराओं को जानने के लिए विद्या को जानना मानना होता है। यही मानवता है। ज्यौतिष को न जानने और जानकर भी मिथ्यामतों की बातों को ही सत्य मानने से मनुष्य अधोगति का भागी हो रहा है। एक वैज्ञानिक जो ईसाई वा मुसलमान अथवा पौराणिक किं वा जैनी वह जब चर्च में, मस्जिद में, मन्दिर में होता है तब पृथिवी को चपटी कहता और मानता है। वही विज्ञानशाला, विद्यालय वा वेधशाला में होता है, तब पृथिवी को गोल कहने वा सिद्ध करने लग जाता है।

एक घटना इसी प्रकार की प्रस्तुत करता हूँ। हमारे ज्यौतिष के गुरुवर श्री पं० पुरुषोत्तम जी जोशी बतलाते हैं कि उनकी गुरु परम्परा में तीसरे गुरु महामहोपाध्याय श्री पं० बापूदेव जी शास्त्री जब विद्यालय में विद्यार्थियों को ज्यौतिष पढ़ाते थे तो गणित से सोपपत्तिक यही सिद्ध करते और पढ़ाते कि पृथिवी सूर्य के चारों ओर घूमती है किन्तु वे ही जब घर पर लौट कर आते तो उन विद्यार्थियों से यही कहते थे कि "विद्यालय में पढ़ाने की बात तक तो पढ़ाता हूँ कि पृथिवी घूमती है वास्तव में पृथिवी घूम नहीं सकती। इतनी बड़ी पृथिवी कैसे घूमेगी।" मैंने सुना है एक शास्त्रार्थ इसी विषय में हुआ जिसमें इनका पक्ष रहा कि पृथिवी अचल, स्थिर है घूमती नहीं।

यह है अन्धविश्वास। संस्कार अच्छे हों वा बुरे, जब पक जाते हैं तब उनका छूटना अत्यन्त कठिन है। प्रयत्न करके विद्या द्वारा अविद्या के संस्कारों को नष्ट किया जा सकता है। कठिन अवश्य है किन्तु असम्भव नहीं है। इस में एक मात्र सहायक आप्तप्रमाण है।

मुसलमानों के धर्मग्रन्थ कुरान में यह लिखा है कि "और हम ही ने जमीन में पहाड़ रखे ताकि लोगों को लेकर झुक न पड़े[1]।

पहाड़ जमीन पर गाड़े ताकि जमीन तुम्हें लेकर किसी तरफ न झुकने पावे[2]।

"पहाड़ भूमि पर हैं। भूमि आकाश में सूर्य के चारों ओर घूम रही है। इस बात को जानने वाला ऐसा लिख नहीं सकता। मोहम्मद साहब

१. आचार्य डा० श्रीराम कृत 'कुरान दर्पण', पृ० ५७ से
२. आचार्य ,, ,, पृ० ५१ से।

अनपढ़ बतलाये जाते हैं। उस पर भी भूगोल खगोल विषय पर लेखनी उठाना। यह कोई सरल बात नहीं है। तब उनको क्या पता कि भूमि क्या है, पर्वत क्या हैं, और क्यों हैं? मन में आया सो लिख दिया और विद्या-विहीन लोगों में पैगम्बर बन गए।

११. पृथिवी किस पर खड़ी है—

प्रश्न—पृथिवी किस पर खड़ी है?

उत्तर—बैल के सींग पर।

प्रश्न—इतने बड़े भूगोल को धारण करने की शक्ति बैल में कहां से आई? और बैल किस पर खड़ा है? बैल के जन्म से पूर्व बैल के मां बाप के जन्म के समय किस पर थी।

उत्तर—खुदा की बात खुदा जाने। हमें क्या पता।

प्रश्न—जिसका तुम्हें पता नहीं उसको क्यों नहीं जानने का यत्न करते हो? विना जाने मानते क्यों हो? और किस आधार पर? और जो प्राचीन वा आधुनिक ज्योतिर्वित् सिद्ध करते हैं उसको क्यों नहीं स्वीकार करते हो। तुम क्यों नहीं सोचते, समझते और सत्यासत्य को जानने का प्रयास नहीं करते?

उतर—हमारा यह सिद्धान्त है कि मजहब के विषय में अक्ल में दखल नहीं देना चाहिए।

प्रश्न—बैल के सींग पर नहीं अपितु—

सपर्वतवनां कृत्स्नां पृथिवीं रघुनन्दन।
धारयामास शिरसा विरूपाक्षो महागजः ॥ १४ ॥
यदा पर्वाणि काकुत्स्थ विश्रामार्थ महागजः।
खेदाच्चालयते शीर्षं भूमिकम्पस्तदा भवेत् ॥ १५ ॥

वा० रामा० बा० का० सर्ग ४० ॥

अर्थ—हे राम इस वन पर्वत के सहित सम्पूर्ण पृथिवी को विरूपाक्ष हाथी ने शिर से धारण कर रखा है ॥ १४ ॥ हे राम जब पर्व के दिन आराम लेने के लिए तकलीफ से वह हाथी सिर को हिलाता है तब भूचाल होता है ॥ १५ ॥······पौराणिक पोलप्रकाश, पृ० १०२७ से।

समी०—क्या यह विशाल पृथिवी हाथी के सिर पर रह सकती है? यदि रह सकती है तो किसने रखी है? और क्यों? क्या विना हाथी के नहीं

रह सकती? यदि नहीं रह सकती तो हाथी किस पर है? जिस पर हाथी है वह किस पर है? वह किस पर है, इस प्रकार अनवस्थादोष आएगा।

यदि अपने आप पर ही हो, अन्य किसी पर नहीं हो, तो पृथिवी विना हाथी के भी रह सकती है। यदि पृथिवी नहीं रह सकती तो हाथी कैसे रह सकता है? भूकम्प तो पृथिवी के एक देश में होता है सम्पूर्ण भूमि का कम्पन तो एक साथ नहीं होता। यह श्लोककर्त्ता बालबुद्धि है। क्योंकि हाथी के सिर हिलाने से उसके सिर पर रखी सम्पूर्ण पृथिवी कांपेगी न कि एक देश मात्र कांपेगा।

वास्तव में यह वाल्मीकि का लेख नहीं हो सकता। वाल्मीकि को ऋषि कहा जाता है वे ऐसा सृष्टिक्रम वा प्रमाण विरुद्ध नहीं लिख सकते, यह प्रक्षिप्तांश हो सकता है।

पौराणिक—नहीं। हाथी के सिर पर नहीं किन्तु शेष अर्थात् सहस्र फणवाले सर्प के शिर पर है।

प्रश्न—सर्प के जन्म से पूर्व और सर्प के माता पिता के जन्म के समय वा उससे पूर्व कहां थी? यदि उस समय नहीं थी तो सर्प कहां से आया?

पौ०—यह शेष अनादि है। उसका कोई आद्यन्त नहीं है।

समी०—यह आपका कथन ठीक नहीं है। क्योंकि संयोगजन्य पदार्थ अनादि नहीं हो सकते। यदि कहो जब से पृथिवी है तब से शेष है तब प्रश्न होगा कि सर्प जड़ है वा चेतन अथवा शरीरधारी जीव? और वह सर्प किस का बच्चा है?

पौ०—चुप।

प्र०—सर्प किस पर खड़ा है?

पौ०—सर्प कूर्म पर। कूर्म जल पर, जल अग्नि पर, अग्नि वायु पर और वायु आकाश में ठहरता है।

प्र०—ये सब किस पर हैं?

पौ०—परमेश्वर पर।

आधुनिक—नहीं। परमेश्वर पर नहीं। पृथिवी सूर्य के आकर्षण से आकृष्ट हो अपनी कक्षा में अपने उपग्रह आदि को साथ लेकर घूम रही है।

प्रश्न—सूर्य किस पर है?

आधुनिक—आकाशगंगा (नीहारिका) के आकर्षण से आकृष्ट हो अपनी कक्षा में अपने ग्रह, उपग्रह आदि को साथ लेकर घूम रहा है।

प्र०—आकाशगंगा के मध्य में क्या कोई बड़ा सूर्य है जो उसके नक्षत्रों को अपनी ओर आकृष्ट करके चारों ओर अपनी अपनी कक्षा में घुमा रहा है अथवा आकाशगंगा की नाभि से ही आकृष्ट हो घूम रहा है?

आधु०—जैसा सूर्य ग्रहों को चारों ओर घुमा रहा है वैसा तो कोई आकाशगंगा का सूर्य नहीं जो आकाशगंगास्थ सब नक्षत्रों को चारों ओर घुमाता हो किन्तु केन्द्र से आकृष्ट हो घूम रहे हैं।

प्रश्न—केन्द्र द्रव्य है अथवा गुण?

आधु०—जैसा वैज्ञानिक कहते हैं उसी को मैं कह रहा हूँ। वास्तविकता का मुझे भी पता नहीं है।

प्रश्न—पृथिवी सूर्य से आकृष्ट है। सूर्य नीहारिका की नाभि से। नीहारिका की नाभि किसी और से। इस प्रकार कहीं अन्त है वा नहीं?

आधु०—अन्त नहीं।

प्र०—साकार पदार्थ अनन्त नहीं हो सकता।

आधु०—अन्त होगा।

प्र०—यदि अन्त होगा तो उससे परे कुछ भी नहीं रहेगा वहां कोई दूसरा लोक भी नहीं होगा। वहां किसके आधार पर रहेगा और ये सब नीहारिकाएं भी किस के आधार पर हैं?

आधु०—हमें पता नहीं आप बतलाइए।

सिद्धान्ती—परमेश्वर हीं इन सब का निर्माता पालनकर्त्ता और प्रलयकर्त्ता है इसी का नाम शेष है। जन्म, मृत्यु, उत्पत्ति, प्रलय आदि से पृथक् बचा रहता है। इसलिए इस का नाम शेष है। शेष का अर्थ न समझ कर किसी ने सर्प की कल्पना कर ली इसी प्रकार "उक्षा दाधार पृथिवीमुत द्याम्" आदि अनेक वाक्य हैं। उक्षा के अर्थ अनेक हैं। एक सूर्य, दूसरा बैल है। वर्षा द्वारा भूगोल के सेचन करने से उक्षा सूर्य का नाम है। उसने अपने आकर्षण से पृथिवी को धारण किया है और सूर्य आदि को धारण करने वाला परमेश्वर ही है।

नास्तिक—नहीं नहीं। कोई धारण नहीं करता। किसी पर नहीं है।

सि०—यदि किसी पर नहीं है तो ऐसे नियमपूर्वक क्यों घूमती

है? अस्तव्यस्त हो किसी अन्य लोक से टकराकर चकनाचूर क्यों नहीं होती?

जैनी—नहीं नहीं? पृथिवी भारी होने से नीचे-नीचे आकाश में चली जाती है।

सि०—नीचे ऊपर का क्या अर्थ है? किस को नीचे ऊपर कहते हो? ये शब्द आपेक्षिक हैं। यदि आप कहेंगे तो यही कह सकते हैं कि "पैर की ओर नीचे और शिर की ओर ऊपर है"। जिस को हम नीचे कहेंगे उसको पाताल (अमेरिका) वाले ऊपर कहेंगे और जिसको हम ऊपर कहेंगे उसको पाताल वाले नीचे। जब हम इस अनन्त आकाश में उड़ेंगे, जहां हमारा सूर्य भी एक टिमटिमाता तारा जैसा दीखेगा; हमारी पृथिवी दीखेगी ही नहीं और वहां देखेंगे तो ऊपर नीचे का कोई व्यवहार नहीं रहेगा। जो पैरों की ओर है वह शिर की ओर हो जाता है। जो शिर की ओर है वह पैरों की ओर हो जाता है।

दुर्जनतोष न्याय से पृथिवी नीचे की ओर जाती है ऐसा मान भी लेवें तो निम्न स्थलों पर रहने वालों को वायु का स्पर्श न होता। उच्च स्थानों पर रहने वालों को स्पर्श अधिक होता। एक ही ओर से वायु की गति होती किन्तु ऐसा देखा नहीं जाता। प्रत्यक्ष इसके विरुद्ध है। अतः यह मिथ्या कल्पना है।

ज्यौतिषविद्याविहीन लोगों ने कैसी-कैसी कल्पनाएं की हैं, एक दृष्टान्त से स्पष्ट हो जायेगा; "हिरण्याक्ष पृथिवी को चटाई के समान लपेट शिराने धर सो गया। विष्णु ने वराह का स्वरूप धारण करके उसके शिर के नीचे से पृथिवी को मुख में धर लिया। वह उठा दोनों की लड़ाई हुई। वराह ने हिरण्याक्ष को मारा।" यह है पुराणों की भूगोल खगोलविद्या। क्या इन पुस्तकों को पढ़ने वाले कभी सृष्टि को यथावत् समझ सकेंगे? नहीं नहीं कभी नहीं।

इसकी आलोचना करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखते हैं कि "इन पोपों से कोई पूछे कि पृथिवी गोल है वा चटाई के समान? तो कुछ न कह सकेंगे। क्योंकि पौराणिक भूगोल खगोल विद्या के शत्रु हैं। भला जब लपेट कर शिराने धर लो आप किस पर सोया और वह वराह किस पर पग धर दौड़ आये? पृथिवी को तो वराह जी ने मुख में रख लिया फिर दोनों किस पर खडे होकर लड़े? वहां तो और कोई ठहरने को जगह नहीं थी।

किन्तु भागवतादि पुराण बनाने वाले पोप जी की छाती पर खड़े हो कर लड़े होंगे। परन्तु पोप जी किस पर सोया होगा ?

१२. चन्द्र, पितर, श्राद्ध, चन्द्र के दो टुकड़े—चन्द्र एक भूगोल है। इसके विषय में पौराणिक, जैन, मुसलमान इत्यादि लोगों ने मनमानी कल्पनाएं की हैं। जो मनुष्य मर जाते हैं वे चन्द्रमा पर जाकर रहते हैं। उनको जीवित रखने के लिए सूर्य के कन्या राशि के उत्तरार्ध में होने पर श्राद्ध तर्पणादि करने चाहिए। उनका जीवन उसी पर चलता है जो यहां से श्राद्ध के रूप में दिया जाता है। उससे अक्षय पुण्यफल मिलता है। ज्यौतिष से अनभिज्ञ पण्डे, पुजारी, पोपों ने ऐसी-ऐसी बातें घड़कर आंख के अंधे गांठ के पूरे लोगों को अपने जाल में फंसा रखे हैं और आनन्द कर रहे हैं। इस श्राद्ध के नाम से न जाने कितने परिवार दीन, दरिद्र, अनाथ बन गये होंगे इस का कोई इतिहास नहीं है।

आज लाखों व्यक्ति अपनी गाढ़ी कमाई को निठल्ले तोंद पर हाथ रखे बैठे पोपों को खिलाकर समझ रहे हैं कि हमने अपने पितरों को तृप्त किया है। देश में आलसी निष्कर्मा आनन्द लूट रहे हैं। धन का विनाश तो कर ही रहे हैं किन्तु इन अन्धविश्वासों से वास्तविक सृष्टि विद्या का ज्ञान नहीं होने पाता और नहीं उन्नति हो पाती। न ज्ञान विज्ञान की वृद्धि हो पाती। ऐसे लोग अज्ञानी बनकर स्वार्थ के लिए नर जन्म को व्यर्थ कर रहे हैं अन्यों का करवा रहे हैं।

जब कोई मर जाता है तो शरीर यहीं छूट जाता है। चन्द्रमा पर जाकर रहने वाला कौन है ? और खाने वाला कौन है ? नया शरीर धारण करेंगे तो चन्द्रमा पर क्यों बैठे रहेंगे ? अब वैज्ञानिक चन्द्रमा पर पहुँच गये हैं। वहाँ पितर लोग तो क्या पितरों के चिह्न भी नहीं दीखे ? आपके पाखण्ड का भाण्डा फूट गया।

पोप जी—चन्द्र का अर्थ यह चन्द्र नहीं है, वह कोई दूसरा स्थान है जिसको पितृलोक कहते हैं।

सिद्धान्ती—वाह जी। ऐसा नहीं कहोगे तो श्राद्ध का माल मिलना समाप्त हो जायेगा तो क्या राख फांकोगे वा धूलि ? मजदूरी करके जीओगे वा भीख मांगकर ? यह स्वार्थ की चरमसीमा है। क्या आपका यही सिद्धान्त है कि मीठा-मीठा गड़क और कड़वा-कड़वा थू ? जब पूर्णिमा अमावस्या को लेते हो, इसी चंन्द्र को मानते हो। एकादशी आदि के लिए इसी चन्द्र को मानते

हो। सूर्य चन्द्र ग्रहण के लिए इसी को मानते हो। शशिवदना, चन्द्रानना, चन्द्रमुखी आदि साहित्य में भी इसी को प्रयुक्त करते हो और जिन पितरों की कृपा से तोंद पर हाथ फेरते हुए "जजमान की जय" मनाते हो उन पितरों को जब दिखाने के लिए कहते हैं तब इस चन्द्र का निषेध करते हो। शोक महाशोक पोप जी पर जिसने अपने पेट भरने के लिए इतने ढोंग रचे हैं भ्रमा रहे हैं। ऐसे लोग जब तक धरा पर रहेंगे संसार पाषण्ड वा दुःखों से छूट कर सुखों को प्राप्त नहीं कर सकता।

पौ०—चन्द्रमा पर तो कोई भी नहीं जा सकता है; वैज्ञानिकों का चन्द्रमा पर जाने का कथन गप्प है।

सि०—आप जो चाहे कह सकते हैं, क्योंकि बोलने के लिए आप पर किसी का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। न आपके मुख पर ताला है। आप का मुख है इसलिए बोल रहे हैं। मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी। मुख है इसलिए "दश हाथ की हरड़ है" यह बोल रहे हैं। हम आप से प्रश्न करते हैं कि आप कहते हैं "नहीं गये और नहीं जा सकते" हम कहते हैं "गये हैं और जा सकते हैं"; दोनों में से आपका सत्य कैसे ? हमारा असत्य कैसे ? हेतु तो नहीं है। हमारा सत्य, आपका असत्य क्यों नहीं ?

आपके मरे हुए पितर चन्द्रमा पर पहुँच सकते हैं तो क्या जीवित वैज्ञानिक नहीं पहुँच सकते ? आपका श्राद्ध-पदार्थ चन्द्रलोक में पहुँच जाता है तो क्या चन्द्रयान नहीं जा सकता ? आपको सन्देह हो तो चलिए चन्द्रमा पर पहुँचा दें। वहां चलकर अपने पितरों से जी भर के मिलकर आइए। अन्यथा आप हमें पितृलोक दिखाइए।

नवग्रह पूजा, हनुमान चालीसा घोखने वालो ! आपको पता ही क्या है आपको शनि, राहु, केतु से प्रयोजन है चन्द्र में आने जाने से क्या लेना देना है ?

यदि वैज्ञानिक इस चन्द्र पर नहीं गए होंगे तो आप ही बतलाइए कि वे कहां गए ? आप को यह पता नहीं कि संसार क्या कर रहा है, कहां पहुँच रहा है। यदि कोई चिन्ता है तो यही कि आपका पाषण्ड खण्डित न हो और खाने को परान्न का मिलना बन्द न हो जाय।

इसी प्रकार चन्द्र में खरगोश है, हिरन है, बुढ़िया रूई कात रही है, इत्यादि भी कपोल कल्पनाएं हैं। वास्तव में शश, मृग ये दोनों सूर्य के नाम हैं। सूर्य के प्रकाश से चन्द्र प्रकाशित होता है। चन्द्र ने सूर्य के प्रकाश को

अपने अङ्क में लिया हुआ है। इसलिए इसको शशाङ्क, शशी, वा मृगाङ्क कहते हैं। ज्यौतिषानभिज्ञ लोगों ने शश और मृग का अर्थ खरगोश और हिरन समझ लिया है। वेदविद्याविहीन लोग जो ठहरे। उस पर भी सृष्टिविद्या से शून्य। नीम के ऊपर करेला चढ़ गया यह युक्ति इन पर चरितार्थ हुई।

पितर चन्द्र पर रहते हैं। इसका अर्थ भी अन्यथा है। पितरो ज्ञानिनो विद्वांसः। ज्ञानी, ज्ञानवृद्ध, विद्वानों को पितर कहते हैं। चदि आह्लादे से चन्द्र बनता है। मनुष्यों को आह्लाद इस उपग्रह के कारण होता है अतः आह्लाद का कारण होने से चन्द्र कहा जाता है। पितर ज्ञानी, ज्ञान से आह्लाद पर तैरते रहते हैं। कभी दुःख सागर में नहीं गिरते अतः पितर चन्द्र पर रहते हैं। इसको संस्कृत भाषा वा ज्यौतिषविद्याशून्य लोगों ने न समझ कर चन्द्र पर मृतपितरों को मान अपने जीवन व्यर्थ कर रहे हैं तथा अन्यों के जीवन को व्यर्थ कर रहे हैं।

इसी प्रकार मुसलमान मुहम्मद साहब के माहात्म्य के लिए कहते और मानते हैं कि मुहम्मद साहब ने चन्द्रमा के टुकड़े कर दिए। क्या यह संभव हो सकता है? चन्द्रमा यहां से अल्पतम अर्थात् पृथिवीतल से २१६००० मी० दूरी पर और अधिकतम २४७००० मील दूरी पर है। मध्यममान से २३६००० मील दूरी पर रहता है। यदि सुनिश्चित जानना हो तो २३८३५५ मील पर है यह कहा जा सकता है।

यदि इसका स्पर्श करना हो तो मनुष्य को न्यूनतम दो लाख मील ऊंचा होना पड़ेगा। ऐसा मनुष्य इस भूतल पर संभव नहीं है। यह सृष्टिक्रम और प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। यदि शरीर फैल गया सिकुड़ गया कहो तो भी ठीक नहीं। क्योंकि हड्डियां कैसे फैलेंगी और कैसे सिकुड़ेंगी। यदि दुर्जन-तोष न्याय से मान भी लेवें तो भी संभव नहीं है क्योंकि शरीर न्यूनातिन्यून दो लाख मील ऊंचा होगा। शरीर जितना लम्बा होगा उसका सातवां भाग पैर के तलुवे की लम्बाई होगी। लगभग २८५०० मील लम्बा तलुवा होगा। मुहम्मद साहब का एक पैर का तलुवा ही सारी पृथिवी के घेरे को लपेटा जाय तब भी लगभग ३००० मील का तलुवा बचा ही रहेगा तब दूसरा पैर कहां होगा? मुहम्मद साहब रहते कहां होंगे? उन्होंने चन्द्र के दो टुकड़े समान-समान किए अथवा असमान? दोनों भाग कहां हैं? पुनः जोड़ तो नहीं दिए? चन्द्रमा के टुकड़े क्यों किए? उद्देश्य क्या था? क्या खुदा की भूल को सुधारने के लिए तो नहीं किए थे?

मुसलमान—नहीं नहीं। अंगुली से नहीं। इशारे से ही किया। इसलिए सत्य है।

सिद्धान्ती—हम मान लेते हैं आपकी नात को। अंगुली से न हो। इशारे से ही किया होगा। टुकड़े करने का क्या प्रयोजन था?

१२. सूर्य—सूर्य ७ घोड़ों के रथ पर बैठकर वायु वेग से चल रहा है। उदयाचल से लेकर अस्ताचल को पहुँच जाता है।

ऐसा कहा जाता है और माना जाता है कि सूर्य से कुन्ती में कर्ण का जन्म हुआ। हनुमान् जब बालक थे, सूर्य को निगल गये। फरिश्ते सूर्य को ओढ़ते हैं।

सूर्य का व्यास ८६४००० मील है। इसी से इसकी उष्णता का अनुमान लगाया जा सकता है कि इसके दो अरब भागों में से एक भाग पृथिवी पर आता है। उसमें से एक चतुरस्र आयताकार मील पर ४६६०००० अश्व-शक्ति की उष्णता प्राप्त होती है; उसमें से एक मनुष्य पर कितनी हो सकती है? और एक घोड़े पर कितनी हो सकती है? यह कहा जा सकता है कि सूर्य में से केवल एक राई के जितने द्रव्य को पृथिवी पर लावें तो उसी से कई बड़े-बड़े नगर भस्म हो जायेंगे। सूर्य में १४०००००० सेंटीग्रेड से भी बढ़ कर उष्णता है। ऐसे सूर्य के लिए किस प्रकार का रथ होगा? वह रथ क्यों न जल कर राख बन गया? कहां बैठ कर उसको बनाया होगा? रथ के विना क्या सूर्य थक जाता? रथ से अच्छा कोई राकेट ही बना लेता तो चिन्ताओं से मुक्त होता। रथ को हाँकने वाला कोई मनुष्य है वा कोई अन्य? वह क्या खाता पीता होगा? वह वहां क्यों नौकरी करता होगा? घोडे कितने बड़े-बड़े होंगे? किस पर दौड़ते हैं? कभी विश्राम करते हैं वा नहीं? यदि करते हैं तो तब सूर्य क्या करता होगा? यदि नहीं करते हों तो जीवित कैसे रहते हैं? वे घोड़े कितने वर्षों से जुते हैं? ये ही रहेंगे वा बदले जायेंगे? दौड़कर कहां जा रहे हैं? क्यों नहीं दीख रहे हैं?

क्या इसी सूर्य ने कुन्ती में गर्भ धारण कराया? कुन्ती के पास रथ-सहित आया अथवा अकेला? कुन्ती अन्तरिक्ष में रहती थी अथवा भूमि पर? कुन्ती की बात हीं क्या पृथिवी भी कैसे रही?

हनुमान् जी भूमि पर रहते थे वा आकाश में? यदि अन्तरिक्ष में रहते थे तो महर्षि वाल्मीकि और उनका रामायण भी मिथ्या है। यदि भूमि पर रहते थे तो पृथिवी जैसी १४००००० पृथिवियां जिसमें समा सकती हैं ऐसे

सूर्य को कैसे निगला ? क्यों निगला ? यह जो दीख रहा है यह वही सूर्य है वा दूसरा, यदि वही है तो कहां से आया ? यदि अन्य है तो वह सूर्य कहां गया ? तब अन्धेरा क्यों नहीं हुआ ? यदि हुआ तो लोक व्यवहार कैसे चला ? सूर्य से सम्बद्ध सब ग्रह कहां रहे ? उनका क्या हुआ ? पृथिवी कहां रही ?

फरिश्ते कैसे थे, जो सूर्य को ओढ़ते थे। सूर्य तो गोल है उसको तो क्या ओढ़ा होगा ? किसी वस्त्र का नाम सूर्य रख लिया होगा। अथवा यह लेख किसी आगरे में रहे हुए का होगा।

खुदा की विद्या अनुपम है जो यह लिखा है कि खुदा रात्रि में सूर्य को झील में रख देता है, प्रातः काल पूर्व की ओर से लाता है। इस को लिखने वाले को क्या उपाधि देनी चाहिए, पाठक ही समझ लें। भूगोल, खगोल विद्या के ये अनभिज्ञ कभी इस विद्या को जीवित रहने देंगे क्या ?

१४. **सूर्य चन्द्र ग्रहण**—पूर्णिमा के दिन चन्द्र ग्रहण और अमावस्या के दिन सूर्य ग्रहण होता है। पूर्णिमा के दिन जब चन्द्र अपने पथ पर चलता हुआ पृथिवी की छाया में आता है तब चन्द्र ग्रहण होता है। उसी को चन्द्र ग्रहण कहा जाता है। अमावास्या के दिन जब चन्द्र अपने पथ पर चलता हुआ सूर्य और पृथिवी के मध्य में आता है, चन्द्र की आड़ के कारण पृथिवीस्थ मनुष्यों को सूर्य का दर्शन नहीं होता। तब सूर्य ग्रहण होता है। उसी को सूर्य ग्रहण कहा जाता है। इसी को भास्कराचार्य ने कहा है।

भूभाविधुं विधुरिनं ग्रहणे ऽपिधत्ते ॥ सि० शि०

दो सूर्य दो चन्द्र केवल जम्बू द्वीप में हैं ऐसा जैनियों का कहना है। दो सूर्य और दो चन्द्र हैं तो रात्रि कैसे होगी ? कृष्ण पक्ष कैसे होगा ?

(१) सूर्य ग्रहण के विषय में पौराणिक विष्णु भगवान् मोहिनी रूप धारण करके अमृत बांट रहे थे। प्रथम देवता बैठे हुए थे पश्चात् असुर। देवताओं में बांट हो रहे थे कि राहु के मन में यह विचार आया होगा कि देवताओं से बचकर हम तक अमृत आवे वा नहीं। इसलिए वह देवता का वेष धारण कर देवताओं में आकर बैठ गया। विष्णु भगवान् अमृत परोसते जा रहे थे 'राहु' ने ले लिया और पी भी लिया। किन्तु सूर्य चन्द्र इस को जान गए और उन्होंने विष्णु को सूचित किया। विष्णु ने सुदर्शन चक्र को चलाया। विलम्ब क्या था ? राहु की ग्रीवा कट गई। क्योंकि सुदर्शन चक्र व्यर्थ नहीं जाता। पुराणकार की लीला उनके भगवान् के

लिए भी अज्ञेय है। इधर अमृत भी व्यर्थ नहीं जाता है। तब दोनों ने सन्धि कर ली होगी, आधा तुम्हारा काम हो जाय आधा हमारा। कोई भी व्यर्थ नहीं जायगा। कोई सफल भी नहीं। चक्र ने गर्दन को काट दिया अमृत ने मरने नहीं दिया। किन्तु राहु ने देख लिया सूचित करते हुए सूर्य चन्द्र को। इसलिए जहां मिल जाते हैं निगल जाता है किन्तु वे (सूर्य-चन्द्र) गर्दन के छेद में से निकल जाते हैं।

वाह रे लालबुझक्कड़। तुमने जिस रहस्य का आविष्कार किया, वह किसी बड़े से बड़े विद्वान् को समझ में नहीं आयेगा। संभव है तुम्हारे जैसा भूगोल, खगोलवेत्ता न भूतो न भविष्यति।

इस को ऐतिहासिक घटना मानना कितना अज्ञान है ? इसी को आधार बनाकर धर्म शास्त्र नामधारी पुस्तकों में है कि चाण्डाल राहु के द्वारा सूर्य चन्द्र का स्पर्श होता है इसलिए अशौच होता है। केवल उन्हीं को नहीं पृथिवीस्थ मनुष्यों को भी अशौच होता है। यह दो प्रकार का है। बिम्ब का जब ग्रास प्रारम्भ होता है वह चन्द्र के मरण के समान होने से मनुष्य के मरण के समय में जो शौच कर्म होता है वही कृत्य यहां पर करना होता है। ग्रहण के मोक्ष काल में सूर्य चन्द्र का नये जन्म को धारण करने के समान है। अतः बालक के जन्म के समय जिस अशौच कर्म का विधान है वही यहां कर्त्तव्य है। स्नान के बिना अशुद्ध होते हैं।

ऐसा सुनते हैं कि ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में बहुत बड़ा मेला लगता है जिसमें लाखों लोग देश के कोने-कोने से आते हैं। वहां स्नान वा दान आदि पुण्यजनक समझ कर करते हैं। जप तो पुण्य का करते हैं किन्तु आचरण करते हैं पाप कर्म का। जैसे कोई चोरी करने जाते समय परमात्मा से यह प्रार्थना करे कि हे परमात्मा ! मैं चोरी में सफल होऊँ ऐसी कृपा कीजिए इत्यादि।

यही नहीं इस प्रकार की वा इससे भी विचित्र अज्ञान पूर्ण अनेक कथाएं विदेशों में भी रही हैं और कुछ-कुछ आज भी हैं। जैसे—

(२) पूर्व काल में रोम नगर में लोग चन्द्रग्रहण काल में चन्द्रमा को यातना ग्रस्त समझ कर उसके क्लेशशान्त्यर्थं पित्तलयन्त्र बजाया करते थे। एवं ऊँचे स्वर से कोलाहल किया करते थे। उन में बहुतों को ऐसा विश्वास था कि कुहक जीवी लोगों ने चन्द्रमा को आकाश से गिराकर "दूर्वा क्षेत्र" में चराया था एवं उन्हीं लोगों के कुहक द्वारा चन्द्रग्रहण होता है।

इस देश में ऐसा नियम था कि कोई व्यक्ति ग्रहण के वास्तविक कारण की प्रकाश रूप से आलोचना न करे।

(३) चीन देश में चीनियों को ऐसा विश्वास है कि भयङ्कर सर्प सब चन्द्रमा और सूर्य को ग्रस्त करते है इसी कारण उनका ग्रहण होता है। ग्रहण समय में ग्रासकारी सर्प की ताडना के लिए चीनी लोग डंका बजाया करते थे।

(४) अमेरिका खण्ड के अन्त:पाती मेक्सिको देशीय लोग ग्रहण काल में उपवास करते हैं। उनका यह विश्वास है कि चन्द्रमा एवं सूर्य में आपस ं विवाद हुआ है और चन्द्रमा को सूर्य ने मारा है। इसी निमित्त वे लोग विशेषत: उनकी स्त्रियां आपस में एक दूसरे को कटुवचन आदि व्यवहार र एवं बाहू और अन्यान्य अङ्ग प्रहार द्वारा शरीर से रुधिर बाहर करती हैं, इस विचार से कि जिस प्रकार चन्द्रमा और सूर्य संग्राम में लड़कर आपस में एक दूसरे को क्लेशित करता है हम लोगों को भी उन के दु:खं में भी सहानुभूति प्रकट करनी चाहिए।

उदयनारायणसिंहकृत 'सूर्यसिद्धान्तभूमिका', पृ० ११६

१५. देवासुर-संग्राम—पुराणों में देवासुर-संग्राम का वर्णन है उत्तरी ध्रुव पर देवता और दक्षिणी ध्रुव पर राक्षस वास करते हैं। वे परस्पर शत्रु हैं। सदा युद्ध करते हैं। एक दैत्यों की सेना थी कि जिनका शुक्राचार्य पुरोहित था। वे दक्षिण देश में रहते थे। दूसरी देवों की सेना थी जिनका राजा इन्द्र, सेनापति अग्नि और पुरोहित बृहस्पति था। उन देवों के विजय कराने के लिए आर्यावर्त्त के राजा भी जाया करते थे। असुर लोग तप करके ब्रह्मा, विष्णु और महादेवादि से वर मांग लेते थे और उनको[1] मारने के लिए विष्णु अवतार धारण करके पृथिवी का भार उतारा करते थे॥ ......ऋ० भा० भू० ग्र० प्रामा०॥

ये सब देव और असुर प्राजापत्य अर्थात् ईश्वर के पुत्र के समान कहे जाते हैं। संसार के सब पदार्थ इन्हीं के अधिकार में रहते हैं। इनमें से असुर=प्राण ज्येष्ठ हैं। क्योंकि प्राणरूपी वायु प्रथम उत्पन्न होता है। इसी प्रकार जन्म से सब मनुष्य अविद्वान् होते हैं। विद्या विज्ञान को प्राप्त करके पश्चात् विद्वान् होते हैं। वायु के पश्चात् अग्नि की उत्पत्ति होती है और प्रकृति से इन्द्रियों की। इसलिए असुर ज्येष्ठ हैं और देवता कनिष्ठ हैं।

१. राक्षसों को मारने के लिए।

वे सब प्रजापति से उत्पन्न होने से सन्तान जैसे हैं। इनका परस्पर नित्य विरोध का होना यही उनके युद्ध जैसा है।

इसी प्रकार मनुष्य का मन और ज्ञानेन्द्रियां भी देव कहाते हैं उनमें राजा मन है इन्द्रियां सेना हैं। सब प्राणों का नाम असुर है। इनका राजा प्राण है। अपानादि सेना है। इनका परस्पर विरोधरूप युद्ध हुआ करता है।

जो मनुष्य स्वार्थी और अपने प्राण को पुष्ट करने वाले तथा कपट छल आदि दोषों से युक्त हैं, वे असुर और जो लोग परोपकारी, पर दु:ख-भञ्जन तथा धर्मात्मा हैं वे देव कहाते हैं। इनका भी परस्पर युद्ध जैसा व्यवहार देखा जाता है।

दिन का नाम देव, रात्रि का नाम असुर है। इनका परस्पर युद्ध जैसा व्यवहार देखा जाता है।

शुक्लपक्ष का नाम देव और कृष्णपक्ष का नाम असुर है। इन का परस्पर युद्ध जैसा व्यवहार देखा जाता है।

उसी प्रकार उत्तरायण की देव संज्ञा है और दक्षिणायन की असुर संज्ञा है। इनका परस्पर नित्य विरोध होना यही उनके युद्ध के समान है।

इससे परे जिसको मनुष्य नहीं देख सकते हैं, ऐसा ही सृष्टि प्रलय रूपी देवासुर संग्राम हो रहा है।

इत्यादि द्वन्द्वों के बोध कराने के लिए सत्य शास्त्रों में जो वर्णन है उसको ज्यौतिष के विद्वान् समझ सकते हैं। ज्यौतिष से वि[illegible] स्वार्थी लोग इन बातों को न समझकर बहकते हैं और संसार को बहकाते हैं। इस का मुख्य कारण पुराण और पुराण बनाने वाले हैं।

१६. रोहिणीशकटभेद—आकाश में पृथिवी, शुक्र, मंगल आदि तारकाओं को उनकी गति को समझने के लिए आचार्यों ने जैसा मार्ग में मील का पत्थर होता है वैसा ही चिह्न के लिए २७ नक्षत्रों को चुन लिया है। उनमें से चौथा है रोहिणी। चन्द्र पृथिवी के चारों ओर घूमता हुआ लगभग प्रतिदिन एक नक्षत्र के पास पहुँचता है। जिस मार्ग से चन्द्र प्रयाण करता है सब नक्षत्र उसी मार्ग में नहीं हैं। दक्षिणोत्तर में विभिन्न दूरियों पर हैं। नक्षत्र तो लगभग निश्चित स्थान पर हैं किन्तु चन्द्र का मार्ग स्थिर नहीं है। चन्द्र क्रान्तिवृत्त से ५ पांच अंश दक्षिण वा उत्तर तक जाता है। अत: कभी कभी वह किसी नक्षत्र को छादित करता है। इस प्रकार वह

कृत्तिका, रोहिणी, पुष्य, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, शतभिषक् और रेवती इन नक्षत्रों को छादित करता रहता है। इनमें से सर्वाधिक प्रकाशमान नक्षत्र रोहिणी है। इसका जब चन्द्र द्वारा पिधान (छादन) होता है तो अति मनोहर दृश्य का होना ज्योतिर्विदों में प्रसिद्ध है। इसलिए रोहिणीपिधान का ब्राह्मण ग्रन्थों में कई स्थानों पर आलंकारिक वर्णन है। ऐतरेय ब्राह्मण १३। ९ में इस प्रकार आया है कि "ब्रह्मा ने अपनी ३३ कन्याएं चन्द्रमा को दीं। परन्तु चन्द्रमा का अधिक स्नेह रोहिणी नामक कन्या से देखकर अवशिष्ट कन्यागण ब्रह्मा के पास जाकर कहने लगीं कि भगवन्! चन्द्रमा हम लोगों से अधिक स्नेह रोहिणी में करता है। इस पर ब्रह्मा ने चन्द्रमा और कन्याओं को परस्पर शपथ देकर कहा कि 'सब में समान प्रीति रखो' सब ने स्वीकार किया। अनन्तर चन्द्रमा फिर भी रोहिणी से अधिक स्नेह करने लगा। यह देख प्रजापति ने चन्द्रमा को शाप दिया इससे चन्द्रमा को यक्ष्मरोग हुआ पुनः चन्द्रमा शापमर्षण का प्रार्थी हुआ और ब्रह्मा ने कहा कि सूर्य को चरु दें तो शाप से मुक्त होगे इत्यादि।"

उद० नारायणकृत सू० सि० भूमिका

यहां ब्रह्मा का अर्थ परमात्मा है। उसकी, २७ नक्षत्र और कृत्तिका नक्षत्र की छः योगताराएं मिलकर कुल ३३ कन्याओं के समान हैं। चन्द्रमा को दी गई। चन्द्रमा का रोहिणी को ढकना सबसे रोचकतम दृश्य है। यक्ष्मा रोग का अर्थ चन्द्रमा के धब्बे हैं। सूर्यचरु से ठीक होने का अर्थ है पौर्णिमा के दिन सूर्य से अधिकतम प्रकाश को प्राप्त करके धब्बों को तिरोहित सा कर लेना है। इसको लेकर पुराणों ने तिल का पहाड़ बना दिया।

इस सृष्टि-रहस्य के उद्घाटन करने वाली बात को समाप्त करके पोपलीला चला दी। रोहिणीशकट भेद का क्या फल होता है इसकी विचित्र कल्पना की। वास्तव में न चन्द्रमा का रोहिणी से कोई सम्बन्ध है न यह सम्भव ही है। क्योंकि पृथिवी से चन्द्र की दूरी लगभग २३८८३५ मील है। अधिकतम दूरी २४७००० मील है। जब कि रोहिणी नक्षत्र ६८ प्रकाश वर्ष अर्थात् ४०८०००००००००००० मील है। भला इनका कभी संयोग संभव है? कभी नहीं।

अहल्या गोतम की कथा—"इसी प्रकार अहल्या गोतम और इन्द्र कथा को घड़कर सृष्टि रहस्य को लुप्त कर दिया। तद्यथा—सूर्य का नाम इन्द्र, रात्रि का अहल्या तथा चन्द्रमा का गोतम है। यहां रात्रि और चन्द्रमा का स्त्री पुरुष के समान रूपकालङ्कार है। चन्द्रमा अपनी स्त्री रात्रि

से सब प्राणियों को आनन्द कराता है और उस रात्रि का जार आदित्य है अर्थात् जिसके उदय होने से रात्रि अन्तर्धान हो जाती है। और जार अर्थात् यह सूर्य ही रात्रि के वर्तमानरूप शृङ्गार को बिगाड़ने वाला है। इस लिए यह स्त्री पुरुष का रूपकालङ्कार बांधा है कि जैसे स्त्री पुरुष मिलकर रहते हैं वैसे ही चन्द्रमा और रात्रि भी साथ-साथ रहते हैं। चन्द्रमा का नाम गोतम इसलिए है कि वह अत्यन्त वेग से चलता है। और रात्रि को अहल्या इसलिए कहते हैं कि उसमें अहर्=दिन का लय होता है। तथा सूर्य रात्रि को निवृत्त कर देता है, रात्रेर्जरयिता; इसलिए वह उसका जार कहाता है।

इस उत्तम रूपकालङ्कार विद्या को मूढ लोगों ने अनेक प्रकार बिगाड़ के लिखा है। सो उसको ऐसा मान रखा है कि······"देवों का राजा इन्द्र देवलोक में देहधारी देव था। वह गोतम ऋषि की स्त्री अहल्या के साथ जार कर्म किया करता था। एक दिन जब उन दोनों को गोतम ने देख लिया तब इस प्रकार शाप दिया कि हे इन्द्र तू हजार भग वाला हो जा। तथा अहल्या को शाप दिया कि तू पाषाण रूप हो जा। परन्तु जब उन्होंने गोतम की प्रार्थना की कि हमारे शाप का मोक्षण कैसे होगा? कब होगा? तब इन्द्र से तो कहा कि तुम्हारे हजार भग के स्थान में हजार नेत्र हो जायें और अहल्या को वचन दिया कि जिस समय रामचन्द्र अवतार लेकर तेरे पर अपना चरण लगावेंगे उस समय तू फिर अपने स्वरूप में आ जावेगी।"

······ऋ० भा० भू० ग्र० प्रा०।

इस प्रकार अनेक रहस्यों को लुप्त करके मिथ्या प्रपञ्च रचाया जिसका न आधार है न अन्त है। इसी प्रकार इन्द्र त्वष्टा आदि बातों को विद्वान् लोग समझ सकते हैं।

१७. अगस्त्य का समुद्र पान—अगस्त्य का सात समुद्रों को एक साथ पी जाना भी एक रोचक प्रसङ्ग है—

अगस्त्य नाम का एक नक्षत्र है। मृगशिरा नक्षत्र का पिछला पैर जो कि पश्चिम में है यह एक नक्षत्र है। इसी प्रकार एक व्याध नामक नक्षत्र है इन दोनों को मिलाते हुए एक सरल रेखा की कल्पना कर लीजिए। यह त्रिभुज का भुज हो जाएगा। व्याध से ९०° नवति अंश पर एक रेखा को दक्षिण में कोटि बना लीजिए। दक्षिण में एक चमकीला तारा है वही अगस्त्य है। उसका यही चिह्न है। अगस्त्य के आस पास इतना चमकीला अन्य कोई नक्षत्र नहीं है। मृगशिरा के पैर (नक्षत्र) से अगस्त्य को रेखा

खोंचिए यह कर्ण बनेगा। यह समकोण त्रिभुज है। सूर्य के मृगशिरा नक्षत्र में आते ही सूर्यप्रकाश के कारण अगस्त्य तारा तिरोहित हो जाता है। वर्षाकाल समाप्त होते ही पुनः अगस्त्य नक्षत्र दीखने लग जाता है। अर्थात् तब वर्षाकाल समाप्त होता है। आलंकारिक भाषा में इसको ऐसा कहा गया है कि अगस्त्य ने ही वर्षा (सात समुद्रों) के पानी को मानो पीकर समाप्त किया। जब वह उदित हुआ तब पानी (वर्षा का) समाप्त होता है। वर्षा ही समाप्त हुई।

इसको लाल बुझक्कड़ों ने कुछ का कुछ बना डाला। कहते हैं कि अगस्त्य ने सात समुद्रों के पानी को पी लिया।

अगस्त्य एक बहुत बड़ा सूर्य है जो हमारे सूर्य से कई गुणा बड़ा है। उससे खरबों दूरी पर रहने वाली है पृथिवी। उस पर रहने वाले समुद्र हैं। उनका उस अगस्त्य तारा का क्या मेल ?

अगस्त्य नामक ऋषि का पृथिवी पर रहने वाले समुद्रों का पीना गप्प है।

इन रहस्यमय विद्याओं को ज्यौतिष विद्या के विना कोई मनुष्य नहीं जान सकता है।

१८. **मतमतान्तरों का आविर्भाव**—ज्योतिष को न जानने से अनेक भ्रान्तियाँ हुईं। पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, तारे, उल्का, धूमकेतु, विद्युत्, मेघ, वर्षा, अन्तरिक्ष, आकाश, प्रकाश, आकर्षण, आदि अनेक पदार्थों को यथावत् नहीं समझकर मनमानी कल्पना करने, सीधे सादे भोले लोगों को मायाजाल में फंसाये रखने आदि में प्रवृत्त हुए। इससे जिसके मन में जैसा आया वैसा मतमतान्तरों को प्रारंभ किया=घड़ लिया। ये जितने मतमतान्तर हैं वे लगभग सारे ही भूगोल खगोल और भूगर्भ विद्या के विरुद्ध अविद्या पर खड़े हैं। इसलिए मतमतान्तर वाले इस विद्या को न जानते, न जानना चाहते, न जानने देते; न मानते, न मानना चाहते और न मानने देते हैं। इस मिथ्या-ज्ञान से ही ये मतमतान्तर पोषित हो रहे हैं, इसी कारण ये ज्यौतिष विद्या से द्वेष रखते हैं। इस शास्त्र के विरुद्ध अपनी कल्पनाओं को सत्य और ज्यौतिष विद्वानों की विद्या की बातों को मिथ्या सिद्ध करने के लिए प्रयत्न करते हैं। ज्यौतिष के आधुनिक विद्वानों की सत्य बातों को झुठलाने के लिए उनकी त्रुटियों की ओर इङ्गित करते रहते हैं। ज्यौतिष का जितना ज्ञान प्रकाश में आता जाता है उतना ही इन मतमतान्तरों के आचार्यों उनके शिष्यों और भक्तों को

भय होने लगता है[1] हर सम्भव प्रयत्न इस बात के लिए करते हैं कि वह असत्य सिद्ध हो जाय। यदि उनके हाथों में सत्ता हो अथवा यदि छलकपट आदि से कर सकें तो उन वैज्ञानिकों को ही दण्डित कर दें और प्राणान्त भी कर दें[2]। उनके ग्रन्थों का बहिष्कार करते हैं और जला भी देते हैं। यदि ऐसा करने पर प्रयोजन सिद्ध न हुआ तो अपने धर्मपुस्तक का अर्थ बदल देते हैं उसकी नई व्याख्या करते हैं, कभी शब्दों को, वाक्यों को भी हटा देते हैं। यदि इससे भी सिद्ध न हुआ तो अपने धर्मपुस्तकों को छिपाकर रखते हैं केवल अपने मूंडे हुए चेलों वा भक्तों को ही दिखाते हैं अन्य किसी को नहीं दिखाते, जैसे जैनी करते हैं।

---

१ निम्न प्रमाण से यह स्पष्ट हो जायेगा—

"ऑली वियर ने लिखा है 'यह अच्छी तरह से मालूम है कि वह पवित्र पत्थर जो मक्का के काबा में उत्तर पूर्व कोने में लगा हुआ है उल्का प्रस्तर है। इसका इतिहास सन् ७०० के पहले आरम्भ हुआ होगा परन्तु मुसलमानों की अविचार मति ने इसके किसी टुकड़े का रासायनिक विश्लेषण नहीं करने दिया है"। सौरपरिवार पृ० ७०० से उद्धृत।

इसी प्रकार वैज्ञानिकों में भी अन्धविश्वास होते हैं जैसा निम्न प्रमाण से सिद्ध होगा "यूरोप में मध्यकालीन समय में जैसे-जैसे विज्ञान की उन्नति होने लगी तैसे-तैसे वैज्ञानिकों का विश्वास बढ़ता गया कि पत्थर (उल्काएं) आकाश से गिर नहीं सकते और इसलिए उन्होंने मान लिया कि वे कभी गिरे भी नहीं थे। जनता की बातों को कि 'आकाश से पत्थर गिरते हुए देखे गए हैं' उन्होंने अन्धविश्वास का परिणाम समझा। इसलिए उनकी हंसी उड़ाया करते थे जिन्होंने लिखा था कि ऐसी घटनाएँ प्रत्यक्ष देखी गई हैं········· १७९० की २४ जुलाई को दक्षिण पश्चिम फ्रांस में फिर पत्थर गिरे। बहुत से पत्थर गिरे। और पृथिवी में धंस गए। इसके साथ की अन्य घटनाएँ (प्रकाश इत्यादि) सैकड़ों मनुष्यों ने देखी। ३०० से भी अधिक लिखी शहादतें जिनमें से कई तो सौगन्ध खाकर सच्ची बतलाई गई थीं पेश की गई और पत्थर के टुकड़े भी पेश किए गए। वैज्ञानिक पत्रिकाओं ने इन को छापा तो अवश्य, परन्तु केवल इसलिए कि वे जनता की मूर्खता और गप्पों पर विश्वास करने की आदत का हंसी उड़ा सकें"। वही ग्रन्थ पृ० ७०२

२. जैसे पूर्वत्र लिख आए हैं कि गेलीलियो तथा ब्रूनो के साथ किया गया था।

३. जैसे भागवत पुराण वाले श्री कृष्ण की १६००० गोपिकाओं का अर्थ नाड़ियां कर रहे हैं कुरान वाले खुदा के तख्त को उठाने वाले फरिश्तों की व्याख्या यह करते हैं कि काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी चार शत्रुओं को खुदा ने दबा रखा है आदि

प्रश्न—यदि मिथ्या बातों को हटा दिया तो आपका प्रयोजन सिद्ध हो ही गया। आप यही चाहते हैं कि अविद्या, मूर्खता, अन्धविश्वास, पाषण्ड दूर हों, यह आपकी सफलता है।'

सिद्धान्ती—हमारा प्रयोजन यही है कि लोग मिथ्या बातों को छोड़ देवें। सत्य को ग्रहण करें। हमारा उद्देश्य सिद्ध होता प्रतीत होता है किन्तु यह परिवर्तन भूगोल, खगोल को सत्य सिद्ध करने के लिए (अर्थात् सत्य मानने के रूप में) नहीं अपितु वैज्ञानिकों को ही गलत बतलाते हुए अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए होता है। तथापि उनके अनुयायियों को इस बात का पता चलने नहीं देते। उन्हीं पाषण्ड बातों में उनको फंसाए रखते हैं। जब तक मतमतान्तर रहेंगे तब तक विद्यावृद्धि, सत्य की प्राप्ति, मानवसमाज की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति कभी भी नहीं हो सकती। परस्पर मित्रता और समाज का ऐक्य नहीं हो सकता। विगठन का यह एक प्रबल कारण है। वैज्ञानिक वा तत्त्ववेत्ता वे होते हैं जो लक्षणों द्वारा तत्त्वों का निश्चय करते हैं। ठीक इस के विरुद्ध मतवादी वे होते हैं जो अपनी मानी हुई बातों को सत्य कहने कहाने के लिए ही प्रयास करते हैं। आप्तप्रमाण भी होता है किन्तु आप्तप्रमाण ऐसा नहीं होता जो युक्ति द्वारा समझा समझाया नहीं जा सकता हो।

मतमतान्तर रूपी घोर तमस् मानव समाज के लिए अविद्या, असत्य, समस्तक्लेश, बाधा वा समस्याओं का बहुत बड़ा कारण है[1]। इस तम को ज्यौतिष रूपी सत्य विद्या से पर्याप्त मात्रा में विध्वंस किया जा सकता है[2]। ज्योतिषा बाधते तमः।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने विश्व में ओतप्रोत गहन तमस् को निर्भ्रान्त रूप से समझा और उसको दूर करने और प्रकाश को प्राप्त करने के लिए अन्तिम श्वास तक घोर संघर्ष किया। मार्ग में आने वाले समस्याओं वा प्रलोभनों में न फंसते हुए सामना किया। इस में उनको सफलता मिली। उन्होंने उस सत्यविद्या केप्रकाश के लिए आवश्यक समस्त सर्वाङ्गीण उपायों का प्रतिपादन अपने जीवन में किया। उसका मूर्त रूप सत्यार्थप्रकाश नामक अमर ग्रन्थ है। यह शाश्वत सत्य को निर्भ्रान्तरूप में बतलाने वाली अनुपम कृति है। मानव के सर्वाङ्गीण विकास, पूर्ण वा शाश्वत शान्ति, सुख के

१. सहस्रों अन्धविश्वासों का यही गढ़ है।
२. पाषण्डों का गढ़ भी इसी से ध्वस्त हो जायगा।

लिए प्रोक्त अनेक उपायों में से एक उपाय के रूप में मेरा यह अल्प प्रयास है।

१९. समुद्र यात्रा संभव नहीं—इस विद्या के विना समुद्र के विस्तार आदि का ज्ञान नहीं हो सकता। समाज वा देशोन्नति की कारणभूत समुद्र यात्रा नहीं हो सकती। देश विदेशों से समुद्र यात्रा के विना सम्बन्ध नहीं हो सकता। ज्यौतिष शास्त्र समुद्र यात्रा का आत्मा है। आज भूगोलस्थ देशों की अनेक समस्याओं का समाधान समुद्र यात्रा से हो रहा है। ज्यौतिष के विना इससे वञ्चित रहना पड़ेगा।

२०. वायुयान वा विद्याऽनुसन्धान—इसी प्रकार वायुयानों द्वारा गमनागमन, यातायात, आदि अनेक विषयों का अनुसन्धान हो रहा है। यह भी ज्यौतिष के विना हम से दूर रहेगा। इससे हम को वञ्चित रहना होगा।

अथ चतुर्थसमुल्लासः

अथ फलितमिथ्यात्वं व्याख्यास्यामः ।

ज्योतिर्विदाभास—ज्योतिश्शास्त्र सत्य है वा असत्य ?

ज्यौतिषी—ज्यौतिष एक विद्या है। इसलिए सत्य है। मिथ्या नहीं है।

ज्यो० आभास—ज्यौतिष को कुछ लोग सत्य कहते हैं कुछ लोग असत्य। कौन सी बात प्रामाणिक है ?

ज्यौ०—ज्यौतिष की सत्यता असत्यता, पर विचार करने से पूर्व ज्यौतिष शब्द का अर्थ जानना चाहिए। तत्पश्चात् सत्यता, असत्यता का ज्ञान हो जायगा। 'द्युत दीप्तौ' धातु से द्युतेरिसिन्नादेश्च जः इस औणादिक सूत्र से इसिन् प्रत्यय तथा 'द' को 'ज' का आदेश होकर ज्योतिष् शब्द निष्पन्न होता है। ज्योतींष्यधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शास्त्रं वा ज्यौतिषं शास्त्रम्। दीप्ति वा दीप्तिमान् पदार्थ ज्योतिः कहलाता है। इस ब्रह्माण्ड वा विश्व में समस्त पिण्ड ज्योतियां हैं चाहे स्वतः प्रकाशित हों अथवा परतः प्रकाशित। ज्योतियों के विषय में जो ग्रन्थ वा शास्त्र बनाया जाय वह ज्यौतिष है। इसी को भूगोल, खगोल और भूगर्भविद्या भी कहा जाता है इसलिए यह सत्य है।

कोई भी बुद्धिमान् पठित और विद्वान् ज्यौतिष को असत्य नहीं कह सकता। यदि कहेगा भी तो सिद्ध नहीं कर सकता। जो भी ज्यौतिष को असत्य कहते हैं उनका अभिप्राय है कि ज्यौतिष के नाम से जो विना सिर पैर के कल्पित प्रत्यक्षादि प्रमाणों के विरुद्ध अन्धकार युक्त बातें हैं वे सब असत्य हैं।

ज्यो० आ०—अच्छा अब बताइए फलित ज्यौतिष सत्य है वा असत्य ?

ज्यौ०—फलित ज्यौतिष से आपका क्या अभिप्राय है ?

ज्यो० आ०—जातक, मुहूर्त, राशि, ग्रह, नक्षत्रादि का जो फल-विधान है, इसी को फलित ज्यौतिष कहते हैं।

ज्यौ०—यह सब मिथ्या है। यह ज्यौतिष ही नहीं है।

ज्यो० आ०—गणित क्यों किया जाता है ? और गणित करने से जो अन्त में निकलता है उसको फल नहीं तो और क्या कहते हैं ? दो और दो मिलकर चार होते हैं यही फल है। यह सत्य क्यों नहीं ? यह सारा फल सूर्य, चन्द्र आदि के गणित द्वारा ही होता है ?

ज्यौ०—दो और दो मिल कर चार होते हैं यह फल है। यह सत्य है। यह गणित है। विद्या है। सत्य है। जो आपने फल विधान का नाम लिया है उसमें इसमें समता नहीं है। अपितु विषमता है। न यह गणित सिद्ध है ना ही गणित का फलित (सार) है। न यह सत्य ही है। दो और दो मिल कर चार होता है भारत में हो चाहे जर्मन में, अमेरिका में हो चाहे रूस में, आज हो चाहे कल। इससे भिन्न (दो और दो मिलकर चार से भिन्न) तीन, दो, एक, शून्य, पांच, और छः आदि सब अशुद्ध हैं। सब देश, सब काल, सब मनुष्य, सब परिस्थितियों में चार ही रहता है। न न्यून रहता है ना ही अधिक। किन्तु आपने जो फलित की बात की वह इस से उलटी है। आज तक ऐसा सिद्धान्त नहीं बना, न आगे बनने की सम्भावना है कि "मेष राशि का एक ही फल सब देश, काल, परिस्थितियों में एक सा ही है भिन्न-भिन्न नहीं"। जो आपने गणित सिद्ध कहा यह शत प्रतिशत असत्य है। जिसको आपने फलित कहा उसका और गणित का दूर से भी सम्बन्ध नहीं है। इस को फलित कहने में कोई प्रमाण नहीं है। यदि आप इसको फलित कहेंगे तो हम आपसे पूछते हैं बताइए यह किस का फलित है ?

ज्यो० आ०—दो और दो को मिलाने से चार होते हैं जो विश्वसनीय है। इसी प्रकार गणित से निष्पन्न फलित भी विश्वसनीय है।

ज्यौ०—ग्रह, नक्षत्रों के गणित से उनकी गति वा स्थिति का पता चलता है। गणित तो ग्रह आदि की स्थिति गति का करते हो तब उसका फल मनुष्यों का भाग्य कैसे हुआ ? आपका कथन ऐसा ही है कि बीज तो नीम का बोया उसका जो फल लगा वह आम है। हां मनुष्यों के कर्मों का गणित करके कर्मफल बतलाइए तो मान लेंगे। जिसका गणित किया जाता है उसीका फल होता है। भारत के आय व्ययादि का गणित किया जाय और उससे जर्मन के आयव्यय का पता चल जाय क्या सम्भव है ? हम सीखें अंग्रेजी भाषा और आजाय संस्कृत भाषा ? वैद्य देवदत्त के रोग का निदान करे और पता चल जाय यज्ञदत्त के रोग का। गिनो आप अपनी जेब के पैसों को और पता चले मेरी जेब के पैसों का यह कौन सा ज्यौतिष है।

ज्यो० आ०—यदि असत्य है तो ज्यौतिषी मासों, वर्षों पूर्व ही यह

कैसे बतलाते हैं कि अमुक मास, दिन में सूर्य ग्रहण वा चन्द्रग्रहण होगा ? फिर यह सत्य क्यों होता है ?

ज्यौ०—सूर्य, चन्द्र ग्रहणादि का ज्ञान गणित से होता है। इसको आस्तिक भी कर सकता है नास्तिक भी। आज से आगे ग्रहण कब होगा और कब हुआ इन सबको गणित से किया जाता है। किन्तु सूर्य चन्द्र को राहु नामक राक्षस निगल जाता है, राहु के द्वारा सूर्य चन्द्र के छू जाने से सारी पृथिवी के लोग अशुद्ध हो जाते हैं, उस समय दान करने से दान के पुण्य फल से राहु उनको छोड़ देता है, इत्यादि बातें कल्पित हैं इनका न कभी गणित से सम्बन्ध था न है और न होगा।

ज्यो० आ०—यह एक विज्ञान है। इसी के आधर पर आज लोग चन्द्र पर पहुँच रहे हैं। अब यह प्रत्यक्ष है। सारा विश्व इसको जानता है। अब आप कहते हैं कि सत्य नहीं, विश्वसनीय नहीं, यह कैसे सम्भव हैं ? आपकी बातों को सत्य कैसे मानें ?

ज्यौ०—जिस के आधार पर चन्द्र आदि लोकों पर मनुष्य पहुँच रहे हैं वह विज्ञान है। वही विज्ञान है। उसमें सब एकमत हैं। वे सब एकमत होकर यह स्वीकार करते हैं कि ग्रह सब जड़ हैं। ग्रह नौ नहीं हैं अगणित हैं। नक्षत्र करोड़ों हैं। पृथिवी ग्रह है और गोल है। सूर्य चन्द्र ग्रह नहीं हैं। परन्तु आप ठीक इसके विरुद्ध मानते हैं। ग्रहों को चेतन मानते हैं[1]। उनके बीजमन्त्र नामक वाममार्गियों के कल्पित, अर्थहीन शब्दों का घण्टों जप करते हैं। ग्रहों को नौ ही मानते हैं। पृथिवी को ग्रह नहीं मानते। सूर्य, चन्द्र को ग्रह मानते हैं नक्षत्रों को २७ ही मानते हैं। पृथिवी को चपटी और सर्प के शिर पर ठहरी वा स्थिर मानते हैं। आप इनका तालमेल कैसे बैठाएंगे ?[2] वैज्ञानिक उत्तर में हैं तो आप दक्षिण में हैं। वैज्ञानिक सूर्य को ग्रहों का मध्य बिन्दु मानते हैं किन्तु आप पृथिवी को मध्य बिन्दु मानते हैं।

१. श्री पं० सीताराम जी झा भारतीय ज्योतिष के माने हुए विद्वान् काशी में हैं। गत सिंहस्थ मेले में उज्जैन आए हुए थे। श्री स्वामी सत्यपति जी और मैं दोनों ज्यौतिष पर वार्तालाप करने गए हुए थे। प्रसङ्गवश स्वामी जी ने उनसे कहा था कि "सूर्य तो जड़ है जी ?" उसके उत्तर में उन्होंने क्षुब्ध होकर कहा कि "क्या सूर्य जड़ है ?" उनका आशय यह था कि सूर्य जड़ नहीं है।

२. इसका विशेष विस्तार आगे के समुल्लासों में होगा। ग्रहों के विषय में नवग्रह समुल्लास के प्रसङ्ग में लिखा जायगा।

वैज्ञानिक पृथिवी को चल मानते हैं जब कि आप स्थिर मानते हैं। आप पृथिवी को ४९ उनंचास कोटि योजन से भी बड़ी मानते हैं जब कि वैज्ञानिक ७९२६ मील (लगभग १५८५ योजन) सिद्ध कर रहे हैं, वैज्ञानिक चन्द्र को एक भूमि सिद्ध कर चुके हैं जब कि आप उसको (तालाब जैसा) मानते हैं, वैज्ञानिक इसे जीवों के रहने के अयोग्य सिद्ध कर चुके हैं जब कि आप अभी भी उसे पितरों का अनाथालय बतला कर प्रतिवर्ष उनके नाम ले लेकर पराया माल पेट में पहुँचाते हैं। क्या यही विज्ञान है ? वैज्ञानिकों ने इस विद्या से मनुष्यों के लिए अकल्पनीय जगत् को प्रत्यक्ष करा दिया है। असंभव समझी जाने वाली बातों को संभव करके दिखा रहे हैं किन्तु आप संभव को असंभव मान रहे हैं और कह रहे हैं कि "चन्द्रमा पर मानव जा ही नहीं सकते"। वे लोक लोकान्तरों की साक्षात् यात्रा कर रहे हैं किन्तु आप प्रातः उठते ही पञ्चाङ्ग बगल में दबाकर जातक वा शनि, राहु, केतु का रट लगाते हुए घूम-घूम कर पैसे बटोर कर घर लौट आते हैं। उनका "विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानम्" है आपका 'विरुद्धं ज्ञानं विज्ञानम्" है। है तो दोनों ही विज्ञान ! रही मेरी बात कैसे मानने को। मेरी बातें आप क्यों मानेंगे। जब आप वैज्ञानिकों की बात मानने के लिए उद्यत नहीं हैं तो मेरी बात कैसे मानेंगे ? आप तो ब्रह्म (=वेद) की बात भी नहीं मानेंगे। मानेंगे तो पोपों के रचे पुराणों को ही। यदि मानेंगे तो आपको "बाल समय रवि भक्ष लियो, तब तीन लोक भयो अन्धियारो।" इत्यादि अपनी प्रिय बातों को छोड़ना पड़ेगा। इसलिए आप नहीं मान सकते। आप चाहे मानें चाहे न मानें बात है प्रामाणिक। आपके मानने न मानने से विद्या का कुछ बनने बिगड़ने वाला नहीं।

ज्यो० आ०—कभी-कभी ये सत्य क्यों निकलते हैं ?

ज्यौ०—कभी सत्य निकलना साध्य कोटि में है। यह बात अभी सिद्ध नहीं हुई, साध्य है। सिद्ध होने पर मानी जायेगी। सत्य निकलते हैं वा नहीं यदि निकलते हैं तो किस प्रकार और किस कारण से ? यह बड़े अनुभवी विद्वानों के समझने का विषय है। इनकी कुछ युक्तियां होती हैं जिनसे अनजान लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करते है। उनका नाम ज्यौतिष रख देते हैं। इन सबकी व्याख्या सोदाहरण क्रमशः आगे आयेगी। इनकी बातों की भी परीक्षा हो जायेगी।

आप के कथनानुसार यही सिद्ध हो रहा है कि "सदा सत्य नहीं निकलते हैं किन्तु कभी-कभी सत्य निकलते हैं।" जो ज्यौतिष को नहीं

जानता उसकी भी बातें कभी-कभी सत्य निकलती हैं। कभी-कभी सत्य क्यों निकलती हैं इसका कारण ऊपर बतला दिया। यह भी घुणाक्षर न्याय से होता है।

यदि कभी-कभी सत्य होने मात्र से असत्य बातों को भी सत्य मानना चाहें तो हम आपसे पूछते हैं कि क्या कोई व्यक्ति सर्वदा असत्य बोलता है? जीवन में एक बार भी सत्य नहीं बोलता? ऐसा संभव नहीं कि नहीं बोलता। तब संसार के सब मनुष्यों की बात सत्य माननी पड़ेगी। भारत की प्रधान मन्त्री पदासीन इन्दिरा गान्धी फलित को सत्य नहीं मानती हैं। इस का प्रमाण इसी समुल्लास में आगे प्रस्तुत करूंगा। अब हम आप से पूछना चाहते हैं कि इन बातों को सत्य स्वीकार करेंगे कि नहीं? यदि करेंगे तो आप की मान्यता धराशायी हुई। यदि नहीं मानेंगे तो कभी-कभी सत्य होने वाली फलित वालों की बातों को सत्य मानते हो अन्यों की बात को सत्य नहीं मानते हो यह आप का पक्षपात है अथवा अज्ञान है। यह हमारा प्रश्न आप के लिए उभयथापाशा रज्जू है।

आप की बात तो तब है जब कि सदा सर्वथा सत्य निकलते। उन बातों में भी अनेकार्थता, सन्दिग्धता, परस्पर विरोध न हो। उसके (फलित आदेश के) विषय में समस्त देशों के समस्त व्यक्ति एक ही प्रकार की बात बतला देवें।

सर्वप्रथम बात यह है कि इस विषय का आज ऐसा कोई ग्रन्थ "जो विज्ञान वा तर्क के आधार पर सत्य सिद्ध किया जा सके और जो पदार्थ विज्ञान के समान सबको मान्य हो और वदतोव्याघात और पूर्वापर प्रसङ्ग के अविरुद्ध हो" नहीं है। तब यह कहना कि "कभी-कभी यह सत्य निकलता है" क्या मूल्य रखता है?

ज्यो० आ०—कुछ-कुछ सत्य निकलता है। नितान्त असत्य तो नहीं। जो भी गलत निकलता है उसका कारण गणित को भूल है। गणित में भूल होने से फल में भूल होती है। इसलिए यह सत्य है।

ज्यो०—नितान्त असत्य तो कोई नहीं बोलता। सत्यासत्यमिश्रित तो लाखों लोग बोलते हैं। जो नितान्त सत्य होता है वही "शास्त्र" माना जाता है। यदि आपका यह हेतु है कि रुपये में आना भर सत्य निकलता है तो आप ही के कथनानुसार १५ आना असत्य ही हुआ। यदि एक आना सत्य होने पर सत्य है तो १५ आना असत्य होने पर १५ गुना असत्य हुआ। इसे क्यों नहीं सोचते, मानते और कहते?

जितना सत्य है उसके भी कई कारण होते हैं जिनको भोले लोग नहीं समझ सकते।

अनपढ़ लोग भी कुछ-कुछ सत्य बोलते हैं तो क्या वे ज्योतिषी हैं? संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है न था और न होगा कि जीवन में जिसने एक बार भी सत्य नहीं बोला हो। क्या उसकी एक सत्य बात के कारण शेष मिथ्या बातें भी सत्य के समान ही मानी जायेंगी? इसे कोई भी नहीं मानेगा। इसी प्रकार फलित को नहीं मानना चाहिए।

जो असत्य निकला उसका कारण गणित में भूल का होना बालबुद्धियों के लिए मानने योग्य है। विचारशीलों के लिए नहीं। पहले यह सिद्ध हो जाय कि फलविधायक ग्रन्थ सत्य हैं तो आपकी बात सिद्ध हो जाय। आज तक कोई भी नामधारी ज्योतिषी यह सिद्ध नहीं कर सका है नाहीं सिद्ध कर सकेगा कि ये सारे ग्रन्थ सत्य हैं वा प्रामाणिक हैं। अनुपद यह सिद्ध किया जायगा कि फलित के ग्रन्थ सब अल्पबुद्धिप्रकल्पित और जाल ग्रन्थ हैं। इनमें सब कपोलकल्पित परस्पर विरुद्ध और सृष्टिक्रम तथा प्रत्यक्ष के विरुद्ध बातें हैं।

भविष्य में होने वाली बातों का कैसे पता चलेगा कि अमुक बात सत्य है और अमुक असत्य? मान लीजिए कि किसी ने किसी के विषय में यह कह दिया हो कि "आपको विद्या आयेगी ही नहीं। धनी बनने का योग नहीं है। व्यापार न करिए नौकरी करते हुए जीवें" तब बतलाइए जिसके विषय में यह भविष्य है उसकी मानसिक स्थिति क्या होगी? वह उत्साह-हीन, भाग्यवादी हो जायगा कि नहीं?

ज्यो० आ०—भाग्यवादी न होकर पुरुषार्थ करता जाय पुरुषार्थ करने पर यदि विद्या नहीं आएगी तो बात सत्य हो जायगी। यदि आएगी तो लाभ ही हुआ।

ज्यो०—अ दोनों हाथों में लड्डू हैं। यह समाधान नहीं। प्रश्न है कि "क्या सर्वसाधा ज ऐसा करता है अथवा कर सकता है?" कोई अपने भविष्य की निराशाजनक बात सुनकर फिर भी आशावादी बनकर प्रयत्न कर सकता हैं क्या? यदि ऐसा कर सकता तो अपना भविष्य जानना ही क्यों चाहता? फलित को असत्य मानने वाला तो अपना भविष्य फलित से जानना ही नहीं चाहेगा। यदि जानने के लिए चेष्टा करता है तो वह सत्य अवश्य मानता ही है। सत्य होने के संस्कार मन में बने रहते हैं।

सर्वत्र विघ्न रहते हैं और आते हैं। जब कोई विघ्न आयेगा तब उसके मन पर क्या व्यतीत होगा ? असाधारण मनोबल वाले मनुष्य के मन में विघ्नों के समय चित्र विचित्र बातें घूमने लग जाती हैं। क्या वह यह नहीं सोचता होगा कि "मेरे भाग्य में विद्या और धन लिखे ही नहीं" और प्रयत्न करना नहीं छोड़ेगा ? इसी कल्पित फलित ने मनुष्य को भाग्यवादी निराशावादी और अकर्मण्य बना दिया।

किस-किस भविष्य को सत्य मानें और किस-किस को मिथ्या ? इसका नाप, तौल भी है क्या ? आपके विचारानुसार कितने लोग फलित का गहरा ज्ञान रखते होंगे ? क्या वे व्यक्ति समाज के मानसिक स्तर को दृष्टि में रखते हुए ऐसा प्रयास कर सकते हैं ? मेरा तो ऐसा अनुमान है कि फलित के व्यापारियों में से अठानवें ९८% प्रतिशत वे ही व्यक्ति होंगे जो, व्यक्ति तथा समाज की स्थिति, देश वा धर्म उत्थान और पतन को समझाने पर भी नहीं समझ सकते। तब समाज का मानसिक, नैतिक स्तर क्या होगा ?

यदि आपके कथनानुसार भाग्य को न मान कर पुरुषार्थ करते जाना ही अच्छा है तो मैं आप से प्रश्न करूंगा कि "तब अपने भविष्य को जानने का क्या अर्थ होगा" ?

ज्यो० आ०—हमारे देश की बात रहने दीजिए। पहले अमेरिका की बात लीजिए। आज अमेरिका विज्ञान में सबसे अधिक उन्नत देश है। उस से सारा संसार चकित है। उस देश में सर्वाधिक प्रचार फलित का है वहां। के जनमानस में उसने स्थाई प्रभाव जमा रखा है। देखिए "अमेरिका की दुकानें राशिचक्रीय माल से ठसाठस भरी हुई हैं। मदिरा पात्रों से लेकर कागज के नेपकीन तक राशि हिसाब से खरीदे जा सकते हैं। बच्चों के कपड़ों से लेकर लिखने के कागज तक पर राशिचिह्न छुए हुए हैं। यहां तक कि सौन्दर्य गृहों में केश तक राशि चिह्नों के अनुसार संवारे जाते हैं। इत्रादि की शीशियों तक पर राशिचिह्न अंकित रहते हैं ··· टेलिविजन पर दिखाये जाने वाले एक सिंडीकेटेड प्रोग्राम में भविष्यवाणियां की जाती हैं सार्वजनिक उत्सवों, समारोहों में तन्त्रविद्याविशारद अपने चमत्कार दिखाते रहते हैं। पोपगायकों तक में ज्यौतिष की घुसपैठ हो गई है। कैलिफोर्निया के "द फूल" नामक एक राक गायक दल ने कई राशिचक्रीय गीत रिकार्ड कराए हैं। रंगमंच भी ज्यौतिष के प्रभाव से अछूता नहीं रहा है। 'वाडवे' के एक अत्यधिक सफल एवं चचिच (चर्चित) नाटक 'हेयर' का एक पात्र ज्योतिषशास्त्रीय गीत गाता हुआ मंच पर उतरता है ··· और तो और

ज्यौतिषशास्त्र शैक्षणिक क्षेत्र में भी पहुँच गया है और विश्वविद्यालयों में उसका पठन-पाठन शुरु हो चुका है। जब 'युनिवर्सिटी आफ साऊथ केलिफोर्निया' में जादू टोना का ऐच्छिक पाठ्यक्रम शुरु किया गया तो २४७ छात्रों ने तुरन्त अपना नाम लिखवा दिया··· इस समय अमेरिका में लगभग १०००० दस हजार व्यक्ति ज्यौतिष का व्यवसाय अपनाये हुए हैं तथा एक लाख पचत्तर हजार १७५००० पार्ट टाइम ज्यौतिषी हैं। अमेरिका में अलग-अलग राशियों के वार्षिक भविष्यफल पुस्तकों के रूप में प्रकाशित होते हैं और बेहिसाब बिकते हैं।

लेखक उपकार चोपड़ा—साप्ताहिक हिन्दुस्तान २८ वैशाख २०३२

"दिनांक ११-२-६५ की रात को ६ बजकर २० मिनट पर "वायस् आफ अमेरिका" से प्रसारित एक प्रश्न के उत्तर से पता चला कि संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग ३०००००० तीस लाख व्यक्ति फलित ज्यौतिष पर विश्वास रखते हैं और वहां लगभग २५००० फलितज्ञ हैं"

फलित के अन्धविश्वास पृ० २०

यदि यह असत्य होता तो इस (फलित) को क्या इतने लोग मानते ? शैक्षणिक क्षेत्र में इसकी पहुँच हो जाती ?

हमारे भारत में भी देखिए प्रतिवर्ष लगभग तीन सौ पंचाङ्ग निकलते हैं। हजारों ज्यौतिषी फलित के ऊपर ही अपना जीवन लगाए हुए हैं।

कारवान् (फरवरी १९७५) के अनुसार केरल प्रशासन हस्तरेखाओं के अध्ययन एवं अनुसंधान कार्य को प्रोत्साहन दे रहा है। जिससे कि रोगों के निदान में सहायता मिले। सार्वदेशिक साप्ताहिक ९ मार्च १९७५ से

ज्यौ०—तथाकथित फलित के सत्य होने में आपने जो हेतु दिए हैं ये हेत्वाभास हैं। किसी सिद्धान्त की सत्यता, असत्यता का निश्चय उसके मानने वाले बहुमत वा अल्पमत के लोगों के आधार पर नहीं होता अपितु हेतु पर निश्चित होता है।

संसार में किसी देश में देख लीजिए देश की उन्नति-अवनति, समाज का उत्थान, पतन, देश का गौरवागौरव-विद्याविज्ञान की उन्नति आदि बातों को जितने लोग समझते हैं उससे कई गुना अधिक न समझने वाले होंगे। अपने भारत को ही लीजिए ५८ करोड़ जनता में देश की, समाज की, उन्नति देश के गौरव को कितने लोग समझते हैं, इसकी परीक्षा कर लीजिए। जहां सदाचार, धर्म, आत्मोन्नति, योग, मोक्ष सम्बन्धी सत्सङ्ग होगा वहां एक दो

सहस्र व्यक्ति कठिनाई से आयेंगे। यदि वहां एक राजनैतिक नेता का व्याख्यान धुवांदार भाषण होगा तो दस पन्द्रह सहस्र मनुष्य आ जायेंगे स्यात् वहीं एक सिनेमा का सितारा आजावे तो लाखों की संख्या में लोगों की भीड़ हो जायगी। हो सकता है कुचले जाकर एक दो मर भी जायें। अब सोचिए सिनेमा का सितारा, नेता वा अध्यात्मवेत्ता इन तीनों में मानव समाज की उन्नति में कौन सर्वाधिक उपयोगी है? विज्ञान में अनुसन्धान करने वाले कितने हैं और विज्ञान से अनभिज्ञ कितने? मेरा जहां तक अनुमान है आज समस्त भारत में उपन्यास, जासूसी उपन्यास, यौन सम्बन्धी पुस्तक, वा लेख और चित्र वाली पत्रपत्रिकाएं जितनी छपती वा बिकती होंगी उतनी स्यात् धर्म, समाज, नीति, विज्ञान, इतिहासादि पुस्तकें नहीं छपती होंगी न बिकती होंगी। क्या इतने से उपन्यासादि पुस्तकें विद्या, विज्ञान की पुस्तकों की अपेक्षा मनुष्य जीवन की उन्नति में अधिक सहायक हैं? कदापि नहीं।

पृथिवी गोल है यह आज विद्यालय में पठित प्रत्येक बालक तक जानता है किन्तु इस सत्य को मानने वालों की अपेक्षा न मानने वालों की संख्या अत्यधिक है क्या इससे पृथिवी चपटी मानी जायगी?

अब रही फलित के विद्यालयादि शैक्षणिक क्षेत्र में प्रविष्ट होने की बात। कई शताब्दियों तक ईसाई लोग स्त्रियों में जीवात्मा को नहीं मानते थे। रोगों की चिकित्सा करना दण्डनीय माना जाता रहा है। क्या यह आज ईसाइयों को मान्य है?

आज यदि तथाकथित फलित शिक्षा क्षेत्र में प्रविष्ट हो गया है तो क्या इतने मात्र से सत्य सिद्ध हुआ? कदापि नहीं।

आपकी बात को मान कर देखें तब भी आपका अभिप्राय सिद्ध नहीं होता देखिए। "विज्ञान कोष १९६४ के अनुसार संयुक्त राज्य की जनसंख्या १६३९००००० सोलह करोड़ ३९ लाख है[१]। ···इससे सिद्ध होता है कि वहां १६ करोड़ ९ लाख व्यक्तियों का फलित पर कोई विश्वास नहीं है। इसका मतलब यह कि यदि अमेरिका में फलित ज्यौतिष का आदर करने वाले तीन हैं तो उस पर उपेक्षा करने वाले एक सौ साठ हैं और यही तो वहां की वैज्ञानिक प्रगति का ठोस प्रमाण है। अन्धविश्वासियों की संख्या के आधार पर आसानी से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि किस देश में वैज्ञानिक प्रगति हुई है।"

फ० अ० वि० पृष्ठ २० से

१. संभव है यह जनसंख्या अब २० करोड़ तक पहुँच गई होगी।

ज्यो० आ०—बड़े-बड़े लोग फलित को सत्य मानते हैं तो यह असत्य कैसे हो सकता है? यदि असत्य होता तो बड़े-बड़े धनी, राजनैतिक नेता, विज्ञान पढ़े हुए और ज्यौतिष के असाधारण विद्वान्, वैज्ञानिक जैसा न्यूटन आदि भी इस पर क्यों विश्वास करते और मानते?

ज्यौ०—बड़े का क्या लक्षण है?

ज्यो० आ०—जिसको लोग मानते हैं। जिन्होंने बड़े-बड़े कार्य किए हों।

ज्यौ०—लोग रावण को भी मानते हैं और औरंगजेब को भी। बड़े कार्य का क्या अर्थ है? यहां पुनः वैसा ही प्रश्न उपस्थित हुआ। रावणादि ने कोई साधारण काम किए थे क्या? यह कोई सिद्धान्त नहीं बनता कि बड़े लोग जिसको मानें वह सत्य है। बड़े तो कई प्रकार के होते हैं। आयु में, धन में, शरीर में, बुद्धि में, विद्या में और अनुभव आदि में। दो धनवानों की तुलना करनी चाहिए तथा दो बलवानों की। ऐसा नहीं कि एक धनवान् और एक बलवान् की करने लग जायं। जिनको आपने बड़े-बड़े कहा है वे अपने-अपने विषय में बड़े-बड़े होंगे इसमें कोई सन्देह नहीं। प्रश्न प्रस्तुत विषय का है। आप जिनको बड़े कहते हैं क्या वे तथाकथित फलित की सारासारता को जानने में बड़े हैं? तो आप को उत्तर देना कठिन हो जायगा और उलझन में पड़ जायेंगे। क्या धनवान् वा राजनैतिक नेता, विज्ञानवेत्ता और वैज्ञानिक सारे लोग इसकी सारासारता को जानते हैं? क्या वे इस विषय के विद्वान् थे, क्या उन्होंने इस विषय में अध्ययन वा अनुसन्धान किया था?

राजनीति में बडा होने से क्या विज्ञान में भी बड़ा माना जायगा? क्या जो धनवान् है वह चिकित्सा में भी बड़ा है? नहीं कदापि नहीं। तो राजनीति के नेताओं वा धनवानों के मानने मात्र से जब कि इसकी सत्यता साध्यकोटि में ही है; सत्य कैसे सिद्ध हुआ?

रही वैज्ञानिकों की बात। क्या एक वैज्ञानिक कर्मफलव्यवस्था में भी विद्वान् माना जायगा जबतक उसका अध्ययन न करे? नहीं। यह एक दो उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा ···। ऐसा सुनते हैं कि जगद् विख्यात वैज्ञानिक न्यूटन ने दो बिल्लियों को पाल रखा था। उनके रहने के लिए एक घर बनाया। उसके दो द्वार बनाए गए। एक बड़ा दूसरा छोटा। इसलिए कि बड़ी बिल्ली के लिए बड़ा द्वार और छोटी के लिए छोटा।

सामान्य लोग भी यह समझ सकते हैं कि न्यूटन को यह बात समझ में नहीं आई कि एक ही बड़े द्वार से काम चल सकता था। ऐसी भूल इसलिए हुई होगी कि मनुष्य अल्पज्ञ होने से सब बातों को नहीं जान सकता। सर्वज्ञ कोई नहीं। जिस विषय में जिसने प्रयत्न किया वही उस विषय को जान सकता है अन्य नहीं और उसी विषय में जान सकता है दूसरे में नहीं।

एक और दृष्टान्त लीजिए:—न्यूटन ने गति को सिद्ध करने के लिए एक ईथर नामक स्थिर पदार्थ को मान लिया। उनके इस सिद्धान्त के सामने बड़े-बड़े वैज्ञानिक स्तब्ध रहे। इसको प्रयोगों से सिद्ध नहीं किया जा सकता था किन्तु किसी में सामर्थ्य नहीं कि इतने बड़े वैज्ञानिक की इस भूल को जानते और जान भी गए तो भी वे न्यूटन की भूल को पकड़कर दिखलाने का साहस करते। किन्तु विज्ञान में अन्वेषण हुआ। न्यूटन का कहा हुआ, वर्षों तक अनेक वैज्ञानिकों द्वारा सिर माथे माना हुआ ईथर नामक पदार्थ खरगोश के सींग के समान कल्पित और असत्य सिद्ध हुआ। विज्ञानवेत्ताओं से आज यह छिपा हुआ नहीं है।

न्यूटन का फलित ज्योतिष में आस्था का होना फलित को सत्य सिद्ध करने में हेतु नहीं बन सकता। फलित का सत्य होना अभी साध्य है। सिद्ध नहीं।

ज्यो० आ०—गौरी जातक, काल जातक, पाराशरी, जैमिनिसूत्र, भृगु संहिता, बृहत्संहिता, मुहूर्तचिंतामणि जैसे ग्रन्थ मिथ्या कैसे हो सकते हैं?

ज्यौ०—जबतक आप सत्य होने में हेतु नहीं देते तब तक सिद्ध नहीं हो सकता। हेत्वाभासों से साध्य सिद्ध नहीं हो सकता। ग्रन्थ के सत्यासत्य होने में युक्ति और प्रमाण चाहिए। ग्रन्थ के प्राचीन होने मात्र से, बहुत लोगों के मान्य होने से, विद्वान् का लिखा होने से प्रामाणिक नहीं। कुछ पुराण भी सहस्रों वर्ष पुराने हैं जिनमें सूर्य, चन्द्र आदि को मनुष्य के समान मान लिया। पृथिवी को चपटी मान लिया। तब क्या पुराण सत्य माने जायेंगे? अरबों व्यक्ति मुसलमान, ईसाई, पौराणिक पृथिवी को चपटी मानते हैं। क्या आप इसको सत्य मानने को उद्यत होंगे? क्या एक विज्ञान के विद्वान् का लिखा समाजोन्नति विषयक लेख प्रामाणिक माना जायगा? कभी नहीं।

यदि आप प्राचीन वा बहुत लोगों के मान्य होने से ही किसी ग्रन्थ को सत्य मानते हों तो वेद को सत्य क्यों नहीं मानते जिसमें फलित ज्यौतिष का नाम नहीं अपितु उसके विरुद्ध सिद्धान्त हैं। यदि विद्वानों के लेख को

प्रमाण मानते हो तो छः शास्त्रों, दस उपनिषदों को सत्य क्यों नहीं मानते? जिनमें फलित का नाम नहीं और जिनके मानने से फलित की असारता करतलामलकवत् दीख जाती है।

इन ग्रन्थों को इसलिए असत्य कहा जा रहा है कि ये ग्रन्थ देवी, देवता, ऋषि, महर्षि, और महान् विद्वानों के द्वारा रचे गए बतलाये जाते हैं। हमारे देश में यह परम्परा रही है कि कोई व्यक्ति अपनी उल्टी वा सीधी बात को लोक में प्रचलित करना चाहता है तो वह ऋषिमुनियों वा देवी-देवताओं के नाम से लिखता और प्रचलित करता है। इन ग्रन्थों की असत्यता, अयुक्तता, वदतोव्याघातता आदि यथाक्रम दिखलाये जायेंगे।

एक विषय में परस्पर दो विरुद्ध बातें सत्य नहीं हो सकतीं कोई एक ही सत्य हो सकती है। सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में वा फलित के ग्रन्थों में परस्पर विरोध है। फलित को सत्य माना गया है। मुहूर्तचिन्तामणि आदि ग्रन्थों में फलित को सत्य माना गया है और सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में इसके विरुद्ध फलित को असत्य माना गया है। इन दोनों में से किस को सत्य माना जाय और किस को असत्य? जब आप किसी बाजार में जायेंगे तब सब दुकानदार यही कहेंगे कि हमारी दुकान के पदार्थ अच्छे हैं और दूसरों के बुरे। तब आप किसी की बात प्रामाणिक नहीं मानेंगे। स्वयं अपनी बुद्धि से परीक्षा करके क्रय करेंगे। आप के समक्ष चुनाव में प्रत्याशित चार व्यक्ति अपने को निर्दोष और दूसरों को सदोष सिद्ध करेंगे और अपने-अपने लिए मतदान के लिए कहेंगे। दूसरों के लिए निषेध करेंगे। तब आप किसी की भी बात नहीं मानेंगे अपनी बुद्धि से काम लेंगे। इसी प्रकार जहां परस्पर विरुद्ध बातें होंगी वहां आप को किसी एक की बात को मानने में सन्देह होगा इसलिए परीक्षा करनी पड़ेगी। यदि आप वराहमिहिर आदि की बात को सत्य मानोगे तो हम पूछेंगे कि ऋषि दयानन्द सरस्वती आदि की बात को क्यों नहीं मानते? यदि आप ऋषि दयानन्द आदि की बात का अस्वीकार करेंगे तब वराहमिहिरादि की बात को क्यों नहीं अस्वीकार करते?

ज्यो० आ०—वराहमिहिरादि बड़े विद्वान् थे उनकी बात असत्य कैसे हो सकती है?

ज्यौ०—आपकी यह बात बालकों की जैसी है। कपिल, कणाद, जैमिनि, व्यास, गौतम, पतञ्जलि और ऋषि दयानन्द आदि क्या अविद्वान् थे? अथवा वराहमिहिरादि से न्यून विद्वान् थे? मिहिर कोई ऋषि, महर्षि,

योगी, मुनि और महामुनि नहीं थे। साक्षात्कृतधर्मा आप्त भी नहीं थे। देश, धर्म, समाजसुधार और उसकी उन्नति आदि के विषय में उनका कोई प्रयत्न नहीं दीखता। यदि कपिल कणाद और दयानन्द आदि ऋषियों और मिहिर आदि में परस्पर विरोध हो तो किन की बात मान्य होगी और किन की अमान्य? क्या ऋषि महर्षियों की बातों को छोड़कर मिहिर की बात मानलें?

ज्यो० आ०—ज्यौतिष वेद का अङ्ग है इसलिए सत्य है। वेद का अङ्ग कैसे असत्य हो सकता है?

ज्यो०—ज्यौतिष वेद का अङ्ग है। इसमें लेश भी सन्देह नहीं है। ज्यौतिष क्या है यह पूर्व लिख आये हैं। किन्तु आप जिसको ज्यौतिष कह और मान रहे हैं वह ज्यौतिष नहीं है 'गाढान्धकार' कहना चाहिए। क्योंकि इसको सत्य मानने वाला इसमें निमग्न मनुष्य, पुरुषार्थहीन, अकर्मण्य, भाग्यवादी, सदाशङ्की, निराशावादी, आत्मविश्वासहीन, कायर, विज्ञान से विमुख, विद्या का विरोधी और धर्म कर्म में अविश्वासी होकर अपनी न्यूनता, भूल निर्बलता आदि को ग्रह आदि पर थोंपने वाला होकर जीवन में घुट-घुट कर मर जाता है। इसको मानकर निर्भय होकर न खा सकता है न पी सकता है न ओढ सकता है न पहन सकता है न बैठ सकता है न आ सकता है न जा सकता है, न व्यापार कर सकता है, न पढ़ाई लिखाई, न कोई उत्तम कार्य प्रारम्भ कर सकता है न देश-धर्म का उद्धार कर सकता है न स्नान कर सकता है, न सन्ध्या कर सकता है, न यज्ञ कर सकता है, न देश विदेश में जा सकता है आ सकता है, न कृषि कर सकता है न गोरक्षा पशुपालन कर सकता है न दान दे सकता है न दक्षिणा दे सकता है न दे सकता है न ले सकता है न घर बना सकता है न चूल्हा न घर में प्रवेश ही कर सकता है न औषधि ले सकता है न चिकित्सा करा सकता है न कर सकता है न क्षौर करा सकता है और न छींक हो सकता है, किन्तु शराब पीना सीख जाता है, चोरी और सीख जाता है, नास्तिक बनने लग जाता है, पाषण्ड करना सीख जाता है, इतना ही नहीं छल, कपट, दम्भ, अहंकार, पाषण्डादि से दूसरो को प्रवञ्चित करना और कराना, ठगना, ठगाना, अपना स्वार्थ सिद्ध करना अच्छे प्रकार सीख जाता है। अभिमान में फूला रहता है कि मैं दैवज्ञ हूँ। जीवन को सर्वथा मलिन बनाता है। जीवन में किंकर्तव्य विमूढ होकर कथमपि घड़ियाँ गिनगिनकर जीवन काटता है। जबतक यह अधम विचार किसी मनुष्य पर चढ़ाई नहीं करता तब तक मनुष्य निर्भय वा सुखी रहता है।

आप बतलाइए वेदाङ्ग ज्योतिषग्रन्थ कौन सा है? और किस वेदाङ्ग-ग्रन्थ में फलित का विचार है?

आज जो वेदाङ्ग ज्योतिष नामक ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनमें कहीं फलित का वर्णन नहीं है। उसमें लिखा है कि—

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्॥
यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्॥

इन का अर्थ पूर्व लिख आए हैं वहीं देख लेवें। इनमें फलित का गन्ध भी नहीं है।

ज्यो० आ०—फलित को असत्य मानने वाले अन्धविश्वास वा अनभिज्ञता और अनुभव शून्यता के कारण हो असत्य कहते हैं? वा इसका अन्य कोई कारण है?

ज्यो०—फलित को असत्य कहने वा मानने वाले कहीं भी अन्धविश्वासी नहीं होते अपितु विवेकशील होते हैं। सोचविचार के पश्चात् ही फलित को पाषण्ड और अन्धविश्वास जानते हैं। विश्वास में अन्धानुकरण का अवकाश है=अवसर है किन्तु विश्वास को कसौटी से कस कर ही उसकी असारता जान लेते हैं। फलितकी आलोचना करने वाले विवेकशून्य नहीं हो सकते। बुद्धि से काम लेने वाले होते हैं। जब फलित की असारता दीख जाती है पोल खुलती है तब ही उसकी अयुक्तता का खण्डन करते हैं। यह अनुभव के विना नहीं होता। फलित को सत्य मानने वाले अनभिज्ञ "बाबा-वाक्यं परमं प्रमाणम्" मानने वाले होते हैं किन्तु असत्य मानने वाले नहीं। उसकी असमञ्जसता के कारण ही उसको असत्य जान लेते हैं।

देखिए इसके लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ।

(१) महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ये युगान्तरकारी पुरुष वेद विद्या में महर्षि कृष्ण द्वैपायन की कोटि के, प्राचीन आर्ष प्रणाली के उद्धर्त्ता, वेदों के पुनरुद्धारक, पाषण्ड वा अन्धविश्वासों के समूलोच्छेदक, महान् देश-भक्त, वैदिक रीतिनीतियों के परिष्कर्त्ता, प्रकाशक, विश्व के विचारकों की बुद्धि को परिवर्तित करने वाले, मानवजीवननिर्माण के पथप्रदर्शक, योगी, तत्त्ववेत्ता, बालब्रह्मचारी, देशस्वातन्त्र्यमन्त्रप्रदाता, सत्यासत्य निर्णयार्थ प्रमाणप्रदाता के रूप में ज्यौतिषशास्त्र के अनुपम विद्वान् धरा को अलङ्कृत

करते रहे। फलित के विषय में उनके विचार पढ़िए—

(१) (क) प्रश्न—तो क्या ज्योतिः शास्त्र झूठा है ?

उत्तर—नहीं। जो उसमें अङ्क, बीज, रेखागणित विद्या है वह सब सच्ची, जो फल की लीला है वह सब झूठी।··· स० प्र० २ समु०

(ख) दो वर्ष में ज्योतिष्शास्त्र सूर्यसिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित, अङ्क, भूगोल, खगोल और भूगर्भविद्या है इसको यथावत् सीखें···परन्तु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त आदि के फलविधायक ग्रन्थ हैं उनको झूठे समझ के कभी न पढ़ें और पढ़ावें॥ ३ समु०

(ग) ज्यौतिष में शीघ्रबोध, मुहूर्तचिन्तामणि आदि···सब कपोल-कल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं ···॥ ३ समु०

(घ) अब 'निर्णयसिन्धु', 'धर्मसिन्धु' 'व्रतार्क', आदि ग्रन्थ जो कि प्रमादी लोगों के बनाए ग्रन्थ हैं ···॥ ११ समु०

आक्षेप—स्वामी दयानन्द जी संस्कृत के विद्वान् थे, समाजसुधारक थे यह ठीक है, वे ज्यौतिष के विद्वान् तो नहीं थे। उनको इस विषय का क्या पता ?

समाधान—आपने उनके विषय में ऐसे विचार उनके ग्रन्थ पढ़ कर बना लिए हैं अथवा उनके सिद्धान्तों को जानने वाले विद्वानों से सुनकर बना लिए हैं वा उनके खण्डन करने वालों की बात सुनकर बना लिए वा केवल अपनी कल्पना से बनाए हैं ? यदि यह आपकी कल्पना है तो यह मान्य नहीं। यदि आपने उनके खण्डन करने वालों की बात सुनकर ऐसा समझा हो तो उचित नहीं। निर्णय एक पक्षानुसार नहीं किया जाता। यदि एक पक्ष को सुनकर भी निर्णय किया जा सकता हो तो उनके प्रशंसकों की बात सुनकर उनको ज्योतिर्वित् क्यों नहीं समझते ? आश्चर्य है आप पर जो काणे मनुष्य के समान एक ही ओर देखते हैं। आप को दूसरा पक्ष दीखता ही नहीं। कोई वैदिक सिद्धान्तों को, सत्यार्थप्रकाश को अच्छे प्रकार जानने वाला आर्य-समाजी आप को ऐसा विचार नहीं देगा। हां आर्यसमाज में आने जाने वाला ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को न पढ़ा हुआ न सुना हुआ ऐसा कह सकता है ! इतने से तो वह ऋषि दयानन्द का सिद्धान्त वा मत नहीं माना जायगा। यदि आपने स्वयं ही उनके ग्रन्थों को पढ़कर उनके सम्बन्ध में ऐसी मान्यता बना ली हो तो ठीक नहीं। मैं आपसे पूछता हूँ कि आपने उनको किस बात से यह समझ लिया कि वे ज्यौतिष के विद्वान् नहीं थे ?

आक्षेप—उन्होंने ज्यौतिष का खण्डन किया है ?

समाधान—अहह ! आश्चर्य है आप की विद्या पर। यह मैंने पहले सिद्ध किया है कि भूगोल, खगोल और भूगर्भ विद्या ही ज्यौतिष है उससे विरुद्ध ज्यौतिष नहीं है। आप में सोचने समझने की योग्यता ही नहीं है। पक्ष विपक्ष हेत्वादि कुछ भी पता नहीं। पृथग्जन के समान बात करते हो सिद्ध किसी और बात को करना चाहते हो सिद्ध किसी और ही बात को कर रहे हो। आपकी ही विद्वत्ता है। आपका दिया हुआ हेतु हेतु नहीं हेत्वाभास है। आपके कथनानुसार यह आया कि देवदत्त संस्कृत नहीं जानता क्योंकि अंग्रेजी का खण्डन करता है। यज्ञदत्त आयुर्वेद को नहीं जानता क्योंकि पुराणों का खण्डन करता है। विष्णुमित्र राजनीति को नहीं जानता क्योंकि बायबिल कुरान का खण्डन करता है। आप स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों को मनोयोग से पढ़ते तो ऐसा नहीं मानते। उनके ग्रन्थों को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि वे ज्यौतिष के परम विद्वान् थे। उनके बनाए ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास को ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के सृष्टिविद्याविषय, पृथिव्यादि लोकभ्रमण विषय, आकर्षणानुकर्षण विषय और प्रकाश्य प्रकाशक विषय को विशेष रूप से पढ़कर देखिए। वैसे तो उनके ग्रन्थों में यत्र तत्र यह विषय दृष्टिगोचर होगा। आगे चलकर उनकी ज्यौतिष शास्त्र सम्बन्धी प्रतिभा पर और उनके एतद् विषयक आविष्कारों पर लेख लिखने वा ग्रन्थ बनाने का विचार है। उनको ज्यौतिष का विद्वान् न मानना पक्षपात और अपनी कूपमण्डूकता सिद्ध करनी है। उन को आप ज्यौतिष का विद्वान् इसलिए नहीं मानते कि वे पृथिवी को ४९ कोटि योजन परिमाण वाली नहीं कहते, चटाई के समान चपटी नहीं मानते, सहस्र फण वाले शेष के फण पर टिकी हुई नहीं मानते, चन्द्र को मरेहुए पितरों का आश्रय नहीं मानते, सूर्य को ७ घोड़ों के रथ पर बैठकर जाने वाला नहीं मानते, भूमि के गर्भ में सात लोकों का होना आदि-आदि बातों को नहीं मानते।

(२) महामहोपाध्याय श्री पं० सुधाकर जी द्विवेदी काशी के प्रसिद्ध विद्वान्, ज्यौतिष के मान्य पण्डित थे जिन्होंने भारतीय ज्यौतिष का मन्थन किया था उनके विचार पढ़िए "मेरा विश्वास फलित ज्यौतिष में नहीं है। मैं इसे एक प्रकार का खेल समझता हूँ। जैसा विष्णुगुणादर्श में लिखा है कि ज्यौतिषी लोग अपने वाग्जाल से लोगों का धन व्यर्थ लूटा करते हैं"

ज्यौतिषचमत्कार स० प्र० भाष्य द्वि० समुल्लास से उद्धृत

(३) श्री पं० सीताराम जी झा जो ज्यौतिष के सुप्रसिद्ध (काशी के)

विद्वान् हैं। एक बार वे बड़ौदा विश्वविद्यालय में निमन्त्रित होकर ज्योतिष पर व्याख्यान देने के लिए जा रहे थे। मैं दिल्ली से कोटा जा रहा था। यान में परिचय हुआ। प्रसङ्गानुसार उन्होंने कहा कि "फलित के विषय में स्वामी दयानन्द जी ने जो लिखा है ठीक ही है।" इस का अभिप्राय यह है कि स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में फलित को जो कल्पित वा मिथ्या कहा है, उनका मन्तव्य ठीक है।

(४) श्री पं० पुरुषोत्तम जो जोषी[1] उज्जैन के वेधशाला के वर्षों तक अध्यक्ष रहे हैं। जीवन में उन्होंने मुख्य रूप से ज्योतिष पर ही समय वा शक्ति लगाई है। भारतीय वा पाश्चात्य दोनों पद्धतियों से ग्रहगणित करने में वेध लेने में स्यात् भारत में उनके समान दूसरा कोई नहीं होगा। वे फलित का भी मार्मिक ज्ञान रखते हैं। उनका मत यह है कि "फलित भोली भाली जनता को ठगने का एक विचित्र जाल है जिसमें से कोई निकल नहीं सके। इसी प्रकार पञ्चाङ्ग भी धार्मिक, श्रद्धालु लोगों को बहकाने का विशिष्ट उपाय है"।

(५) भारत के प्रधान मन्त्री पद पर स्थित श्रीमती इन्दिरा गान्धी का मत ज्योतिष विषय में कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता तथापि उनको आदर्श मानने वालों के लिए महत्त्व का है। उनका कथन दि० ८।८।१९७२ ई० "नई दुनिया" मध्यप्रदेश की दैनिक पत्रिका में छपा है। "यह पूछने पर कि क्या आप ज्योतिष में भरोसा करती हैं? इन्दिरा जी ने कहा नहीं बिलकुल नहीं। मैं नहीं सोचती किसी को ज्योतिष सामने रखकर चलना चाहिए। यदि उससे लोगों को आनन्द मिलता है तो बात दूसरी है"।[2]

(६) समस्त वैज्ञानिकों से (जिन्होंने गगनमण्डल में निरीक्षण किया था) प्रश्न पूछे गए कि क्या ग्रह वा नक्षत्र का प्रभाव मानव समाज पर पड़ता है? डा० वाल्टन फ्रैंकलिन "बोस्टन" के एक प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता हैं। इनको यह जांच करने की इच्छा हुई कि फलित ज्योतिष वालों की बातें कहां तक ठीक निकलती हैं। उन्होंने अपने जन्म के वर्ष का दिन वा मिनट लिखकर छः ज्योतिषियों को दिया। सबसे एक ही प्रश्न पूछा गया था कि "मेरी शादी कब होगी" इन ज्योतिषियों ने भिन्न-भिन्न समय बताए। किसी को

१. ये मेरे ज्योतिष के गुरु हैं।

२. ज्योतिष एक विज्ञान होने से सत्य है सबको मानना पड़ता है। यहां ज्योतिष शब्द से फलित अभिप्रेत है।

यह न सूझा कि फ्रैंकलिन का विवाह हो चुका था।

(७) न्यूयार्क से ३ सितम्बर को प्रसारित समाचार पढ़ने योग्य है जो इस प्रकार है—

"अमेरिका के १८६ प्रमुख वैज्ञानिकों के अनुसार ज्योतिष की भविष्यवाणियां बकवास हैं। इस व्यापक विश्व का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है कि नक्षत्र और ग्रह जनजीवन को प्रभावित करते हैं और उनकी गति पर भविष्यवाणी की जा सकती है।

ज्योतिष का खण्डन करने वाले इन प्रमुख अमेरिकी वैज्ञानिकों में १८ नोबेल पुरस्कार विजेता हैं" उन्होंने कहा कि अमेरिका में ज्योतिष को सार्वजनिक मान्यता मिल गई है यह देखकर हमें इसका खण्डन करने को बाध्य होना पड़ा है ··· अब समय आ गया है जब कि ज्योतिषियों के निराधार मन्तव्यों का प्रत्यक्ष रूप से जोरदार खण्डन किया जाना चाहिए ···। वक्तव्य का प्रारूप अमेरिकी अस्ट्रानामिकल (खगोल विद्यासमाज) सोसाइटी के पूर्वाध्यक्ष वर्टवोक ने तैयार किया था। उसमें कहा गया है कि ज्योतिष प्राचीन लोगों के जादुई दृष्टिकोण का अङ्ग है। वे लोग पृथिवी से नक्षत्रों और ग्रहों को दूरी की कल्पना ही नहीं कर सकते थे। यह सोचना बिल्कुल गलत है कि जन्म के समय के ग्रह आदि हमारे भविष्य को प्रभावित कर सकते हैं।"

(८) "सभी पाश्चात्य वैज्ञानिकों का मत है कि फलित ज्योतिष सर्वथा निर्मूल है और फलित ज्योतिष को 'निर्मूल पाखण्ड' या 'झूठा विज्ञान' कहकर फिर इसकी चर्चा ही नहीं करते।···"॥

सौर परिवार पृ० १७ से उद्धृत॥

(९) दीवान बहादुर एल० डी० कन्नूपिल्ले एम०ए०बी०एल०एल० डी० ऐ० एस० ओ० ने अपना जीवन ज्योतिष के अनुसन्धान पर व्यय किया है। वे ज्योतिष विषयक माने हुए विद्वान् हैं। उन्होंने जो पञ्चाङ्ग बनाए हैं उनको सब माने हुए ज्योतिषी प्रमाण मानते हैं। उनका विचार है कि— "पर्याप्त समय ऐसा रहा है कि जब इस देश के साहित्य में फलित ज्योतिष का उल्लेख नहीं मिलता है। वेद, ब्राह्मणग्रन्थ, उपनिषद् और पाणिनीय व्याकरण में इसके विषय में कोई लेख नहीं है। इन्होंने फलित की असत्यता को बहुत विस्तार के साथ सिद्ध किया है।

(१०) पण्डित सूर्यनारायण जी व्यास फलित के अन्ताराष्ट्रिय ख्याति-

प्राप्त बड़े विद्वान् माने जाते हैं[1]। उनके पुत्र वा भाई के पुत्र आदि कई सारे ज्यौतिषी माने जाते हैं अथवा यह कहा जा सकता है कि वह ज्यौतिषियों की वीथी है। सं० २०२६ वि० श्रावणपूर्णिमा और जन्माष्टमी के मध्य में किसी दिन रात्रि में उनके घर डाका पड़ गया। यह स्थानीय पत्रपत्रिकाओं में भी आया था। बतलाया गया था कि एक लाख सतसठ सहस्र १६७००० रुपयों का धनमाल चला गया। अब तक ज्यौतिषियों के झुण्ड में से किसी को पता नहीं चल पाया।

(११) कुछ समय हुआ समाचारपत्रों में विदेश की एक अखबार छपी थी जिसका शीर्षक था "भविष्य वक्ताओं की बस्ती में अग्निकाण्ड" इस अखबार को अच्छे स्थान पर अच्छे ढङ्ग से फलित ज्यौतिष की निस्सारता दिखाने के लिए छापा गया था कि भविष्य वक्ताओं को अपनी बस्ती के अग्निकाण्ड का पूर्व से ज्ञान न हुआ और उन्हें बड़ी हानि उठानी पड़ी"

साप्ताहिक सार्वदेशिक २८। ९। ७५ ई०।

ज्यो० आ०—होनी, अनहोनी, भविष्य, शुभदेश, शुभकाल वा शुभमुहूर्त, अशुभ स्थान, अशुभ समय, कार्य में सफलता मिलने वाली है अथवा असफलता, मनुष्य कैसे बनने वाला है, हमारे जीवन में कल क्या होने वाला है, किस समय कार्य प्रारम्भ करना, किस मूहूर्त में नहीं करना, हमारे भाग्य में क्या लिखा है, इत्यादि का यदि ज्यौतिष से पता न चले तो किससे चलेगा? यदि ज्यौतिष इसके लिए नहीं तो उसका उपयोग ही क्या है?

ज्यौ०—पूर्व लिखा जा चुका है कि ज्यौतिष का अर्थ भूगोल, खगोल और भूगर्भ विद्या है। भविष्य में क्या होने वाला है इसको (जो कि कार्य-कारण सम्बन्ध से रहित है) कोई मनुष्य तो क्या परमात्मा भी नहीं जान सकता। न जाना जा सकता है। इसका जानना असम्भव है।

अन्ध विश्वास और अज्ञान से हमने ज्यौतिष का अर्थ फलित की लीला मान रखा है। जब यह अयुक्त सिद्ध हुआ तो हमें अटपटा सा लगता है। जैसा कि धन के चुराये जाने पर अथवा शराब वा धुवां पीने वाले से शराब, धुवां छुड़ाये जाने पर लगता है। मनन, चिन्तन करते रहें तो अन्त में यह स्पष्ट हो जायगा कि ज्यौतिष का अर्थ भूगोल, खगोल और भूगर्भ विद्या ही

१. अभी-अभी जून २२ ईस्वी १९७६ को इनके देहावसान का समाचार, पत्र-पत्रिकाओं में छपा था।

है। प्रशान्त मन से निष्पक्ष हो सोचिए समझिए। आग्रह को छोड़ दीजिए। घबराइए नहीं।

ज्यो० आ०—जो लोग मानसिक रोग से ग्रस्त हैं, निराशा में पड़े हैं उनको फलित के आधार पर धैर्य विश्वास प्राप्त कराते हैं जैसे कि "आपने अपनी शक्ति का उपयोग नहीं किया। आपको सफलता मिलने वाली है। किन्तु प्रयत्न करना पड़ेगा। आपकी शक्ति बहुत है किन्तु आप निराशावादी हो, दुःखी हैं। आपका अमुक ग्रह अच्छा है आप कुछ दिन निष्ठा से प्रयत्न करिए अद्भुत सफलता मिलने वाली है"। आदि २। इससे लोगों का बड़ा कल्याण तथा लाभ होता है।

ज्यो०—धन्य हैं आप और आपकी बुद्धि। आप प्रतिज्ञान्तर नामक निग्रह स्थान पर आ गए। आपको यह भी पता नहीं कि क्या बोल रहे हैं और किस लिए बोल रहे हैं। जब कोई सामग्री नहीं है तो क्या बोलेंगे? अटकल लगाना तो आता है। उसी से चला रहे हैं।

यदि आपको किसी रोग ग्रस्त को रोग से मुक्त करना है तो क्या असत्य का ही आश्रय लेना पड़ेगा? क्या सत्य के आश्रय से यह कार्य नहीं हो सकता है? यदि कभी यह खुल जाय और रोगी को पता चल जाय तो रोगी सत्य को भी असत्य मानेगा। अब वह असाध्य रोगी हो जाएगा, लेने के देने पड़ जायेंगे, उसकी चिकित्सा कौन करेगा? आप गम्भीरता से विचार करके देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि यह रोग भी फलित के कारण से ही उत्पन्न है। फलित का अन्धविश्वास न होता तो यह रोग एवं निराशा न होती। रोग न होता तो आपके धैर्य की आवश्यकता ही न होती।

यहां तो सामान्यरूप से सम्पूर्ण फलित की असत्यता का विचार है। इससे आगे एक-एक विषय को पृथक्-पृथक् लेकर उस पर विचार किया जायेगा।

फलित को सत्य मानने वालों से प्रश्न :—

१. फलित के ग्रन्थों के सत्य होने में क्या प्रमाण हैं?

२. इन ग्रन्थों में लिखी हुई बातों की उपपत्ति कोई कर सकता है? अबतक जिस किसी ने की हो तो नाम बतावें।

३. फलित का धन्धा भूगोल, खगोल और भूगर्भविद्या के विरुद्ध क्यों है?

४. चार वेद, छः शास्त्र और दस उपनिषदों में इसका कहीं नाम वा लक्ष्य और प्रयोजन बतलाया हो तो बतला देवें।

५. इसकी उत्पत्ति और इसके इतिहास को बतलाइए।

६. तथाकथित ज्यौतिषियों, फलितमानियों के घरों में चोरी, जारी, अग्निप्रमादादि क्यों होते हैं?

७. ज्यौतिषियों के कार्य असफल क्यों होते हैं?

८. जप, पूजा, पाठ आदि से रोगों की चिकित्सा न करके चिकित्सकों से यह स्वयं चिकित्सा क्यों कराते हैं?

९. एक विषय में सौ व्यक्तियों का आदेश एक जैसा क्यों नहीं होता?

१०. फलित ग्रन्थों में पूर्वापर तथा परस्पर विरोध क्यों है?

११. क्या फलित वाले किसी के भाग्य को बदल सकते हैं? दुःखों से छुड़ाकर क्यों नहीं समृद्ध सुखी बनाते? यदि नहीं बदल सकते हों तो आपके ज्यौतिष का क्या उपयोग है? जप, पुरश्चरण, दान आदि क्यों करवाते हो? किस आधार पर आदेश करते हो?

१२. क्या फलित को मानकर कोई एक दिन जीवित रह सकता है?

१३. शुभ की इच्छा होने पर जन्मने वाले तथा मृत्यु को प्राप्त करने वाले को कुछ दिन के लिए क्यों नहीं रोक देते हो? होनी को कैसे रोक सकते हो और अनहोनी को कैसे होनी कर सकते हो?

१४. क्या किसी ने आज तक यह सिद्ध किया है कि एक ही स्थान में एक ही समय जन्मे लोगों का भाग्य एक सा ही होगा?

१५. आत्मविश्वासी फलित पर विश्वास क्यों नहीं करते हैं? ढुल मुल नीतिवाले अनिश्चित धन्धे वाले ही क्यों विश्वास करते हैं? यदि फलित से सफलता मिलती होती तो आत्मविश्वासी उसकी उपासना करके अधिका-धिक सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न करते।

१६. फलित में भारत से अग्रगामी अमेरिका आदि देश के लोग यूरेनस, नेप्च्यून और प्लूटो आदि ग्रहों को भी कुण्डली में लगाने लगे हैं। पर यह हमारे यहां नहीं लगाए जाते हैं। इससे क्या फलित भ्रमपूर्ण, कल्पित सिद्ध नहीं होता?

१७. गलत कुण्डली के अनुसार वास्तविक भविष्य बतलाया गया ऐसा क्यों? क्या इससे फलित ठग सिद्ध नहीं होता है?

१८. जो बड़े-बड़े फलितविश्वासी ज्यौतिष्कम्मन्य हैं उसी समय भविष्य क्यों नहीं बताते हैं? बाद में क्यों बताते हैं? यदि सिद्धि करके बतलाते हैं तो विज्ञान में सिद्धि, असिद्धि क्या है?

१९. जिस प्रकार प्रयोगशाला में वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा अपने सिद्धान्तों को सिद्ध करके दिखलाते हैं क्या उस प्रकार किसी फलित वाले ने सिद्ध करके ग्रन्थ लिखा है जिसको प्रयोगों द्वारा आज भी देखा जा सकता हो? यदि नहीं तो सत्य कैसे?

२०. पदार्थ विद्या, रसायन-शास्त्र और भूगोल-खगोल के असाधारण विद्वानों ने प्रयोगशालाओं में प्रयोगों से जानकर जब फलित को कल्पित, निराधार और असत्य सिद्ध कर दिया तब भी उसको फलितवाले बिना प्रमाण के सत्य कैसे कहते और मानते हैं?

२१. संसार का किसी तत्वज्ञानी ने इसको सत्य कहा हो और व्यवहार में इसका अनुकरण किया हो तो बतलावें।

२२. यदि ऐसा कोई ग्रन्थ हो तो बतलावें जिसमें कर्मसिद्धान्त वा फलित की एक वाक्यता सिद्ध की गई हो अथवा ऐसा कोई विद्वान् आज हो जो सिद्ध कर सके तो बतलावें।

अथ पञ्चमसमुल्लासः

अथ फलितोत्पत्तिं व्याख्यास्यामः

फलित के विभाग

तथाकथित फलित का उद्देश्य भविष्य को जानना तथा इष्ट लाभ और अनिष्ट परिहार है। इसी को पृथक् करके अनेक युक्तियों को कल्पित कर विविध नाम रख दिए हैं। भविष्य को जानने के लिए जन्मपत्रिका, हस्तरेखा, राशि, ग्रह, नक्षत्र, शकुन, अङ्गस्फुरण, तिल और स्वप्न आदि को, कार्य में सफलता आदि के लिए, तिथि, नक्षत्र, वार, मुहूर्त आदि को और अनिष्ट-परिहार अर्थात् असफलता के दूरीकरण के लिए नवग्रहपूजा, जप, पूजा, पाठ आदि को कारण माना जाता है। यही फलित का फलितत्त्व है। फलित को दो भागों में बांटा है। १. संहिता २. होरा।

१. संहिता—उसको कहते हैं जिसमें सूर्य, और चन्द्र आदि का संचार, उनके स्वभाव, विकार, प्रमाण और वर्ण आदि का उल्लेख हो।

२. होरा—वह है जिससे मनुष्य की जन्मकालीन ग्रहादि की स्थिति द्वारा उसके जीवन के सुख-दुःख का परिज्ञान हो।

फलित का कार्य कारणभाव तथा उस की उत्पत्ति

जिस प्रकार विद्या के आधार पर ज्यौतिष खड़ा है उसी प्रकार अविद्या के आधार पर फलित खड़ा है। जिस प्रकार वैज्ञानिक विज्ञान के आधार पर लोक-लोकान्तरों की यात्रा करने और उससे उन्नति के साधने में तल्लीन हैं इसी प्रकार पाखण्डी अज्ञान के आधार पर निरन्तर अपने को तथा दूसरों को फलितरूपी गर्त में ढकेल रहे हैं। जहाँ ज्यौतिष में कार्यकारण का तथा गणित का सम्बन्ध है वहां फलित (पतित) में ठीक उससे विरुद्ध कार्यकारण का वा गणित का सम्बन्ध लेशमात्र भी नहीं है। यहां कार्यकारण की आवश्यकता नहीं है केवल कल्पना है। प्रत्येक बात कल्पना पर खड़ी है। यदि कोई पूछे कि क्या "कार्यकारण सम्बन्धरहित कोई पुस्तक है जिसको

पठित-अपठित सत्य मानते हों" तो मैं निस्सन्दिग्ध रूप में कहूँगा कि "फलित ज्यौतिष" के नाम से जितने ग्रन्थ हैं वे सब ऐसे ही हैं। यदि कोई विद्या-विज्ञान से शून्य और विद्याविज्ञान के विरुद्ध पुस्तक पूछा जाए तो मैं तत्क्षण साहसपूर्वक कह सकता हूँ कि वह फलितज्यौतिष के नाम से कहे जानेवाले ग्रन्थ ही हैं।

अब इसकी उत्पत्ति के विषय में कुछ विचार प्रस्तुत करता हूँ।

काल

१. एक मनुष्य अनाचार करता है। उसके विषय में लोग सहसा कहते हैं कि अब तो इसका अन्तिम (मरने का) समय आ गया, इसीलिए उल्टा काम कर रहा है।

२. किसी ने नई दुकान खोल दी। बुद्धि से काम लिया। धन की प्राप्ति हुई। उसको देखकर लोग कहते हैं कि दुकान का प्रारंभ ही ऐसी घड़ी में किया जिससे लाभ हुआ। कुछ लोग कहते हैं कि उसका मालामाल होने का समय आ गया आदि २।

३. एक हत्यारे ने रात्रि में किसी के घर में घुसकर एक की हत्या की और रुपए लेकर भाग गया। कुछ लोग कहेंगे कि यह बड़ा अन्याय हुआ। तब कुछ लोग कहेंगे कि किसको क्या कह सकते हैं। सौ बातों की एक बात, समय हो ऐसा आ गया। जिसके हाथ जिसका प्राणांत होना था हो गया।

४. किसी ने कुआ खुदवाना प्रारंभ किया। पानी का स्रोत अच्छा निकला। लोग कहने लगते हैं कि उसमें किसका क्या हाथ है। वह क्षण ही ऐसा था नहीं तो सबको ऐसा क्यों नहीं होता?

इस प्रकार सफलता तथा असफलता में काल को कारण मान लिया जाता है। जब मनुष्य किसी घटना के कारण को नहीं जान पाता है तब अटकल लगाता है। उसको आंख के अन्धे और गाँठ के पूरे लोग सत्य मान लेते हैं।

पञ्चाङ्ग (वार)

इसी प्रकार किसी को अपने यात्रा कार्य में असफलता मिल गई, हानि हुई। तब उसने सोचना प्रारंभ किया कि क्या कारण है जिससे मेरी हानि हुई। इतना तार्किक वा प्रमाण कुशल तो नहीं कि तह तक पहुँच कर सत्य का निर्णय कर लेता। जो सामने दीख गया उसी को पकड़ लिया और

मानने और प्रचार भी करने लगा कि मंगलवार के दिन यात्रा करने से काम बिगड़ जाता है। कई वार काम वन जाता है कई वार काम बिगड़ जाता है। किन्तु मनमें एक धारणा बनी हुई है; कि मंगलवार के दिन काम बिगड़ जाता है। जब बिगड़ जाता है तब ही मंगलवार का ध्यान आता है। जब नहीं बिगड़ता तब नहीं आता। यदि कभी आगया हो और उस दिन काम बन गया हो तब अपने पूर्व मन्तव्य को असत्य न मानते हुए ही इतना और मान लेता है कि मंगल के दिन जब मेरा काम बिगड़ गया था उस दिन मैं उत्तर में गया हुआ था। जब काम बन गया, वार तो मंगल था ही किन्तु दिशापूर्व थी। यह ठीक है कि मंगलवार के दिन उत्तर में जाने से काम बिगड़ता है और पूर्व में जाने से काम बन जाता है। ऐसी ही कुछ कल्पना कुछ स्वार्थ, दोनों को मिलाकर श्लोक बना लिए—

न पूर्वे शनिसोमे च न गुरुर्दक्षिणे तथा।
न पश्चाद्भानुशुक्रौ च नोत्तरे बुधमंगलौ॥
अंगारके प्राग्गमनं च लाभः ········· यात्राविषय, मुहूर्तदर्पण

यही तथाकथित फलित है। इसी प्रकार आगे भी चला दी। सम्पूर्ण फलित इसी प्रकार खड़ा किया गया है। यह अनुक्रम आगे स्पष्ट होगा। श्लोकों से सन्तोष न करके सूत्र बना लिए; ग्रन्थ बनाए और ऐसा जाल बिछा दिया कि लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व भारत में प्रविष्ट यह फलित सैकड़ों वर्षों तक जैसे तैसे जीवित रहा। वराहमिहिर ने जड़जमाने के लिए अपना सर्वस्व अर्पित किया। इसको क्रमिक रूप दे स्थाई बना दिया। अब क्या था वह तो जीवन का अङ्ग बनने लगा। भारत में मुगलों के काल में तो उसी का साम्राज्य था। उसके पश्चात् ऐसा विस्तार हुआ कि उसके विना रोटी नहीं पका सकते, चूल्हा नहीं जला सकते। जलाने की बात तो बाद में चूल्हा बनाना हो तो भी पण्डित जी से पूछना पड़ेगा। पण्डित जी (पञ्चाङ्ग) पत्रा देखकर बतला देंगे कि अमुक दिन अमुक समय बनाओ। तब ही बनाना पड़ेगा। इस विषय (फलित) में कार्यकारण सम्बन्ध को सोचना महापाप है। फलित को सत्य मानने वाले, फलित को सत्य कहने वाले "शुक्रवार पवित्र है, रविवार पवित्र है" आदि को सत्य मानते हैं यह 'अन्धेर नगरी गवर्गण्ड राजा के सदृश है।

तिथि

किसी ने प्रतिपदा के दिन सिर मुंडाया। उस दिन उसके व्यापार में घाटा हुआ। तब उसने नियम बनाया कि प्रतिपदा के दिन क्षौर नहीं कराना

चाहिए। इस प्रकार तिथियों की व्यवस्था बन गई। कल्पना के साथ कुछ मिथ्या बातें जोड़ दीं; श्लोक बनाया। जैसे:—

आदौ नवम्यां धनधान्यनाशः।

इसी प्रकार नक्षत्रों की मिथ्या बातें लिख दीं।

पुष्यपुनर्वसुरेवतिहस्ता श्रवणधनिष्टमृगाश्विनिचित्रा।
वासववारुणवायुसमेतं द्वादशऋक्षं क्षौरप्रशस्तम्॥ "मुहूर्त दर्पण"

इन नक्षत्रों में ही क्षौर करावें शेष में नहीं। आगे देखिए—जिस नक्षत्र पर सूर्य है वह दीख नहीं सकता। उससे आगे के ३ अन्ध नक्षत्र हैं। उससे अगले ६ द्विनेत्र हैं। उनसे आगे के ९ नक्षत्र एक आंख वाले हैं। उनसे आगे के ५ द्विनेत्र वाले हैं और अगले ३ अंधे हैं।

जिस पर सूर्य है वह नहीं दीखता उससे अगले तीन भी नहीं दीखते इसलिए अंधे हैं। उसके आगे के अच्छे प्रकार दीखते हैं इसलिए वे द्विनेत्र हैं। यह तो हुई तुकबन्दी। अगले नौ नक्षत्र एक आंख वाले हैं। यह सफेद झूठ है। आगे के ५ स्पष्ट दीखते हैं इसलिए द्विनेत्र हैं। अगले ३ सूर्य के निकट होने से नहीं दीखते अतः अन्धे हैं। देर क्या है श्लोक बना दिया:—

अर्कस्थितर्क्षादिवतुर्भिरन्धाः षड्भिर्द्विनेत्रं तत एक नेत्रम्।
नेत्राणि युग्मानि तदैव पञ्चत्रीण्याहुरन्धाः क्रमः ······॥

॥ मु० दर्पण॥

इन नक्षत्रों के वाहन भी हैं—

मयूरहयमेषाश्च गजवायसजम्बुकाः।
मृगेन्द्रो वैनतेयश्च हंसरस्युर्जन्मभादिषु॥

जन्म नक्षत्र का मयूर, सम्पन्नक्षत्र का अश्व, विपन्नक्षत्र का बकरा, क्षेमनक्षत्र का हाथी, प्रत्यङ् नक्षत्र का कौआ, साधन नक्षत्र का श्रृगाल, नैधन नक्षत्र का सिंह, मित्र नक्षत्र का गरुड़ पक्षी, परममित्र नक्षत्र का हंस वाहन है। यही नहीं कुछ नक्षत्रों का नाम देवगण कुछ का मनुष्यगण और कुछ का राक्षसगण रख दिया। इसी प्रकार नक्षत्रों की संख्या, स्वरूप, उनके आकार, स्वभाव-प्रभाव आदि अनेकानेक बातों की शेखचिल्ली की जैसी कल्पना कर ली।

क्रयर्क्षे विक्रयो नेष्टो विक्रयर्क्षे क्रयोऽपि न।
पौष्णाम्बुपाश्विनीवातश्रवश्चित्राः क्रये शुभाः॥ (सर्वसंग्रह)

रेवती, शतभिषा, अश्विनी, स्वाती, श्रवण और चित्रा क्रयार्थ हैं। इन्हीं में क्रय करें। क्रय नक्षत्र में विक्रय और विक्रय नक्षत्र में क्रय न करें।

दुराचार

तीक्ष्णोग्राम्बुपभेषुमद्यमुदितम्॥ मु० चिन्तामणि नक्षत्रप्रकरण॥ १३॥

अत्र पीयूषधरा टीका—

रौद्रे पित्र्ये वारुणे पौरुहूत्ये याम्ये सार्पे नैर्ऋते चैव धिष्ण्ये।
पूर्वाख्येषु त्रिष्वपि श्रेष्ठ उक्तो मद्यारंभः कालविद्भिः पुराणैः॥

अर्थः—आर्द्रा, मघा, शतभिषा, ज्येष्ठा, भरणी, आश्लेषा, मूल, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रा और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रों में काल जानने वाले पुराणों ने मद्यपान श्रेष्ठ कहा है।

तथा च

उषाश्विनी मृगे स्वातौ पुनर्भे श्रवणत्रये।
जया पूर्णासु शुक्रेऽब्जे बुधेऽहनि चरोदये॥
चार्वाकजिनपाखण्डमण्डलीकरणं शुभम्॥ मुहुर्तगण।

अर्थः—उत्तराषाढा, अश्विनी, मृगशिरा, स्वाति, पुनर्वसु श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा नक्षत्र में—तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी, पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमा और अमावस्या तिथियों में और शुक्र, चन्द्र, बुधवारों में और चरलग्न के उदय में चार्वाक जैनमतावलम्बिनी पाषण्डमण्डली करनी शुभ है।

अन्यच्च

विशाखाकृत्तिका पूर्वा मूलार्द्राभरणीमघे।
आश्लेषा ज्येष्ठयोभेषु भौमे वा शकुने बले।
लग्ने वा दशमे भौमश्चौरस्य द्रव्य लब्धयः॥ मुहूर्त गण०

विशाखा, कृत्तिका, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रा, पूर्वाफाल्गुनी, मूल, आर्द्रा, भरणी, मघा, अश्लेषा, ज्येष्ठ नक्षत्रों में जब मङ्गल वा शनैश्चर का बल हो तथा जब लग्न वा दशवें स्थान में मङ्गल हो ऐसे मुहूर्त में चोरी करने से धन प्राप्त हो।

और भी—आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन मासों में वर्षा होती रहती है। पौष में सर्दी अत्यधिक होती है। चैत्र में फसल काटने आदि के कारण विवाहादि जैसे कार्य के लिए कठिनाई होती है, इसलिए इन मासों को विवाह के लिए अधम माना है। कार्तिक में बोने का कुछ कार्य रहता है

और मार्गशीर्ष में कुछ सर्दी रहती है इसलिए विवाह के लिए इन दो मासों को मध्यम माना गया। शेष मास शुभ माने गए हैं। कहना क्या था जोड़-तोड़कर बना लिया कि

माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाऽशुभप्रदाः।
मध्यमं कार्तिके मार्गशीर्षे वै निन्दिता परे॥ मु० द०।

यज्ञ, गृहनिर्माण तथा प्रवेश, व्यापार, खेती आदि २ के लिए ऐसी बातें घड़लीं।

उत्तरायण के समय से दिन का परिमाण बड़ा होता जाता है। प्रकाश भी अधिक होता है। अतः उत्तरायण को शुभ कह दिया इसके विरुद्ध होने से दक्षिणायन को अशुभ। बार्हस्पत्य वर्ष साठ होते हैं। इनके नाम के अनुसार उस वर्ष में शुभाशुभ मान लिया जैसा आनन्द नामक वर्ष में मनुष्यों को आनन्द प्राप्त होता है। राक्षस नामक वर्ष मनुष्यों को राक्षस जैसा दुःख देता है।

महाभारत के पश्चात् यज्ञ यागों की न्यूनता होने लगी। मतमतान्तर चल पड़े। वेदाध्ययन न्यून होने लगा। वर्णाश्रम धर्म लुप्त होने लगे। जैनमत, चार्वाक, वाममार्ग जैसे नास्तिक, आचारभ्रष्ट मत भी चलकर धर्मको च्युत करने लगे। तब मनुष्यों ने यह घड़कर लिख लिया कि कलियुग में आचार धर्म, वर्णव्यवस्थादि लुप्त हो जाते हैं। मनुष्य मद्य मांस खाने पीने लग जाते हैं। वेद को छोड़ पुराण अपनाते हैं। अधम धर्म हो जाता है और धर्म अधर्म हो जाता है आदि। द्वापर में इससे उत्तम व्यवस्था थी। वर्णाश्रम धर्म वेदाध्ययन आदि भी थे किन्तु द्रोणाचार्य एवं भीष्म जैसे लोग भी प्रलोभन में आए, दुर्योधन जैसे लोग मद में चूर्ण हो अधर्म करते थे। इसलिए इसको कलियुग से अच्छा कह दिया। त्रेता में इससे उत्तम वर्णधर्मादि थे। प्रकृति भी अनुकूल थी। सर्वत्र सुख समृद्धि थी किन्तु रावण जैसा वेदज्ञ कर्मकाण्डी भी अपराध कर बैठा। उसके कुछ अनुयायी भी रहे। इसलिए द्वापर से त्रेता को उत्तम कह दिया। सत्ययुग को इन उपद्रवों से रहित देखकर सर्वोत्तम लिख दिया कि—

कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया॥ सूर्यसिद्धान्त १।१६।

इसके साथ—

चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे।
नाऽधर्मेणागमः कश्चिन्मनुष्यान् प्रतिवर्तते॥

इतरेष्वागमाद्धर्मः पादशस्त्ववरोपितः ।
चौरिकानृतमायाभिर्धर्मश्चापैति पादशः ॥ मनु० १।८१, ८२ ।

और आगे चलकर कहा—

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे ।
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः ।
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥ मनु० १।८५, ८६ ।

अर्थ—कृतयुग में चार चरणों से युक्त सम्पूर्ण धर्म और सत्यभाषण था, उस समय अधर्म पूर्वक धनादि को मनुष्य स्वीकार नहीं करते ॥ ८१ ॥ अन्य त्रेतादि युगों में शास्त्र से विभाग पूर्वक धर्म का निश्चय किया गया था। चोरी, मिथ्याभाषण और छल, कपटादि से एक २ चतुर्थांश धर्म घट जाता है ॥ ८२ ॥ युगों की वर्षसंख्यानुसार मनुष्यों के धर्म कृत त्रेता, द्वापर और कलियुग में भिन्न २ होते हैं ॥ ८५ ॥ कृत में तप प्रधान है, त्रेता में ज्ञान कहाता है, द्वापर में यज्ञ को ही प्रधान और कलियुग में केवल दान को उत्तम उपाय कहा गया है ॥ ८६ ॥ इत्यादि काल के सम्बन्ध में है ।

शकुन

एक मनुष्य अपने मित्र से मिलने जा रहा था बिल्ली मार्ग को काटती हुई चली गई । वह घर पहुँचकर देखता है । मित्र घर पर नहीं है । उसको बड़ा दुःख हुआ । इतनी दूर से चलकर आया और मित्र घर पर नहीं मिला । बैठा २ चिन्तित हो रहा है । बहुत कुछ ढूंढा । कोई कारण नहीं मिला । कारण तो होना चाहिए । उसको स्मरण हो आया कि मार्ग में बिल्ली आई थी । इसी को कारण ठहराया और सन्तोष कर समझने लगा कि इसीलिए मित्र नहीं मिला । कितने बार मार्ग में बिल्ली आई होगी । कार्य भी सफल हुआ होगा, किन्तु सफल होने पर तो सोचने की आवश्यकता ही नहीं । यदि कोई विशेष लाभ होता तो भी ऐसा ही सोचता कि लाभ किस कारण हुआ ? किसी समय जाने पर कार्य सफल हुआ जो विशेष महत्त्वपूर्ण था । तब उसने यह सोचा कि यह कैसे सफल हुआ ? स्मरण आया कि मार्ग में शृगाल दीख गया था । तब यह मान्यता बनाली कि बिल्ली मार्ग में आ जाय तो काम बिगड़ता है और शृगाल के आने पर लाभ होता है । कार्य भी सफल होता है । इसी प्रकार किसी के जाते समय किसी ने छींक दिया । किसी समयविशेष में किया हुआ कार्य न हुआ तो यह

कल्पना कर ली कि छींकते समय आया था । इसलिए काम न हुआ, बिगड़ गया । सामान्य रूप से मनुष्य एक कार्य के बिगड़ जाने पर क्षुब्ध हो उठता है । यदि उस समय उससे कोई बात करने लगे अथवा जो भी उसके सामने आवे तब वह किसी न किसी से उखड़कर क्रोध कर बैठता है । अपने उस क्रोध के उफान को उस पर उतार देता है । किया किसी और ने और मार पड़ी किसी और पर । वह क्रोध करने योग्य अपराधी नहीं था तथापि इससे अतृप्त भावना उसके द्वारा पूर्ण हो गई । सन्तोष हो गया । इसी प्रकार मनुष्य ग्रहादि का नाम लेकर सन्तोष कर लेता है । इसी प्रकार मनुष्य को किसी कार्य में सफलता मिलने पर उसको अपने ऊपर यह विश्वास नहीं होता कि वह ऐसा कर सकता था । इस स्थिति में सहसा वह अपने से भिन्न किसी अन्य को कारण मान बैठता है । जैसा कि पाषाणपूजक किसी पाषाण के आगे माथा टेक कर यह कहने लग जाता है कि—हे देवी, हे देवता ! आपकी कृपा से मुझे सन्तान हुई । इसलिए मैं आपको नथुनी बनवाऊँगा । छत्र बनवाऊँगा । इसी प्रकार मनुष्य महापुरुषों की अलौकिक विद्या विज्ञान, बल, पराक्रम, धैर्य, साहस आदि को देख, सुन, पढ़ कर चकित होकर उनको मनुष्य मानना नहीं चाहता और सहसा कह बैठता है कि यह मनुष्य नहीं परमात्मा का ही अवतार है । मनुष्य को परमात्मा मानने लग जाता है । अन्ध परम्परा चल पड़ती है । इसी प्रकार अवतारों की कल्पना हुई । कार्य-कारण का सम्बन्ध इसमें लेश भी नहीं होता है ।

जिस व्यक्ति का कार्य बिगड़ गया था उसी व्यक्ति का किया हुआ कार्य एक बार आशातीत रूप में सफल हुआ । तब उस सफलता का कारण परमात्मा को मान लिया । किन्तु तब ही यह ध्यान में आया । वह सोचने लगा कि मार्ग में बिल्ली जो आई थी तब काम बिगड़ क्यों नहीं गया ? फिर अपने आप ही मान बैठा कि एक बिल्ली नहीं दो बिल्लियाँ आईं थीं, यह है फलित का आधार । इस प्रकार कुछ कल्पित हैं और कुछ बातें स्वार्थवश घड़ी हुई भी हैं । इसी प्रकार पल्लीपतन आदि बातों को कल्पित किया और कुछ को घड़ लिया ।

एक मनुष्य के पैर लम्बे २ हैं दूसरे के छोटे २ । बड़े पैर वाला उदार वा भोला है दूसरा ढीठ और कंजूस है । तब यह सिद्धान्त बना लिया है कि बड़े २ पैर वाला उदार होता है और छोटे २ पैर वाला अनुदार । विलम्ब क्या इसी प्रकार मुख, नासिका, दन्त, बाल, नाखून, ओष्ठ, कान, आंख, भ्रू, नाभि, उदर, भुजाएं, घुटने, अंगुलियाँ तलुआ, टखना, एड़ी आदि सब बातों

के लक्षण कल्पित और घड़कर रख दिए। शरीर के अवयवों के कम्पन, स्फुरण, उनमें खुजली आदि का भी फल लिखा है। शरीर पर रहने वाले तिल को देखकर उनकी भी व्याख्या आरम्भ हुई। आगे चलकर हथेली, तलुए और ललाट पर की रेखाओं का भी अर्थ और भाष्य होने लगा। इनमें से एक २ विषय पर सैकड़ों ग्रन्थ बन गए। लाखों प्रतियां बिकती हैं। करोड़ों रुपयों का व्यापार होता है। किन्तु इस सम्पूर्ण फलित का इससे अधिक आधार नहीं है। इससे भी आगे बढ़कर मनुष्य के जन्म समय पर कल्पना दौड़ने लगी। दिन की ६० घटियां होती हैं। किस घटी में जन्मने वाला कैसे बनता है? किस पल विपल में जन्मने वाला कैसा होता है? कैसे बनेगा? इत्यादि पर तुकबन्दी होने लगी। इसमें दिन रात का कारण सूर्य है। सूर्य भी साठ घटी में एक स्थान पर नहीं रहता, इसके १२ भाग कर लिए। उनके भी विभागकर लिए और उनके प्रविभाग। अलग-अलग क्षणों में उत्पन्न हुए बालकों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ना चाहिए। इसलिए अलग-अलग फलों का आदेश होने लगा। केवल सूर्य ही क्या, चन्द्र को साथ क्यों न लें, इसका विचार आया। उसको भी सम्मिलित कर लिया। इसी प्रकार मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि को भी सम्मिलित कर लिया। इससे सन्तोष नहीं हुआ तो "आकाशपुष्प" के समान राहु और केतु की भी कल्पना करली और जोड़ लिया। अब ये नौ हो गए। जैसे हम मनुष्यों के समान इन की भी स्वेच्छानुसार विचित्र बातों की कल्पना कर ली। कौन सा ग्रह ग्रहों किस राशि में है, यही फलित का मूल वा मर्म है। अलग२ राशि में अलग२ प्रभाव डालता है। इन सब का विस्तार पूर्वक वर्णन है। जैसा—सूर्य, सिंह राशि में जब रहता है तब वातावरण धूलि, आंधी से रहित होता है। वर्षा से सुखद होता है। सूर्य तीव्र प्रतापी सिंह के समान होने से यह कल्पना चल पड़ी कि सूर्य सिंहराशि का अधिपति है। कर्काटक जल में रहने वाला वा चंचल होता है। हिंसक भी नहीं होता। चन्द्र भी जलीय है, चंचल है अतः कर्काटक का अधिपति है। इसी प्रकार सब राशियों के अधिपतित्व की कल्पना की है।

जब सूर्य मेषराशि में होता है तब वसन्त का समय होता है। वसन्त ऋतु सब ऋतुओं में श्रेष्ठ है। इसलिए इसको उच्च माना गया है। इससे सप्तम नीच होता है। यह स्वाभाविक है। अन्य ग्रहों के उच्च नीच की ऐसी ही तुकबन्दी है। मंगल और रवि को देखने पर रक्तवर्ण वाले दीखते हैं। रक्त का सम्बन्ध युद्ध से होता है। युद्ध करने वाला योद्धा क्रूर होता है। इस

आधार पर इनको क्रूर ग्रह वा पाप का प्रतीक मान लिया। चन्द्र श्वेत रंग वाला है, शीतलता को प्रदान करने वाला है अतः सौम्य ग्रह माना गया है। सर्वाधिक गतिमान होने से चंचल है अतः चंचलता का भी प्रतीक है। बुध, सूर्य के निकट होता है शीघ्रगामी है, एक बार दीखता है। इतने में छिप जाता है। पुनः दीखता है, पुनः छिप जाता है। क्षण २ में बदलता रहता है, स्थिरता नहीं है। इसलिए यह भी चंचल है। और चंचलता का प्रतीक है। गुरु देदीप्यमान, चमक दमक वाला है। सफलता, उत्साह आदि का प्रतीक मान लिया। सामान्यतया सूर्योदय के पूर्व और सूर्यास्त के पश्चात् दीखने वाला शुक्र है। शुक्र वीर्य को कहते हैं। अतः इसको प्रेम, विवाह आदि का प्रतीक मान लिया। शनि को नीला मान लिया। मन्द २ गति से चलता है, इसीलिए इसको उदासीनता वा गम्भीरता का प्रतीक मान लिया। सूर्य, मङ्गल रक्तवर्ण; चन्द्र, शुक्र श्वेतवर्ण, बुध, गुरु पीतवर्ण। शनि मन्द गति से चलता है तथा म्लान होता है, और राहु, सूर्य, चन्द्र को ग्रहण द्वारा काला कर देता है इसलिए ये नीलवर्ण वाले मान लिए। केतु को चित्रवर्ण वाला मानने का कारण गप्प है। गुरु, शुक्र श्वेत होने से, शान्ति वा तेजस्विता का प्रतीक होने से ब्राह्मण हैं। सूर्य, मङ्गल रक्त वर्ण वाले होने से क्षत्रिय हैं। बुध चन्द्र, गमनशील होने से वैश्य, शनि आलस्य आदि के कारण शूद्र माना गया। इनकी यह भी व्यवस्था बना दी कि सूर्य, मंगल, गुरु पुरुष हैं। राहु, शुक्र, चन्द्र स्त्रियां हैं और बुध, शनि, केतु नपुंसक हैं। इनके जन्म, देश, काल, गोत्र स्वामित्व, मित्र, शत्रु भाव आदि की भी कल्पना कर ली।

ग्रह	शत्रु	मित्र
रवि	शनि, शुक्र	गुरु, चन्द्र
चन्द्र	....	रवि, बुध
कुज	बुध	रवि, चन्द्र
बुध	चन्द्र	रवि, शुक्र
गुरु	बुध, शुक्र	रवि, चन्द्र, कुज
शुक्र	रवि, कुज, चन्द्र	शनि, बुध
शनि	शुक्र, बुध	रवि, चन्द्र, कुज

इस प्रकार का झमेला रचकर इनको शुभाशुभ राशियों, ग्रह, नक्षत्र, वार, तिथि, करण, योग, मुहूर्त आदि अनेक विषयों के रूप में बालक के जन्म समय के साथ चिपका कर इनके द्वारा जातक का जीवन कैसे बनने वाला है इसको कहने की चेष्टा करते हैं। जन्मादि आगे कोष्टक में देखें।

"नवग्रहाराधना" नामक पुस्तक में से यह यहां दिया जा रहा है, उसी की समीक्षा की जाती है। यह तेलुगु भाषा की पुस्तक है।

संख्या	ग्रह	किस देश में जन्मा और किस देश का स्वामी	गोत्र	जन्मदिन वर्ष	मासतिथि	नक्षत्र	किस राशि का अधिपति	रंग	अधि-देवता	प्रत्यधि-देवता
१	रवि	कलिंग देश	काश्यपस	प्रभव	माघ शु० ७	विशाखा	सिंह	रक्त	अग्निः	रुद्र
२	चन्द्र	यामुन देश	आत्रेयस	नन्दन	कार्तिक शु०१४	कृत्तिका	कर्क	श्वेत	अपः	गौरी
३	मंगल	अवन्ति देश	भारद्वाजस	अक्षय	वैशाख कृ० २	पू० फाल्गुनी	मेष, वृश्चिक	रक्त	पृथिवी	क्षेत्रपाल
४	बुध	मगध देश	आत्रेयस	सौम्य	भाद्र शु० ११	उ० फाल्गुनी	कन्या, मिथुन	पीत	विष्णु	नारायण
५	गुरु	सिन्धु द्वीप	आङ्गिरस	सौम्य	आश्विन शु०१२	धनिष्ठा	धनुर्मीन	स्वर्ण	ब्रह्मा	इन्द्र
६	शुक्र	काम्भोज	भार्गवस	मन्मथ	श्राव० शु० १०	पुष्य	तुला, वृषभ	श्वेत	इन्द्राणी	इन्द्र
७	शनि	सौराष्ट्र	काश्यपज	विकारि	मार्ग० कृ० ६	रोहिणी	मकर, कुंभ	नीला	यम	प्रजापति
८	राहु	बर्बर	पैठीनस	राक्षस	माघ कृ० १४	आश्लेषा	—	नीला	गौः	सर्प
९	केतु	अन्तर्वेदि	,,	पार्थिव	फाल्गुन शु० १५	अभिजित्	—	चित्रा	चित्रगुप्त	ब्रह्म

अथ षष्ठसमुल्लासः

अथ मुहूर्तं व्याख्यास्यामः

क्षणः स्यात्।

नाडी द्वयं, तैः खगुणैर्दिनं च।
घटिकाद्वयेन क्षणो=मुहूर्तः। क्षणानां त्रिंशता दिनम्।।

सिद्धान्त शिरोमणि कालमानाध्यायः।।१७

मुहूर्तानां प्रतिमा ता दश च सहस्राण्यष्टौ च शतानि भवन्त्येतावन्तोहि संवत्सरस्य मुहूर्ताः।। शत० ब्रा० १०।३।२।२०।।

तथा ये संवत्सरस्य दशसहस्राण्यष्टौ शतानि घटिकाद्वयात्मिका मुहूर्ताः सन्ति तेऽपि प्रतिमा शब्दार्था विज्ञेयाः।

ऋ० भा० भू० ग्र० प्रा० विषय।।

फलित (संहिता) का सर्वाधिक विस्तृत क्षेत्र मुहूर्त है। इस पर बहुत बड़ा भवन खड़ा है। पढ़ा लिखा हो वा अनपढ़, ग्रामीण हो वा नागरिक, मूर्ख हो वा विद्वान्, स्त्री हो अथवा पुरुष, धनी हो वा निर्धन, नास्तिक हो वा आस्तिक, प्रचारक हो वा विचारक, चिकित्सक हो वा रोगी, व्यापारी हो वा ग्राहक, गृहस्थ हो वा संन्यासी, गुरु हो वा शिष्य, विद्यार्थी हो वा अध्यापक, सेनापति हो वा सैनिक, राजा हो वा प्रजा, और कुछ जानते हों वा नहीं मुहूर्त को तो सब जानते हैं तथापि मुहूर्त क्या है इसको इने गिने लोग ही जानते होंगे। इससे लाखों नहीं करोड़ों व्यक्ति प्रभावित हैं। लाखों व्यक्ति इसके पीछे पागल हुए घूमते हैं। मुहूर्त को "भानमति का पिठारा वा जादू की लकड़ी है" कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा। मुहूर्त को हौआ बना दिया। मुहूर्त तो हौआ नहीं किन्तु मुहूर्त को हौआ के रूप में लाकर खड़ा करने वाले तो हव्वा अवश्य हैं। वर्तमान में मुहूर्त का क्या अर्थ है और उसका क्या फल माना जाता है यह संक्षेप में नीचे दिया जाता है।

"अभीष्ट कार्य की सफलता वा सिद्धि के लिए एक निश्चित समय होता है। वही मुहूर्त है। इसी मुहूर्त में किया हुआ कार्य सफल होता है।

अन्य समय में किया हुआ कार्य सफल नहीं हो सकता है" यह फलित वालों की मान्यता है। अब इसकी समीक्षा करते हैं।

जिस प्रकार ६० पल की घटी वा ६० मिनट का घण्टा, ६० घटी वा २४ घण्टे का दिन, तीस दिन का मास, १२ मासों का नाम वर्ष है इसी प्रकार दो घटी वा ४८ मिनट का नाम मुहूर्त है। मुहूर्त एक परिमित काल का नाम है। एक दिन में ६० घटी अथवा ३० मुहूर्त अथवा २४ घण्टे वा ८ प्रहर होते हैं। व्यवहार के लिए यह परिभाषा बनाई है। इस को 'क्षण' भी कहा जाता है। प्राचीन काल में इसी अर्थ में मुहूर्त शब्द का प्रयोग देखा जाता है। जैसा—शुक्रनीति में राजा की दिन तथा रात्रिचर्या का निर्देश निम्न प्रकार है।

उत्थाय पश्चिमे यामे मुहूर्तद्वितयेन वै।
नियतायश्च कत्यस्ति व्ययश्च नियतः कति॥ २७५॥
कोशभूतस्य द्रव्यस्य व्ययः कति गतस्तथा।
व्यवहारे मुद्रितायव्ययशेषं कतीति च॥ २७६॥
प्रत्यक्षतो लेखतश्च ज्ञात्वा चायव्ययः कति।
भविष्यति च तत्तुल्यं द्रव्यं कोशात्तु निर्हरेत्॥ २७७॥
पश्चात्तु वेगनिर्मोक्षं स्नानं मौहूर्तिकं मतम्।
सन्ध्यापुराणदानैश्च मुहूर्तद्वितयं नयेत्॥ २७८॥
गवाश्वयानव्यायामैर्नयेत् प्रातर्मुहूर्तकम्।
पारितोषिकदानेन मुहूर्तं तु नयेत् सुधीः।
धान्यवस्त्रस्वर्णरत्नसेनादेशविलेखनैः॥ २७९॥
आयव्ययैर्मुहूर्तानां चतुष्कं तु नयेत्सदा।
स्वस्थचित्तो भोजनेन मुहूर्तं ससुहृन्नृपः॥ २८०॥
प्रत्यक्षीकरणाज्जीर्णनवीनानां मुहूर्तकम्।
ततस्तु प्राड्विवाकादिबोधितव्यवहारतः॥ २८१॥
मुहूर्तद्वितयं चैव मृगयाक्रीडनैर्नयेत्।
व्यूहाभ्यासैर्मुहूर्तं तु मुहूर्तं सन्ध्यया ततः॥ २८२॥
मुहूर्तं भोजनेनैव द्विमुहूर्तं च वार्तया।
गूढचारः श्रावितया निद्रयाष्टमुहूर्तकम्॥ २८३॥
एवं विहरतो राज्ञः सुखं सम्यक् प्रजायते।
अहोरात्रं विभज्यैवं त्रिंशद्भिस्तु मुहूर्तकैः॥ २८४॥

शु० नी० १। २७५-२८४॥

अर्थ—राजा रात्रि के पिछले प्रहर में से दो घड़ी रात्रि के शेष रहते समय उठकर प्रत्यक्ष वा लेख द्वारा जानकर कि नियत आय कितना है और व्यय कितना हुआ कोश, में प्रविष्ट धन का कितना भाग व्यय हुआ, राजव्यवहार में कितना आय और कितना व्यय हुआ, भविष्यत् में होने वाले आयव्यय का अनुमान कर उतना धन कोश से निकाले॥ २७५-२७७॥ पश्चात् एक मुहूर्त में शौच वा स्नान से निवृत्त होवे। सन्ध्या, पुराण[1] और दान दो मुहूर्तों में कर लेवें॥२७८॥ बुद्धिमान् एक मुहूर्त में पारितोषिक प्रदान करें। बैल, घोड़े आदि के यानों तथा व्यायाम को एक मुहूर्त में प्रातःकाल करलेवे। धान्य, वस्त्र, स्वर्ण, रत्न,सेना, देश, विलेखन आय-व्यय चार मुहूर्तों में करे। स्वस्थचित्त हो एक मुहूर्त में सुहृद् जनों सहित भोजन कर लेवें॥२७९-२८०॥ एक मुहूर्त में पुराने वा नये वस्तुओं को देखने का काम करलेवें। इसके पश्चात् प्राड्विवाक (वकीलों) के वादविवाद आदि को करें॥२८१॥ मृगया (शिकार) क्रीडा में दो मुहूर्त व्यतीत करे। सेनाव्यूह-रचना वा युद्ध का अभ्यास एक मुहूर्त में और सन्ध्या को एक मुहूर्त में करलेवें॥२८२॥ भोजन एक मुहूर्त में, दो मुहूर्तों में गुप्तचरों से बातों का पता लगावें, आठ मुहूर्त पर्यन्त शयन करें॥२८३॥ इस प्रकार अहोरात्र को तीस मुहूर्तों में विभक्त कर व्यवहार करने वाले राजा को अच्छे प्रकार सुख की प्राप्ति होती है।

इससे सुतरां स्पष्ट हो गया कि मुहूर्त परिमित काल के लिए व्यवहृत होता था। काल को मापने के अनेक मान हैं। उनमें से मुहूर्त एक है। अपनी सुविधा के अनुसार इसकी गणना (काल की गणना) अन्य प्रकार से भी की जा सकती है। अब भी विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार की परिभाषाएँ हैं।

भूमि पर रहने वालों के लिए यह मान दण्ड है कि भूमि जितने काल में आत्मप्रदक्षिणा करती है वह दिन (अहोरात्र) है। दिन वह है जब सूर्य का दर्शन होता है। जितने समय तक सूर्य पृथिवी की दूसरी दिशा में रहता है वह रात्रि है। वर्ष वह है जितने समय में पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है। किन्तु जब हम पृथिवी से दूर चले जाते हैं तो यह मान दण्ड नहीं रहेगा।

---

१ ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति॥ आश्व० गृ० ३।३।१॥ यहां पुराण से ऐतरेयादि ब्राह्मण अभिप्रेत हैं। श्रीमद्भागवतादि का नाम भी महाभारत काल में नहीं था।

उदाहरण के लिए देखिए। हम चन्द्रलोक में जाकर देखें तो मानदण्ड कुछ और होगा। हमारे ३२५ घण्टे तक वहां निरन्तर सूर्य दीखता रहता है। यही वहां का दिन है। इतनी ही बड़ी रात्रि है। वहां का मुहूर्त लगभग हमारे २२ घण्टे का है। बुध में ७०० घण्टे तक, शुक्र में २९४० घण्टे तक सूर्य निरन्तर दीखता रहता है। जैसे पृथिवी पर एक वर्ष में ३६५ अहोरात्र होते हैं तो बुध में हमारे ५९ दिन का एक दिन होता है अर्थात् आत्म-प्रदक्षिणा करता है। एक वर्ष में शुक्र में लगभग डेढ़ १।। दिन होता है अर्थात् शुक्र सूर्य की परिक्रमा करता है। शुक्र में और भी विचित्रता है कि वहां वर्ष से दिन ही बड़ा है। शनि में वर्ष में २५३६२ अहोरात्र होते हैं। जब भारत में सूर्योदय हो रहा होता है उस समय आस्ट्रेलिया में लगभग प्रातः १० बजे का समय होता है। उस समय पश्चिम अफ्रिका में रात्रि में १२ बजे का समय होता है जब कि पूर्वी अफ्रिका में प्रातः ३ बजे का समय और अमेरिका में सूर्यास्त होता है। तब काल का क्या अर्थ है? कल्पना कीजिए कि यदि हम सूर्य पर जाकर देखते हैं तो वहां सदा जब तक सूर्य है तब तक दिन ही दिन होता है हमें वहां ढूंढने पर भी रात्रि नहीं मिलेगी। जो मनुष्य वहीं का जन्मा हो और वहीं रहता हो यदि उससे पूछा जाय कि आपकी आयु क्या है? इस का वह उत्तर नहीं दे सकता। यदि देगा भी तो हम को समझ में नहीं आएगा। यही सन्देहास्पद है कि वहां कालगणना का क्या अर्थ होता होगा। ऐसे ही एक खान में जावें। वहां विद्युत् प्रकाश के बिना कुछ भी नहीं दीखता। वहां दिन, रात, युग और मुहूर्त आदि का क्या अर्थ है?

इसी को महर्षि पुनर्वसु जी ने चरक संहिता में लिखा है कि "कालः पुनः परिणामः" वस्तु में परिणाम ही काल है। यदि परिणाम न हो तो काल की गणना संभव नहीं है। काल जड़, निष्क्रिय और नित्य है। अनादि, अनन्त है। सर्वत्र, सर्वदा एक समान रहता है। किसी कार्य की सफलता, असफलता में निमित्त नहीं है, यदि होता तो इसका भी विचार कर्म के साथ अवश्य होता।

निमित्त रूप में इसका चार वेदों में, छः शास्त्रों में, दस उपनिषदों में कहीं वर्णन नहीं है अपितु खण्डन है। जैसा कि सांख्य शास्त्र में लिखा है— **न व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात्** इस सूत्र का अर्थ पूर्वत्र लिख आए हैं। **न कालनियमो वामदेववत्** अर्थात् समाधि आदि की प्राप्ति कितने काल में होती है इसका कोई नियम नहीं बनाया जा सकता। अतः काल कारण नहीं है। **तुष्टिर्नवधा** अर्थात् तुष्टि दोषों में से एक दोष काल से सम्बद्ध है। मनुष्य यह

समझने लगता है कि समय आने पर अपने आप समाधि, धन, धान्य, विद्या आदि प्राप्त हो जाएंगे। महर्षि कपिल कहते हैं कि यह एक दोष है। काल कारण नहीं है। यदि कोई किसी कार्य की सिद्ध में काल को कारण मानता हो तो वह भ्रान्त है। इन सूत्रों से यही ज्ञापन होता है कि कार्य की सफलता, असफलता में काल कारण नहीं। निष्क्रिय होने से भी कारण नहीं हो सकता। यह महाभारत के एक प्रसङ्ग से सुस्पष्ट हो जायगा—

यदि कालः प्रमाणं ते न वैरं कस्यचिद्भवेत्।
कस्मात्त्वपचितिं यान्ति बान्धवाः बान्धवैर्हतैः॥ ५३॥
कस्माद्देवासुरा पूर्वमन्योन्यमभिजघ्निरे।
यदि कालेन निर्याणं सुखं दुःखं भवाभवौ॥ ५४॥
भिषजो भेषजं कर्तुं कस्मादिच्छन्ति रोगिणः।
यदि कालेन पच्यन्ते भेषजैः किं प्रयोजनम्॥ ५५॥
प्रलापः सुमहान् कस्मात् क्रियते शोकमूर्छितैः।
यदि कालः प्रमाणं ते कस्माद्धर्मोऽस्ति कर्तृषु॥ ५६॥

महा० शा० अ० १३९॥

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्।
इति ते संशयो माभूद्राजा कालस्य कारणम्॥ अ० ६९॥

भावार्थ :—यदि तुझे काल प्रमाण है तो किसी से वैर नहीं होना चाहिए। फिर सम्बन्धी सम्बन्धियों से मारे हुए क्यों क्षय को प्राप्त होते हैं? ॥५३॥ पूर्वकाल में देव और असुरों ने एक दूसरे को क्यों मारा? यदि सुख, दुःख, जन्म, मरण काल से ही होता है॥ ५४॥ वैद्य रोगी की दवाई करने की क्यों इच्छा करते हैं, यदि काल से ही सब पकाये जाते हैं तो दवाई से क्या प्रयोजन? ॥५५॥ शोक से मूर्च्छित हुए लोग महान् रोना, पीटना क्यों करते हैं? यदि तुझे काल ही प्रमाण है तो कर्त्ता में धर्म की स्थिति क्यों है? ॥५६॥ काल राजा का कारण है या राजा काल का कारण है यह तुम को सन्देह नहीं होना चाहिए। राजा ही काल का कारण है॥ ६९॥

पौ० पो० प्र० भाग १ पृ० ३१९ से

कालस्य कारणं राजा॥ शु० नी० १। ६०॥

काल का कारण राजा है। अर्थात् मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है। काल के आधीन नहीं है। इसीलिए इसको कर्त्ता कहा है। महर्षि पाणिनि ने काल को कर्त्ता के आधीन मानकर लिखा है **'स्वतन्त्रः कर्त्ता'**।

अष्टा० १। ४। ५४॥

क्षणतत्क्रमयोः संयमाद विवेकजं ज्ञानम्, इस योग सूत्र द्वारा तो महर्षि पतञ्जलि ने और व्यास ने भी मुहूर्त आदि को खपुष्प के समान **शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः** कह दिया है। जब मुहूर्त आदि ही विकल्प है तो तद् द्वारा कार्य में सफलता मानना अविवेक है। इससे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि **स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः**, समाधि की प्राप्ति के लिए अर्थात् मोक्ष के लिए यम, नियमादि का अनुष्ठान दीर्घकाल तक और निरन्तर करते रहना चाहिए। यहां निरन्तर शब्द ध्यान देने योग्य है। यदि शुभाशुभ मुहूर्तों से सफलता मिलती तो नैरन्तर्य का कथन न करके 'शुभ-मुहूर्ते" वा "शुभकाले" पढ़ देते।

इसीलिए वेद ने कहा—**"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत्"** अर्थात् वेदोक्त कर्म करते हुए ही जीने की इच्छा करे।

वेदोक्त कर्मबोधक आचारसंहिता में महर्षि मनु ने कहीं मुहूर्त देखकर कर्म करने का संकेत नहीं किया। कहते हैं कि

> **वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यिके।**
> **नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि॥**
> **नैत्यिके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम्।**
> **ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम्** ॥ मनु०२।१०५, १०६॥

वेद के पढ़ने, पढ़ाने, सन्ध्योपासनादि पञ्चमहायज्ञों के करने और होममन्त्रों में अनध्याय विषयक अनुरोध (आग्रह) नहीं है। क्योंकि नित्य कर्म में अनध्याय नहीं होता। जैसे श्वास-प्रश्वास सदा लिए जाते हैं बन्द नहीं किये जा सकते, वैसे नित्य कर्म प्रतिदिन करना चाहिए। न किसी दिन छोड़ना क्योंकि अनध्याय में भी अग्निहोत्रादि उत्तम कर्म किया हुआ पुण्य रूप होता है। जैसे झूठ बोलने में सदा पाप और सत्य बोलने में सदा पुण्य होता है वैसे ही बुरे कर्म करने में सदा अनध्याय और अच्छे कर्म करने में सदा स्वाध्याय ही होता है। स० प्र० ३ समुल्लासः॥

नीतिकारों ने कहा कि **"शुभस्य शीघ्रम्"** शुभकार्य को शीघ्र करना चाहिए। विलम्ब नहीं होने देना चाहिए क्योंकि **"आलस्यादमृतं विषम्"** विलम्ब करने से दीर्घ सूत्रता करने से अमृत भी विष बन जाता है। यहां तक भी कहा है कि यदि बायें हाथ में कोई पदार्थ (देय) रखा हो और दान करने की इच्छा हुई हो तो उसे तुरन्त देना चाहिए। यह भी नहीं सोचना चाहिए कि सुविधा की दृष्टि से (विधानानुसार) वस्तु को दाहिने हाथ में

लेकर दूं। कारण यह है कि बायें हाथ से दाये हाथ में बदलने में कुछ समय तो लगता ही है। उतनी देर में कहीं शुभ विचार समाप्त (ग्रस्त) न हो जाय। अब सोचिए मुहूर्त का क्या मूल्य है? और क्या उपयोग है?

> **अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च साधयेत्।**
> **गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥**

बुद्धिमान् को चाहिए कि अपने को अजर, अमरवत् समझकर विद्या और धन का अर्जन करे। मृत्यु ने बालों को पकड़ा हुआ है ऐसा जानकर धर्म का आचरण करे। अर्थात् सर्वदा धर्म का आचरण करना चाहिए। एक क्षण भी बिना धर्म के नहीं रहना चाहिए। मुहूर्त के लिए अवकाश कहां रहेगा?

शुभकार्य के लिए मुहूर्त की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि शुभकार्य स्वतः ही शुभ है। अब रहा केवल अशुभ कार्य। अशुभ कार्य करना ही नहीं चाहिए। जब अशुभ कार्य स्वयं ही अकर्तव्य है तो उसके लिए मुहूर्त देखने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। यदि कोई मुहूर्तों को ढूंढ़ने लग जाय अर्थात् पूछे अथवा बतावे उन दोनों को अविवेकी कहना चाहिए। क्योंकि इन धर्म के ठेकेदारों ने मनुष्यों को पापी बनाने के लिए ही ऐसी कपोल-कल्पनाएं घड़कर रख दीं। शुभकार्य करने वाले संख्या में न्यून होते हैं और अशुभ कर्म करने वाले अधिक होते हैं। यदि केवल शुभ कार्यों के लिए मुहूर्त घड़कर रख दें तो दान-दक्षिणा न्यून मिलेगी और चोरी, जारी करने शराब, पीने, नास्तिकता, पाषण्ड करने आदि के लिए भी घड़कर रखेंगे तो चोरी जारी, आदि करने के लिए पूछने वाले बहुत मिलेंगे। दानदक्षिणा अच्छे प्रकार से ऐंठ सकेंगे; यह समझकर सुकर्म के साथ २ दुष्कर्म के लिए भी मुहूर्त लिख रहे हैं जैसे—

> **तीक्ष्णोग्राम्बुपभेषु मद्यमुदितम्**

मुहूर्त चिन्तामणौनक्षत्र प्रकरणे श्लो० ॥१३॥

अत्र पीयूषधरा टीका

> **रौद्रे पित्र्ये वारुणे पौरुहूतये, याम्ये सार्पे नैर्ऋते चैव धिष्ण्ये।**
> **पूर्वाख्येषु त्रिष्वपि श्रेष्ठ उक्तो, मद्यारंभः कालविद्भिः पुराणैः॥**

अर्थ—आर्द्रा, मघा, शतभिषा, ज्येष्ठा, भरणी, आश्लेषा, मूल, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रों में काल जानने वाले पुराणों ने मद्यपान को श्रेष्ठ कहा है। तथा च

उषाश्विनी मृगे स्वातौ पुनर्भे श्रवणत्रये ।
जया पूर्णासु शुक्रेऽब्जे बुधेऽह्नि चरोदये ।
चार्वाकजिनपाषण्डमण्डलीकरणं शुभम् । मुहूर्तगण०

अर्थ—उत्तराषाढा, अश्विनी, मृगशिरा, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा नक्षत्रों में तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी, पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमा और अमावास्या तिथियों में और शुक्र, चन्द्र, बुधवारों में चरलग्न के उदय में चार्वाक, जैन मतावलम्बिनो पाषण्डमण्डली करनी शुभ है । अन्यच्च

विशाखा कृत्तिका पूर्वा मूलार्द्रा भरणीमघे ।
आश्लेषाज्येष्ठयो भेषु भौमे वा शकुने बले ।
लग्ने वा दशमे भौमश्चौरस्य द्रव्यलब्धयः । मुहूर्तगण

अर्थ—विशाखा, कृत्तिका, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, मूल आर्द्रा, भरणी, मघा, आश्लेषा, ज्येष्ठा नक्षत्रों में जब मंगल वा शनैश्चर का बल हो तथा जब लग्न वा दशमें स्थान में मंगल हो, ऐसे मुहूर्त में चोरी करने से धन प्राप्त हो । ज्योतिषचन्द्रिका से

महर्षि दयानन्द सरस्वती का लिखा हुआ एक दृष्टान्त उपयुक्त समझ कर लिखता हूँ—

कोई एक चोरी करता हुआ पकड़ा गया था । न्यायाधीश ने उसका नाक काट डालने का दण्ड दिया । जब इसकी नाक काटी गई । तब वह धूर्त नाचने गाने और हंसने लगा । लोगों ने पूछा कि तू क्यों हंसता है ? उसने कहा कुछ कहने की बात नहीं है । लोगों ने पूछा ऐसी कौन सी बात है ? उसने कहा बड़ी भारी आश्चर्य की बात है । हमने ऐसी कभी नहीं देखी । लोगों ने कहा कहो क्या बात है ? उसने कहा कि मेरे सामने साक्षात् चतुर्भुज नारायण खड़े हैं । मैं देखकर बड़ाप्रसन्न होकर नाचता, गाता अपने भाग्य को धन्यवाद देता हूँ कि मैं नारायण का साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ । लोगों ने कहा हमको दर्शन क्यों नहीं होता ? वह बोला नाक की आड़ हो रही है । जो नाक कटवा डालो तो नारायण दीखे, नहीं तो नहीं । उसमें से किसी मूर्ख ने चाहा कि नाक जाय तो जाय परन्तु नारायण का दर्शन अवश्य करना चाहिए । उसने कहा कि मेरी भी नाक काटो; नारायण को दिखलाओ । उसने उसकी नाक काटकर कान में कहा कि तू भी ऐसा ही कर, नहीं तो मेरा और तेरा उपहास होगा । उसने भी समझा अब नाक तो आती नहीं इसलिए ऐसा ही कहना ठीक है । तब तो वह भी वहां उसी के समान नाचने

कूदने, गाने, बजाने, हंसने और कहने लगा कि मुझको भी नारायण दीखता है ।

वैसे होते २ एक सहस्र मनुष्यों का झुण्ड हो गया और बड़ा कोलाहल मचा और अपने सम्प्रदाय का नाम नारायणदर्शी रखा । किसी मूर्ख राजा ने सुना उनको बुलाया । जब राजा उनके पास गया तब वे बहुत कुछ नाचने, कूदने, हँसने लगे । तब राजा ने पूछा कि यह क्या बात है उन्होंने कहा कि साक्षात् नारायण हमको दीखता है । राजा—हमको क्यों नहीं दीखता ? नारायणदर्शी—जब तक नाक है तब तक नहीं दीखेगा और जब नाक कटवा लोगे तब नारायण प्रत्यक्ष दीखेंगे ।

उस राजा ने विचारा कि यह बात ठीक है । राजा ने कहा ज्योतिषी जी मुहूर्त देखिए । ज्योतिषी जी ने उत्तर दिया "जो हुक्म अन्नदाता । दशमी के दिन प्रात:काल आठ बजे नाक कटवाने और नारायण के दर्शन करने का बड़ा अच्छा मुहूर्त है ।"

वाह रे पोप जी ! अपनी पोथी में नाक काटने कटवाने का भी मुहूर्त लिख दिया ॥ स० प्र० ११ समुल्लास ।

परमात्मा का बनाया दिन, रात, घटी, पल, मुहूर्त, याम आदि काल मनुष्य के लिए शुभकारक हैं । इसको अशुभ कहने वाला अज्ञानी, स्वार्थी है ।

शुभ मुहूर्त में किया हुआ अशुभ कार्य भी सफल और अशुभ मुहूर्त में किया हुआ शुभ कार्य भी असफल होता है । आपका तो यह सिद्धान्त बन गया कि कार्य में सफलता चोरी, जारी, मद्यपीने, पाषण्डकरने आदि के लिए मुहूर्त हैं तो जितने चोर, जार, पाषण्डी, शराबी थे और हैं इन सबको इन ही ग्रन्थों का आधार मिल गया होगा । आगे जो होंगे उनको भी इन्हीं ग्रन्थों का आधार मिल जायगा ।

चोर, जार आदियों को शासक लोगों को पकड़ना नहीं चाहिए क्योंकि फलित के ग्रन्थों में इनके विधान हैं । इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर उन्होंने चोरी की होगी यदि पकड़ लें तो चोर आदि शुभ मुहूर्त में छूटकर क्यों नहीं भागते ? यदि नहीं भाग सकते तो शुभमुहूर्त के बल से अनिष्टों को दूर कैसे करेंगे ?

पकड़े जाने पर चोरी आदि का कारण पूछा गया । चोरों से उत्तर मिला कि "वह मुहूर्त ही ऐसा था कि हमसे चोरी आदि हो गए । हम क्या करें ? हमारे हाथ में कुछ नहीं । सब कुछ मुहूर्त में है ।" तब न्याय विभाग

का क्या समाधान होगा ? क्या कर्तव्य होगा ? मुहूर्त को सत्य मानेंगे अथवा असत्य ? सत्य मानेंगे तो राज्यव्यवस्था कैसे चलेगी ? यदि असत्य मानते हैं तो किस आधार पर ? जिसलिए चोरी आदि के विषय में असत्य है तो अन्य विषयों में असत्य क्यों नहीं ?

मौहूर्तिक—अशुभमुहूर्त में किए हुए कार्य बिगड़ जाते हैं, ऐसा क्यों होता है ?

ज्योतिषी—यह आप का भ्रम वा अन्धविश्वास है। कार्य के सफल होने में जितने कारण अपेक्षित हैं उतने कारण विद्यमान हों तो कार्य असफल न हो। हम आपसे पूछते हैं बताइए कि आपके अभिमत शुभमुहूर्त में किए हुए कार्य असफल क्यों होते हैं ? जब शुभमुहूर्त में किए वा अशुभ मुहूर्त किए हुए कार्य सफल होते हैं तो यह तो सिद्ध नहीं हुआ कि शुभ मुहूर्त सफलता का वा अशुभ मुहूर्त असफलता का साधन है। इसलिए "सफलता का हेतु शुभमुहूर्त है" यह हेत्वाभास है, हेतु नहीं है।

मौ०—शुभ मुहूर्त में किए हुए कार्य असफल होते हुए प्रतीत होते हैं वास्तव में नहीं होते। मुहूर्त बतलाने वाले भूल से कुछ का कुछ बतलाते हैं। बतलाने वाले की गणित में भूल है मुहूर्त में दोष नहीं और न मुहूर्तशास्त्र की भूल है। यदि ठीक २ प्रकार से मुहूर्त को देखकर किया जाय तो कार्य अवश्य सफल हो जाय।

ज्यो०—काल साधक न होने से हेत्वाभास है ऐसा पूर्वत्र इसका समाधान हो चुका है। अब प्रकारान्तर से दिया जाता है। इसमें क्या प्रमाण है कि बतलाने वाले की भूल है, शास्त्र में भूल नहीं हैं ?

मौ०—शास्त्र ऋषियों के बनाए हैं इसलिए सत्य हैं।

ज्यो०—ऋषियों के बनाए शास्त्र सत्य होते हैं। क्योंकि ऋषि साक्षात्कृतधर्मा होते हैं। तो उन ही वेदादिसकलशास्त्रज्ञ, भूत, भविष्य तथा वर्तमान को जानने वाले, दिव्यद्रष्टा, अभियुक्त लोककल्याणैककृत् मेधासम्पन्न, नीरजस्तम, अमलिनमनस्क, अमोघवाङ् महर्षियों में से एक, वसिष्ठ जैसे ऋषि द्वारा निकाला हुआ मुहूर्त जिसमें श्री रामचन्द्र जी का राज्यतिलक होना था वह असत्य क्यों निकला ? तुम्हारे ऋषि भी भूल भुलैया और उनके शास्त्र भी वैसे ही हैं वा नहीं ? जब ऋषियों की यह बात है तो मनुष्यों की कथा ही क्या कहनी ?

प्रश्न—स्वामी दयानन्द जी ने ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में संकल्प में मुहूर्त क्यों पढ़ा है ?

उत्तर—मुहूर्त शब्द का प्रयोग कोई दोषावह नहीं है। स्वामी जी के उस प्रयोग से फलित का गन्ध भी नहीं आता। उसका प्रयोग केवल स्वामी जी ने यथोक्त वैदिक कर्मों के काल के बोध के लिए किया है। वर्षमासपक्षतिथि के साथ २ ही इसका प्रयोग किया है। इसका यह अभिप्राय है कि यज्ञार्थवरण के निश्चित काल को बतलाया जा रहा है। मुहूर्त शब्द कालवाचक ही है। शुभाशुभ से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्र०—**ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्धयेत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्॥** मनु० इत्यादि में ब्राह्म मुहूर्त का ग्रहण क्यों किया ?

उत्तर—ब्राह्म-मुहूर्त काल विशेष का पारिभाषिक नाम है। इससे फलित का कोई सम्बन्ध नहीं है।

वास्तव में तथाकथित फलित का कोई भी ग्रन्थ ऋषियों का बनाया नहीं है। सब पोपों ने बना-बनाकर ऋषियों के नाम रख दिए। क्योंकि ऋषियों के ग्रन्थों में परस्पर विरोध नहीं होता। प्रत्यक्षादि प्रमाणों और वेद के विरुद्ध नहीं होता।

आजतक ज्योतिषी नामधारी कोई भी यह सिद्ध नहीं कर सका कि "ये कल्पित ग्रन्थ सत्य से पूर्ण, वदतो व्याघात से रहित और प्रमाणों से सिद्ध वा आप्तोक्त हैं।"

पण्डितों से लेकर पामर जनों तक एकाकार में सुनी जाने वाली यह बात कि "गणित करने वालों की भूल हो सकती है" स्वार्थी, मूढ, विद्याविज्ञान से रहित मनुष्यों की है। आज तक यह बात प्रतिज्ञामात्र ही है। इसको तर्क वा विवेकशून्य आंख के अन्धे लोग दोहराते चले जाते हैं। इस की उपपत्ति=सिद्धि हेतुओं से कोई नहीं करता; न कर सकता है।

अशुभ मुहूर्त में नहीं तुम्हारे शुभमुहूर्त में किए हुए कार्य असफल हुए हैं और होते हैं। देखिए—

"पण्डित नारायण जी व्यास उज्जैन के बहुत बड़े माने हुए ज्योतिषी थे। उन्होंने अपनी प्रिय पुत्री का विवाह जन्मपत्रिका आदि को मिलाकर शुभतम मुहूर्त पर किया। कुछ ही दिन के पश्चात् पुत्री विधवा हुई। वह लगभग ८५ वर्ष की आयु तक पिता के घर बैठी रही[1]। आश्चर्य है फलित ग्रन्थों पर और उनको सत्य मानने वालों पर जिनमें विवेक नाम मात्र भी नहीं है।

१. मेरे उज्जैन में ज्योतिष के अध्ययन के समय में ही उनकी मृत्यु हुई थी।

"एक उदाहरण और देखिए "सन् १६२० में घटित एक ज्योतिषी के घर की घटना सुनिए—

महाराष्ट्र के अहमद नगर जिले में एक गांव है जिसे जामगांव कहते हैं। राज ज्योतिषी पं० श्री बलदेव प्रसाद जी यहीं रहा करते थे। सिन्धिया सरकार के वे खास माने हुए ज्योतिषी थे। एक पहुँचे हुए प्रकाण्ड ज्योतिर्विद के रूप में महाराष्ट्र की जनता भी उनका यथा योग्य सम्मान करती थी।

उनके एक कन्या थी। बड़ी सुन्दर और बहुत सुशील। वे उसे बहुत चाहते थे। अतुल वात्सल्य बरसा करता था उनका उस पर। किन्तु कन्या आखिर कन्या है। कभी न कभी उसे पिता का घर छोड़कर पराया घर बसाने जाना ही पड़ता है।

जब कन्या विवाह के योग्य हुई। तब बड़े हीं कडे परिश्रम के साथ उन्होंने उसके लग्न का शुभ मुहूर्त स्वयं निकाला था जिससे कि उसका भावी जीवन सुखमय, मंगलमय हो। एक सुयोग्य स्वस्थ वर के साथ उसका विवाह भी कर दिया गया।

परन्तु कुछ वर्ष या महीनों की कौन कहे। कुछ दिनों के बाद ही वह विधवा हो गई। इस दुर्घना से उन्हें जितना भी शोक हो सकता था उससे हजार गुना अविश्वास फलितशास्त्रों पर हो गया। उसी दिन उन्होंने सारे फलित शास्त्रों और पञ्चाङ्गों को एक सन्दूक में बन्द कर दिया और साथ ही फलितादेश का धन्धा भी।

उन्होंने सोचा कि फलित शास्त्रों के आधार पर स्वयं मैं अपनी प्राण-प्यारी एकलौती बेटी का भविष्य भी ठीक ठीक नहीं जान सका और धोखा खा गया उन से दूसरों के भविष्य का पता लगाने का दावा मैं कैसे कर सकता हूँ ?

इस प्रकार फलित शास्त्रों पर सदा के लिए ताला लगा कर उन्होंने अपनी जिस ईमानदारी का परिचय दिया है उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र तो बन ही गए हैं दूसरे फलित शास्त्रियों के लिए भी एक आदर्श पेश कर गए हैं"। फलित के अन्धविश्वास पृ० १०७ से

यदि संग्रह करें तो इस प्रकार की घटनाएं सहस्रों नहीं लाखों निकलेंगी।

गजनी के सुलतान महमूद ने भारत पर लगातार १७ आक्रमण किए जहां-जहां गया भारतीयों को=मुस्लिमेतरों को तलवार के घाट उतार

दिया। मन्दिरों को तोड़ता, नगरों को लूटता और अग्नि लगाता गया। सैकड़ों भारतवासियों को दास बनाकर गजनी के बाजारों में तीन २ पैसे में बेच दिया। अन्तिम वार विक्रमी संवत् १०८१ में उसने काठियावाड़ के प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर पर आक्रमण किया। "जब महमूद गजनवी" आकर लड़ा था तब यह चमत्कार हुआ कि उसका मन्दिर तोड़ा गया और पुजारी भक्तों की दुर्दशा हो गई और लाखों फौज दशसहस्र फौज से भाग गई। जो पोप पुजारी पूजा, पुरश्चरण, स्तुति, प्रार्थना करते थे कि हे महादेव इस म्लेच्छ को तू मार डाल हमारी रक्षा कर और वे अपने चेले राजाओं को समझाते थे कि "आप निश्चिन्त रहिए" महादेव जी भैरव अथवा वीरभद्र को भेज देंगे वेसब म्लेच्छों को मार डालेंगे वा अन्धा कर देंगे। अभी हमारा देवता प्रसिद्ध होता है। हनुमान्, दुर्गा और भैरव ने स्वप्न दिया है कि हम सब काम करदेंगे।" वे विचारे भोले राजा और क्षत्रिय पोपों के बहकाने से विश्वास में रहे। कितने ही ज्योतिषी पोपों ने कहा कि अभी तुम्हारी चढ़ाई का मुहूर्त नहीं है। एक ने आठवां चन्द्रमा बतलाया। दूसरे ने योगिनी सामने दिखलाई, इत्यादि बहकावट में रहे। जब म्लेच्छों की फौज ने आकर घेरलिया तब दुर्दशा से भागे, कितने ही पोप, पुजारी और उनके चेले पकड़े गए। पुजारियों ने यह भी हाथ जोडकर कहा कि तीन क्रोड़ रुपया लेलो मन्दिर और मूर्ति मत तोड़ो। मुसलमानों ने कहा कि 'हम बुतपरस्त नहीं किन्तु बुत शिकन अर्थात् बुतों के तोड़ने वाले (मूर्तिभंजक) हैं।' जाके झट मन्दिर तोड़ दिया। जब ऊपर की छत टूटी तब चुम्बक पाषाण पृथक् होने से मूर्ति गिर पड़ी। जब मूर्ति तोड़ी तब सुनते हैं कि अठारह क्रोड़ के रत्न निकले। जब पुजारी और पोपों पर कोड़े पड़े तब रोने लगे। कहा कि कोप बतलाओ। मार के मारे झट बतला दिया। तब सब कोष लूट मार कूटकर पोप और उनके चेलों को गुलाम बिगारी बना पिसना पिसवाया, घास खुद-वाया, मलमूत्रादि उठवाया और चना खाने को दिया।। स० प्र० ११ समु० से

"बख्तियार खिलजी ने बङ्गाल पर चढ़ाई की। वहां का राजा ज्योतिषियों का अन्धभक्त था। बिना उन्हें पूछे वह पत्ता भी नहीं तोड़ता था। यह जानकारी खिलजी को मिल गई। उसने राज्यज्योतिषियों को गहरा रिश्वत देकर अपने पक्ष में मिला लिया। उसने कह दिया अभी लड़ने का मुहूर्त नहीं, लड़ेंगे तो हार जायेंगे। राजा कोई और उपाय न देखकर राज्य छोड़कर चुपचाप भाग गया और बख्तियार खिलजी बिना लड़ाई किए ही बङ्गाल का राजा बन गया।" नवग्रहसमीक्षा पृ० ३८ से

मुहूर्तों के नाम से कई शुभकर्म टल जाते हैं। कई सुविधाओं को केवल मुहूर्त की सुविधा के नाम से इच्छा न होने पर भी छोड़ना पड़ता है और अनेक सुविधाओं वा समस्याओं को मोल लेना पड़ता है। जैसा देखिए विशेष करके विवाहों के मुहूर्त ग्रीष्म ऋतु में होते हैं। उन दिनों, क्यों कि एक ही मुहूर्त पर समस्त भारत में लाखों विवाह होते होंगे। निश्चित समय को छोड़कर विवाह कर ही नहीं सकते। तब वस्तुओं का भाव बढ़ना स्वाभाविक है, विवाह कराने वालों (पुरोहितादि) का भी भाव बढ़ जाता है उनका अकाल भी पड़ जाता है। पण्डित के बिना विवाह हो नहीं सकता। पण्डित की जितनी समस्या रहती उससे कई गुना बाजे वाले वा मजदूरों की न्यूनता होती है। सामान, स्थल और यानादि की भी बड़ी समस्या होती है। गर्मियों में जब लम्बी यात्रा हो तब क्या स्थिति होती होगी इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। मुख्य बात है कि अपने इष्ट, मित्र और बन्धुओं का विवाह देखने का सौभाग्य कइयों को नहीं मिल पाता। क्यों कि उनके घर में विवाह और इनके घर में भी विवाह, कौन किस के यहां जावें आवें ?

अपनी सुविधा के समय मुहूर्त नहीं मिलता और मुहूर्त के समय अपने को सुविधा नहीं होती तथापि सब सुविधा, धर्म-कर्म आदि की आहुति देकर मुहूर्त देवता के पीछे हाथ बांधे अपराधी के समान खड़ा होना पड़ता है।

क्रय और विक्रय में मुहूर्त अलग २ हैं। क्रय करने के मुहूर्त में विक्रय और विक्रय करने के मुहूर्त में क्रय नहीं करना चाहिए। मुहूर्त के अनुसार यदि दुकानदार और ग्राहक दोनों ही मुहूर्त देखकर बेचना और खरीदना चाहें तो क्या एक दिन का व्यवहार भी चलेगा ? खरीदने के मुहूर्त में खरीदने वाले को लाभ होगा बेचने वाले को लाभ नहीं होगा तब बेचने वाला क्यों बेचेगा ? बेचने के मुहूर्त में बेचने वालों को लाभ होगा खरीदने वालों को नहीं। जब खरीदने वाला खरीदना ही नहीं चाहेगा तो बेचने वाला कैसे बेचेगा ? बेचने वाला भी मुहूर्त देखकर बेचना चाहेगा जिससे अधिकाधिक लाभ होगा उसके लिए पोप जी के पास जाना ही पड़ेगा अथवा पोप जी का पञ्चाङ्ग वा मुहूर्त की पोथी खरीदनी ही पड़ेगी। उधर ग्राहक मुहूर्त के अनुसार ही मूल्य लेना चाहेगा। जिससे उसका अनिष्ट न हो इसके लिए मुहूर्तों के प्रजापति के पास ही जायेगा। पञ्चाङ्ग मूल्य लेगा वा मुहूर्त की पुस्तक को मूल्य लेगा। तब पोप जी का व्यापार चलेगा। घर बैठे २ मालामाल हो जायेंगे। व्यापारी सब छोटे-छोटे व्यापारी, और पोप जी बड़े व्यापारी। अपने जाल में फँसाने के लिए ऐसे २ ग्रन्थ रचे

ऐसी २ बातें चला दीं जिनका न कोई प्रमाण न कोई हेतु। धनार्जन करने के लिए पुरुषार्थ, संयम, विवेक, जागरूकता, सच्चरित्रता, सत्य वा प्रियभाषण, धार्मिकता और अनालस्यादि सुगुण मिट्टी में मिल गए अथवा यह कह दीजिए 'पोप जी ने लोप कर दिया'। लगे मुहूर्त पर मुहूर्त घड़ २ कर कागज काले करने, प्रचार करने और करवाने। फिर क्या था ब्राह्मणत्व तो जन्मसिद्ध है और 'ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः' प्रमाण भी मिल गया। अब पोप जी का बन पड़ा जो भी लिखो वा बोलो सब प्रमाण, सब ही आप्तवाक्य और पत्थर पर खिंची हुई रेखाएं। इससे यह स्पष्ट हुए बिना नहीं रह सकता कि यह सारी चतुर मनुष्यों की धन-हरण करने की लीला है।

मुहूर्तवादियों से कुछ प्रश्न

१. मुहूर्त क्या है और उसका क्या अर्थ है ?

२. मुहूर्त का प्रारंभ कब से हुआ और क्यों ? उसका प्राचीनतम ग्रन्थ कौन सा है ?

३. मुहूर्त शुभाशुभ किस रूप में हैं, उपपत्ति वा प्रमाणपूर्वक बताइए।

४. क्या मुहूर्तों के शुभाशुभ होने में चार वेद, छः शास्त्र, और दस उपनिषदों में कहीं कोई प्रमाण है ? हो तो बतलाइए।

५. ऐसा कोई मुहूर्त का ग्रन्थ है जिसकी आद्योपान्त प्रत्येक बात की सिद्धि करके बतला सकें अर्थात् जिसकी सोपपत्तिक व्याख्या हो ?

६. बिना किसी कार्य के शुभमुहूर्त लाभ और अशुभ मुहूर्त हानि पहुँचा सकता है अथवा नहीं ? किस प्रकार ?

७. यदि मुहूर्त अच्छे होते हैं तो स्वयं फलितज्ञ अच्छे मुहूर्त में मालामाल क्यों नहीं होते ? बेचारे भोले लोगों को मुहूर्त के नाम से बहकाकर क्यों लूटते और अच्छे मुहूर्त में कर्म करके सफल क्यों नहीं होते ? अशुभ मुहूर्त में करके घाटा क्यों उठाते ?

८. फलित को मानने वाले मरणासन्न स्थिति में अच्छे से अच्छे मुहूर्त में स्वयं प्राणांत करके उच्च वा परमगति को क्यों नहीं प्राप्त करते ?

९. मुहूर्त शुभाशुभ हैं अथवा शुभाशुभ के सूचक हैं ? यदि शुभाशुभ हैं

तो वे व्यापक होने से शुभ में सब का शुभ और अशुभ में अशुभ होना चाहिए। यदि सूचक मात्र हैं तो मुहूर्त हो अथवा न हो तो भी शुभाशुभ होकर रहेगा। यदि शुभाशुभ सूचकमात्र हैं तो सूचना को बदलने मात्र से कार्य तो रुकेगा नहीं जैसे कि मृत्युवार्ता लाने वाले वा पत्र वाहक को रोकने से वा पत्र को फाड़ने से मृत मनुष्य जीवित नहीं हो जायगा। यदि सूचक है तो इस को देख २ कर कार्य करने की आवश्यकता ही नहीं क्यों कि होनी को कोई भी रोक नहीं सकता। यह भी तब जब कि ठीक-ठीक गणित करके मुहूर्त को जान लें। फलितवादियों में कितने ऐसे हैं जो पञ्चाङ्ग को बनाकर मुहूर्तों को देखते हों। बहुत सारे लोगों को पञ्चाङ्ग देखना भी नहीं आता। हमारे पञ्चाङ्ग भी तो भूलों का पुलिन्दा हैं जिनमें तिथि, नक्षत्रों की, घण्टों की भूल रहती है। इस गड़बड़ी से कौन बचेगा? जब सूचक ही हैं तो उस अनिष्ट से बचने के लिए जप, पूजा और पाठादि क्यों?

१०. शुभमुहूर्त में एक के घर में विवाह हो रहा है तो उसके पड़ोसी के घर में उसी मुहूर्त में चोरी क्यों होती है?

११. मुहूर्त बड़ा है अथवा सत्कर्म बड़ा? सप्रमाण बतलाइए कि वा आपेक्षिक हैं अथवा इन दोनों का समवाय सम्बन्ध है?

१२. शुभकर्म अपने में निरपेक्ष हैं अथवा सापेक्ष?

१३. यदि कोई सदा शुभकर्म ही करता जाय और मुहूर्त को देखे ही नहीं तो उसको सुख मिलेगा वा दुःख? यदि सुख मिलता है तो मुहूर्त की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि दुःख मिलता है तो मुहूर्त जब मनुष्य का बनाया नहीं तो दुःख क्यों मिला?

१४. कर्मसिद्धान्त सत्य है अथवा तद्विरुद्ध मुहूर्तवाद सत्य है? क्यों कि एक विषय में परस्पर विरुद्ध दोनों बातें सत्य नहीं हो सकतीं।

१५. कन्या और युवक १६ और २५ वर्ष के वयस्क हैं। स्वास्थ्य सुवैद्यों द्वारा प्रमाणित, दोनों विद्यावान्, सदाचारी, परस्पराभिलाषी, दोनों के माता-पिता सहमत हैं, देशकाल परिस्थिति सब अनुकूल हैं किन्तु उनके पास समय परिमित है। उसमें विवाहार्थ शुभमुहूर्त नहीं मिल रहा है। तब विवाह को स्थगित करें अथवा मुहूर्त को छुट्टी दे देवें और क्यों?

१६. अशुभमुहूर्त में कियाहुआ शुभकार्य सफल होता है वा नहीं? और क्यों?

१७. शुभमुहूर्त में कियाहुआ अशुभकार्य सफल होता है वा नहीं? और क्यों?

१८. प्रयत्नपूर्वक दुर्मुहूर्त में विवाहित दम्पती निरापद क्यों हैं? और गुणों से युक्त सुमुहूर्त में विवाहित क्यों नष्टभ्रष्ट हो गए?

१९. चरक, एवं सुश्रुत में मुहूर्त में संस्कार करने का विधान है क्या? यदि है तो कहां? यदि नहीं है तो क्यों नहीं? कारण क्या है?

२०. मारणाभिचारादि दुष्कर्म करने के लिए मुहूर्त का विधान किस लिए किया? क्वचित् ये ग्रन्थ मारणमोहनअभिचारादि कर्म करने के लिए तथा ऐसे कर्म करने वालों के द्वारा तो नहीं बनाए गए?

२१. मुहूर्त के पुस्तकों में परस्पर विरोध क्यों है?

२२. अशुभ मुहूर्त में होने वाले जन्म को क्यों नहीं रोकते? जैसे इसको नहीं रोक सकते वैसे अन्य बातों को भी नहीं रोक सकते। तब तुम क्यों प्रायश्चित्तों का विधान करते हो?

२३. घर जले घड़ी में, नौ घड़ी भद्रा* का क्या अर्थ है।

२४. भोजन करने के लिए भूख को देखना चाहिए वा मुहूर्त को?

२५. धूम्रयान पर जाने के लिए समयसारिणी देखी जाय अथवा मुहूर्त देखा जाय।

२६. मुहूर्त को मानें तो परीक्षा में नहीं जा सकता, परीक्षा में जावें तो मुहूर्त को छोड़ना पड़ता है तो किस को अपनावें और किसको छोड़ देवें?

२७. सर्प ने काट खाया हो तब औषधि के लिए मुहूर्त देखें अथवा मुहूर्त को ठुकराकर औषधि का प्रबन्ध करें? क्यों? दुर्मुहूर्त में ली हुई औषधि क्या हानिकारक नहीं होगी? यदि मारक नहीं होगी, हानि नहीं पहुँचेगी तो दुर्मुहूर्त में किए अन्य कार्यों में क्या हानि होगी?

२८. यात्रा पर जाना है। जब यान है तब शुभ मूहूर्त नहीं, जब शुभ मुहूर्त है तब यान नहीं है। यान को छोड़ वा मुहूर्त को?

२९. जिस मुहूर्त में स्वाध्याय का विधान है क्या उससे भिन्न समय में स्वाध्याय नहीं करना चाहिए? यदि करते हैं तो क्या २ हानियां हैं? प्रमाण-पूर्वक बताइए। यदि कर सकते हैं तो मुहूर्त क्यों?

---

*यह एक करण है जो तिथि का आधा भाग है।

३०. मुहूर्त का कौन सा स्वतन्त्र प्रयोजन है ?

३१. मुहूर्त को ही सर्वस्व मानकर मनुष्य अकर्मण्य हो जाता है। इस अकर्मण्यता को रोककर पुरुषार्थी, आत्मविश्वासी बनाने के लिए फलित वालों के पास क्या उपाय है ?

३२. क्या आत्मविश्वासी को मुहूर्त देखना चाहिए ? मुहूर्त को देखने वाला क्या आत्मविश्वासी हो सकता है ? सप्रमाण बतलाइए।

३३. फलित को धन्धा न मानकर विद्या मानने वाले कितने लोग हैं ?

३४. परमात्मा ने अशुभ मुहूर्त बनाये ही क्यों ? परमात्मा ने ही यह बतलाया कि कौन मुहूर्त शुभ और कौन अशुभ अथवा यह आप का ही अनुसन्धान है ? सप्रमाण बतलाइए।

३५. कर्म सिद्धान्त का तथा मुहूर्त का सामञ्जस्य क्या है ? जब दोनों में विरोध हो तो किसको छोड़ें और किसको अपनावें ? मुहूर्त को देखें वा कर्म को और किस प्रकार ?

३६. कर्म की सफलता में, मुहूर्त निमित्तकारण है, उपादान कारण है वा साधारण कारण है किं वा कोई अन्य कारण है ? प्रमाण एवं युक्तिपूर्वक सिद्ध करें।

३७. किसी दार्शनिक अथवा आत्मविश्वासी, किं वा विचारक ने इसको माना हो अथवा प्राचीनकाल में कहीं यह व्यवहार में रहा हो तो घटनापूर्वक बतलाइए।

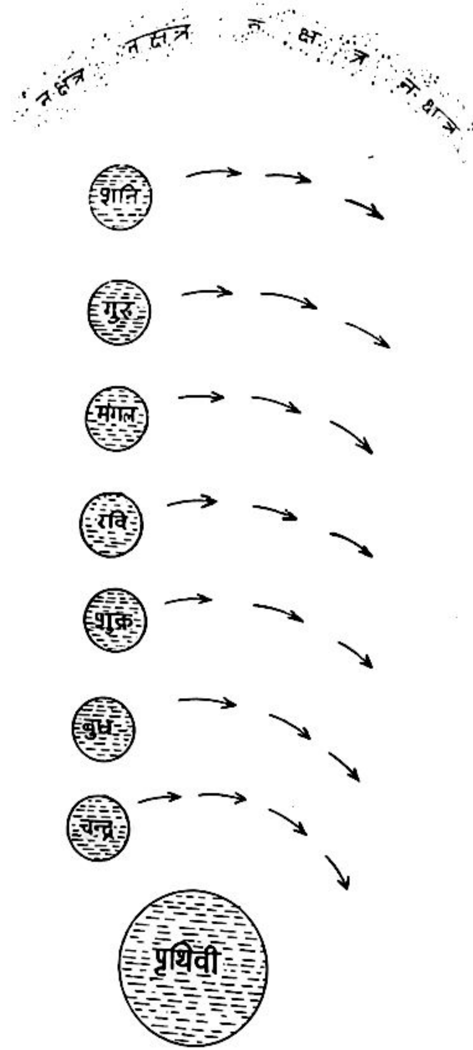
३८. इसको न मानने से किस प्रकार असफलता होती है बतलावें ?

३९. मुहूर्तों की चिन्ता में रहने वाला क्या कभी क्या तत्ववेत्ता और पुरुषार्थी बनेगा ?

४०. मुहूर्तों के पीछे चलने से जो अपरिहार्य हानि हुई है उसका कौन उत्तरदायी है ? इनसे जनसामान्य में जो अकर्मण्यता छाई हुई है उसको कौन कैसे दूर करेगा ?

अथ सप्तमसमुल्लासः

अथ वारान् व्याख्यास्यामः।



अब मुहूर्त के पश्चात् वार पर विचार करते हैं। वार सात हैं। ये

ग्रहों के संस्थान के अनुसार बनाए गए हैं। जैसा कि—अहोरात्र में २४ होरा होते हैं। एक २ होरा का अधिपति एक २ ग्रह होता है। क्रमशः सातों ग्रह होरेश होते हैं। तीन वार आवर्तन होने के पश्चात् ३ होरा शेष रह जाते हैं। क्रमशः तीनों के तीन अधिपति होने के पश्चात् चौथा ग्रह अगले दिन के प्रथम होरे का स्वामी बन जाता है। प्रथम होरे का जो अधिपति होता है वही उस दिन का अधिपति होता है। उस अधिपति के नाम से ही वह दिन व्यवहृत होता है। इसको सूर्यसिद्धान्त में लिखा है—

मन्दादधः क्रमेण स्युश्चतुर्था दिवसाधिपाः।

शनि से लेकर नीचे २ का चतुर्थग्रह दिन का अधिपति होता है। प्रथम दिन का शनि अधिपति है तो दूसरे दिन का उससे चतुर्थ रवि स्वामी बनता है। उससे चौथा चन्द्र तीसरे दिन का। तत्पश्चात् चन्द्र से चतुर्थ मंगल। इसी प्रकार आगे सात वार बनते हैं। यह वारों का उत्पत्ति क्रम है और निमित्त है।

सात वारों के भिन्न २ फल कहे गए हैं, ये सारे श्लोक अथर्ववेदीय ज्योतिष से दिए जाते हैं।

नृपाभिषेकं नृपतिप्रयाणं नृपस्य कार्यं नृपदर्शनं च।
यच्चाग्निकार्यं भुवि किञ्चिदुक्तं तत्सर्वमादित्यदिने प्रशस्तम् ॥ ६॥

अर्थ—राजा का अभिषेक, राजा की यात्रा, राजा का कार्य, राजा का दर्शन, अग्नि का कार्य आदि रविवार के दिन करना चाहिए।

समी०—अब तो राजा ही नहीं है। राजा का दर्शन, उनका कार्य वा अभिषेक यह सब विधान व्यर्थ है। अग्निकार्य का क्या अर्थ है यह श्लोक-कर्त्ता को ही पता होगा। यदि अग्नि का अर्थ हवन अग्निहोत्रादि है तो 'यह वेदविरुद्ध है। क्योंकि 'होममन्त्रेषु चैव हि' मनु० २। १०५॥

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता ॥१॥
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनसस्य दाता ॥२॥
अथर्व० १९। ५५। ३,४॥

वेदों वा धर्मशास्त्रों में दैनिक अग्निहोत्रादि का विधान है। यह नित्य कर्म है। इस श्लोक को माने तो अग्निहोत्रादि शुभकर्म रविवार के दिन ही कर सकेंगे शेष दिनों में नहीं। यदि सभी दिनों में कर सकते होते तो रविवार का विधान व्यर्थ है। इस प्रकार शुभ कर्म छोड़ने पड़ेंगे। इसको मानने के

कारण छोड़ ही बैठे हैं। इसलिए यह श्लोक वेदविरुद्ध है।

पानं रसानां मधुसोमपानं सौभाग्यकर्माण्यनुलेपनानि।
क्षेत्रेऽथ बीजानि वपेत वृक्षाः सोमस्य कुर्याद्दिवसे विधिज्ञः ॥६५॥

अर्थ—रसों का पीना, मधुपान तथा सोमपान सौभाग्यकर्म, अनुलेपन, क्षेत्र में बीज बोना, वृक्षों को लगाना सोम के दिन करें।

समी०—सौभाग्य कर्म का क्या अर्थ है यह व्याख्येय है। क्या सौभाग्यकर्म प्रतिदिन करना उचित नहीं है? चन्दनाद्यनुलेपन सोमवार के दिन ही करे। मङ्गलवार के दिन क्या कीचड़ का अनुलेपन करे? सोमवार से भिन्न दिनों में यदि बीज बोवें तो उगेंगे नहीं अथवा पाप लगेगा? सोम-वार में क्या विशेष है? एक दिन का अन्तर होने पर ही बोने में हानि होती है तो अगले सोमवार तक रुकने में कितनी हानि होती है, श्लोककर्त्ता को इसका पता नहीं, किसानों को पता है। पानं रसानां कहने के पश्चात् मधु-सोमपानं कहने से क्या पुनरुक्त नहीं होगा?

भेदाभिघातो नगरे पुरे वा सेनापतित्वं च तथैव राज्ये।
व्यायामशस्त्राभ्यसनं च चौर्यं भूमेः सुतस्या हि सदा प्रशस्तम् ॥६६॥

अर्थ—नगर अथवा पुर में जब भेदनीति से कार्य करना हो, राज्य में सेनापति का पद ग्रहण करना हो, तब मंगलवार को करें और इसी प्रकार व्यायाम, शस्त्राभ्यास और चोरी आदि कार्य भी मंगलवारको करना चाहिए।

समी०—भेदनीति का कार्य, सेनापतित्व अन्य वारों में क्यों न करें? व्यायाम प्रतिदिन करना चाहिए यह प्रत्येक बुद्धिमान् जानता है। किन्तु क्या कहें इस श्लोक कर्ता को जिसने सत्कर्मों का विनाश करना ही अपना धर्म समझ रखा है। शस्त्राभ्यास भी दैनिक कर्तव्य है। 'अनभ्यासे विषं विद्या' के अनुसार सदा अभ्यास करना चाहिए। अन्यथा विद्या विष के समान बन जाती है।

वाह जी वाह! आपने चोरी का भी आदेश किया। यह ठीक है जो चोर होता है वही चोरी को अच्छा समझता है। चोरी के लिए शास्त्र बनाने वाला महाचोर क्यों नहीं है?

द्यूतं प्रवेशो रणकारणार्थं कन्याप्रियार्थं रिपुसन्धिकार्यम्।
भिन्नेऽथमैत्रं प्रतिसन्धिकार्यं क्षिप्रं प्रशंसन्ति दिने बुधस्य ॥६७॥

अर्थ—जुआ खेलना, युद्ध करना, कन्या के विवाहादि का निश्चय

करना, शत्रु एवं रूठे हुए मित्रों से सन्धि कार्य करना आदि कार्य बुधवार को शुभकारक होते हैं।

समी०—यह श्लोक किसी जुआरी का लिखा हुआ होगा। जुआ खेलना (अक्षैर्मा दीव्यः=जुआ न खेलना) वेद के विरुद्ध होने से दुष्कर्म है। सदाचारी इस प्रकार लिख नहीं सकता, क्या बुधवार से भिन्न दिन युद्ध नहीं करना चाहिए? सन्धि का बुधवार का क्या सम्बन्ध है? धन्य हो महाराज! आपको सेनापति, रक्षामन्त्री बनाया जाए तो देश की स्वतन्त्रता को बेचकर बैठे २ पेट भर लेंगे। शत्रुओं ने आक्रमण किया है। जैसा भी बने देश, धर्म की रक्षा के लिए लड़ने के स्थान पर पोपजी को क्या सूझा, देखलें। ऐसे ही लोगों ने देश को कायर आत्मविश्वासहीन पराधीन बनाया। भला शत्रु घर में घुस गया और हम बुधवार की प्रतीक्षा में बैठे रहें? बुधवार के नाम से स्वयं बुद्धिहीन होकर दूसरों को बुद्धिहीन बनाना है। सन्धि का बुधवार से तुक कैसे बना, यह वे स्वयं जानते होंगे। कन्या विवाह के साथ बुधवार का क्या सम्बन्ध है जी? कन्या विवाहादि का निश्चय और सन्धि अन्य दिनों में करना चाहिए अथवा नहीं, क्यों?

स्वाध्यायदेवार्चनवेश्मकर्म संस्कारदीक्षा च तथा यतीनाम्।
वस्त्राणि दाराप्रियभूषणानि कृषिं कुर्याद्दिवगुरोर्दिने च ॥९८॥

अर्थ—अध्ययन, देवार्चन, गृहनिर्माण, संस्कार, संन्यासियों से (की) दीक्षा, वस्त्र, स्त्रियों के आभूषण, कृषि गुरुवार के दिन करे।

समी०—अध्ययन यदि गुरुवार के दिन करे तो अन्य दिनों में क्या उसको भूलते रहें? स्वाध्याये चैव नैत्यिके॥ मनु० २।१०५॥ नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत॥ मनु० ४।१९॥ आदि धर्मशास्त्रों के अनुसार प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिए। किन्तु मूढ मनुष्य को इसका क्या पता? देवार्चन का अर्थ क्या है विद्वानों की सेवा अथवा पाषाण पूजा? यदि विद्वानों की "सुश्रूषा" है तो प्रतिदिन करना चाहिए। यह श्लोककर्त्ता इससे विरुद्ध दन्त खटाखट क्यों करता है? यदि पत्थर की पूजा से अभिप्राय है तो वेदविरुद्ध होने से पाषण्ड है। संस्कारों में कहीं वारों का विधान हो तो बतलावें। वस्त्रक्रयण, आभूषण निर्माण वा क्रयण, कृषिकार्य आदि क्या सप्ताह में एक वा दो दिन ही करने चाहिए? अन्य दिनों में नहीं? यदि अन्य दिनों में भी करना चाहिए तो इस विधान की आवश्यकता क्या है? यदि नहीं करना चाहिए तो अन्य दिनों में किसान लोग क्या करें, हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें? सप्ताह में दो दिन कृषि करें तो खेती कैसे होगी? मनुष्य क्या खाकर जीवित रहेंगे?

अश्वप्रवाहं प्रथमं प्रशस्तं योगप्ररोहो गजरोहणं च।
कन्याप्रदानं क्रयविक्रयौ च तेषां सदा शुक्रदिने प्रशस्तम् ॥९९॥

प्रथम घोड़े पर चढ़ना......हाथी पर चढ़ना, कन्यादान करना, एवं मूल्य लेना, बेचना आदि कार्य शुक्रवार को करना चाहिए।

समी०—घोड़े पर वा हाथी पर चढ़ने का शुक्रवार से क्या सम्बन्ध है? अन्य दिनों में इन कार्यों को करने में क्या आपत्ति है? विवाहसंस्कार के लिए वार का किस गृह्यसूत्रादि में प्रमाण है बतलावे?

क्रयविक्रय यदि सात दिन में एक दिन करे तो व्यापार कैसे चलेगा? मनुष्यों के जीवन का निर्वाह कैसे होगा? व्यापार चले वा न चले पोप जी का पेट भरना चाहिए। ऐसी पुस्तकों को जड़बुद्धि कृत समझना चाहिए।

स्थाप्यं च कर्म ऋतुभिश्च यूपो गृहप्रवेशो गजबन्धनञ्च।
ग्रामेऽथ वासो नगरे पुरे वा शनैश्चरे सर्वमिदं प्रशस्तम् ॥१००॥

अर्थ—स्थापना करना, खम्बे आदि गड़वाना, गृहप्रवेश करना, हाथी का बन्धन, ग्राम, नगर वा पुर में बसना ये सब कार्य शनिवार को करने चाहिए।

सूर्यसूनुदिवसे स्थिरप्रदः किन्तु चोरभयमत्र न विद्यते॥ मुहूर्त दर्पण

अर्थ—शनिवार के दिन गृहप्रवेश स्थिरप्रद है। इस दिन जिस घर में प्रवेश किया जाता है उस घर में कभी चोरी नहीं होती। इतना ही नहीं, चोरों का भय भी नहीं रहता।

समी०—पुर में वास, खम्बे गाड़ने आदि का शनिवार के साथ क्या तुक है? गृहप्रवेशादिकर्म गृह्यसूत्रों का विषय है। उनमें कहीं ऐसा विधान है? मुहूर्त दर्पणकार तो निरा भाट बन गया! उसको लिखते समय यह भी ध्यान नहीं आया कि मैं क्या लिखने लगा? भला ऐसे २ मनुष्यों=लोगों के कारण देश का सर्वविध पतन न होगा तो और क्या होगा? भला शनिवार के गृहप्रवेश से चोरों का भय कैसे मिटेगा? क्या उस दिन ताला न डालकर घर के द्वार खुले रखकर सो सकते हैं? गप्प महागप्प। श्लोक में छन्दोदोष भी है।

वारों को शुभाशुभ कार्यों के साथ चिपकाने का क्या अर्थ? शुभ कार्य तो स्वतः शुभ हैं। उनके लिए किसी और बात की अपेक्षा नहीं है अर्थात् वार की आवश्यकता नहीं है। अशुभ कार्य को करना ही नहीं चाहिए

जब करना ही नहीं तो उसके लिए शुभ दिन का प्रश्न ही नहीं उठता। वार देखने की क्या आवश्यकता है? वारों के शुभाशुभत्व का क्या अर्थ है?

देखिए मुहूर्त दर्पण में लिखा है—

न पूर्वे शनिसोमे च न गुरुर्दक्षिणे तथा।
न पश्चात् भानुशुक्रौ च नोत्तरे बुधमंगलौ॥

अर्थ—शनि और सोमवार के दिन पूर्व दिशा में, गुरुवार दक्षिण दिशा में, रवि तथा शुक्रवार पश्चिम दिशा में और बुध वा मंगल के दिन उत्तर दिशा में यात्रा नहीं करनी चाहिए।

अंगारके प्राग्गमनं च लाभः सौम्ये शनौ दक्षिणमर्थलाभः।
गुरौ बुधे वाग्दिशि कार्यसिद्धिः रवौ भृगौ चोत्तरधान्यलाभः॥

अर्थ—मंगलवार के दिन पूर्व दिशा में जावें तो समस्तलाभ, सोम वा शनिवार के दिन दक्षिण में जावें तो धान्यलाभ, गुरु वा बुधवार के दिन पश्चिम में जाने से कार्यसिद्धि और रवि वा शुक्रवार के दिन उत्तर में जाने से धान्यलाभ होता है।

अर्के क्लेशमनर्थकं च गमनं सोमे च बन्धुप्रियम्
भूजातेऽनलतस्करज्वरभयं प्राप्तव्यमर्थं बुधे।
क्षेमारोग्यमिदं करोति धिषणे शुक्रे च लाभं स्थिरम्
व्याधिभंगमिदं करोति सततमन्ते दिने गम्यता॥

अर्थ—किसी भी दिशा में रविवार के दिन यात्रा करने पर अनर्थ होता है। सोमवार को बन्धुओं से आनन्द होता है। मंगलवार को अग्नि, चोर और ज्वर से भय होता है। बुधवार को कार्यसिद्धि होती है। गुरुवार को क्षेम वा आरोग्य लाभ होता है। शुक्र को स्थिर लाभ होता है। शनिवार व्याधिभंग करता है।

"न पूर्वे" श्लोक के अनुसार रविवार के दिन पश्चिम की दिशा छोड़ किसी भी दिशा में जा सकते हैं। किन्तु "अर्क क्लेश" श्लोक के अनुसार नहीं जा सकते। सोमवार के दिन 'न पूर्वे' श्लोकानुसार पूर्व में नहीं जा सकते किन्तु "अर्के" के अनुसार बन्धुओं से आनन्द लाभ प्राप्त होता है। 'न पूर्वे' के अनुसार मंगल के दिन पूर्व, पश्चिम, दक्षिण में जा सकते हैं। किन्तु अर्के श्लोक के अनुसार नहीं जा सकते। न पूर्वे के अनुसार बुधवार उत्तर में नहीं जाना चाहिए किन्तु अर्के के अनुसार जाने से कार्यसिद्धि होती है। न पूर्वे के अनुसार गुरुवार के दिन दक्षिण में नहीं जाना चाहिए किन्तु अर्के के अनुसार

जाना चाहिए। न पूर्वे के अनुसार शनिवार के दिन पूर्व को छोड़ शेष तीनों दिशाओं में जा सकते हैं किन्तु अर्के के अनुसार नहीं जाना चाहिए।

इस प्रकार की परस्पर विरुद्ध, प्रमाद पूर्ण बातों से फलितग्रंथ भरे हैं।

अर्के क्लेशं श्लोक के अनुसार मंगल के दिन किसी दिशा में यात्रा नहीं करनी चाहिए किन्तु 'अंगारके प्राग्गमनं च लाभः' के अनुसार जाना चाहिए। इससे लाभ होता है।

अर्के क्लेशं के अनुसार शनिवार को दक्षिण दिशा में नहीं जाना चाहिए। अंगारके के अनुसार जाना चाहिए। इस प्रकार की बातों को लिखा जाए तो बड़े २ ग्रंथ बन जायें। यह तो मैंने स्थाली पुलाक न्याय से दिग्दर्शन मात्र के लिए लिखा है।

और भी देखिए—

इन्द्रे दधि यमे तैलं वारुणी गुडमेव च।
उत्तरे क्षीरमाज्यं च वारदोषो न विद्यते॥

पूर्व में यात्रा करनी हो तो दही का, दक्षिण में तैल का पश्चिम में गुड़ का और उत्तर में घी तथा दूध का दान करें। वार जनितदोष नहीं होता।

क्षीरं च भानौ दधि शीतरश्मौ कुजे च माषाश्च बुधे च राजा।
जीवेऽपि चाज्यं भृगुपायसं च मन्दे च वारे तिलपिष्टमाहुः॥

रविवार के दिन दूध, सोमवार दही; मंगलवार उड़द, बुधवार खील, गुरुवार घी, शुक्रवार क्षीर और शनिवार को तिल के आटे का दान करें तो वार जनितदोष दूर हो जाएंगे।

समी०—अब देखिए इन स्वार्थसिन्धुओं की बात कि इनको दान देने से "अनिष्ट दूर होते हैं।" क्या इन्होंने दान लेने का ठेका ले लिया है। क्या जिस २ दिन जो २ शुभ कार्य होते हैं क्या वे इन्हीं लोगों के कारण होते हैं? यदि नहीं, तो विघ्न हानि भी इनके कारण से नहीं हुई, तो इनको दान देने से कैसे लाभ होगा? मान लीजिए पूर्व दिशा में सोमवार को जाना अनिवार्य है किन्तु दिशाशूल है। इसको दूर करने का उपाय है कि पोप जी को दही का दान कर देवें तो दिशाशूल से अब कुछ भी हानि नहीं होगी? क्या जो सोमवार के दिन पूर्व दिशा में सहस्रों व्यक्ति द्विचक्रिका, गन्त्री, अश्वशकट, धूम्रयान, विमान, जलपोत आदि के द्वारा जाते हैं, लाभान्वित होते हैं जीवित रहते हैं, लौटकर आते हैं ऐसा क्यों होता है? यदि इन लोगों को न खिलाकर

स्वयं ही खालें तो क्या आपत्ति है ? ब्राह्मणों (पोपों) को क्यों देवें ? क्या यह उत्कोच (रिश्वत) है अथवा सिफारिश है ? चोट लगे देवदत्त को हल्दी-दूध पिलावे यज्ञदत्त को ? यह क्या चिकित्सा है ? जिन पर अनिष्ट होने वाला है उन्हीं को खिलावें। यदि दही देते हैं तो क्या भविष्य में होने वाले अनिष्ट दूर हो जायेंगे ? यदि होते हों तो किस प्रकार ? दही देशनिमित्तक विपत्ति को दूर करता है अथवा कालनिमित्तक कि वा गमननिमित्तक विपत्ति को ? सोमवार को पूर्व में जाने से अनिष्ट हो वा न हो, अनिष्ट के भय से तो भीरु हो जायगा ही, इससे अवश्य अनिष्ट होगा। देखिए पोप जी ने घर बैठे २ लोगों से माल मारने का कैसा प्रबन्ध रचा है। दिल्ली, मुम्बई जैसे नगर में जहाँ लाखों लोग रहते हैं, प्रतिदिन सहस्रों क्या लाखों व्यक्ति भी यात्रा करते होंगे। यदि न्यूनातिन्यून सहस्र व्यक्ति भी वारदोषजन्य भय निवारणार्थ इन पोपों को दूध, दही आदि देने लग जायें तो विना हाथ पैर हिलाए ये मालामाल हो जायें। इसलिए ऐसी लीला रची।

प्र०—क्यों पोपजी ! सोमवार, बुधवार, गुरुवार और शुक्रवार को तो कोई वारदोष ही नहीं है तो दान का विधान क्यों किया ?

उत्तर—इन सब बातों को कौन सोचता है और हम से पूछता भी कौन है ? यदि कोई पूछ बैठेगा तो हम दाव पेंच तो वहुत जानते ही हैं कुछ न कुछ बतला देंगें। यदि हम ऐसा न लिखेंगे तो हम को खाने को कौन देगा, कौन पूछेगा और हम कैसे आनन्द मनावेंगे ?

किसी नीतिकार ने ठीक लिखा है कि—

स्वार्थी दोषं न पश्यति।

देखिए कोई किसी दिन को शुभ वा अशुभ मानता है तो कोई किसी दिन को।

"—'सांकलवा' जाति में मंगलवार को इतना अशुभ माना जाता है कि इस वार के दिन जन्म लेने वाले सभी शिशुओं की हत्या कर दी जाती है।"

फलित के अन्धविश्वास-पृ० ८५ से

मंगलवार को अशुभ लिखने वाला कोई कसाई हीं होगा और उसको सत्य मानने वाले अन्धे होंगे।

प्र०—सात वार ग्रहों के आधार पर हैं किसी व्यक्ति पर नहीं। इससे सिद्ध है कि फलित सत्य है।

उ०—भोले भाईयो अपनी बुद्धि का कुछ उपयोग क्यों नहीं करते ? यह तो आपने सीधे सादे लोगों को वहकाने और ठगने का ढंग बना लिया। आपका कथन ऐसा ही है कि "हमारे आंगन में नीम का पेड़ है और तुम्हारे आंगन में भी इसलिए हमारे और तुम्हारे पूर्वज एक हैं।" ग्रहों के नाम रखने से सत्य कैसे हुआ ? किसी का नाम ओम्प्रकाश है। वह चोरी में पकड़ा गया। उसके ऊपर अभियोग चलाया जा रहा है। अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए वह यह कह रहा है कि मैं निर्दोष हूँ क्योंकि मेरा नाम ओम्प्रकाश है यह परमात्मा का ही नाम है। मैं भी ओम् के समान सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ, मैं चोरी क्यों करने लगा ? आपका कथन भी ऐसा ही है। आप कभी न्याय दर्शन पढ़ते तो ऐसा नहीं कहते अथवा अपनी निर्बुद्धिता को समझ लेते।

पहले लिख दिया है कि दिन, रात्रि आदि काल मापक साधन हैं। काल न बुरा होता है न अच्छा। शुभ दिन में किया हुआ बलात्कार पाप ही है। अशुभ दिन में किया हुआ परोपकार पुण्य ही है।

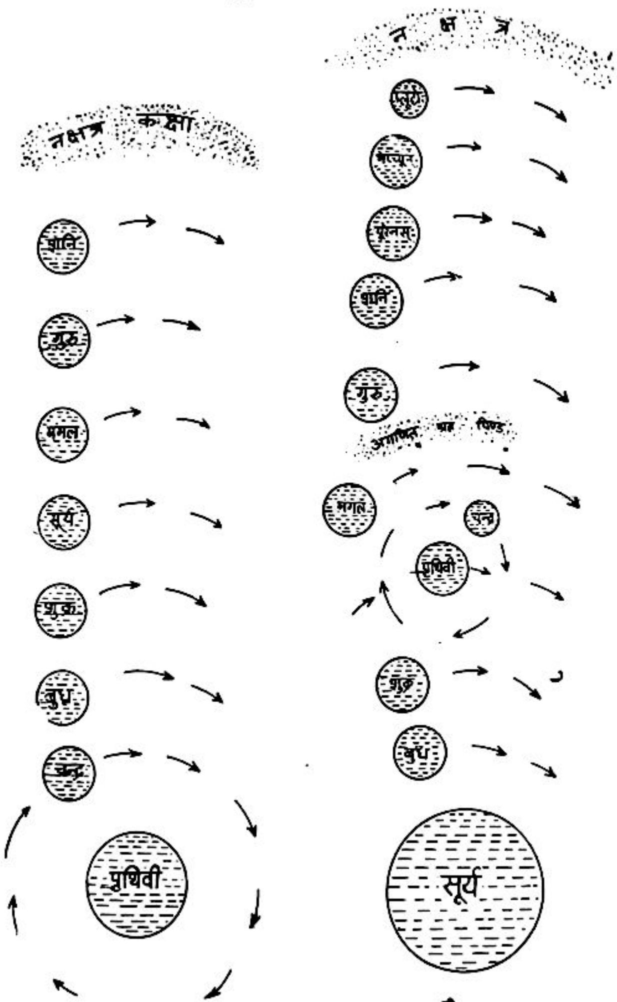
वार को शुभाशुभ मानने से कर्म सिद्धान्त मिथ्या होता है। किसी के घर चोरी हुई हो और चोर पकड़े गए हों। उन चोरों से पूछा जाय कि, "तुम ने चोरी क्यों की ?" तो वे उत्तर देंगे कि वह मंगलवार का दिन था, चोरी का दिन था। हम क्या करते ? इसमें हमारा क्या दोष है ? न्यायविभाग इस का क्या समाधान करेगा ? यदि दण्ड देते हैं तो फलित ग्रंथ मिथ्या ठहर जायेंगे, नहीं देते हैं तो अन्याय अत्याचार बढ़ेंगे।

मुहूर्त की समीक्षा में जो बातें लिखी हैं लगभग वे सब, बातें वार के विषय में भी समझी जाएं। वारों की उत्पत्ति को पहले देखलें।

जिस समय वारों की कल्पना की गई थी उस समय भारत के लोगों में वैदिकधर्म के संस्कार न्यून होते जा रहे थे। पौराणिक अवैदिक विचार जड़ जमाते जा रहे थे। विद्या, विज्ञान लुप्त होता जा रहा था। निराधार कपोल-कल्पित बातों को प्रधानता दी जा रही थी। निराकार ईश्वर को छोड़ उसके स्थान पर अनेक प्रकार के जड़पदार्थों की पूजा प्रारंभ हो चुकी थी। कार्यकारणभाव, तर्क, वितर्क, हेतु, हेत्वाभासों को न समझकर अन्ध-परम्पराएं चलाई जा रही थीं। ऐसी ही परिस्थिति में वारों की कल्पना हुई। जिस समय इनकी कल्पना हुई उस समय लोग पृथिवी को स्थिर तथा सबके मध्य में वर्तमान मानते थे। नक्षत्रादियों के विषय में सुस्पष्ट ज्ञान लुप्त हो गया था। यह नहीं जानते थे कि नक्षत्रादि बड़े २ लोक हैं। भूगोल,

खगोल की जो सूक्ष्म बातें थीं उनको समझने की योग्यता नहीं रह गई थी। जितना कुछ समझते थे वह भी कल्पना प्रधान होने से भ्रान्तियुक्त ही था।

ग्रह संस्थान



मध्य कालीन (भारतीय)   वास्तविक

वास्तव में सूर्य एक २ ब्रह्माण्ड का आधार है। इसके चारों ओर अन्य ग्रह घूमते हैं। जब मूल बात में ही भूल है तो आगे क्या चलेगा? सबके मध्य में पृथिवी को मानकर ऊपर चन्द्र, उससे ऊपर बुध, उत्तरोत्तर, शुक्र, रवि, मंगल, गुरु और शनि को कह दिया। अब सूर्य के स्थान पर भूमि को और भूमि के स्थान पर सूर्य को प्रमाणों से जानकर स्वीकार कर लिया। यह पूर्व पृष्ठ के चित्र से स्पष्ट हो जायगा इस लिए सात वार ही अनुपपन्न हुए। अथवा यह कहना चाहिए, पृथिवीवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार और शनिवार है। किं वा वार सात नहीं किन्तु ४३ हैं तद्यथा—सूर्य, बुध, शुक्र, पृथिवी, मंगल, गुरु, शनि, यूरेनस्, नेप्च्यून्, प्लूटो, पृथिवी का एक चन्द्र, मंगल के दो, गुरु के तेरह, शनि के दश, यूरेनस के पांच और नेप्च्यून के दो चन्द्र सब मिलकर न्यूनातिन्यून ४३ होते हैं और भी होंगे पूर्ण रूप से गिनना चाहें तो गिना भी नहीं जा सकता। सात वार बनाने का आधार कल्पना के अतिरिक्त और क्या है?

अब २४ होरा का क्या अर्थ है? होरा के अतिरिक्त ६० घटियां भी मान सकते हैं वा नहीं? होरापति किस रूप में है? होरा काल होने से काल का स्वामी सूर्य है न कि चन्द्र और मंगल आदि।

यह वार उत्तरी ध्रुव पर हैं हो नहीं। चन्द्रमा पर भी नहीं हो सकते। अन्य कहीं भी नहीं है। अपनी २ सुविधा वा इच्छा के अनुसार काल का व्यवहार होता है। इन सातवारों की गणना आदिकाल की नहीं है। वेद, उपवेद, ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद्, वेद के छः अङ्ग, छः शास्त्र, रामायण, महाभारत और विशेष रूप से वेदाङ्ग ज्योतिष में कहीं भी सातवारों का व्यवहार देखने में नहीं आया। सर्वत्र वर्ष, मास, और तिथियों का ही व्यवहार देखने को मिलता है।

भारतीय ज्योतिष के मर्मज्ञ तथा एतच्छास्त्रीय इतिहास में कृतभूरि-परिश्रम, विद्वान् श्री पं० शंकरबालकृष्ण दीक्षित "भारतीय ज्योतिष" ग्रन्थ में वारों के सम्बन्ध में लिखते हैं कि—"वारों की उत्पत्ति हमारे देश में नहीं हुई है क्योंकि उनकी उत्पत्ति का सम्बन्ध होरानामक पदार्थ से है जो कि हमारे देश का नहीं है।" साथ ही साथ इसके सम्बन्ध में एक और भी बड़े महत्त्व की बात है। पहले बता चुके हैं कि होराधीश शनि, गुरु, भौम, इत्यादि क्रम से माने जाते हैं, अतः जिसने होराधीश निश्चित किए होंगे उसे पृथिवी की प्रदक्षिणा करने वाले ग्रहों का चन्द्र, बुध, शुक्र इत्यादि क्रम ज्ञात रहा होगा अर्थात् उसे ग्रहगति का उत्तम ज्ञान रहा होगा। ज्योतिष के

प्राचीन इतिहास में यह बात बड़े महत्त्व की है। हमारे ज्योतिष गणित ग्रन्थों में ग्रहगति सूर्य, चन्द्रमङ्गल इत्यादि वारों के क्रम से लिखी है चन्द्र, बुध, शुक्र इत्यादि कक्षा क्रम से नहीं। वारों का प्रचार होने से पहले यदि गत्यनुसारी ग्रहक्रम का ज्ञान रहा होता तो हमारे आचार्य ग्रहगति सूर्य, चन्द्र इत्यादि क्रम से नहीं बल्कि चन्द्र, बुध, शुक्र इत्यादि क्रम से लिखते पर उन्होंने ऐसा नहीं किया है। ग्रहक्रम का ज्ञान होने के पहले से हमारे मन में समाया हुआ वारक्रम का महत्त्व कि बहुना पूज्यत्व ही इसका कारण है। दूसरे यह कि ज्योतिष संहिता ग्रन्थों में ग्रहचार प्रकरण में ग्रहों का वर्णन सूर्य, चन्द्र, मङ्गल इत्यादि क्रम से ही रहता है। कुछ संहिताग्रन्थ सूर्यसिद्धान्तादि गणित ग्रन्थों से प्राचीन हैं और वारोत्पत्ति के लिए जितने ज्ञान की आवश्यकता है उतना उनमें नहीं दिखाई देता। इन दोनों हेतुओं से होरानामक कालविभाग हमारे देश का नहीं है। इस बात से यह सिद्ध होता है कि वार हमारे देश में नहीं उत्पन्न हुए हैं।

उपर्युक्त कथन में यह भी गर्भित है कि यदि हमने गत्यनुसारी ग्रहक्रम का ज्ञान स्वयं प्राप्त किया हो तो भी हमसे पहिले परदेशी उसे प्राप्त कर चुके थे।

सम्प्रति भूमण्डल में जहाँ जहाँ वार प्रचलित हैं सर्वत्र सात ही हैं और उनका क्रम भी सर्वत्र एक है। अतः वारों की उत्पत्ति किसी एक ही स्थान में हुई होगी। किसी यूरोपियन विद्वान् ने उनका उत्पत्ति स्थान मिस्र और किसी ने खाल्डिया बताया है। कनिंघम का कथन है कि "डायन काशिग्रस (सन् २०० ई०) ने लिखा है कि वारों की पद्धति मिस्र देश की है, पर मिस्र के लोग सात दिन के सप्ताह द्वारा मास का विभाग नहीं करते थे, बल्कि वे एक २ भाग दस-दस दिन का मानते थे" इससे कहा जा सकता है कि वारों का उद्गम स्थान मिस्र नहीं है पर वहाँ की प्राचीन लिपि और प्राचीन भाषा में निष्णात रेनुफ नामक विद्वान् ने अपने सन् १८९० ई० के ग्रन्थ में लिखा है कि मिस्रदेश में अहोरात्र का होरा या होरस् देवता मानते थे। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन मिस्र में होरा शब्द और वह कालविभाग प्रचलित था, अतः वहाँ वारों की उत्पत्ति की भी सम्भावना हो सकती है। आजकल होरा शब्द ग्रीक माना जाता है, परन्तु हिराडोटस (ई० पू० ५ वीं शताब्दी) का कथन है कि वह काल विभाग ग्रीकों को वस्तुतः बाबिलोन अर्थात् खाल्डिया से ही मिला है। पहले गत्यनुसारी ग्रहक्रम का ज्ञान खाल्डिया और मिश्र दोनों में से किसी एक को था या नहीं, यदि था तो किसे था और पहले

किसे प्राप्त हुआ इसका पता नहीं लगता। अतः वारों का उत्पत्तिस्थान निश्चयपूर्वक नहीं बताया जा सकता। संभव है कि उनकी उत्पत्ति ग्रीस में हुई हो। परन्तु यह निश्चित है कि उनका उत्पत्तिस्थान इन तीनों देशों के अतिरिक्त अन्य नहीं है। अन्य देशों में वार का प्रचार कब से है इसके विषय में कनिंघम ने लिखा है कि "(रोमन) टिब्युलस ने ईसवी पूर्व २० में शनिवार का उल्लेख किया है और जुलिअस फण्टिनस (सन् ७०—८० ई०) ने लिखा है कि जरुसलेम शनिवार को लिया गया इससे ज्ञात होता है कि रोमन लोगों ने ईसवी सन् के आरम्भ के आसपास वारों का व्यवहार आरंभ किया था। परन्तु उसके लगभग अथवा उस के पूर्व ही ईरानी और हिन्दुओं को वार ज्ञात हो चुके थे। सेलसस ने जो अगस्टस (ई० पूर्व० २७) और टायबेरिअस नामक रोमन राजाओं के राज्यकाल में था, लिखा है कि ईरान के मन्दिर में ७ ग्रहों के नाम के दरवाजे थे और वे उन्हीं धातुओं और रंगों से बनाये गए थे जो कि उन ग्रहों को प्रिय हैं।"

हमारे देश में अब तक अनेकों ताम्रपत्र और शिलालेख मिले हैं। उनमें वारों के प्रयोग का प्राचीनतम उदाहरण शक ४०६ का है। मध्यप्रान्त के एरन नामक स्थान में एक खम्बे पर बुधगुप्त राजा का गुप्तवर्ष १६५ अर्थात् शक ४०६ आषाढ़ शुक्ल १२ गुरुवार का एक शिलालेख है। सम्प्रति इससे प्राचीन ज्योतिष का ऐसा कोई भी पौरुष ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है जिसके लेख से यह विदित होता हो कि सचमुच वह शक ४०६ से प्राचीन है।" पृ० ५१९ से

वारों की गणना खगोल शास्त्र के विरुद्ध वा अल्पबुद्धियों से कल्पित है। किसी भी रूप में इसका खगोल से सम्बन्ध नहीं बनाया जा सकता। व्यवहार में अभ्यस्त हो जाने के कारण हमें यह अटपटा नहीं लगता। परन्तु कालगणना के मानों से यह व्यवहार में सर्वाधिक व्यापक हो चुका है इसको दूर करना सरल नहीं है तथापि गुणदोषों का विवेचन तो करना ही होता है।

वारों को शुभाशुभ मानने वालों से कुछ प्रश्न—

(१) वार क्या हैं? और उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई? कब, क्यों और कहाँ (किस देश) में हुई?

(२) होरा शब्द किस भाषा का है? इसका क्या अर्थ है?

(३) होरा का आधार क्या है?

(४) होरा और वार का परस्पर क्या सम्बन्ध है?

(५) क्रमानुसार शनिवार प्रथम वार होना चाहिए था रविवार नहीं।

(६) होरेश का क्या अर्थ है? और उसका क्या प्रयोजन है?

(७) वारों के ७ होने का कारण बतलावें? न्यूनाधिक क्यों नहीं?

(८) सात वारों का वेदादि शास्त्रों में कहाँ वर्णन है ?

(९) वार किस प्रकार शुभाशुभ हैं युक्ति से सिद्ध कीजिए ? वैदिक वा आर्ष प्रमाण दीजिए ?

(१०) काल (वार) किस प्रकार कार्य की सफलता, एवं असफलता में साधक वा बाधक हैं सिद्ध कीजिए ।

(११) सफलता में वार सापेक्ष हैं अथवा निरपेक्ष हैं ?

(१२) वारों के फलकथन में परस्पर विरोध क्यों है ?

(१३) जब वारों की प्रवृत्ति नहीं थी तो क्या २ कठिनाई थी जिसकी निवृत्ति वार से हुई ?

(१४) वारदोष को सिद्ध कीजिए और प्रमाणित कीजिए ?

(१५) वारदोष को दूर करने के लिए दान किसलिए दिया जाय ? दान से वह किस प्रकार से निवृत्त होता है ?

(१६) शुभ कार्य के लिए वार की आवश्यकता है अथवा अशुभ कार्य के लिए ? क्यों ?

(१७) वारों का शुभाशुभत्व सारी पृथिवीस्थ लोगों के लिए है अथवा केवल भारत वालों के लिए ? क्यों और किस प्रकार ?

(१८) कृषि और व्यापार आदि के लिए वार की प्रतीक्षा की जाय अथवा नहीं ? क्यों ?

(१९) इसी प्रकार मुहूर्त के सम्बन्ध में जो प्रश्न उपस्थित होते हैं वे सब वार के सम्बन्ध में भी हैं। उनका भी समाधान करना चाहिए ।

अथाष्टमसमुल्लासः

अथ तिथिं व्याख्यास्यामः ।

वार के पश्चात् तिथि पर विचार करेंगे । सूर्य, चन्द्र जब एक रेखा में, एक ही दिशा में हों अर्थात् समान राश्यादिक होते हों उसको अमावस्या कहते हैं। जब विरुद्ध दिशा में तथा समरेखा में हों तथा षड्राश्यन्तर पर हों तो उसको पूर्णिमा कहते हैं। अमावस्या से अमावस्या तक एक चान्द्रमास होता है। इसको ३० समभागों में बाँटने पर एक २ भाग एक २ तिथि कहलाता है। इन तिथियों के विभिन्न फल कहे हुए हैं। अब उनको नीचे दिया जाता है—

नन्दाभिधानास्तिथयस्तु पूर्वे भद्रा यदा भाः कथिता यमे च ।

जया जयार्थं यदि पश्चिमे च पूर्णाप्युदच्यां न गतं तु रिक्ते ।। मु० दर्पण

अर्थ—नन्दा नामक तिथियाँ (१. ६. ११) पूर्व दिशा में यात्रा करने के लिए, भद्रा नामक तिथियां (२. ७. १२) दक्षिण दिशा में, जया नामक तिथियां (३, ८, १३) पश्चिम में तथा पूर्णानामक तिथियां (५, १०, १५) उत्तर दिशा में उत्तम हैं। रिक्त (४, ९, १४) तिथियों में यात्रा नहीं करनी चाहिए ।

आगे देखिए क्या कहते हैं—

प्रतिपन्नवमी पूर्वे द्वितीया दशमोत्तरे ।

...............जले षष्ठी त्रयोदशी ।।

अर्थ—प्रतिपदा और नवमी तिथियों में पूर्व दिशा में यात्रा करना तिथिशूल=निषिद्ध है। द्वितीया, और दशमी तिथियों में उत्तर में निषिद्ध है। षष्ठी और त्रयोदशी तिथियों में पश्चिम दिशा में निषिद्ध है।

पहले श्लोक से प्रतिपदा, दशमो, और त्रयोदशी यात्रा में उत्तम मानी गई हैं। दूसरे श्लोक में निन्दित मानी गई हैं।

दूसरे श्लोक से विरुद्ध एक और श्लोक है।

द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा ।
दशम्येकादशी चैव यात्रासिद्धि त्रयोदशी ॥

अर्थ—२, ३, ५, ७, १०, ११, १३ ये तिथियाँ सदा यात्रा में उत्तम हैं । इससे पूर्व प्रतिपन्नवमो श्लोक में इन (२, १०, १३) तिथियों में यात्रा का निषेध किया है । एक ही श्वास में दो परस्पर विरुद्ध बातें निस्संकोच लिख गए हैं । यह है फलित का स्वरूप ।

निम्न श्लोक अथर्ववेदीय ज्योतिष के हैं ।

आदौ विसर्जयेद्द धीरः प्रस्थाने प्रथमां तिथिम् ।
द्वितोया संप्रयातस्य सिद्धचर्यं विनिर्दिशेत् ॥ ५९ ॥

अर्थ—धैर्यवान् पुरुष यात्रा में प्रतिपदा को छोड़ देवें । इसकी अपेक्षा द्वितीया कार्य को सिद्ध करती है ।

समो०—मुहूर्तदर्पण में प्रतिपदा पूर्वदिशा में यात्रा के लिए उत्तम मानी गई है और द्वितीया के दिन उत्तर दिशा में यात्रा का निषेध है । इन परस्पन विरुद्ध कथनों में किसको मानें किसको छोड़ें ? दोनों पक्षों में प्रमाण तो है ही नहीं । हेतु भी नहीं है । किसी तिथि में यात्रा क्यों नहीं करनो चाहिए; किसी में क्यों करनी चाहिए, इमका कोई कारण बतलाया नहीं जाता क्योंकि कोई कारण है ही नहीं । प्रतिपदा के दिन यात्रा से बहुतों का काम बिगड़ जाता है और बहुतों का सध जाता है । द्वीतिया के दिन भी ऐसा ही होता है । इसलिए हम इसे फलित ज्यौतिष नहीं कल्पित ज्यौतिष कह सकते हैं ।

तृतीया क्षेममारोग्यं चतुर्थी मरणाद्द भयम् ।
पञ्चमी विजया श्रेष्ठा सा वै सर्वार्थसाधिनी ॥ ६० ॥

अर्थ—तृतीया के दिन यात्रा करने वाले को आरोग्य और कल्याण प्राप्त होता है । चतुर्थी में यात्रा करने से मृत्यु से भय रहता है । पञ्चमी (यात्री के) सब कार्यों को सिद्ध करने वाली; श्रेष्ठता और विजय प्रदान करने वाली है ।

समी०—क्षेम तथा आरोग्य उसी दिन प्रदान करती है अथवा सदा के लिए ? मरने का भय ही लगता है अथवा मर भी जाता है ? क्या वीतराग योगी को भी भय लगता है । यदि लगता है तो बतलाइए कि भयनामक प्रवृत्ति का चतुर्थी के साथ नित्य सम्बन्ध है अथवा अनित्य सम्बन्ध ? क्या अकारण ही भय लगता है ? यदि नहीं लगता तो प्रयत्न करने पर अन्यों को भी नहीं लग सकता । तब तो भय का कारण चतुर्थी नहीं । यदि दोनों

राजा परस्पर युद्धार्थ यात्रा करें तो दोनों ही विजयी कैसे होंगे ? क्या पञ्चमी के दिन सब निर्धन, निर्बल, कुरूप, विकलाङ्ग, और अविद्वान्, सारे यात्रा करें तो सब धनी, बली, सुरूप, सकलाङ्ग और विद्वान् बन जायेंगे ?

षष्ठीत्वं न लाभाय सप्तमीत्वन्नभाग्भवेत् ।
अष्टमी रोगलाभाय नवम्यां न निवर्तते ॥ ६१ ॥

अर्थ—षष्ठी को यात्रा करने से लाभ नहीं होता । सप्तमी की यात्रा अशुभ होती है । अष्टमो को रोग प्राप्त होता है । नवमो में जाने पर नहीं लौटता है ।

समी०—षष्ठी, सप्तमी और अष्टमो ने कौन सा पाप किया है ? आज सहस्रों व्यक्ति धूम्रयानों में जाते हैं और लौटकर भो आ जाते हैं । पोप जी अब आपको अपनो पुस्तकों को बदल कर नये सिरे से लिखना पड़ेगा । पुरुषोत्तम राम एवं योगीराज कृष्ण इन्हीं दिनों क्यों जन्में हैं ?

सर्वारम्भा वर्जनीया नवम्याम् ॥ ७१ ॥

सब कार्य नवमी में छोड़ देवें ।

समी०—प्रारम्भ का अर्थ शुभकर्म है अथवा अशुभ ? यदि "शुभ-कार्य" है तो छोड़ना उचित नहीं क्योंकि शुभकार्यों को कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए । सभी ऋषि, महर्षि, मुनि, महामुनि, महात्मा, विद्वान् आदि का यही मत है कि शुभकर्म जितने भी हो सकें करते रहना चाहिए । जो शुभ कर्मों को छुड़ाता वह परमात्मा से विमुख ले जाने वाला, मनुष्य समाज का संहारक है । यदि "अशुभ कर्म" है तो भी ठीक नहीं क्योंकि अशुभकार्य केवल नवमी के दिन ही नहीं अपितु सदा छोड़ने चाहिए । यदि "शुभाशुभ कर्म" है तो भी ठीक नहीं है क्योंकि कर्म किए बिना जीव रह ही नहीं सकता । शरीर से वाणी से और मन से करेगा । कर्म छोड़ने की बात किसी भी प्रकार संगत नहीं है । क्या कोई भोजन, छादन आदि छोड़ सकता है ? यदि छोड़ेगा तो उससे प्रयोजन क्या होगा ? कोई अनिष्ट दूर होगा वा इष्ट प्राप्त होगा ? किस रूप में ? इसलिए इस पुस्तक को अज्ञानियों का बनाया समझना चाहिए ।

दशम्यां प्रस्थितो राजा भूमिलाभाय कल्पते ।
एकादशी तु सर्वत्र प्रशस्ता सर्वकर्मसु ॥ ६२ ॥

अर्थ—दशमी को यात्रा करने वाले राजा को भूमि का लाभ होता है, एकादशी सर्वत्र सब कामों में प्रशस्त है ।

समी०—राजा को ही भूमि का लाभ होता है अथवा जो भी यात्रा

करता है उस को ? यदि राजा को ही होता है तो राजा प्रत्येक दशमी को यात्रा करके भूमि को प्राप्त कर लेवे। यदि सभी को मिलती हो तो आज किसी को भी नहीं मिलती है; क्या कारण है ? एकादशी क्या चोरी, जारी के लिए भी प्रशस्त है ? यदि नहीं तो सब कार्यों में प्रशस्त नहीं। यदि है तो यह पुस्तक विद्वान् का बनाया भी नहीं हो सकता।

"देखो ! शिवपुराण में त्रयोदशी सोमवार, आदित्य पुराण में रवि, चन्द्रखण्ड में सोम, ग्रहवाले मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर राहु केतु के, वैष्णव एकादशी, वामन की द्वादशी, नृसिंह वा अनन्त की चतुर्दशी, चन्द्रमा की पौर्णमासी, दिक्पालों की दशमी, दुर्गा की नौमी, वसुवों की अष्टमी, मुनियों की सप्तमी, कार्तिक स्वामी की षष्ठी, नाग की पञ्चमी, गणेश की चतुर्थी, गौरी की तृतीया, अश्विनी कुमार की द्वितीया, आद्यादेवी की प्रतिपदा और पितरों की अमावस्या। पुराण की रीति से ये दिन उपवास करने के हैं।

और सर्वत्र यही लिखा है कि जो मनुष्य इन वार और तिथियों में अन्नपान ग्रहण करेगा, वह नरकगामी होगा। अब पोप और पोप जी के चेलों को चाहिए कि किसी वार अथवा किसी तिथि में भोजन न करें क्योंकि जो भोजन वा पान किया तो नरकगामी होंगे।

अब निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु, व्रतार्क आदि ग्रन्थ जो कि प्रमादी लोगों के बनाए हैं, उन्होंने एक २ व्रत की ऐसी दुर्दशा की है कि जैसे एकादशी को शैव दशमी विद्धा, कोई द्वादशी में एकादशी व्रत करते हैं अर्थात् क्या बड़ी विचित्र पोपलीला है कि भूखे मरने में भी वादविवाद ही करते हैं।

जो एकादशी का व्रत चलाया है उसमें अपना स्वार्थपन ही है और दया कुछ भी नहीं। वे कहते हैं—**एकादश्यामन्ने पापानि वसन्ति।** जितने पाप हैं वे सब एकादशी के दिन अन्न में वसते हैं।

इस पोप जी से पूछना चाहिए कि किसके पाप उसमें वसते हैं ? तेरे वा तेरे पिता आदि के ? जो सब के सब पाप एकादशी में जा बसें, तो एकादशी के दिन किसी को दुःख न रहना चाहिए। ऐसा तो नहीं होता किन्तु उलटा क्षुधा आदि से दुःख होता है। दुःख पाप का फल है। इससे भूखा मरना पाप है। इन चौबीस एकादशियों के नाम पृथक्-पृथक् रखे हैं। किसी का धनदा, किसी का कामदा, किसी का पुत्रदा और किसी का निर्जला। बहुत से दरिद्र बहुत से कामी और बहुत से निर्वंशी लोग एकादशी करके बूढ़े हो गए और मर भी गए, परन्तु धन, कामना और पुत्र प्राप्त न हुआ और ज्येष्ठ महीने के शुक्ल पक्ष में कि जिस समय एक घड़ी भर जल न पीवे तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है। व्रत करने वालों को महान् दुःख प्राप्त होता है। विशेषकर बङ्गाल में सब विधवा स्त्रियों की एकादशी के दिन बड़ी दुर्दशा होती है। इस निर्दयी कसाई को लिखते समय कुछ भी मन में दया न आई। नहीं तो निर्जला को सजला और पौष महीने की शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम निर्जला रख देता तो भी कुछ अच्छा होता। परन्तु इस पोप को दया से क्या कांम ? कोई जीवो वा मरो पोप जी का पेट पूरा भरो। स० प्र० ११ समु०

उपवास का अर्थ भोजन छोड़ना किस भाषा में है ? एकादशी का और भोजन छोड़ने का क्या सम्बन्ध है ?

द्वादशी त्वर्थनाशाय सन्धि कुर्यात् त्रयोदशी।
चतुर्दशी चलत्कर्म कौतुकान्यत्र कारयेत् ॥ ६३ ॥

अर्थ—द्वादशी को अर्थ नाश होता है, त्रयोदशी सन्धि के लिए होती है। चतुर्दशी के दिन चलकर्म से लाभ होता है। इस दिन कौतुक करावें।

समी०—सहस्रों यात्री जाते हैं अर्थलाभ होता है यह प्रत्यक्ष है। क्या सन्धि करनी हो तो त्रयोदशी की प्रतीक्षा करते हुए बैठना पड़ेगा ? कौतुक का अर्थ धर्मकार्य अथवा अधर्मकार्य ? दोनों ही पक्षों में चतुर्दशी व्यर्थ होती है।

अमावस्यां न यात्रा स्यात् पौर्णमास्यां तथा दिवा।
पौर्णमास्यां प्रयातस्य न सिद्धिस्तस्य जायते ॥ ६४ ॥

अर्थ—अमावस्या को यात्रा सर्वथा निषिद्ध है। पौर्णिमा को जाने पर कार्यसिद्धि नहीं होती।

समी०—मूहूर्तदर्पण में पूर्णिमा और अमा को उत्तर दिशा में यात्रा के लिए उत्तम माना गया है। इसी प्रकार फलित (वास्तव में पतित) पुस्तकें वदतोव्याघात और परस्पर विरुद्ध दोषों से परिपूर्ण हैं।

नन्दायां भक्ष्यभोज्यानि भूषणानि वरस्त्रियः।
आनन्दं चैव कुर्वीत मनः प्रियतमानि च ॥ ७२ ॥

अर्थ—नन्दा (१, ६, ११ तिथियों) में भोज्यपदार्थ, स्त्रियों के आभूषण और मन को प्रिय लगने वाले कर्मों को करें।

समी०—शेष १२ तिथियों में भोजन न करके क्या भूखे रहकर मरना है ? भोजन के साथ आभूषण भी धारण न करें ? दुःख मनाते रहें ? और मन के लिए अप्रियकारक कर्म करते रहें ?

भद्रायां भद्रकार्याणि यानि योग्यासनानि च ।
स्वस्तिवाचनकर्माणि कारयेदारभेत च ॥ ७३ ॥

अर्थ—भद्रा (२, ७, १२) तिथियों में भद्रकार्य, योग्य पदग्रहण मांगलिक कर्म करावें और प्रारम्भ करें ।

समी०—क्या भद्रा में ही भद्र कार्य करें अन्य समयों में अभद्र कार्य करें ? यदि अन्य समयों में भी भद्र कर्म करने हैं तो भद्रा का क्या महत्त्व रह गया ? क्या स्वस्तिवाचन अभद्र कार्य है ? यदि भद्र ही है तो पुनरुक्ति हो गई ? क्या अन्य समयों में स्वस्तिवाचन आदि न करावें । योग्य आसनादि अन्य तिथियों में करेंगे तो क्या हानि होगी ?

जयायां योजयेत्सेनां वणिजः क्षिप्रकारिणः ।
पण्यविक्रयणं कुर्युः शस्त्रकर्म च कारयेत् ॥ ७४ ॥

अर्थ—जया (३, ८, १३,) तिथियों में सेना को युक्त करें । क्षिप्रकारी वणिक् क्रयविक्रय करे और शस्त्र कर्म करावें ।

समी०—क्या अन्य तिथियों में सेना से आराम करावें । शस्त्रकर्म अन्य दिनों में क्यों न करावें ? क्या व्यापारी बैठे २ मक्खियां मारते रहें ?

रिक्तायां वर्जयेन्नित्यं तिथौ तिथिविचक्षणः ।
ध्रुवाणि सर्वकार्याणि स्थावराणि चराणि च ॥ ७५ ॥

अर्थ—रिक्ता (४, ६, १४) तिथियों में सब ध्रुव, स्थावर और चर कार्यों को त्यागना चाहिए ।

समी०—किसलिए छोड़ना चाहिए ? रिक्ता में स्थिर कार्य करने से लाभ हो रहा है यह प्रत्यक्ष है । ध्रुव तथा स्थावर कार्यों में क्या अन्तर है ? यदि अन्तर नहीं तो पुनरुक्त है ।

पूर्णायां सेतुबन्धांश्च कोष्ठान् कोशांश्च कारयेत् ।
वाहनानि च पोषे च ? रथयानानि कारयेत् ॥ ७६ ॥

अर्थ—पूर्णा (५, १०, १५) तिथयां में पुल, घर, कोश, वाहन, रथ यान आदि करवावें ।

समी०—शेष तिथियों में इनको क्यों नहीं करवाना चाहिए ? पुल आदि का इन तिथियों के साथ क्या सम्बन्ध है ?

और भी देखिए मुहूर्त दर्पण का दृश्य—

मातुश्चतुर्थी भगिनी चतुर्दशी भ्रातुश्च षष्ठी पितुरेव पर्वसु ।
आदौ नवम्यां धनधान्यनाशः कुटुम्बहानिः क्षौराष्टमेषु ॥

अर्थ—चतुर्थी के दिन क्षौर कराने पर माता को, चतुर्दशी में बहिन को, षष्ठी में भाई को, पर्वदिन में पिता को अनिष्ट होता है । प्रतिपदा के दिन क्षौर कराने से धन का नाश, नवमी के दिन कराने से धान्यहानि और अष्टमी के दिन कुटुम्बहानि होती है ।

समी०—तिथि से क्षौर का क्या सम्बन्ध है ? चतुर्थी आदि के दिन कराने से माता आदि का नाश किस प्रकार, क्यों होता है, इसमें क्या प्रमाण है ? क्षौर करावें आप और मृत्यु हो जावे माता की ? क्या यही कर्मफल सिद्धान्त है ? करे कोई, भोगे कोई ? चतुर्थी के दिन क्षौर कराने पर कितने दिन के पश्चात् माता मरेगी ? एक बार कराने पर ही मर जाएगी अथवा अनेक वार कराने पर ? क्षौर कराने के पश्चात् तो मरती नहीं देखी ? यदि कहो कि कभी न कभी मर जाएगी, तो चतुर्थी के दिन क्षौर न कराने पर भी कभी न कभी मरेगी ही । यह सब अज्ञान वा स्वार्थ की बातें हैं । यदि समय अनिश्चित है तो क्षौर के कारण ही मरी है इसमें क्या प्रमाण है ? जिसकी माता मर चुकी है वह तो चतुर्थी के दिन करा सकता है कि नहीं ?

इस प्रकार के श्लोक वा ग्रन्थ इसलिए लिखदिए कि लोगों को भ्रम में डाल कर स्वार्थ सिद्ध करें । यहाँ एक श्लोक उदाहरणार्थ उपस्थित करता हूँ जिससे स्पष्ट हो जाएगा—

द्विजपुण्याहघोषेण कृतं स्यात्सर्वसाम्पदम् ।
नक्षत्रस्य मुहूर्तस्य तिथेश्च करणस्य च ॥

अर्थ—ब्राह्मणों के द्वारा पुण्याह वाचन करा के जो कार्य किया जाता है उसमें तिथि, नक्षत्र और करणादि के सभी शुभगुण स्वयं प्राप्त हो जाते हैं और वह सर्वसम्पत्तिकारक है ।

इस प्रकार की कहाँ तक लिखें सैंकड़ों ग्रन्थ बना रखे हैं । इन सब की बातें लिखें तो मनुष्य एक आयु में भी नहीं पढ़ सकता । इनमें लाखों मिथ्या बातें हैं ।

तिथि, काल को वा सूर्य, चन्द्र की दूरी को जानने का एक साधन है । किन्तु स्वार्थी वा मूढ लोगों ने उसको शुभाशुभ सफलताऽसफलता का कारण मानकर भ्रमजाल फैलाया । इसकी समीक्षा पूर्वत्र आ चुकी है कि काल किसी कार्य में साधक वा बाधक नहीं और न शुभाशुभ है । इसलिए यह सब मिथ्या एवं कल्पित बातें हैं । इन तिथियों के फलविधायक ग्रन्थों में परस्पर विरोध तथा पूर्वापर विरोध सर्वत्र विद्यमान है । यह प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्दप्रमाण के विरुद्ध, होने से वेदादि शास्त्रों में इनका कहीं वर्णन न होने से, किं च

खंडन होने से अमान्य है। इनके मानने से मनुष्य कर्मसिद्धान्त से हाथ धो बैठता है। आलसी, प्रमादी, सत्यासत्य-विवेकशून्य, मिथ्याभाग्यवादी, कायर, आत्मविश्वासहीन, दीन, दुःखी, देशभक्ति, धर्म-कर्मविचारशून्य, पुरुषार्थरहित हो अपने भाग्य के नाम से निर्बलताओं को बढ़ावा देने वाला, आत्म-निरीक्षण से दूर विद्याविज्ञान से रहित और दुःखों से सन्तप्त हो दूसरों को भी इसी ओर प्रेरणा देने वाला होकर घुलघुल कर अमूल्य दुर्लभ जीवन को वृथा नष्ट कर देता है। इन ही संस्कारों के कारण उनका आत्मा न जाने कितने जन्मों तक भ्रान्ति तथा अन्धकार में फंसा रहेगा।

तिथि को शुभाशुभ मानने वालों से कुछ प्रश्न—

(१) तिथि किसको कहते हैं ?

(२) तिथि को शुभाशुभ मानने का कारण क्या है, सिद्ध करके बतलाइए ?

(३) तिथि के शुभाशुभ, सफलताऽसफलता के निमित्त होने में वेदादि सत्यशास्त्रों के प्रमाण दीजिए।

(४) तिथि का तथा कर्मसिद्धान्त का कैसा सम्बन्ध है ? सविस्तर बतलाइए।

(५) शुभतिथियों में किए हुए कार्य असफल क्यों होते हैं और हुए हैं ?

(६) तिथियों के लिए नन्दादि शब्द किस वेद शास्त्र में आए हैं ?

(७) यदि किसी ने देश पर आक्रमण किया हो तब शुभ तिथि का क्या अर्थ होगा ? यही रहेगा अथवा कोई दूसरा बनेगा ?

(८) औषधि सेवन में शुभाशुभ तिथि की प्रतिक्षा करें तो तिथि से पूर्व रोगी महाप्रयाण ही करेगा ? यदि न करेगा तो तिथि का शुभाशुभत्व ही समाप्त हुआ।

(९) शुभकर्मों में तिथि की क्या आवश्यकता है ?

(१०) अशुभकार्य शुभतिथि में करने चाहिए अथवा अशुभ तिथि में ?

(११) शुभतिथि में एक के घर विवाहादि सुखकारी कर्म होते हैं तो दूसरे के घर चोरी, जारी, मृत्यु आदि दुःखदायक कर्म क्यों होते हैं ?

(१२) परमात्मा शुभ तिथि में ही मनुष्यों के जन्म-मरण क्यों नहीं करता।

(१३) वृक्षों का उगना, पुष्पित, फलित, होना वर्षा का आना आदि शुभतिथियों में ही क्यों नहीं होता ? अशुभ तिथियाँ बनाई ही क्यों ?

(१४) परमात्मा कौन २ कर्म शुभतिथि में कौन २ अशुभतिथि में करता है ?

(१५) शुभाशुभविधायक पुस्तकों में पूर्वापर विरोध क्यों है ? एक पुस्तक दूसरे से विरुद्ध क्यों है ? दोनों में विरोध है तो किसको मानें, किसको न मानें और क्यों ?

(१६) कर्मसिद्धान्त का जहाँ विचार किया वहाँ कहीं भी तिथि को शुभाशुभ नहीं माना। क्या वे भूल गए ? अथवा जानते ही नहीं थे ?

१७. तिथि को मानकर दैनिक जीवन में घर २ में जो समस्याएं हैं उन को, जब तक तिथि के शुभाशुभ को मिथ्या न समझें कैसे सुलझाएंगे ? इनके अतिरिक्त तिथि को मानकर जो २ अनर्थ होते हैं उनका समाधान किस प्रकार होगा ?

१८. यदि मनुष्य पुरुषार्थी कर्मफलवादी आस्तिक होगा तो तिथि को क्यों देखेगा ? जिसको अपनी बुद्धि और पुरुषार्थ पर विश्वास है तो वह तिथि को क्यों देखेगा ? यदि तिथि को देखता है तो वह परिश्रम क्या करेगा परिश्रम पर विश्वास ही क्या होगा ?

१९. जो तत्त्ववेत्ता दार्शनिक हुए हैं उन्होंने इनको कहीं महत्त्व दिया हो ऐसा देखने में नहीं आता। क्योंकि काल नित्य होने से एक रस होने से शुभाशुभ अथवा साधक बाधक नहीं होता। इसके शुभाशुभादि में प्रमाण क्या है ?

२०. तिथि के शुभाशुभत्व के अन्धविश्वास होने पर वह जो कुछ करता है संशयालु होकर करता है। कई शुभकार्य नहीं कर पाता, छोड़ने पड़ते हैं। जब कहीं हानि होती है तो झट से तिथि के सिर मढ़ देता है। मनुष्य के इस मानसिक रोग की क्या चिकित्सा है ?

मुहूर्त तथा वार के प्रसंग में किए गए लगभग सब प्रश्न तिथि के विषय में भी जान लेवें।

अथ नवमसमुल्लासः

अथ करणं व्याख्यास्यामः ।

तिथि के पश्चात् करण पर विचार करते हैं। तिथि के अर्धभाग को करण कहते हैं। सात करण चल और चार स्थिर हैं। कृष्ण-चतुर्दशी के उत्तरार्ध, अमावास्या के पूर्वोत्तरार्ध और शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के पूर्वार्ध में क्रमशः शकुनि, चतुष्पाद, नाग और किंस्तुघ्न अथवा कौस्तुभ नामक चार ध्रुव-करण होते हैं। वव, वालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज और विष्टि अथवा भद्रा नामक चर-करण हैं, क्रमशः वे शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के उत्तरार्ध से होते हैं।

जिस प्रकार तिथि के फलों का वर्णन किया है इसी प्रकार करण के फलों का वर्णन किया है। इसके सम्बन्ध में अथर्ववेदीय ज्यौतिष के श्लोक नीचे दिए जाते हैं—

आद्यं तु शकुनिं नाम रात्रौ कृष्णचतुर्दशी।
आधाने हरणे चैव तथैव च पलायने ॥३६॥
भृत्यानामथ योधानां पक्षिणां गृहपोषणे।
चिकित्सायां तु पुच्छे च सर्वत्रैतत्प्रशस्यते ॥

अर्थ—जब कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को शकुनिनामक करण हो उस रात्रि में किसी वस्तु का धारण करना, चोरी करना, भाग जाना, योधा एवं शत्रुओं को मारना, पक्षियों का पालन, चिकित्सा करना और युद्ध सम्बन्धी सब कर्म करना श्रेष्ठ होता है।

समी०—शकुनि करण के समय किस वस्तु को धारण करना चाहिए ? क्या उससे भिन्न समय में किसी भी वस्तु को धारण करना ही नहीं चाहिए ? क्या चोरी करना भी धर्म है ? चोरों से धन हरण करने के लिए ऐसी लीला रची होगी। ऐसी पुस्तकों को देखकर लोग चोरी करते हुए नहीं डरते। इनको पढ़कर चोरी करना सीख गए होंगे, अब भी सीखते होंगे। पलायन (भाग जाना) किस से ? शत्रुओं से युद्ध करते हुए पलायन तो अभिप्रेत नहीं ?

यदि नहीं तो फिर पलायन किससे ? यदि यही है तो यह कायरता नहीं तो और क्या है ? भृत्यादि का और शकुन का क्या सम्बन्ध है ? क्या अन्य समय में चिकित्सा नहीं करानी चाहिए ?

भूततन्त्रं बलिं दद्याच्छत्रूणां परघातकम्।
करणं चतुष्पदं नाम कृष्णपञ्चदशी दिवा ॥ ३७ ॥

अर्थ—अमावास्या को दिन में जब चतुष्पाद नाम का करण हो तब तान्त्रिक विधि से भूतों को बलिदान करके शत्रुओं को नष्ट करना चाहिए।

समी०—ये सारे नीच कर्म हैं। वेदादि शास्त्रों में ऐसा विधान नहीं मिलता। इसका विधान करना भी अज्ञ मनुष्यों का काम है।

चतुष्पादानां सर्वेषां हितं सर्वेषु कर्मसु।
श्राद्धमत्र च कुर्वीत प्रयतश्चभवेन्नरः ॥ ३८ ॥
सोदकानि च कार्याणि सर्वाण्येवात्र कारयेत्।

अर्थ—चतुष्पाद नामक करण में चौपायों से सम्बन्धित सभी कार्य हितकारी होते हैं और इसी करण में यदि श्राद्ध भी किया जावे तो अधिक फल का देने वाला होता है। तर्पणादि जलदान के सभी कार्य चतुष्पाद नामक करण में ही करने चाहिए।

समी०—चतुष्पादों से सम्बन्धित कार्य अन्य समय में क्या अहितकारी होते हैं ? वेदशास्त्र वा युक्ति विरुद्ध होने से श्राद्ध, अधर्म है। इसलिए यह पुस्तक किसी विद्वान् का बनाया हुआ नहीं हो सकता।

कृष्णपञ्चदशी रात्रौ नागं करणमुच्यते।
नष्टं दष्टं तथा वृद्धं तदन्तमिति निर्दिशेत् ॥ ३९ ॥
यानि प्रसह्य कार्याणि प्रमथ्यकरणानि च।
तानि नागे प्रयुक्तानि सिद्ध्यन्ति फलवन्ति च ॥ ४० ॥

अर्थ—विनाश करना, काटना, बन्धन में डालना, किसी की समाप्ति करना और बलपूर्वक अपहरण करना आदि कार्य करना हो तो नाग नामक करण में करने से अवश्य सिद्ध एवं फलीभूत होते हैं।

समी०—चोरों वा दुष्टों को काटना बांधना है वा चाहे जिसको ? यदि चोरों को बान्धना मान लेवें तो प्रश्न यह होगा कि क्या नाग से भिन्न दूसरे समय में न बांधें ? क्या नाग की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी ? यदि कहो कि सभी को बांधना है तो यह अन्याय और अधर्म का कार्य है।

वणिजं वणिजानां तु सर्वपण्येष्टशोभनम्।
विक्रेता रिध्यते तत्र क्रेता तत्र न रिध्यते ॥ ५० ॥

अर्थ—वणिजनामक करण सब प्रकार के व्यापार करने वालों को शुभ है। इस करण में बेचने वाला लाभ युक्त होता है। मूल्य लेने वाला हानि में रहता है।

समी०—सर्वपण्य में क्या शराब बेचना भी सम्मिलित है ? यदि नहीं तो सर्वपण्य क्यों कहा गया ? मूल्य लेने वाले को घाटा उठाना पड़ता हो तो बेचने वाला कैसे बेचेगा ? लेने वाला भी क्यों लेगा ? हानि से बचने के लिए ग्राहक और लाभ की प्राप्ति के लिए व्यापारी, दोनों ही करण पूछने और जानने के लिए पोप जी के पास आएंगे। तब पोप जी व्यापारी और ग्राहक दोनों से पैसे ऐंठेंगे और दोनों को मूर्ख बनायेंगे।

विष्टिना करणे कर्म न कुर्यान्नैव कारयेत्।
कृच्छ्रेणापि कृतं कर्म भवेदल्पफलोदयम् ॥ ५१ ॥

यदि सिद्ध्यति तत्कर्म विष्टिना तु कदाचन।
न तच्चिरमशंकेत शक्यं भोक्तुं सुरैरपि ॥ ५२ ॥
आगतं धननाशाय आदौ कार्य विनाशिनी।
मध्ये प्राणहरा ज्ञेया विष्टिपुच्छे ध्रुवं जयः ॥ ५३ ॥

अर्थ—विष्टिनामक करण में कर्म न करें और न करावें। कठिनाई से भी किया हुआ कार्य अल्प फलवाला होता है। यदि कभी सिद्ध भी हो जाय तो भी देर तक देवता भी नहीं भोग सकते, इतना अस्थिर होता है। विष्टि लगते ही करने पर धननाश होता है, मध्य में प्राण नष्ट होता है, पुच्छ (अन्तिम तीन घड़ियों) में विजय निश्चित है।

समी०—विष्टि ऐसा कौनसा दुष्ट है कि वह सब कार्यों को बिगाड़ता फिरता है ? शास्त्रों में सभी शुभ कर्म करते रहने के लिए आदेश=विधान है किन्तु पोप जी को आलसी, निष्कर्मा बने रहना है न कर्म करना न करने देना यदि कहो कि शुभ कर्मों का निषेध किया है तो और भी आश्चर्य की बात है। यदि अशुभ कर्म का निषेध करता तो भी अच्छा होता। किन्तु ये तो शुभ कर्मों के पीछे हाथ धोकर पड़ गए हैं। क्यों जी ! कर्म के अनुसार फल होता है अथवा न्यूनाधिक ? यदि कर्म के अनुसार होता है तो "**अल्प फलोदयम्**" कहना मिथ्या है। यदि कर्मानुसार "सिद्ध हो भी जाय" कहने से सिद्ध होता है कि 'अल्पफलवाला होता है' यह कथन असत्य है। यदि सत्य है तो 'यदि सिद्ध हो भी जाय' कहना असत्य हुआ। दोनों में कोई भी असत्य हो कोई आपत्ति नहीं। यदि सिद्ध हो भी जाय तो यह कैसा होगा कि

उसको देवता भी नहीं भोग सके ? अस्थिर क्यों होता है ? यदि अस्थिर है तो जितनी देर तक रहना चाहिए उतनी देर तक नहीं रहा इसलिए पूर्ण फल नहीं। यदि पूर्ण फल है तो जितनी देर तक रहना चाहिए उतनी देर तक रहेगा। अस्थिर भी है और पूर्ण फल वाला भी यह परस्पर विरुद्ध है। जब अल्प फलवाला होता है तो धननाश कैसे होगा ? कार्य का विनाश कैसे करेगा ? प्राणहरण कैसे करेगा ? और अन्त में विजय कैसे मिलेगा ? पोप जी ! आप एक बात भूल गए। आपने तिथि का फल लिखते समय यह लिखा है कि—

एकादशीतु सर्वत्र प्रशस्ता सर्वकर्मसु ॥ ६२ ॥

एकादशी सब स्थानों पर सब कर्मों के लिए प्रशस्त है। शुक्ल एकादशी के दिन धन वा प्राणनाश करने वाले विष्टिकरण के रहते हुए एकादशी सब कर्मों में प्रशस्त है तो विष्टि कैसे बिगाड़ेगा ? इस प्रकार की परस्पर विरुद्ध बातों को ही लिखा जाय तो बड़ा ग्रंथ बन जाय। यह निदर्शन-मात्र है। इस प्रकार इसलिए किया कि सर्वत्र विसंवाद लिखा जाय तो इसके समाधान के लिए लोग आयेंगे, माल मिलेगा, धन मिलेगा, बैठे २ आनन्द करेंगे। यह पूर्वोक्त—

द्विजपुण्याहघोषेण कृतं स्यात्सर्वसाम्पदम्।
नक्षत्रस्य मुहूर्तस्य तिथेश्च करणस्य च ॥ ८७ ॥

इत्यादि श्लोकों से स्पष्ट है। श्लोकार्थ पूर्वत्र लिख आए हैं। वहीं देख लेवें।

अथ दशमसमुल्लासः

अथ नक्षत्रं व्याख्यास्यामः।

करण के अनन्तर नक्षत्र आता है। नक्षत्र स्वयं प्रकाशयुक्त होता है। हमारा सूर्य भी एक नक्षत्र है। हमारा सूर्य ही हमारा निकटतम नक्षत्र है। आकाश में जितने तारे रात्रि में हमें दीखते हैं उनमें ५, ६ को छोड़कर शेष सब नक्षत्र हैं। पृथिवी आकाश में किस मार्ग से सूर्य के चारों ओर घूमती है, कब कौन सा ग्रह आकाश में कहाँ रहता है; किस मार्ग से चलता रहता है इत्यादि बातों के ज्ञान के लिए क्रान्तिवृत के दोनों ओर के कुछ तारों को चुन लिया। इन ही का नाम नक्षत्र है। ये संख्या में २७ हैं। फलित वालों ने इनके विषय में विचित्र २ कल्पनाएं की हैं।

अश्विनी आदि ५ नक्षत्र पृथिवीभूत से बने हैं। आर्द्रादि ६ नक्षत्र जलभूत से बने हैं। उत्तराफाल्गुनी आदि अगले ६ नक्षत्र अग्निभूत से बने हैं। ज्येष्ठा आदि अगले ५ नक्षत्र वायुभूत से तथा धनिष्ठा आदि ५ अगले नक्षत्र आकाशभूत से बने हैं। पृथिवीभूत वाले नक्षत्र गरुडपक्षी हैं। जलभूत वाले पिङ्गलपक्षी, अग्निभूत वाले कौए, वायुभूत वाले कुक्कुट=मुरगे और आकाशभूत वाले मयूर हैं। ये सब नक्षत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पञ्चम और संकर नाम से ६ प्रकार के हैं। ६ से भाग देने पर जो ३ शेष रहते हैं वे क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं।

इसमें और भी विशेष यह है कि इनके ३ गण हैं।

(१) अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, स्वाति, अनूराधा, रेवती देवगण हैं।

(२) भरणी, रोहिणी, उत्तरात्रय, पूर्वात्रय मनुष्यगण हैं।

(३) शेष राक्षसगण हैं।

यह गणविभाग "कालामृत" के अनुसार है। मुहूर्तदर्पण की गणव्यवस्था इससे भिन्न है जो नीचे दी जाती है।

(१) पुनर्वसु, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, स्वाति, अनूराधा, श्रवण और रेवती—देवगण।

(२) रोहिणी, भरणी, आर्द्रा, पूर्वात्रय और उत्तरात्रय मनुष्यगण और शेष राक्षसगण हैं।

पुं० स्त्री, नपुंसक विभाग

अश्विनी, कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनूराधा, श्रवण, पूर्वभाद्रा, उत्तराभाद्रा पुरुष हैं।

भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, धनिष्ठा, रेवती स्त्रीलिङ्गी और शेष मृगशिरा, मूल, शतभिषक् नपुंसक हैं।

सूर्य जिस नक्षत्र में रहता है उससे लेकर ४ नक्षत्र अन्धे हैं। आगे के ६ द्विनेत्र वाले हैं। शेष एक नेत्र वाले (काणे) हैं। आगे के ५ नक्षत्र द्विनेत्र वाले हैं। इससे आगे के ३ नक्षत्र अन्धे हैं।

यह है फलित। फलित ज्यौतिष के नाम से यह क्रीडा है, मनोरञ्जन है, इन्द्रजाल है, महेन्द्रजाल है, जादू है। कुछ नक्षत्रों को पार्थिव, कुछ को जलीय कल्पित करना, उनको पक्षियों के आकार वाले मानना, आगे चलकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ण की कल्पना, उनमें भी देव, मनुष्य, राक्षसगणों की कल्पना, उसमें पुं० स्त्री, नपुंसकत्व की कल्पना और उनके अन्धत्व काणत्व, आदि की कल्पना करना, उनके अनुसार नाम रखने की व्यवस्था करना, उन्हीं के अनुसार यात्रा, विवाह, उत्सव आदि सब कार्य करना, इत्यादि बातें हैं। उन सबका वर्णन करना व्यर्थ और शिरदर्द है। इसलिए यह अति संक्षेप में समुद्र में से बिन्दु के समान संकेतमात्र किया जा रहा है। यह सारा "एक वन्ध्या की पुत्री का दूसरी वन्ध्या के पुत्र के साथ विवाह हुआ, वे खरगोश के सींग के धनुष वा आकाश के फूलों की माला धारण करके अन्तरिक्ष में घूमते हैं, मृगमरीचिका के जल में स्नान करते हैं, गन्धर्वनगर में रहते हैं। वहाँ विना बादल के वर्षा होती है, विना भूमि के अन्न उगता है" इत्यादि के समान केवल कल्पना है।

इन कल्पना के घोड़े दौड़ाने वालों को यह न सूझा कि हम कल्पना कर २ के क्यों भोले लोगों को ठग रहे हैं? कभी न कभी हमारा पाप का घड़ा फूट जाएगा। यह सत्य है "स्वार्थी दोषं न पश्यति" स्वार्थी को अपना

दोष नहीं दीखता क्योंकि न यहाँ तर्क है न प्रमाण। जो श्वेत कागज पर काली स्याही की रेखाएं हैं वे ही विधाता की रेखाएं हैं। न कोई इसका विरोध कर सकता है ना ही करने पर उसकी इन ग्रन्थों के सामने कोई सुनवायी ही हो सकती है। यहाँ एक दृष्टान्त उपयुक्त है।

ग्रन्धेर नगरी गवर्गण्ड राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा॥

एक बड़ा धार्मिक विद्वान् सभाध्यक्ष राजा यथावत् राजनीति से युक्त होकर प्रजापालनादि उचित समय में ठीक २ करता था। उसकी नगरी का नाम "प्रकाशवती", राजा का नाम "धर्मपाल", व्यवस्था का नाम "यथायोग्यकरनेहारी" था। वह तो मर गया। पश्चात् उसका लड़का जो महा ग्रधर्मी, मूर्ख था, उसने गद्दी पर बैठ कर सभा से कहा, "जो मेरी ग्राज्ञा माने वह मेरे पास रहे ग्रौर जो न माने वह यहाँ से निकल जाए।" तब बड़े २ धार्मिक सभासद् बोले कि "जैसे ग्रापके पिता सभा की सम्मति के ग्रनुकूल वर्तते थे, वैसे ग्रापको वर्त्तना चाहिए।"

राजा—उनका काम उनके साथ गया। ग्रब मेरी जैसी इच्छा होगी वैसा करूंगा।

सभा—जो ग्राप सभा का कहना न करोगे, तो राज्य का नाश ग्रथवा ग्रापका ही नाश हो जाएगा।

राजा—मेरा तो जब होगा तब होगा परन्तु यहाँ से चले जाग्रो, नहीं तो तुम्हारा नाश तो मैं ग्रभी कर दूंगा।

सभासदों ने कहा "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" जिसका शीघ्र नाश होना होता है उसकी बुद्धि पहले ही से विपरीत हो जाती है। "चलिए यहाँ ग्रपना निर्वाह न होगा।" वे चले गए ग्रौर महामूर्ख धूर्त खुशामदी लोगों की मण्डली उसके साथ हो गई। राजा ने कहा, "ग्राज से मेरा नाम "गवर्गण्ड", नगरी का नाम "ग्रन्धेर" ग्रौर जो मेरे पिता ग्रौर सभा करती थी, उससे सब काम मैं उल्टा ही करूंगा। वैसे मेरे पिता ग्रौर सभासद् रात को सोते ग्रौर दिन में राज्य कार्य करते थे वैसे ही उससे विपरीत हम लोग दिन में सोवेंगे ग्रौर रात में राज्य कार्य्य करेंगे। उनके सामने उनके राज्य में सब चीजें ग्रपने २ भाव पर बिकतीं थीं हमारे राज्य में केशर कस्तूरी से लेके मिट्टी पर्यन्त सब चीज एक टके सेर बिकेंगी।" जब ऐसी प्रसिद्धि देश देशान्तरों में हुई तब किसी स्थान में दो गुरु शिष्य वैरागी ग्रखाड़ों में मल्ल विद्या करते पांच-पांच सेर खाते ग्रौर बड़े मोटे थे। चेले ने गुरु से कहा, "चलिए ग्रन्धेर नगरी में वहां दस टकों से दस सेर मलाई ग्रादि माल चाब

के खूब तैयार होंगे।" गुरु ने कहा, "वहां गवर्गण्ड के राज्य में कभी न जाना चाहिए किन्तु किसी दिन खाया पिया सब निकल जावेगा ग्रौर प्राण भी बचना कठिन होगा।" फिर जब चेले ने हठ किया तब गुरु भी मोह से चला गया। वहां जाकर ग्रन्धेर नगरी के समीप बगीचे में निवास किया ग्रौर खूब माल चबाते ग्रौर कुश्ती किया करते थे। इतने में कभी एक ग्राधी रात में किसी साहूकार का नौकर एक हजार रुपयों की थैली लेके किसी साहूकार की दुकान पर जमा करने को जाता था। बीच में उचक्के ग्राकर रुपयों की थैली छीनकर भागे। उसने जब पुकारा तब थाने के सिपाहियों ने ग्राकर पूछा "क्या है" उसने कहा कि "ग्रभी उचक्के मुझसे रुपयों को छीनकर लिए जाते हैं।" सिपाही धीरे २ चलके किसी भले ग्रादमी को पकड़ लाये कि—"तू ही चोर है" उसने उनसे कहा कि, "मैं फलाने साहूकार का नौकर हूँ, चलो पूछ लो"।

सिपाही—हम नहीं पूछते, चल राजा के पास। पकड़कर राजा के पास लेजाकर कहा, "इसने हजार रुपयों की थैली चोरली है। गवर्गण्ड ग्रौर ग्रासपास वालों में से किसी ने कुछ भी न पूछा न गाछा, वह विचारा पुकारता ही रहा, "मैं उस साहूकार का नौकर हूँ" परन्तु किसी ने न सुना, झट हुक्म चढ़ा दिया कि "इसको शूली पर चढ़ा दो" शूली लोहे की बरछी ग्रौर सरों के वृक्ष के समान ग्रणीदार होती है। उस पर मनुष्य को चढ़ा उलटा कर नाभि में उसकी ग्रणी लगा देने से पार निकल जाने पर वह कुछ विलम्ब में मर जाता है।—गवर्गण्ड के नौकर भी उसके सदृश क्यों न हों?......गवर्गण्ड के सिपाहियों ने विचारा कि शूली तो मोटी ग्रौर मनुष्य है दुबला, ग्रब क्या करना चाहिए।

ग्रब राजा के पास जाकर सब बात कह दी। उस पर गवर्गण्ड ने हुक्म दिया कि, "ग्रच्छा तो इसको छोड़ दो ग्रौर जो कोई शूली के सदृश मोटा हो उसको पकड़ के उसके बदले चढ़ा दो।" तब गवर्गण्ड के सिपाहियों ने विचारा कि 'शूली के सदृश खोजो'; तब किसी ने कहा कि 'इस शूली के सदृश तो बगीचा वाले गुरु, चेला दोनों वैरागी ही हैं।' सब बोले कि 'ठीक २ तो उसका चेला ही है' जब बहुत से सिपाहियों ने बगीचे में जाके उसके चेले से कहा, 'तुझको महाराज का हुक्म है शूली पर चढ़ने के लिए चल' तब तो वह घबड़ा के बोला 'हमने तो कोई ग्रपराध नहीं किया।'

सिपाही—ग्रपराध तो नहीं किया परन्तु तू ही शूली के समतुल्य है, हम क्या करें?

साधु—क्या दूसरा कोई नहीं है ?

सिपाही—नहीं, बहुत बर बर मत कर, चल महाराज का हुक्म है।

तब चेला गुरु से बोला, महाराज! 'अब क्या करना चाहिए ?'

गुरु—हमने तुझ से प्रथम ही कहा था कि अन्धेर नगरी गवर्गण्ड के राज्य में मुफ्त के माल चबाने को मत चलो, तू ने नहीं माना। अब हम क्या करें ? जैसा हो वैसा भोग, देख अब सब खाया पीया निकल जावेगा।

चेला—अब किसी प्रकार बचाओ तो यहां से दूसरे राज्य में चले जावें।

गुरु—एक युक्ति है बचने की, सो करो तो बचने का सम्भव है। शूली पर चढ़ते समय तू मुझको हटा, मैं तुझको हटाऊँ, इस प्रकार परस्पर लड़ने से कुछ बचने का उपाय निकल आवेगा।

चेला—अच्छा तो चलिए।

सब बातें दूसरे देश की भाषा में की। इससे सिपाही कुछ भी न समझे। सिपाहियों ने कहा, 'चलो देर मत लगाओ, नहीं तो बांध के ले जाएंगे।'

साधुओं ने कहा—हम प्रसन्नता पूर्वक चलते हैं; तुम क्यों बांधो।

सिपाही—अच्छा तो चलो।

जब शूली के पास पहुंचे तब दोनों लंगोट बांध के मिट्टी लगाकर खूब लड़ने लगे। गुरु ने कहा, 'शूली पर मैं ही चढूंगा।'

चेला—चेला का धर्म नहीं कि मेरे होते हुए गुरु शूली पर चढ़े।

गुरु—मेरा भी धर्म नहीं कि मेरे सामने चेला शूली पर चढ़ जाये, हां मुझको मारकर पीछे भले ही शूली पर चढ़ जाना, क्यों बकता है चुप रह, समय चला जारहा है। ऐसा कहकर शूली पर चढ़ने लगा। तब चेले ने गुरु को पकड़ कर धक्का देकर अलग किया, आप चढ़ने लगा। फिर गुरु ने भी वैसा ही किया। तब तो गवर्गण्ड के सिपाही कामदार सब तमाशा देखते थे। उन्होंने कहा, तुम शूली पर चढ़ने के लिए क्यों लड़ते हो ? तब दोनों साधु बोले कि हम से इस बात को मत पूछो, चढ़ने दो, क्योंकि हमको ऐसा समय मिलना दुर्लभ है। सिपाहियों ने आकर साधुओं के झगड़े की बात कही। सुनकर गवगण्ड ने सभा सहित वहां जाके साधुओं से पूछा कि 'तुम शूली पर चढ़ने के लिए क्यों सुख मानते हो ?'

साधु—तुम हम से मत पूछो, चढ़ने दो, समय चला जाता है। ऐसा समय हमें बड़े भाग्य से मिला है।

गवर्गण्ड—इस समय में शूली पर चढ़ने से क्या फल होगा ?

साधु—हम नहीं कहते जो चढ़ेगा वह देख लेगा। हमको चढ़ने दो।

गवर्गण्ड—नहीं नहीं, जो फल होता हो सो कहो। सिपाहियो! इनको इधर पकड़ लाओ। वे पकड़ लाये।

साधु—हम को क्यों नहीं चढ़ने देते ? झगड़ा क्यों करते हो ?

गवर्गण्ड—जब तक तुम इसका फल न कहोगे तब तक हम कभी न चढ़ने देंगे।

साधु—दूसरे को कहने की बात तो नहीं है। परन्तु तुम हठ करते हो तो सुनो। जो कोई मनुष्य इस समय शूली पर चढ़ कर प्राण छोड़ देगा वह चतुर्भुज होकर विमान में बैठ के आनन्दरूप स्वर्ग को प्राप्त होगा।

गवर्गण्ड—अहो ऐसी बात है तो मैं ही चढ़ता हूँ तुम को न चढ़ने दूंगा। ऐसा कहकर झट आप ही शूली पर चढ़ कर प्राण छोड़ दिए। साधु अपने आसन पर आये। चेले ने कहा, ! 'महाराज, चलिए यहां अब न रहना चाहिए।' गुरु ने कहा अब कुछ चिन्ता नहीं, जो पाप की जड़ गवगण्ड था, मर गया। अब धर्मराज्य होगा, क्या चिन्ता है यहीं रहो। उसी समय छोटा भाई बड़ा विद्वान् पिता के सदृश धार्मिक और जो उसके पिता के समान धार्मिक सभासद और प्रजा में सत्पुरुष जो कि उसके पिता के मरने के पश्चात् गवर्गण्ड ने निकाल दिए थे, वे सब आके सुनीति नामक छोटे भाई को राज्याधिकारी करके उस मुर्दे को शूली पर से उतार के जला दिया और खुशामदियों की मण्डली को अत्युग्र दण्ड देके कुछ कैद कर लिए और बहुतों को नौका में बैठाकर किसी समुद्र के बीच निर्जन द्वीपान्तर में बन्दीखाने में डालकर अत्युत्तम विद्वान् धार्मिकों की सम्मति से श्रेष्ठों का पालन, दुष्टों का ताड़न, विद्या, विज्ञान और सत्य धर्म की वृद्धि आदि उत्तम कर्म करके पुरुषार्थ से यथायोग्य राज्य को चलाने लगे और पुनः नगरी का नाम प्रकाशवती प्रकाश हुआ और उचित समय पर सब उत्तम काम होने लगे···

व्यवहार भानु।

सम्पूर्ण फलित ऐसा ही है। फलित की बातें खगोल शास्त्र के विरुद्ध कल्पित और झूठी हैं। भला इन पोपों से यह कोई पूछे कि क्या ये नक्षत्र चेतन हैं ? मनुष्यादि के समान हैं ? ब्राह्मण क्षत्रियादि हैं ? स्त्रीपुरुषादि हैं ? अन्धे-काणे भी हैं और एक २ भूत से बने हैं ? तो इनके पास इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है। फलित तब प्रारम्भ होता है जब कि भूगोल खगोल को

परे फेंक दिया जाय। इसलिए फलित वाले भूगोल, खगोल के विरोधी हैं। इनको कोरी शेखचिल्ली की कल्पना करना अच्छे प्रकार ज्ञात है। उल्टी सीधी बातें लिख २ कर पुस्तकें बनालीं और लगे भोले भाले और आँख के अन्धों को ठगने। इस प्रकार स्वार्थ की लीला रची।

वृत्त को २७ नक्षत्रों में विभक्त किया। किसी नक्षत्र के क्षेत्र में जब तक चन्द्रमा रहे उतने समय (=दिन) को उस नक्षत्र के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इसी प्रकार सूर्य जितने समय तक एक नक्षत्र पर रहता है उसको भी नक्षत्र कहा जाता है। चन्द्र एक नक्षत्र पर लगभग एक दिन तक रहता है और सूर्य लगभग १३॥ दिन तक रहता है। इन सबके फलों का वर्णन किया है। वास्तव में यह सारा केवल कल्पना ही है। क्योंकि नक्षत्र २७ नहीं है अपितु वैज्ञानिकों का कथन है कि ६००० छ: सहस्र नक्षत्र ऐसे हैं जिनको आंखो से देखा जा सकता है। लगभग एक खरब गुणित एक खरब १०००००००००००×१००००००००००० नक्षत्र हैं। इन २७ में भी कुछ ऐसे हैं जो स्वल्प कान्ति वाले हैं और प्रयत्न से ही देखे जा सकते हैं। कुछ ऐसे भी नक्षत्र हैं जो अत्यन्त चमकीले हैं किन्तु इनको गिनती में नहीं लिया गया। जो भी हैं करोड़ों, अरबों नहीं, खरबों मीलों पर हैं। दूरातिदूरवर्ती नक्षत्रों का हम से ९३०००००० मील पर रहने वाले सूर्य के साथ तथा २३८००० मील दूर पर रहने वाले चन्द्र के साथ क्या सम्बन्ध है? इनका पृथिवी के साथ और पृथिवीस्थ मनुष्यों के साथ क्या सम्बन्ध है?

प्र० इन नक्षत्रों के साथ में हमारी पृथिवी का लौहचुम्बक सम्बन्ध होने से जो एक प्रकार की आकर्षण शक्ति रहती है, उसमें प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। गतिवैलक्षण्य से पृथिवी पर रहने वालों पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है।

उ०—नक्षत्रों के समक्ष पृथिवी की गणना लगभग समुद्र में बिन्दु के समान है उक्त २७ नक्षत्रों के साथ इस पृथिवी का लौह चुम्बक सम्बन्ध सिद्ध करना कोई सरल बात नहीं है। यह असाधरण वैज्ञानिकों के लिए भी साहस का काम है। यदि इसको भी कुछ क्षण के लिए मान लेवें कि २७ नक्षत्रों का पृथिवी के साथ संबंध है तो भी वह सम्पूर्ण पृथिवी पर एक समान होगा न कि एक २ मनुष्य पर अलग २। यह केवल आकर्षण है और वह भी भौतिक है, यही हो सकता है। इसका कर्मों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आपको यह भी पता होना चाहिए कि नक्षत्रों की गति है,किन्तु है अत्यल्प। परंतु फलित के ग्रन्थों के लिखने वालों को यह पता नहीं था कि नक्षत्रों में गति है। वे

तो नक्षत्रों को स्थिर मानते थे। नक्षत्रों की बात ही क्या, पृथिवी को भी स्थिर मानते थे। 'नक्षत्र बड़े २ लोक हैं। सूर्य से भी बड़े २ हैं' उनको ऐसा ज्ञान भी नहीं था। पृथिवीस्थ मनुष्यों पर उनका प्रभाव होता है ऐसा उन्होंने स्वप्न में भी नहीं सोचा होगा। कुछ नक्षत्रों को पार्थिव, कुछ को जलीय, कुछ को ब्राह्मण, कुछ को क्षत्रियादि, कुछ को स्त्री, कुछ को पुरुष, कुछ को अन्धा, कुछ को काणा मानने वाले भोले व्यक्ति से इसकी कल्पना की क्या आशा भी की जा सकती है? नहीं नहीं, कभी नहीं। यह तो आप जैसे लोगों की तुकबन्दी है। यदि उनको इस प्रकार की कल्पना भी होती तो व्याध जैसे तेजस्वी प्रकाशमान् तारे को नक्षत्रों में सर्वप्रथम स्थान देते और रेवती जैसे तारे को कभी स्थान न देते।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस विषय में अद्‌भुत अनुसन्धान किए हैं और कर रहे हैं किन्तु उन्होंने २७ नक्षत्रों का कोई आकर्षण पृथिवीस्थ मनुष्यों पर पड़ता हो ऐसा नहीं कहा। यदि दुर्जनतोषन्याय से मान भी लेवें कि पड़ता है तो उसको मापने का कोई साधन वर्तमान में नहीं है। जिस रूप में जितना प्रभाव पड़ता है उसी को फलित ग्रन्थों में 'बतलाया गया है अथवा फलित से जाना जाता है' यदि ऐसा कहो तो यह शेखचिल्ली जैसी कल्पना है और साध्यकोटि में भी है। यदि कोई इसका ज्ञान करना चाहे तो उसको आकर्षणविद्या का अति सूक्ष्मता से अध्ययन करना पड़ेगा और प्रयोगों द्वारा ज्ञात करना होगा तब सम्भव है पता चल जाय। किन्तु इन फलित पुस्तकों से इस विद्या का कोई सम्बन्ध नहीं। इनसे उसका क्या सम्बन्ध है?

मद्यपान करने, चोरी करने और चार्वाक, जैन, पाषण्डी आदियों की मण्डली करने का विधान महापातकियों का काम है।

प्रश्न—वेदों में नक्षत्रों के नाम आए हैं। उनसे कल्याण करने की प्रार्थना करना लिखा है। देखिए—

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु॥

अथर्व० १९।८।१॥

जो नक्षत्र द्युलोक, अन्तरिक्ष, जल, पृथिवी पर्यन्त और दिशाओं में हैं; चन्द्रमा जिनकी कल्पना करता हुआ चलता है, मेरे लिए वे शुभ हों।

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात्परिपाह्येनम्।
अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय॥

अथर्व० ६।११०।२॥

व्याघ्रे ह्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।
स मा वधीत्पितरं वर्धमानो मा मातरं प्रमिनीज्जनित्रीम् ।।

अथर्व० ६ । ११० । ३ ॥

ज्येष्ठा नक्षत्र को ज्येष्ठघ्नी और मूल नक्षत्र को निचृत कहते हैं। हे यम इन दोनों से इस बालक की रक्षा करो। इसके समस्त दुरित दूर करो और इसको दीर्घायु बनाओ। व्याघ्र के समान क्रूर नक्षत्र वाले दिन में उत्पन्न हुआ यह बालक मूल नामक पाप नक्षत्र से न मरे और उत्पन्न होकर माता पिता को न मारे।

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परिपाह्येनम् ।
स ग्राह्याः पाशान् विचृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनुजानन्तु विश्वे ।।

अथर्व० ६ । ११२ । १॥

हे अग्ने ! मूल नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र बड़े भाई का मारक न हो, वंश का उच्छेद न करे। ग्रहण करने वाली जो पिशाची है, वह इसके पाशों को काट दे। इस कार्य में सब देवता अनुमोदन करें।

वेद ने नक्षत्र और ग्रहों से कल्याण की प्रार्थना करनी लिखी है, साथ ही साथ छः नक्षत्रमूलके हैं, उनमें पैदा हुए बालक की कुशलता के लिये मूल शान्ति करनी लिखी है। निस्सन्देह वेदों ने नक्षत्र ग्रहों से कल्याण चाहकर मूल शान्ति द्वारा अरिष्टागमन की निवृत्ति कही है। लोग कहते हैं कि नक्षत्र जड़ हैं भला इनसे पूछो कि नक्षत्र जड़ होते तो वेद उनसे शुभ कामना करने तथा वर माँगने को क्यों लिखता ?

उत्तर—वेदों में नक्षत्रों के नाम आए हैं यह सिद्ध नहीं, अभी साध्य है। वेदों में नक्षत्रों के नाम आए हैं ऐसा न कहकर वेदों के ही शब्दों को लेकर ऋषियों ने वा विद्वानों ने व्यवहार की सिद्धि के लिए विभिन्न पदार्थों के नाम रख लिए हैं यह कहना चाहिए। यदि नक्षत्रों के नाम वेद में मान-लेवें तो वेद अनित्य हो जावें। क्योंकि नक्षत्रों का स्थान निश्चित नहीं होता। आज जो ध्रुव स्थान पर नक्षत्र है वह ध्रुवतारा कहलाता है। कुछ लाख वर्षों के पश्चात् वह स्थानान्तरित होता है। कई लाख वर्षों तक ध्रुव स्थान पर कोई तारा नहीं रहता। इस अनित्य इतिहास को वेद जो कि सृष्टि के आरम्भ में आविर्भूत हुआ, कैसे कहेगा ? आपने जिनको नक्षत्र कहा है उनके नक्षत्र होने में कोई प्रमाण हो तो बतलाइए। यह तो ठीक है कि उन्हीं शब्दों को लेकर नक्षत्रों के नाम रख दिए। इस में पूर्वोक्त युक्ति है। इसके अति-रिक्त प्रमाण भी है।

महर्षि दयानन्द ने इसी प्रकरण में आए हुए एक मन्त्र का अर्थ किया है। अन्य भाष्यकारों ने नक्षत्रपरक अर्थ किया है जबकि महर्षि ने नक्षत्र का नाम भी नहीं लिया। मन्त्र में कहीं आकाशस्थ तारों का नाम नहीं।

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सहयोगं भजन्तु मे ।
योगं प्रपद्ये क्षेमं च क्षेमं प्रपद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ।।

अथर्व० १३ । ४ । ४७॥

भाष्यम्—(अष्टाविंशानि) हे परमेश्वर भगवन् भवत्कृपयाऽष्टाविंशानि (शिवानि) कल्याणानि कल्याणकारकाणि सन्त्वर्थाद्दशेन्द्रियाणि, दश प्राणा, मनोबुद्धिचित्ताहङ्कारविद्यास्वभावशरीरबलं चेति। शग्मानि सुखकारकाणि भूत्वा (अहोरात्राभ्यां) दिवसे रात्रौ चोपासनाव्यवहारं योगं (मे) मम (भजन्तु) सेवन्ताम् । तथा भवत्कृपयाहं (योगं प्रपद्ये) प्राप्य (क्षेमं च) (प्रपद्ये) क्षेमं प्राप्य योगं च प्रपद्ये । यतोऽस्माकं सहायकारी भवान् भवेदेतदर्थं सततं नमोऽस्तु ते ।। ऋ० भा० भू० उपासना वि०

अब थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाए कि वेदों में आए शब्द वे ही हैं जिनका हम नक्षत्रों के लिए प्रयोग करते हैं और अर्थ भी वही है तो क्या इससे फलित सत्य सिद्ध हुआ ? पूर्वपक्षी ने प्रथम मन्त्र का जो अर्थ किया है उसी को मान लिया जाए तो भी फलित सत्य सिद्ध नहीं होता। यदि एक मनुष्य को सूर्य की धूप वा गर्मी हानि न पहुँचाए तो यह कैसे सिद्ध हुआ कि उसने फलित को मान लिया और सूर्य वा अन्य ग्रह वा नक्षत्र चेतन कैसे सिद्ध हुए ? यदि कोई मनुष्य वर्षा काल में कहीं जाना चाहे और मार्ग में बहुत कीचड़ भरा हो तो यात्री कहता है, 'भाई कीचड़ ने बहुत दुःखी कर दिया, तो क्या इससे कीचड़ चेतन हो गया है ? गरमी के दिनों में जाना है, लम्बी यात्रा है, मार्ग रेतीला है तो मनुष्य कहता है कि रेत ने बहुत तंग किया है। कांटों को दृष्टि में रखकर कहता है कि कांटों ने तंग किया। इस प्रकार की बातें प्रतिदिन सैकड़ों होती हैं। तो क्या बालू, रेत वा कांटे आदि २ चेतन हैं ? इसी प्रकार एक मनुष्य जो कि अनुभवी है, दूरदृष्टिवाला है यदि वह प्रार्थना करे कि, 'प्रभो ! मुझे रेत से कांटों वा कीचड़ से कष्ट न हो; मैं सुखपूर्वक गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाऊँ; अब बतलाइए क्या ऐसी प्रार्थना करने वाला रेत, कांटों वा कीचड़ को चेतन मानता होगा ? क्या प्रार्थी की प्रार्थना रेत, कांटे वा कीचड़ सुनते होंगे ? इससे फलित सत्य कैसे सिद्ध हुआ ? इसी प्रकार का अभिप्राय इन मन्त्रों में है। परमात्मा से यह प्रार्थना की जा रही है कि हमें इनसे कोई हानि न पहुँचे। ये प्राकृति

शक्तियां हमारे स्वास्थ्य आदि को उन्नत करने वाली हों। ग्रह, नक्षत्रों से प्रार्थना नहीं की जा रही है। भ्रान्ति से आपने समझ लिया कि यह ग्रह, नक्षत्रों से प्रार्थना की जा रही है।

आपने जो अगले दो मन्त्रों का अर्थ किया है वह काल्पनिक है और खेंचातानी है। ज्येष्ठघ्नी का अर्थ ज्येष्ठा नक्षत्र और विचृति का अर्थ मूल नक्षत्र के होने में क्या प्रमाण है? किसी वैदिक ग्रन्थ में ऐसा अर्थ हो तो बतलाइए। इन मन्त्रों का वास्तविक अर्थ देखिए—

"ज्येष्ठघ्नी शब्द स्त्रीलिंग है। जिस स्त्री के प्रथम बालक उत्पन्न होकर मर जाय उसकी सन्तति की रक्षा करने का उपदेश तथा प्रार्थना इस मन्त्र में की गई है।

(ज्येष्ठघ्न्यां) ज्येष्ठ प्रथम बालक को खो चुकने वाली मृतवत्सा स्त्री में यह बालक (जातः) उत्पन्न हुआ है। (विचृतेः) विशेष रूप से परस्पर मिले हुए दोनों बालकों में से वा (यमस्य) युगल रूप से उत्पन्न हुए (एनम्) इस बालक की (मूलबर्हणात्) नाभि में लगी नाड़ी के काटने के समय से ही (परिपाहि) रक्षा करो! (विश्वा दुरितानि) सब प्रकार के दुरित, बालक को दुःख देने वाले, पीडाकर कार्यों से (अतिनेषत्) पार कर दो जिससे वह (शत शारदाय) सौ बरस की लम्बी आयु तक जीवे।

(व्याघ्रे) व्याघ्र के समान प्रबल दिन (माता पिता के बल के समय) में (वीरः अजनिष्ट) वीर पुत्र उत्पन्न होता है। (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ (सुवीरः) उत्तम बालक वही है जो (नक्षत्रजाः) अस्खलित वीर्यवान्, ब्रह्मचारी, गृहस्थ से उत्पन्न होता है। (सः) वह (वर्धमानः) बड़ा होकर (पितरं) अपने पालक पिता को (मा वधीत्) कभी न मारे और (मातरं जनित्रीम्) मान्य जननी को (मा प्रमिनीत्) कष्ट न दे।"

वाचस्पति शास्त्री कृत स० प्र० भाष्य द्वि० स० से

कई पुत्र बड़े होकर बल और सम्पत्ति के मद में आकर माता-पिता को कष्ट देते हैं, विरोध करते हैं, द्वन्द्व करते हैं, माता-पिता की हत्या करते हैं। इस मन्त्र में वेद ने माता पिता की रक्षा करने के लिए सन्तानों के लिए उपदेश किया है और परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि हे, परमात्मन् ऐसी सन्तान उत्पन्न हों जो माता-पिता को सुख देने वाली हों। दुःख देने वाली न हों।

(अयम्) यह पुरुष (ज्येष्ठं मा वधीत्) अपने बड़े भाई को न मारे।

हे (अग्ने) परमात्मा अथवा हे राष्ट्रपते (एषां) इनके (मूलबर्हणात्) मूल विनाश के बुरे कार्य से या मूलनाडी के काटने के समय से (एनम्) इस पुरुष को (परिपाहि) रक्षा कर (सः) वह तू हे अग्ने! (प्रजानन्) भली प्रकार विद्वान् तू (ग्राह्याः) पकड़ने वाली कैद के (पाशान्) पाशों को (विचृत) खोल दे। तब (देवाः) अन्य विद्वान् पुरुष भी (विश्वे) सब, तुझे इस कार्य को (अनुजानन्तु) अनुमति दें।"

वही ग्रन्थ

इस मन्त्र में छोटे भाई को उपदेश है। इसी प्रकार अन्य मन्त्रों का भी अर्थ है। इससे सिद्ध है कि इन मन्त्रों में फलित का कहीं गन्ध तक नहीं। इतना ही क्या फलित से इनका दूर से भी सम्बन्ध नहीं है। नक्षत्रादि जड़ हैं इनसे शान्ति की प्रार्थना वा आशा नहीं की जा रही है न की ही जा सकती है अपितु परमात्मा से की गई है। जो उनको चेतन कहते तथा मानते हैं उनकी कल्पना मात्र है। वे वेदार्थ तो क्या सामान्य भाषा के शब्द प्रयोगों को भी नहीं समझ पाते हैं। इसलिए "वेदों में फलित है, उनमें ग्रह, नक्षत्रादि से प्रार्थना की गई है" ऐसी मान्यता भ्रान्त तथा वेद और वैदिक परम्परा के विरुद्ध है। अपनी अविद्या को विद्या सिद्ध करके लोगों को ठगने के लिए इन्होंने वेदों का आश्रय लिया है। यदि वेदों में फलित होता तो यह भी सिद्ध हो गया होता कि **"तीक्ष्णोग्राम्बुपभेषु मद्यमुदितम्" "चोरस्य द्रव्यलब्धयः" "चार्वाकजिनपाषण्डमण्डलीकरणं शुभम्"** (इनका अर्थ पूर्वत्र लिख दिया है) आदि के अनुसार वेदों ने मद्य पीने, चोरी करने, पाषण्ड करने का विधान किया है। किन्तु न यह सिद्ध किया जा सका है न सिद्ध किया जा सकता है। अतः फलित वेदादि शास्त्रों के विरुद्ध है।

प्रश्न—वेदों में न हो तो श्रौत, गृह्यसूत्रों में कहां से आया? और स्वामी दयानन्द जी ने भी संस्कारविधि में नामकरण आदि में अनेक स्थानों में नक्षत्रादि का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि नक्षत्रों का प्रभाव होता है, उसका अपना फल है। इससे यह भी आया कि फलित सत्य है।

उत्तर—यह अभी सिद्ध नहीं किया जा सका कि वेद में आए हुए कृत्तिका आदि शब्दों का वही अर्थ है जो आज हम मानते हैं। वेदों में विद्यमान् कृत्तिका आदि शब्दों का लोक में व्यवहार होता है।

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा।
आदौ वेदमयी नित्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥
सर्वेषां तु सनामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥

इससे स्पष्ट हुआ कि वेदों के शब्दों को लेकर ही लोकव्यवहार ारम्भ हुआ। इतने से यह सिद्ध नहीं होता कि आज जो शब्द जिन अर्थों ं लोक में व्यवहार में दीख रहे हैं उनका वेद में वही अर्थ है। ये शब्द वेद ं हैं यह सत्य है किन्तु इतने मात्र से फलित सिद्ध नहीं होता। इन ब्दों का अर्थ नक्षत्र मान लिया जाए तो भी इनमें "नक्षत्र शुभाशुभ को ने वाले हैं" यह तो कहीं नहीं है। नक्षत्रों में शुभाशुभ की कल्पना निराधार । सब गृह्यसूत्र प्रामाणिक नहीं। "जो गृह्यसूत्र प्रामाणिक हैं उनमें जो छ लिखा है वह वेदानुकूल है।" यह नहीं कहा जा सकता। यदि गृह्यसूत्रों आने मात्र से सबको प्रामाणिक कोई मान भी लें तो भी इन वाक्यों से लित सिद्ध नहीं होता।

संस्कारविधि में महर्षि का नामकरण संस्कार में जन्मकालीन थि, तिथिदेवता, नक्षत्र और नक्षत्रदेवता के नाम से आहुति देने का धान गोभिलादि गृह्यसूत्रानुसार है। इससे यह कैसे कल्पना करली कि लित प्रामाणिक है वा सत्य है। जब तक प्रमाणों वा तर्कों से सिद्ध नहीं रेंगे तब तक सत्य किस प्रकार मान लिया जायगा? इसमें फलित का गन्ध ी नहीं। मान लीजिए फलित है; तो किस प्रकार? यह सिद्ध कीजिए। ा तिथि आदि के नाम से आहुति देने से शुभाशुभ की सिद्धि हो गई? दे किसी प्रकार अशुभ तिथि या नक्षत्रादि से होने वाले अनिष्ट के प्रशमन लिए आहुति का विधान मान भी लिया जाए, तो शुभ तिथि वा नक्षत्र के ाए किया हुआ आहुति का विधान व्यर्थ हो जाएगा। इसका आपके पास ा समाधान है?

तिथि, तिथिदेवता, नक्षत्र और नक्षत्रदेवता का अभिप्राय कुछ और है। जन्म के समय के ज्ञान के लिए तिथि का प्रयोग किया जाता है। त्र से यह ज्ञान किया जाता है कि चन्द्र किस नक्षत्र के सीध में है। इससे ष्ट और सृष्टि में होने वाले परिवर्तन का ज्ञान होता है। रहा इनके देवता विषय।

"ये तिथि और नक्षत्रों के दूसरे नाम हैं जो कि इनके द्योतक काशक) होने के कारण इनके देवता कहाते हैं। ये इन तिथि और नक्षत्रों प्रकट करने के लिए सांकेतिक नाम हैं। इस प्रकार से सांकेतिक नामों व्यवहार प्रत्येक भाषा और प्रत्येक जाति में पाया जाता है।......ऐसे सिक्खों में चनों को बादाम, प्याज को रूखा प्रसाद, मिर्चों को लड़ाकियां, ी रोटी को मिट्ठा परशादा, दूध को समुद्र, घी को पंजवां इत्यादि अनेक

सांकेतिक नाम हैं जो इन वस्तुओं के द्योतक होने से इनके देवता कहे जा सकते हैं। जैसे संस्कृत साहित्य में[1] चान्द, सूर्य से एक का, चक्षु से दो का, राम से तीन का, वेद से चार का, इन्द्रिय से पांच का, अंग से छः का मुनि से सात का, वसु से आठका, अंक से नौ का बोध होता है। ये नाम भी अंकों के द्योतक होने से उनके देवता कहा सकते हैं। ऐसे ही तिथि और नक्षत्रों के लिए भी कर्मकाण्ड में उनके दूसरे सांकेतिक नाम नियत हैं उनको तिथि तथा नक्षत्रों का द्योतक होने से उनके देवता कहते हैं।

पं० मनसारामकृत पुराणपोलप्रकाश से उद्धृत।

इसी को महर्षि ने संस्कारविधि में उपस्थित किया है। महर्षि ने साक्षात् फलित को लीला कहा है। इसके अतिरिक्त गर्भाधान विधि में टिप्पणी में "यदि दो ऋतुकाल व्यर्थ जाए......पुष्य नक्षत्र युक्त ऋतु काल दिवस में......" लिखा है। सीमन्तोन्नयन में "यदा पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात्॥——जिस दिन मूल आदि पुरुष नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमा हो......पूर्वोक्त पक्ष नक्षत्रयुक्त चन्द्रमा के दिन सीमन्तोयन संस्कार करें।......" लिखा है।

यह उस २ शास्त्र में वा गृह्यादिसूत्रों में जैसा विधि है वैसा ही स्वामी जी ने उद्धृत किया है यह उसकी व्याख्या नहीं है। विवाह प्रकरण में लिखते हैं कि, "उदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे चोलकर्मोपनयनगोदान-विवाहाः।[2]

इसका अर्थ करते हुए भाषा में लिखा है "उत्तरायण शुक्लपक्ष अच्छे दिन अर्थात् जिस दिन प्रसन्नता हो उस दिन विवाह करना चाहिए——। इस पर टिप्पणी देते हुए एक प्रकार से "पुण्ये नक्षत्रे" की व्याख्या करते हुए लिखते हैं "**यह नक्षत्र आदि का विचार कल्पनायुक्त है, इसमें प्रमाण नहीं।**" इससे सुतरां स्पष्ट है कि नक्षत्रों का मनुष्य के कर्मों पर कोई प्रभाव नहीं होता। अतः फलित कल्पित है।

अब नक्षत्रों को शुभाशुभकारी मानने वालों से कुछ प्रश्न—

१. नक्षत्र शब्द का क्या अर्थ है?

२. नक्षत्र किसको कहते हैं और वे क्या वस्तु हैं?

३. नक्षत्र कितने हैं और उनके नाम क्या हैं?

४. नक्षत्र किस प्रकार शुभाशुभ होते हैं यह पदार्थ विद्या के आधार पर सिद्ध करके बताइए।

---

१. विशेषकर भारतीय ज्योतिष ग्रन्थों में अंकों के लिए सांकेतिक शब्द हैं। ले०

२. आ० गृ०।

५. नक्षत्रों को स्थिर मानकर कहा हुआ फल नक्षत्रों के चल सिद्ध होने से मिथ्या है।

६. नक्षत्रों के शुभाशुभ होने में कोई वेदशास्त्रों का वा आर्षग्रन्थों का प्रमाण हो तो बतलाइए।

७. नक्षत्रों का और कर्मसिद्धान्त का किस प्रकार सम्बन्ध है, सविस्तर बतलाइए।

८. नक्षत्रों का चन्द्रमा तथा सूर्य से क्या सम्बन्ध है ?

९. क्या नक्षत्र एक २ भूत से बने हैं ? यदि बने हैं तो आपने कैसे जान लिया ? प्रयोग से अथवा अन्य प्रकार से ? सिद्ध करके बतलाइए। यदि एक २ से नहीं बने हैं तो एक २ से कहने लिखने वाले ग्रन्थ फलित नहीं स्खलित ग्रन्थ हैं।

१०. नक्षत्र जड़ हैं वा चेतन ? सोच-समझ सकते हैं वा नहीं ? यदि सोच-समझ सकते हों तो ये संसार का सदा उपकार क्यों नहीं करते ? किसी को लाभ वा हानि क्यों पहुँचाते हैं ? यदि पहुँचाते हों तो अपनी इच्छा से पहुँचाते हैं अथवा परमात्मा की इच्छा से ? यदि अपनी इच्छा से पहुँचाते हैं तो परमेश्वर के कर्मफल की व्वयस्था को भंग करने वाले हुए। यदि परमेश्वर की व्यवस्था से करते हों तो कर्मानुसार ही करते होंगे। तब उससे छुटकारा तो भोगकर ही होगा। विना भोगे नहीं होगा। तब शान्ति, पूजा, पाठ और दान आदि व्यर्थ हैं।

११. क्या नक्षत्र मयूर आदि पक्षी हैं ? कैसे ?

१२. क्या ये देव, मनुष्य और राक्षस हैं ? सिद्ध करके बतलाइए।

१३. क्या ये स्त्री, पुरुष, नपुंसक भी हैं यदि हैं तो आपको कैसे पता चला ? यदि कहो कि, "ज्यौतिषग्रन्थों में आचार्यों ने लिखा है" तो ज्यौतिषाचार्यों ने ही यह भी लिखा है कि वे सब जड़ पदार्थ हैं, हमारे सूर्य के समान अथवा वड़े हैं। इन आचार्यों की वात को सत्य क्यों नहीं मानते ? क्या लिखितमात्र सत्य माना जा सकता है ? यदि पुरुष, स्त्री नपुंसक नहीं हैं तो फलित के ग्रन्थ झूठे सिद्ध हुए।

१४. क्या इनका विवाह हुआ है ? यदि हुआ है तो किसका किसके साथ हुआ और किसने कराया ? उनकी सन्तान हुई है वा नहीं ? यदि नहीं हुई तो वन्ध्या वा नपुंसक ठहरे ? यदि हुई हो तो कौन सी और उन सन्तानों का विवाह हुआ है वा नहीं ? होगा वा नहीं ? उनके रहने उठने-बैठने का

स्थान कौन सा है और नक्षत्रों के मातापिता हैं वा नहीं ? और हैं तो कौन हैं ?

१५. क्या जड़ पदार्थ ब्राह्मण, क्षत्रियादि हो सकते हैं ? यदि नहीं हो सकते तो फलित मिथ्या हुआ और हो सकते हों तो वेदादिशास्त्रों का प्रमाण दीजिए।

१६. नक्षत्रफलविधायक ग्रन्थों में परस्पर एवं पूर्वापर विरोध क्यों है ?

१७. फलित वाले क्या नक्षत्रों को बड़े २ लोक मानते थे ? प्रमाण दीजिए।

१८. नक्षत्र कारक हैं वा सूचक ? यदि कारक हैं तो कर्मसिद्धान्त व्यर्थ होगा और मनुष्य कर्म करने में परतन्त्र हो जाएगा ? यदि सूचक हैं तो सूचना को बदलने वा रोकने अथवा न सुनने से सूच्य में कोई अन्तर नहीं पड़ता। शान्ति, पूजापाठ, दानादि का विधान व्यर्थ है। दोनों ही पक्षों में निर्दोष नहीं सिद्ध हो सकते।

१९. मद्य, चोरी आदि का विधान करना क्या देश, धर्म, समाज और मनुष्य आदि की उन्नति के लिए होगा ? क्या किसी सदाचारी महापुरुष ने ऐसा विधान किसी शास्त्र में किया है ?

अथैकादशसमुल्लासः

अथ योगं पञ्चाङ्गञ्च व्याख्यास्यामः ।

सूर्य, चन्द्र के भोगों के योग को योग कहते हैं । ये विष्कम्भ आदि २७ हैं । उनका फल विभिन्न प्रकार से वर्णित है । पता नहीं चलता योग आकाशस्थ ग्रहों की कौन सी स्थिति दिखाते हैं । इनका उपयोग केवल फल-ग्रन्थों में ही है । एक मनुष्य भाग्यनगर से ५ कोस पर है और दूसरा ५० कोस पर । दोनों का योग ५५ कोस हुआ । यह ५५ कोस (योग) आकाशस्थ ग्रहों की किसी भी प्रकार की स्थिति को नहीं बताते हैं ना ही इनका कहीं खगोल में उपयोग ही होता है । योग शब्द खपुष्प के समान है । जब कल्पना ही मिथ्या है तो इसके फल का कथन करना वा मानना मिथ्या क्यों नहीं ? तिथिपत्रक को पञ्चाङ्ग कहा जाता है । इसमें वार, तिथि, नक्षत्र, योग और करणनामक ५ विषय होते हैं । इन पांचों के विषय में विचार किया है । इन पांचों का नाम पञ्चाङ्ग है । ये पाँच अङ्ग हैं अतः इनका समाहृत नाम पञ्चाङ्ग है । अङ्ग अवयव को कहते हैं । ये पांचों अङ्ग हैं । किसके अङ्ग हैं, यह मुझे समझने में नहीं आया । ये न काल के अङ्ग हैं, न ज्यौतिष के तथापि व्यवहार में पञ्चाङ्ग कहे जाते हैं ।

आज जिसको पञ्चाङ्ग कहा जाता है वह प्राचीन नहीं है । यह स्वरूप तो फलित वालों की देन है । आदिकाल से सूर्य, चन्द्र के अन्तर रूपी तिथि का तथा चन्द्र के विभिन्न नक्षत्रों के क्षेत्र में प्रविष्ट होने पर नक्षत्र के नाम से आकाशस्थ स्थिति का वा कालका ज्ञान तथा व्यवहार किया जाता था । कालान्तर में वार का भारत में प्रवेश हुआ । पश्चात् वार तिथिपत्रक (पञ्चाङ्ग) में सन्निविष्ट हुआ । आगे चलकर करण की कल्पना हुई । अनन्तर योग का भी प्रादुर्भाव हुआ । इस प्रकार आज का पञ्चाङ्ग वन गया । पञ्चाङ्ग देख तो बहुत लोग लेते हैं परन्तु बनाया कैसे जाता है इसका ज्ञान तो बहुत थोड़े लोगों को है । जो भी बनाते हैं वे भी कोष्ठकों के आधार पर बनाकर वर्तमान पाश्चात्य ग्रहदर्शन (नाटिकल आलमनाक) से

भारतीय काल का संस्कार देकर सूर्य, चन्द्र के ग्रहणों को लिख देते हैं । यह हो गया पञ्चाङ्ग । पृथक् २ रूप से एक २ की समीक्षा की गई । अब यह विचारना है कि इसका मनुष्य के जीवन में क्या उपयोग है । इससे तिथि, वार और नक्षत्र का ज्ञान होता है । यह स्पष्ट उपयोग है । करण तथा योग का केवलमात्र फलित के नाम से ही उपयोग होता है । तिथि, वार तथा नक्षत्र का भी कुछ इसी प्रकार उपयोग होता है । वास्तव में जिस 'इतिहास के वृत्तान्त, पूर्वापर काल का प्रमाण, सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय तथा वेदों की उत्पत्ति के वर्षों की गिनती आदि' के लिए तिथिपत्रक था आज वह उद्देश्य लुप्त हो गया । आज इसको देख-दिखाकर पेट भरते हैं । श्री पं० पुरुषोत्तम जी जोषी उज्जैन वालों का विचार है कि "धार्मिक भोले भाले लोगों को ठगने का कुछ चतुर मनुष्यों के द्वारा रचा हुआ जाल ही पञ्चाङ्ग है ।" इस विषय में किसी कवि का श्लोक है—

> **गणिकागणकौ समानधर्मौ निजपञ्चाङ्गदर्शकावुभौ ।**
> **जनमानसमोहकारिणौ तौ विधिना वित्तहरौ विनिर्मितौ ॥**

गणिका वेश्या और गणक फलितवाला ये दोनों ही अपने-अपने पञ्चाङ्ग दिखाते हैं । फलितवालों का पञ्चाङ्ग तो प्रसिद्ध ही है, वेश्या अपने कामोत्तेजक पांचों अवयव (अङ्ग) दिखाती है । ये दोनों ही मनुष्यों के मन को मोहित आकृष्ट करते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मा ने इन दोनों को धन लूटने वालों (डाकुओं) के रूप में बनाया है ।

यहां तक काल के छोटे अवयवों का विचार किया । अगले समुल्लास में बड़े अवयवों को लेकर विचार किया जायेगा भिन्न २ होते हुए भी ये सब काल के अवयव हैं । काल पर विचार करने से इन सबका विचार हो जाता किन्तु उसको विद्वान् ही समझ सकते थे । जनसाधारण के लिए तथा स्पष्टता के लिए एक २ अंश को लेकर विचार किया है ।

अथ द्वादशसमुल्लासः

अथ मासवर्षयुगादीन् व्याख्यास्यामः ।

वार, तिथि के अनुसार मास, वर्ष, युग आदि के फलों का वर्णन किया है। उन सब का वर्णन करना समय नष्ट करना है। इनके फल का विधान "वेदादि शास्त्रों वा सृष्टि के विरुद्ध है। आप्तपुरुषों के सिद्धान्तों वा व्यवहार के विरुद्ध है। अपने अन्तरात्मा तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों के प्रतिकूल है। कल्पित तथा भ्रान्तिपूर्ण होने से सर्वदा सबके लिए अमान्य है। कोई मास शुभ, कोई अशुभ क्यों है इसका उत्तर किसी के पास नहीं है। श्रावणमास शुभ क्यों है और ज्येष्ठमास अशुभ क्यों है, इसका कोई हेतु नहीं है। यदि कोई मास अच्छा है तो उसमें दुष्ट कार्य क्यों होते हैं ? मास तो परिमित काल की संज्ञा है। काल ही कारण होता तो शुभाशुभ कर्म अर्थात् कर्मसिद्धान्त ही खण्डित हो जाता। काल किसी शुभ वा अशुभ कार्य का कारण नहीं होता, न हो सकता है। इसी प्रकार उत्तरायण, दक्षिणायन भी हैं। यदि उत्तरायण उत्तरगोल में रहने वालों के लिए शुभ माना जाय तो वही दक्षिण में अशुभ हो जाएगा। यह परस्पर विरुद्ध मान्यता सत्य कैसे हो सकती है ? इससे वर्ष के शुभाशुभत्व का विवेचन भी हो गया।

युग—काल को मापने के जैसे घटी, मुहूर्त, तिथि, मास और वर्ष आदि मान हैं इसी प्रकार युग भी एक मानदण्ड है। युग चार प्रकार के हैं। १. कलियुग २. द्वापर युग ३. त्रेता युग तथा ४. सत् युग। कलियुग ४३२००० वर्षों का होता है; द्वापर ८६४००० वर्षों का, त्रेता १२९६००० वर्षों का तथा सत् १७२८००० वर्षों का। इन चारों युगों को सम्मिलित करके महायुग अथवा चतुर्युग कहा जाता है। इस प्रकार एक सहस्र चतुर्युगों का एक ब्राह्मदिन होता है। इतना ही प्रलय वा ब्रह्मरात्रि का समय होता है। पुराणादि ग्रन्थों में इन युगों का विचित्र वर्णन है और लोक में भी ऐसा ही माना जाता है। उनको संक्षेप में उद्धृत किया जाता है—

चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यञ्चैव कृते युगे ।
नाऽधर्मेणागमः कश्चिन्मनुष्यान् प्रतिवर्तते ॥
इतरेष्वागमाद्धर्मः पादशस्त्ववरोपितः ।
चौरिकानृतमायाभिर्धर्मश्चापैति पादशः ॥[1] मनु० १।८१,८२॥

अर्थ—कृतयुग में चार चरणों से युक्त सम्पूर्ण धर्म और सत्यभाषण था। उस समय मनुष्य अधर्मपूर्वक धनादि स्वीकार नहीं करते थे। अन्य त्रेता आदि युगों में शास्त्र से विभाग पूर्वक धर्म का निश्चय किया गया था। चोरी, मिथ्याभाषण और छल-कपटादि से एक २ पाद=चतुर्थांश धर्म घट जाता है।

आद्ये कृतयुगे धर्मश्चतुष्पादः प्रकीर्तितः ।
त्रेतायुगे त्रिपादः स्याद् द्विपादो द्वापरे स्थितः ।
त्रिपादहीनस्तिष्ठेत्तु सत्तामात्रेण तिष्ठति ॥ कूर्मपु० अ० २९।

कृतयुग में धर्म चार चरणों वाला कहा जाता है। त्रेता में तीन चरणों वाला, द्वापर में दो चरणों वाला, कलि में तीन पादों से हीन पश्चात् नाम मात्र रह जाता है।[2]

अस्मिन् कलियुगे घोरे लोकाः पापानुवर्तिनः ।
भविष्यन्ति महापापा वर्णाश्रमविवर्जिताः ॥ वही

इस घोर कलियुग में मनुष्य पापानुवर्ती होंगे। वर्णाश्रमों को छोड़ने वाले महापापी होंगे।

अस्मिन् कलियुगे घोरे अल्पायुश्चैव मानवाः ।
विधर्मेषु रता नित्यं नामनिष्ठा न वै पुनः ॥
पद्म पु०, षष्ठ० उ० खं० अ० ७१।

---

१. ये श्लोक मनु के नहीं हो सकते। प्रक्षिप्त हो सकते हैं।

२. एक ब्राह्म दिन में चतुर्युग का आवर्तन १००० एक सहस्रवार होता है। एक ही चतुर्युग के पश्चात् प्रलय नहीं होता। जब कलियुग के पश्चात् पुनः सत् युग आता है तो व्यवहार से रहित सत्तामात्र धर्म कब रहता है ? धर्म से हीन काल कौनसा होता है जब मनुष्य केवल अधर्म करता हो; धर्म नितान्त नहीं करता हो ? दूसरी बात यह है कि यदि कलियुग के पश्चात् मनुष्य नहीं रहेंगे तो धर्म का अस्तित्व कहां होता है ? क्योंकि धर्माधर्म का अस्तित्व मनुष्यों के साथ है। जब मनुष्य ही नहीं होंगे तो व्यवहार कहां रहेगा ? व्यवहार के बिना धर्माधर्म कहां रहेंगे ? इसी से विदित होता है कि यह श्लोककर्ता युग-गणना वा धर्म-ज्ञान से रहित कोई अविद्वान् था।

इस घोर कलियुग में मनुष्य अल्पायु, विधर्मों में नित्य रत होंगे। उन की नाम में निष्ठा नहीं रहती।

अत्यन्तकामिनः क्रूराः भविष्यन्ति कलौ युगे।
वेदनिन्दाकराश्चैव द्यूतचौर्यकरास्तथा॥

क्रियायोगसार, अध्याय २६।

कलियुग में मनुष्य अत्यन्त कामी, क्रूर, वेदनिन्दक तथा जुआरी होंगे।

परमायुश्च भविता तदा वर्षाणि षोडश।
ततः प्राणान् विमोक्ष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते॥
पञ्चमे वाऽथ षष्ठे वा वर्षे कन्या प्रसूयते।
सप्तवर्षाष्टवर्षा च प्रजास्यन्ति नरास्तदा॥ ब्र. पु. कलिधर्मनिरूपण[1]

कलियुग में १६ वर्ष की पूर्णायु हो जायगी, पांच छः वर्ष की कन्याओं को प्रसव हुआ करेगा और सात आठ वर्ष के लड़के बालकों के पिता बनेंगे।

परान्नलोलुपाः विप्राश्चाण्डालगृहयाजकाः।
स्त्रियो वैधव्यहीनाश्च स्वच्छन्दाचरणप्रियाः॥ कल्किपुराण

विप्र परान्नलोलुप, चाण्डालों के घरों में यज्ञ कराने वाले बनेंगे। स्त्रियां वैधव्य रहित और स्वेच्छाचारिणी होंगी।[1]

कलियुग के विषय में जो २ लिखा है उसको उद्धृत किया जाय तो बहुत बड़ा ग्रन्थ बन जाये। इस कलियुग का नाम वा प्रभाव भारत को छोड़ जर्मन, जापान, इंग्लैंड, अमेरिका, रूस, इटली आदि किसी देश में नहीं है। केवल भारतीय साहित्य में बद्धमूल है। भारतीय जनता के स्नायुओं में परिव्याप्त है। कलियुग के इस राक्षस ने भारतीय जनता को आंतकित कर रखा है। कलियुग शब्द का अभिप्राय विचारशील व्यक्तियों के लिए स्पष्ट है। एक व्यक्ति अपनी त्रुटि, दोष, निर्बलता, अज्ञता, हीनता, अकर्मण्यता वा असफलता आदि को छिपाने के लिए ईश्वर, भाग्य, मन्त्र, तन्त्र, टोक, भानामति, रोग, जमाना आदि का नाम लेता है और यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि मैं निर्दोष हूँ इसीलिए कलियुग का नाम लिया जाता है। जैसा—किसी ने किसी तीव्रबुद्धि वाले व्यापारी से कहा कि आपने बचपन

१. चन्दूलाल वर्माकृत 'सत्ययुगमीमांसा' से उद्धृत।

२. कलियुग का वर्णन तृतीय समुल्लास में भी आया है। अतः उसको भी इस प्रसंग में पढ़ें।

में विद्या नहीं पढ़ी, नहीं तो विद्वान् बनते। इसको सुनकर वह यह कहकर छुट्टी पाना चाहता है कि मेरे भाग्य में विद्या ही नहीं लिखी है। वह यह मानने को उद्यत नहीं है कि मैं पढ़ता तो विद्या प्राप्त करता। प्रयत्न नहीं किया, विद्या नहीं आई। अतः अविद्वान् बना हुआ हूँ। इसी प्रकार कलियुग भी दोषों को छिपाने का सर्वमान्य उपाय है। एक विदेशी लुटेरा हमारे देश को १८ वार लूटकर ले गया और भारत के पुरुषों, स्त्रियों और बालकों को गजनी ले जाकर दो २ रुपये में बेच दिया। हमारे धर्मध्वजी लोग इसको कलियुग का प्रभाव मानकर बैठे रहे। इसको कलियुग मानने का यह अर्थ है कि ऐसा होना अनिवार्य था। उसको रोका नहीं जा सकता था, एक प्रकार से ईश्वर द्वारा प्रदत्त कर्मफल है जिसको कोई भी अन्यथा नहीं कर सकता अथवा ईश्वरीय नियम है। जो भी पाप, पुण्य हो रहे हैं सब कलियुग के द्वारा हो रहे हैं। कलियुग ही अच्छा, बुरा करवाता है, मनुष्यों का कुछ भी वश नहीं चलता। अंग्रेजों ने भारत पर अपना आधिपत्य किया, यहां की संस्कृति के विनाश के लिए आश्चर्यजनक प्रयत्न किया। इस देश के वासी उस विदेशीय राज्य के जुए को उतार कर फेंकने के स्थान पर यह मान बैठना ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझा था कि यह कलियुग है[1]। पाश्चात्य सभ्यता भारत में फैलती जा रही ही है। इसका विरोधकर मनुष्य को सुखशान्ति प्रदान करने वाले उन सिद्धान्तों का प्रचार करना चाहिए जिनको वैदिकधर्म भी कहा जाता है। इसके स्थान पर मनुष्य हाथ पर हाथ धरे बैठ जाता है और यह कलियुग है कहकर अपने को मिथ्या सान्त्वना देकर सन्तोष कर लेता है। देश में मद्य, मांस, अण्डे आदि खाने वालों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है, सिनेमाओं के द्वारा चरित्र का पतन किया जा रहा है। मनुष्य जीवन को दुःखमय बनाने वाले इन कर्मों पर विचार वा प्रयत्न न करके यह कलियुग है कहकर अपने कर्तव्य से छुट्टी पा लेता है। दिन दहाड़े माता-बहिनों का अपमान किया जाता है, उनको विधर्मी बनाया जाता है, हमारे भोले भाई यह कलियुग है कहकर सन्तोष कर लेते हैं। आज भारतवासियों के मस्तिष्क में कलियुग के नाम पर उदासीनता, अकर्मण्यता, शक्तिहीनता, नपुंसकता, पराधीनता, अन्धविश्वास और भीरुता छाई हुई है।

१. महारानी विक्टोरिया का राज्य था। वृद्धजन विशेषतया धर्म के ठेकेदार पण्डित जी कहलाने वाले उस रावण के पुत्र मेघनाथ की पत्नी सुलोचना का अवतार बताया करते थे। कहते थे कि भगवान् रामचन्द्र ने उसके पतिव्रत धर्म से प्रसन्न होकर उसे चार पीढ़ी तक भारत में राज्य करने का वरदान दिया था।

—किशोरीलाल गुप्तकृत 'राष्ट्र निर्माण', पृ० ७९ के आधार पर

वास्तव में जैसे कि पूर्व सिद्ध किया जा चुका है कि काल जड़ होने से धर्माधर्म में साधक नहीं है। यदि काल कारण होता तो सत्ययुग में सब धर्मात्मा ही होते और कलियुग में पुण्यात्मा न होते किन्तु यह प्रमाणविरुद्ध है। सत्य युग में यदि धर्म के चार चरण पूर्ण रूप से विद्यमान होते तो राजकुमार ध्रुव की विमाता को राज्य लोभ न होता और उत्तानपाद को पुत्र से अधिक पत्नी प्रिय न होती। इसी प्रकार त्रेता में जिसमें धर्म के तीन चरण थे रावण जैसे पापात्मा द्वारा निरपराध जनता को कष्ट न होता। द्वापर में मथुरा के राजा कंस द्वारा जनता पर घोर अत्याचार न होते और इसके विरुद्ध कलियुग में जिसमें धर्म का एक ही चरण शेष रह जाता है देश, धर्म के लिए प्राण देने वाले हकीकतराय, गुरुगोविन्दसिंह जी के धर्मप्राण बालकों का जन्म न होता। राणाप्रताप समर्थगुरु रामदास, शिवाजी, वीर वैरागी, मङ्गल पांडे, झांसी लक्ष्मीबाई, तांत्याटोपे, सुभाषचन्द्र बोस, भगत सिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, लाला हरदयाल, चन्द्रशेखर आजाद, श्याम जी कृष्णवर्मा, वीर सावरकर, लाला लाजपतराय, तिलक, स्वामी शंकराचार्य, ऋषि दयानन्द सरस्वती, स्वामी श्रद्धानन्द, चाणक्य, चन्द्रगुप्त, सरदार पटेल, राजा राममोहनराय जैसे सहस्रों महान् आत्माओं का जन्म न होता। इससे स्पष्ट है कि सत्ययुग आदि का धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म का मनुष्य के साथ संबंध है। धर्म देशकाल परिस्थिति से परे है। यदि धर्माधर्म काल से सम्बद्ध होता तो मनुष्य को धर्मात्मा अधर्मात्मा नहीं कहना चाहिए, पाप-पुण्य भी नहीं होने चाहिए। इसके साथ ईश्वर पर बड़ा दोष उपस्थित होगा कि काल के साथ धर्म को बांध दिया। इसके साथ कर्म वा कर्मफल सिद्धांत कपोल कल्पित हो जायेंगे। नास्तिक से नास्तिक भी कर्मफल को मानता है, उनकी यह मान्यता भी मिथ्या माननी पड़ेगी। मनुष्य स्वतन्त्र न होकर कर्म करने में परतन्त्र हो जायगा। सर्वोपरि बात है कि वेदों में ऐसा कहीं नहीं है कि सत्य युग में धर्म के चार चरण विद्यमान रहते हैं, त्रेता में तीन, द्वापर में दो और कलि में एक। धर्म के साथ युगों का संबंध जोड़ना कपोलकल्पना मात्र है। जब सत्य युग में धर्म पूर्ण रूप से विद्यमान होता है तो भगवान् के मत्स्य, कूर्म, वराह और नरसिंह आदि चार २ अवतारों की क्या आवश्यकता है? क्यों कि गीता में—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ कहा है।

अर्थ—हे भारत! जब २ धर्म का ह्रास और अधर्म की वृद्धि होती है तब २ मैं जन्म लेता हूँ। सज्जनों की रक्षा करने, तथा दुष्टों के विनाश के लिए और धर्म की स्थापना करने के लिए मैं युग २ में जन्म लेता हूँ।

इसके अनुसार कलियुग में सर्वाधिक अधर्म होने से सर्वाधिक अवतार होने चाहिए और सत्य युग में एक भी नहीं होना चाहिए। वास्तव में सब समय में धर्मात्मा-अधर्मात्मा रहते हैं। ऐसा कोई काल वा युग नहीं जब केवल धर्मात्मा ही रहते हों अथवा अधर्मात्मा ही रहते हों। यदि कलियुग में धर्म का एक चरण ही रह जाता है तो कलि के पश्चात् जिस दिन से सत्य युग प्रारम्भ होता है क्या उस दिन संसार के तीन चौथाई मनुष्य (अर्थात् सब अधर्मी) एक दिन एक ही क्षण में मर जायेंगे? क्यों कि सत्य युग में अधर्मियों का क्या काम? यदि ऐसा होता तो इतिहास में इसका कहीं उल्लेख होता। कलियुग में धर्मात्माओं ने जन्म क्यों लिया? क्योंकि कलि तो निकृष्ट है? इसका कोई उत्तर नहीं है।

इतना ही नहीं कलि को सर्वोत्तम युग कहा है—

तपः परं कृतयुगे त्रेतायांज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥ मनु० १।८६॥

अर्थ—कृतयुग में तप प्रधान कहा जाता है और त्रेता में ज्ञान। द्वापर में यज्ञ को ही प्रधान और कलियुग में केवल दान को उत्तम कहा गया है।

तथाप्यस्ति महानस्य गुणो गुणवतां वर।
सत्ये द्वादशभिर्वर्षैर्भवेत् पुण्यस्य साधनम्॥
तदर्द्धेन च त्रेतायां मासेन द्वापरे भवेत्।
अहोरात्रेणैव विप्रभवेत्तच्च कलौ युगे॥[1]

पद्मपुराण, सप्तम क्रिया योगसार खण्ड अध्याय २६

तथापि इस कलियुग का बहुत बड़ा गुण है (वह यह है कि) सत्ययुग में जो १२ वर्षों में पुण्य का साधन होता है वही त्रेता में ६ वर्षों में, द्वापर में एक मास में और कलियुग में एक अहोरात्र में होता है।

कलिना सदृशः कोऽपि युगो नास्ति वरानने।

पद्मपुराण, भागवतमाहात्म्य, अध्याय २।

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन न समाधिना।
तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात्॥

श्रीम० भा० माहा०, अध्याय १।

---

१. पुराणतत्त्वप्रकाश, भाग १, पृ० ७२ के अनुसार

कलि के समान कोई युग नहीं है। जो फल तप से, योग से, समाधि से नहीं प्राप्त होता वह केशव के कीर्तन से प्राप्त होता है।

अब इन दोनों परस्पर विरुद्ध बातों में से किस को मानें और किस को न मानें? कलियुग को उत्तम मानें अथवा सत्य युग को और क्यों? इस का कोई उत्तर नहीं है। कलि के विषय में ऐसा जिसने वर्णन वा स्तुति की है वह नितान्त अज्ञ है। क्या १६ वर्ष की परम आयु किसी समय में किसी की रही है? सात वा आठ वर्ष के बालक पिता बन सकते हैं? वेद तो कहता है कि—

जीवेम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्। त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषं। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्।

वास्तव में आलंकारिक भाषा में जैसा कहा जाता है कि दिन देवता है और रात्रि दैत्य है इसी प्रकार कहीं २ ऐसा कहा गया है कि सत्ययुग में धर्म अधिक होता है और कलि में न्यून। इसका अर्थ यह नहीं है कि सत्ययुग में धर्म के चार और त्रेता, द्वापर और कलि में तीन, दो, एक चरण रहते हों। क्योंकि लिखा है कि **"कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलि ये सब राजा की परिस्थिति के नाम हैं क्योंकि राजा का नाम ही युग है। (३०१) यदि राजा सोया हुआ हो तो उसका नाम कलियुग है। यदि राजा जागता हो तो उस का नाम द्वापर युग है और यदि राजा स्वकर्तव्यपालन में उद्यत हो तो उस राजा का नाम त्रेता युग है और यदि राजा न्यायोचित कर्म करे तो उसका नाम सत्ययुग है। (३०२)"** मनु० अ० ९।

इस विषय में ऐतरेय ब्राह्मण पञ्चिका क० १५ में भी कहा है कि— **"जो मनुष्य सम्पूर्ण पाप करता है और नाममात्र धर्म करता है उसका नाम कलि और जो आधा धर्म और आधा पाप करता है उसका द्वापर और जो एक भाग पाप और तीन भाग धर्म करता है उसका नाम त्रेता और सम्पूर्ण धर्म करता है उसका नाम सत्ययुग है।"** सत्ययुगमीमांसा

इस बात को पुराणकार भी नहीं छिपा सके।

प्रभवन्ति यदा सत्त्वे मनोबुद्धीन्द्रियाणि च।
तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद्रुचिः॥
यदा कर्मसु काम्येषु भक्तिर्भवति देहिनाम्।
तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमान्॥
यदा लोभस्त्वसन्तोषो मानो दम्भोऽयमत्सरः।

कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः॥
मदो मायानृतं तन्द्रानिद्राहिंसाविषादनम्।
शोकमोहोभयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः॥ भाग० स्क० १२, अ० ३।

जब मन, बुद्धि, इन्द्रियां सत्त्वगुण में वर्तमान हों तब सत्ययुग जानें। उस समय ज्ञान और तप में रुचि रहती है। जब काम्य कर्मों में श्रद्धा हो तब त्रेता युग जानें। तब रजोगुण में प्रवृत्ति होती है। जब लोभ, असंतोष, मान, दम्भ, मत्सरता काम्यकर्मों में प्रीति होती है तब द्वापर समझें। तब राजोगुण वा तमोगुण में प्रवृत्ति होती है। जब अहंकार, छल, झूठ, आलस्य निद्रा, हिंसा, दुःख, शोक, मोह, भय, दैन्य, वर्तमान हों तब कलि समझें। तब तमोगुण में प्रवृत्ति होती है।

वास्तव में यही सत्य है। इसको भुलाकर, आलसी, पुरुषार्थ हीन, निष्कर्मा लोग पुराणों के नाम से जालग्रन्थ बनाकर स्वयं जाल में फंस कर और संसार के लोगों को फँसा कर रख रहे हैं। यह सारा धन्धा शुभकर्म छोड़ने और छुड़ाने के लिए ही है। अतः इससे अनर्थ भी बहुत हुआ, हो रहा है और जब तक बना रहेगा तब तक चलता ही रहेगा। इसी कलियुग के नाम से देश का पतन हुआ। आचार का विनाश हुआ। पितृभक्ति, देश-भक्ति और पुरुषार्थादि पर पानी फिर गया। दीन, हीन, पराधीन और भीरू बनकर बैठ गए। वेद की आज्ञा है कि **"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत्"** वेदोक्त कर्मों को करता हुआ ही जीने की इच्छा करे। परमात्मा इस रोग को सदा के लिए मनुष्यों के हृदयों से दूर करे जिससे अविद्यान्धकार से मुक्त होकर विद्यार्क प्रकाश में जीवन को शुद्ध, पवित्र बनाते हुए समस्त क्लेशों से पृथक् हो पूर्णानन्द को प्राप्त कर सके और समस्त प्राणियों के दुःखों की निवृत्ति में समर्थ हो सके।

अथ त्रयोदशसमुल्लासः

अथ शकुनं व्याख्यास्यामः ।

शकुन उसको माना जाता है जिससे अभीष्ट कार्य में सफल वा असफल होने का ज्ञान होता हो। अर्थात् जिस संकेत से कार्यसिद्धि वा असिद्धि का ज्ञान होता हो। शकुन शब्द संभवतः शकन का अपभ्रंश होगा। शक्लृ धातु से ल्युट् प्रत्यय होकर शकन बनता है। जो शक्त हो वह शकन है। जो किसी कार्य को कर सके वह शक्त वा शकन है। इसका ज्यौतिष से किसी भी अंश में कल्पित वा सत्य, किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। किन्तु इसकी भी ज्यौतिष के अन्तर्गत माना जाता है। इससे भूत, भविष्यद्, वर्तमान में होने वाली सफलता वा असफलता की कल्पना की जाती है।

शकुन कई प्रकार के होते हैं। जैसा-छींकना। कोई विवाहादि अथवा किसी अन्य शुभ कार्य के लिए जा रहा हो, उस समय कोई छींक दें तो यह समझा जाता है कि वह कार्य असफल होगा। छींक में भी अन्तर है। पी छे की, ऊपर की और बाईं ओर की छींक का फल अच्छा होता है। सामने की, निचली और दाईं ओर की छींक का फल बुरा होता है। अपनी छींक तो हमें भारी दुःख पहुँचाती है। सर्दी, खांसी आदि के कारण आई हुई अथवा सूंघनी आदि के द्वारा छल से लाई गई छींक निष्फल होती है। छींकने के पश्चात् उसको सौ वार समझाइए कि "जाकर तो देखिए संभव है कार्य सफल हो जाय" तो भी विश्वास नहीं होगा कि कार्य सफल भी हो जायेगा। छींकने वाले से यह कहा जाता है कि "तूने छींक कर सारा काम बिगाड़ दिया। थोड़ी देर बिना छींके रह जाता तो क्या होता? नाक को थोड़ा मसल ही लिया होता।" छींकने वाला भी अपने को अपराधी मान लेता है और चुप्पी कर जाता है। इतना ही क्या सुनने वाले भी छींकने वाले को दोषी समझते और कहते हैं। छींकते समय जाने पर कार्य असफल होता है, इसमें न कोई प्रमाण है न युक्ति ही है। यह कल्पना तथा अन्ध परम्परामात्र है, इससे अतिरिक्त कुछ नहीं। कार्य का छींक से क्या सम्बन्ध है? इसका कोई उत्तर नहीं है। छींक के कारण कार्य विगड़ा अथवा

बिगड़े हुए कार्य की छींक से सूचना मात्र मिल गई? यदि पहला पक्ष हो तो सिद्ध कीजिए। जिस प्रकार विष के खाने पर मनुष्य मर जाता है उसी प्रकार कार्य बिगड़ गया अथवा घुण्डी दबाने से जैसे बिजली का लट्टू जलने लग जाता है उस प्रकार अथवा अन्य प्रकार से? यदि कहो कि बिगड़े हुए कार्य की सूचना के रूप में छींक काम करती है तो भी ठीक नहीं क्योंकि छींकने वाले को यह कहा जाता है कि "थोड़ी देर नाक को मसल कर ही छींक को रोक लेता तो भी अच्छा होता" यह असत्य हो जाएगा। इसलिए दोनों ही प्रकार से छींक का कार्य के बिगाड़ के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। छींक के समय जाकर किया हुआ कार्य, सिद्ध, हुआ प्रत्यक्ष देखा गया है। छींक को शुभाशुभ मानने वाले से जब पूछा जाता है कि छींकते समय किया हुआ कार्य सफल क्यों हुआ? तब वे उत्तर देते हैं कि छींक से कुछ न कुछ कभी न कभी अवश्य हानि होती है। भोले लोगो! 'उपस्थितं परित्यज्य अनुपस्थितं याचत इति बाधित न्यायः' वर्तमान में जब असफलता नहीं मिली तब आगे का क्या पता? प्रमाण क्या है? जब एक छींक से हानि होती है तो दो छींकों से लाभ कैसे होगा? दाहिनी छींक अच्छी कैसी और बाईं बुरी कैसी? इसमें क्या तुकबन्दी है?

कभी २ छींक के कारण प्रामाणिक बात भी अप्रामाणिक बन जाती है। एक व्यक्ति किसी से कुछ बात कर रहा है और करते २ उसने छींक दिया अथवा किसी दूसरे ने छींक दिया। सुनने वाला उसकी बात को असत्य समझ लेगा। उसको सत्य सिद्ध करने के लिये कोई प्रमाण काम नहीं देता। आप कह सकते हैं कि "मुझे किसी निश्चित समय पर कहीं पहुँचना था पहुँच नहीं सका" लोगों ने देर का कारण पूछा कि "आप समय पर नहीं पहुँचे, क्यों देर कर दी?" तब आप कहेंगे, "मैं समय पर पहुँचने के लिए घर से निकला था किन्तु किसी ने छींक दिया जिससे मैं कुछ देर रुक कर आया" ऐसा कहने से मैं दोष से बच गया और उनके समक्ष निर्दोष सिद्ध हुआ। आपकी इस बात से सिद्ध हुआ कि छींक से सफलता असफलता का कोई सम्बन्ध नहीं अपितु छींक कभी २ लाभदायक होती है। इससे आपकी प्रतिज्ञा-हानि हुई। क्या छींक का शुभाशुभत्व यही है? इसी के लिए इसका आविष्कार हुआ? जिस प्रकार आपने दूसरों को बहकाया उसी प्रकार आप को दूसरे भी बहकायेंगे। झूठी बातों से आप कब तक बहकाते रहेंगे? कभी न कभी सत्यासत्य सामने आ जाता है, सदा नहीं छिपाया जा सकता। जब बात खुल जायेगी तो आप पर विश्वास नहीं होगा। संसार में जिसका

विश्वास नहीं होता उसके दुःख की कोई सीमा नहीं बतलाई जा सकती।

जिस छींक पर इतना बड़ा भवन खड़ा किया, प्रथम इसी पर विचार कर देखते हैं कि छींक क्या वस्तु है? शरीर में उत्पन्न होने वाले किसी विकार को दूर करने के लिए शरीर में जो चेष्टा विशेष होती है वही छींक है। शरीर में उत्पन्न विकार का उपशमन इसके द्वारा होता है। चरक संहिता में लिखा है कि—

न वेगान्धारयेद्धीमान् जातान् मूत्रपुरीषयोः।
ने रेतसो न वातस्य न वम्याः क्षवथोर्न च ॥३॥
नोद्गारस्य न जृम्भायाः न वेगान् क्षुत्पिपासयोः।
न बाष्पस्य न निद्राया निश्वासस्य श्रमेण च ॥४॥

सू० स्था० अ० ७।

बुद्धिमान् पुरुष मूत्र, पुरीष, वीर्य, अपानवायु, वमन, छीक, ॥३॥ डकार, जम्भाई, भूख, प्यास, आँसू, नींद और श्रम वा व्यायाम से उत्पन्न श्वास प्रश्वास के वेगों को न रोके ॥ ४ ॥

मन्यास्तम्भः शिरःशूलमर्दितार्धविभेदकौ।
इन्द्रियाणां च दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्विधारणात् ॥१६॥

छींक के रोकने से मन्या (गर्दन की नस) अकड़ जाती है। शिर में शूल चलता है। अर्दित (मुख आदि के अङ्गों में) अर्धांग वा शिथिलता आ जाती है। आधे शिर का दर्द शुरू हो जाता है और आंख, नाक, कान आदि इन्द्रियां निर्बल हो जाती हैं।

शरीर तत्त्व को जानने वाले महर्षि पुनर्वसु कह रहे हैं कि छींक को नहीं रोकना चाहिए किन्तु फलित विश्वासियों का कहना है कि नाक को मसलकर छींक को रोकना चाहिये। इससे आप जान सकते हैं कि फलित कल्पित तो है ही साथ ही साथ अव्यवहार्य भी।

छींक का अर्थ भी एक प्रकार का नहीं है। अपने देश में छींक को अपशकुन मानते हैं जबकि अन्य देशों में इसको शुभ शकुन मानते हैं। ग्रीक देश में, फ्रान्स में, स्पेन में छींक को शुभ मानते हैं। मध्य वा पूर्वीय देशों में छींक का अर्थ नाक के द्वारा भूत का शरीर में प्रवेश माना जाता था। इसी प्रकार भिन्न २ देशों में भिन्न २ प्रकार से माना जाता है।

एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जाएगी—एक वार एक वृक्ष पर एक

चिड़िया चहक रही थी। वहां एक पौराणिक भाई पहुँच गया। पक्षी के शब्द को सुनकर अपने आप में कहने लगा—'अहा यह पक्षी होकर भी भक्ति करता रहता है।' 'राम-सीता-दशरथ' 'राम-सीता-दशरथ,' का जप निरंतर करता है। इतने में एक व्यापारी वहां पहुँच गया। पक्षी के शब्द को सुनकर कहने लगा—यह पक्षी बड़ा विचित्र है जो यह कह रहा है कि 'धनिया-हल्दी अदरक'; धनिया-हल्दी-अदरक'; मैं इन्हीं तीन वस्तुओं को वेचने के लिए जा रहा हूँ। न जाने इसने कैसे जान लिया। एक भूखा यात्री बोला—जब तक पेट में भूख लग रही हो और मारे गर्मी के शरीर से पसीने की बून्दें टपक रही हों तब तक हमें कुछ नहीं सूझता। चिड़िया इस बात को जानती है। यही कह रही है 'शाक-रोटी-शरबत'; 'शाक-रोटी-शरबत'। एक मौलवी जी इस को सुनकर कहने लगे कि मित्रो यह पक्षी तो भगवान् की भक्ति कर रहा है। वार वार उसी अपने बनाने वाले को स्मरण करता हुआ बोल रहा है कि 'कुर्आन-खुदा-हजरत'; 'कुर्आन खुदा हजरत'। एक पहलवान भी आ पहुँचा और उसने अपना मत व्यक्त किया—**धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्**। अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी फलों को प्राप्तकरने का एक मात्र साधन उत्तम स्वास्थ्य ही है। यह सत्य है। स्वास्थ्य है तो सब कुछ है। दुर्बल व्यक्ति न अपने देश की रक्षा कर सकता है, न अपनी रक्षा। स्वास्थ्य के लिए व्यायाम करना आवश्यक है। पक्षी भी इसी को कह रहा है—'दण्ड-बैठक-कसरत'; 'दण्ड-बैठक-कसरत'। वास्तव में पक्षी का इन बातों से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। सबकी अपनी २ तुकबन्दी है।

फलित वालों ने अपनी कल्पनाओं को ब्रह्मवाक्य सिद्ध करने और दोष को छिपाने के लिए युक्तियां घड़ कर रखी हुई हैं। सर्वसाधारण को इनके जाल से छूटना कठिन है। लीजिए एक दृष्टान्त—एक बुढ़िया का बेटा धन कमाने परदेश गया था। कई वर्षों से उसका कोई पत्र न आने से वृद्धा बहुत चिन्तित थी। एक दिन पानी से भरा मिट्टी का मटका सिर पर उठाए वह नदी से घर की ओर आने के लिए कुछ चली ही थी कि सामने से आते हुए दो फलितज्ञ उसे दीखे। उसे विश्वास था कि उसके पुत्र के सम्बन्ध में कोई आशाजनक बात बतायेंगे। बहुत आशा लिए उनसे जाकर पूछा—'महाराज, आप लोग त्रिकालदर्शी हैं। आपके दर्शन से आज मैं कृतकृत्य हो गई। कृपया बताइए कि मेरा नवयुवक पुत्र किस स्थिति में है? वह मुझसे कब मिलेगा? मिलेगा अथवा नहीं?' वृद्धा के हाथ पैर कांप रहे थे। इसलिए प्रश्न करते समय मटका सिर से भूमि पर गिरकर फूट गया। इस घटना के

आधार पर एक फलितज्ञ ने कहा—"माता जी अब आप अपने पुत्र से मिलने की आशा नितान्त छोड़ दीजिए। आपका मटका घर पहुँचने से पूर्व मार्ग में ही गिर गया और पानी बिखर गया। इतना ही नहीं, अपितु मटका भी घर तक पहुँचने से पहले ही मार्ग में फूट गया। इन दोनों शकुनों के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि आपका पुत्र भी आपसे मिलने आ अवश्य रहा था परन्तु मार्ग में ही दुर्घटनाग्रस्त होकर वह मर चुका है।" यह सुनते ही बुढ़िया की आंखों से आंसू निकल पड़े और वह मारे शोक के विलाप करने लगी। परन्तु दूसरे फलितज्ञ ने उसे धीरज बंधाते हुए कहा—"माता जी आज तो आपके लिए प्रसन्नता की बात है। देखिए, मिट्टी का मटका फूटकर मिट्टी में जा मिला और नदी का पानी बहकर भूमि में=पानी में समा गया इन दोनों शकुनों से मैं यह भविष्यवाणी कर सकता हूँ कि आपका पुत्र भी आपसे अवश्य मिलेगा। इस प्रकार परस्पर विरुद्ध फलित सुनकर आशा-निराशा के झूले में झूलती हुई बुढ़िया जब घर पहुँची तो उसने देखा कि वर्षों से बिछुड़ा उसका पुत्र आया हुआ था। वृद्धा ने मन ही मन कहा कि "पहला फलितज्ञ पढ़ा तो था पर गुना नहीं था"। यदि कहीं पहले वाले की बात सत्य निकलती तो यह स्पष्ट है कि वृद्धा इससे उल्टा कहती। अमेरिका के एक सज्जन ने बताया कि वहां साधारण से साधारण बातों को लेकर शुभाशुभ की कल्पना दौड़ाते हैं। जैसा—एक व्यक्ति ने चाय पी ली। पात्र में बची उच्छिष्ट चाय को भूमि पर डाल दी। उस फैली हुई चाय का आकार-प्रकार उनके लिए महत्त्व का विषय है। उससे वे अपने कार्य की सफलता और असफलता वा जीवन में क्या होने वाला है इसकी कल्पना करते हैं! फलित वालों के लिए प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक शब्द और प्रत्येक घटना शकुन है। इससे वे अपने कार्य की सफलता वा असफलता की कल्पना करते रहते हैं। यह ऐसा ही है जैसा मानो लाल झण्डी हो वा किसी ने दूरभाष (टेलीफोन) से सूचित किया हो अथवा तार दिया हो।

इस प्रकार के शकुनों को बतलाने वाले बहुत सारे ग्रन्थ हैं। प्रायः प्रत्येक पञ्चाङ्ग में लिखा रहता है। आयुर्वेद के मान्य ग्रन्थ 'अष्टाङ्ग हृदय' में विस्तारपूर्वक लिखा है। सर्वसामान्य में भी बहुत सारी बातें प्रचलित हैं। तथापि कुछ बातें समुद्र में बिन्दु के समान दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत करता हूँ।

पुरुष की दाहिनी आंख फड़के तो शुभ और बाईं फड़के तो अशुभ। स्त्री की बाईं आंख फड़के तो शुभ और दाहिनी फड़के तो अशुभ। हथेली तथा तलुओं में खुजली मचने से शुभाशुभ होता है। इसी प्रकार भ्रू, ओष्ठ,

भुजा, पैर, जंघा आदि का फड़कना वा कांपना शुभ वा अशुभ माना जाता है। दूध वा घी का लुढ़कना अशुभ माना जाता है। बिल्ली का मार्ग को लांघ कर जाना, कुत्ते का कान फड़फड़ाना, सर्प का मार्ग में आना, कन्या, वेश्या, सुन्दरी, ब्राह्मणों का जोड़ा, मंगलवाद्य, उत्सव, पुष्प, फल आदि, निर्धूमअग्नि, छत्री, दूध, दही, मांस, रेशमी वस्त्र, खील, गाय, बैल, हाथी, घोड़ा, पूर्ण-कुम्भ, शराब का भरा पात्र, कुत्ता, हरिण, शव, चील, शहद, पक्षियों का झुण्ड और श्वेत वस्तुओं इत्यादि का दर्शन, पक्षियों की ध्वनि, गधों का, घोड़ों का शब्द, कुत्तों का कान खुजलाना आदि को देखने वा सुनने से धैर्य वा सन्तोष की प्राप्ति होती है, इसलिए शुभ हैं, ऐसा माना जाता है।

अकेला ब्राह्मण, तीन वैश्य, बालों को बखेरे हुआ, जले वस्त्रों को पहना हुआ, लकड़ियाँ, सधूमाग्नि, नया घड़ा, तेल का घड़ा, नाई, पुस्तक को हाथ में लिया हुआ सामने आने पर, पागल, अन्धा, लङ्गड़ा, जटाधारी, सिर में तेल लगाया हुआ, लट्ठधारी वा तलवारधारी, संन्यासी, खाल, हड्डियाँ, कीचड़, नमक, खरगोश, कुबड़ा, लघुशंका करने वाला, रजस्वला स्त्री, सिर भिगोया हुआ, गीले वस्त्र आदि २ देखने से अर्थात् इनके दीखने से अशुभ होता है ऐसी मान्यता है। एक छींक, रोदन, नाक साफ करने के शब्द को तथा पर्दन, खांसना, जंभाई लेना, लम्बा निश्वास इनको सुनने से, वस्तु का हाथ से फिसल जाना, घर का विवाद, असामयिक वर्षा, अधैर्य "भोजन कर जाइए" "मैं आता हूँ थोड़ा रुक जाइए" आदि का कहना, शरीर के काम्पने "न जाइए" कहने आदि से अनिष्ट होता है इसलिए ये सब अशुभ माने गए हैं।

इसमें विचारणीय बात है कि एक ब्राह्मण से अशुभ होता है तो दो ब्राह्मणों से द्विगुणित अशुभ क्यों नहीं होता? यदि दो ब्राह्मणों को देखने से शुभ होता है तो एक ब्राह्मण को देखने से शुभ क्यों नहीं होता? न्यूना-तिन्यून आधा ही शुभ होना चाहिए था। यहाँ तर्क-वितर्क का काम नहीं; पोप जी के वचन ब्रह्मवाक्य हैं। वेदवाक्यों के समान स्वतः प्रमाण हैं। यदि पोप जी कहें कि रात्रि में सूर्य दीखता है और दिन में तारे दीखते हैं तो वह पत्थर पर रेखा है। क्या एक ब्राह्मण वा दो ब्राह्मणों में ब्राह्मणत्व में कोई अन्तर है? अथवा संख्याकृत शुभाशुभत्व है? किं वा मनुष्यगत शुभा-शुभत्व? दूध के दीखने में अशुभ और शराब के दीखने में शुभ कैसे? भला वीतराग निष्पाप संन्यासी को देखने से अशुभ कैसे होता है? मांस के देखने में शुभ कैसा? खाल अशुभ कैसा? इस प्रकार सब बातों पर विचार करके देखिए तो निस्सारता करतलामलकवत् स्पष्ट होगी।

बिल्ली का मार्ग को लांघ जाना तो प्रसिद्ध है। यह पता नहीं कि बिल्ली को हमारे काम की कैसे सूचना मिल जाती होगी? बिल्ली लांघ रही है काश्मीर में यात्रा करने वाले के मार्ग को और उससे कन्याकुमारी में रहने वाला उसका मित्र मर जाता है। क्या कुत्ता, गधा, शूकर मार्ग को काट जाए तो कुछ नहीं होता? मान लीजिए बिल्ली के कारण से अनिष्ट होना है तो किस प्रकार? क्या बिल्ली के शरीर में से कोई एटम बम निकल कर जाकर उसको लग जाता है अथवा कोई अन्य विषैला द्रव्य? "मार्ग में आने वाली बिल्ली को मार्ग को लांघने से पूर्व ही दूसरी ओर भगा दें अथवा जाने वाला उधर से न जाकर थोड़ा सा घूमकर चला जाता है तो अनिष्ट नहीं होता है" ऐसा जो माना जाता है इसका क्या अर्थ है? यह कैसे संभव है, प्रमाणपूर्वक बतलाइए? इन फलित वालों से बिल्ली वा सर्प आदि ही अच्छे हैं जो दूरस्थ घटना को दिव्य दृष्टि से देख लेते हैं जबकि इनको दीखता ही नहीं। बालू में तैल निकालना स्यात् संभव भी हो किन्तु इनके कार्यकारण सम्बन्ध को सिद्ध करना संभव नहीं है। तर्क वा युक्ति का इसमें कोई सम्बन्ध नहीं। केवल कल्पना ही कल्पना है।

इसी प्रकार स्वयं फलित वाले भी मानते हैं कि शकुन कल्पना है, मिथ्या है। इसीलिए अन्त में लिखते वा कहते हैं कि **"निमित्तशकुनाबिभ्यः प्रधानो हि मनो जयः"** अपशकुन के बाद भी पूर्ण मनोत्साह रहे तो सबसे बड़ा शकुन[1] है। इससे शकुन का भाण्डा ही फूट गया।

विद्वानों द्वारा ग्रन्थारम्भ वा अन्त में सिद्धि, वृद्धि आदि शब्दों को शुभकारक मानने की परिपाटी भी अवैज्ञानिक है। इसी प्रकार पल्ली पतन के अनेक फलों का वर्णन किया है। उसकी भी यही मीमांसा है। जैसे जागृतावस्था में शकुनों से शुभाशुभ की कल्पना की है वैसे स्वप्नावस्था में दीखने वाले शकुनों से शुभाशुभ की कल्पना की है। इसको अगले समुल्लास में लिखा जायेगा, 'दीपक बुझाओ' कहना अशुभ है इसके स्थान पर 'दीपक बढ़ाओ' कहना शुभ। "दुकान बन्द करो" अशुभ है जब कि 'दुकान बढ़ाओ' कहना शुभ है। 'मैं जाता हूँ' कहना अशुभ है' 'मैं जाकर आता हूँ' कहना शुभ है। ग्रन्थ के आरम्भ में श्री राम, गणेशाय नमः, आदि लिखते हैं। दुकानों में "शुभलाभ" लिख रखना व्यापारियों द्वारा शुभ माना जाता है। "बोनी" होने से पहले गल्ले में से रुपये निकाल कर देना अशुभ माना जाता है। अमावस्या के दिन किसी वस्तु वा धन को दूसरों को देना

१ साधना पचाङ्ग।

अशुभ है। रुपये आदि की गिनती करते समय एक को एक बोलना अशुभ है। उसके स्थान पर 'लाभ' बोलना शुभ है। तेलुगु भाषा में सात संख्या को बोलना अशुभ माना जाता है। दीपावली के दिन रात्रि में भी दुकान को बन्द रखना अशुभ है, खुला रखना शुभ है। विधवा का शुभकार्यों में सम्मिलित होना अशुभ है। सौभाग्यवती स्त्रियों में जाकर उनके कार्यों में सम्मिलित होना अशुभ है। पहली रोटी गाय को देना शुभ है इत्यादि विभिन्न प्रान्तों वा विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार के शकुन माने जाते हैं। निदर्शन के लिए कुछ बातों को स्थाली पुलाक न्याय से उद्धृत किया जा रहा है। समस्त बातों का संग्रह करना संभव नहीं है। न आवश्यक ही।

दृष्टान्त के लिए एक बात पर विचार करते हैं। "दीपक को बुझाओ" अशुभ और "दीपक को बढ़ाओ" शुभ माना जाता है। इसका कारण है कि 'दीपक को बुझाओ' कहने का अर्थ यह माना जाता है कि दीपक को न रहने दो। दीपक नहीं रहने का अर्थ होगा कि दीपक जलाने वाला नहीं रहेगा। इससे यह निकला कि सब मर जाएंगे। बढ़ाओ कहने से दीपक को रहने दो और जितना है उससे अधिक करो। दीपक के रहने का अर्थ होगा दीपक जलाने वाले पहले की अपेक्षा बढ़ेंगे। सब लोग जीवित रहेंगे। इसलिए 'दीपक को बुझाओ' नहीं कहना चाहिए किन्तु 'दीपक को बढ़ाओ' कहना चाहिए। यही इसका शुभाशुभत्व है। इसी प्रकार अन्य बातों को समझना चाहिए विस्तार भय से लिखा नहीं जा सकेगा।

वाह रे शेखचिल्ली के शिष्यो! तुमने कल्पना के घोड़े दौड़ाने में अपनी बुद्धि को चरितार्थ कर लिया। तुम्हें ज्ञान-विज्ञान से कोई प्रयोजन नहीं। तुम्हारा जगत् अद्भुत है। तुम्हारे नुस्खे भी विचित्र हैं। मुसलमानों के खुदा से भी बढ़कर हैं। क्योंकि खुदा तो कुन कह देता है अपने आप सब हो जाता है उमसे केवल बन जाता है। किन्तु तुम्हारे "बढ़ाओ" कहने से मरने से बच भी जाते हैं। और नये-नये पैदा होते तथा जीवित भी रहते हैं। वंशोच्छेदन भी नहीं होता। क्या कहना तुम्हारी बुद्धि को? जो व्यक्ति दीपक को बुझाओ कहना अशुभ है, "दीपक को बढ़ाओ कहना शुभ है", इत्यादि बातों में ही अपना जीवन व्यतीत करता हो वह क्या पुरुषार्थ करेगा? क्या कर्मसिद्धान्त को जानेगा क्यों पुरुषार्थ करेगा? धर्माधर्म को क्या समझेगा? देश जाति की रक्षा की बात उसको क्या समझ में आयेगी? आज के मानव का यह स्तर बना हुआ है। यह मानव, जीवन तथा उसका उद्देश्य एवं साधनों को जानकर मानवमात्र की उन्नति के लिए सोचने समझने वा

प्रयत्न करने की स्थिति में कब आएगा ? आश्चर्य है।

जैसे स्वदेश में है उसी प्रकार विदेश में भी है। यह पढ़ने में सुनने में तथा देखने में भी आता है। "अंग्रेजों में यह प्रथा बतलाई जाती है कि नवोढा के पीछे पुराना जूता फेंकते हैं अथवा मोटर आदि के पीछे बांध दिया जाता है। इसका कारण यह माना जाता है कि इससे वर का भाग्य चमकने लगता है। यार्कशायर के स्कारबरो भाग में रहने वाले धीवरों को यह विश्वास है कि पाली हुई काली बिल्लियों के ही कारण उनकी पत्नियों का सुहाग कभी खंडित नहीं होता। सड़क पार करती हुई काली बिल्ली का दर्शन भी शुभ माना जाता है। घोड़े की नाल को सौभाग्य का सूचक माना जाता है। यहां तक कि शुभकामना के लिए "आपके द्वार से घोड़े की नाल कोई न निकाले" कहा जाता है। अंग्रेज और अमेरिका के लोग "साल्ट" शब्द का उच्चारण अशुभ मानते हैं और उसका गिरना दुर्भाग्य-सूचक माना जाता है। इंग्लैण्ड में आज भी भित्ती के साथ खड़ी हुई सीढ़ी के नीचे से जाना अशुभ माना जाता है। यदि कोई जाता भी है तो यह माना जाता है उसको फांसी के द्वारा मरना पड़ता है। अंग्रेज यह मानते हैं कि दियासलाई की एक सलाई से तीन सिगरेट जलाना दुर्भाग्य को निमन्त्रित करना है। कहा जाता है कि "एक बार क्रीमिया युद्ध में पकड़े गए रूसी सैनिकों ने अवसर आने पर एक सलाई से तीन वस्तुएं जलाना अस्वीकार कर दिया था।" इंग्लैण्ड वा अमेरिका आदि देशों में तेरह की संख्या को अशुभ माना जाता है। यहां तक कि १३वीं मञ्जिल का कमरा नहीं बनाते। फ्रांस में १३ संख्या का घर नहीं मिलता[1]। ईसा मसीह ने अपने १२ शिष्यों सहित अन्तिम वार भोजन किया जिसके पश्चात् उन्हें क्रास पर लटका कर प्राणों से वियुक्त कर दिया गया। इसी कारण १३ संख्या अशुभ मानी जाती है। यह है मानव का बौद्धिक स्तर। इसके सामने तो तर्क भी कुण्ठित हो गया। बतलाया जाता है कि भारत के अंग्रेज सेनापति जनरल राबर्ट्स ने इस अन्धविश्वास की अन्त्येष्टि की थी। उन्होंने अफगान युद्ध में जाने से पूर्व जानकर अपने १२ साथियों के साथ भोजन किया था। तथापि वे रणक्षेत्र से सब के सब सुरक्षित लौट आए। एक भी न मरा। 'फ० अन्धविश्वास' के आधार पर

कहिए इसका आपके पास क्या समाधान है ? ये सारे अन्धविश्वास

१. ऐसा सुनते हैं कि चण्डीगढ़ में भी १३ सेक्टर नहीं है। भारत वालों ने संभव है इनको आदर्श मानकर ऐसा किया होगा।

हैं। इनमें विद्या का नाम नहीं। भला इन विश्वासों को विज्ञान की क्या आवश्यकता है।

रमल=पाशों से जो जाना जाता है। जैसा बालक पैसों से चित्त-पट्ट खेलते हैं, यह रमल भी उसी प्रकार का एक खेल है। यह शकुन के समान होने से, शकुन अविद्याजन्य होने से रमल भी अविद्याजन्य है।

"धूमकेतु पुच्छलतारा का आकाश में होना संसार को दुर्भिक्ष, महामारी आदि रोग, युद्ध, अत्याचार आदि से; महापुरुष वा राजाओं को मृत्यु से, राज्यों को उपद्रव से, कृषकों को अकाल अतिकाल से, गडरियों को मरी आदि रोग से, नाविकों को झंझावात से, नगरों को विप्लव आदि से अनिष्ट का सूचक होता है" ऐसा माना जाता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण सूर्यग्रहण को भी माना जाता है। यह धूमकेतु सौर परिवार का एक अङ्ग है। यदि कोई दूरदर्शक से देखे तो प्रतिदिन एक दो धूमकेतु आकाश में दीखते रहते हैं। इनका तथा भूमि पर होने वाली अकाल, रोग, महापुरुषों की मृत्यु आदि घटनाओं का कार्यकारण सम्बन्ध सिद्ध नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार उल्काओं[1] की बात है। देखिए—

"गणनानुसार यह जानकर कि १८३२ में यह (एक धूमकेतु जो एक छोटा=पुच्छलतारा) फिर दिखलाई पड़ेगा, ओलबर्स और कुछ अन्य गणितज्ञों ने इस बात की पूरी जांच की कि किस दिन यह दिखलाई पड़ेगा। ओलबर्स को पता चला कि जिस स्थान से यह होकर निकलेगा ठीक उसी स्थान में पृथिवी एक महीने के बाद पहुँचेगी और शायद उस समय कुछ अधिक उल्कापात होगा। बस इतना ही जनता में खलबली पैदा कर देने के लिए काफी था। सभी जगह शोरगुल मचने लगा। समाचार पत्रों में भी धूम रही। लोग समझे कि कयामात का दिन आ गया। कौन कह सकता है कि ज्योतिषियों की गणना में जरा सी भी त्रुटि नहीं रह गई होगी और इसलिए पुच्छलतारे और पृथिवी में मुठभेड़ नहीं हो जाएगी। लापलास ने पहले एक बार लिखा ही था कि पृथिवी से किसी दूसरे आकाशीय पिंड का टकरा जाना असंभव नहीं है और यह भी बतलाया गया था कि टकराने से पृथिवी किस प्रकार चकनाचूर हो जायेगी। बस लोग समझ लिये कि वह दिन आने ही वाला है। यह पुच्छलतारा अन्त में उस गणना से निकले समय

१. रात्रि में आकाश की ओर देखने पर तारा टूट कर गिरता प्रतीत होता है, उसी को उल्का कहते हैं।

पर आया और निकल भी गया और कोई विशेष बात नहीं देखी गई। इसके बाद लौटने पर भी कोई घटना नहीं हुई।" सौर परिवार, पृ० ६७४

इससे यह स्पष्ट हो गया कि पुच्छलतारों का पृथिवी पर रहने वाले मनुष्यों के कर्मों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। न पुच्छिलतारे शकुन बनकर शुभाशुभ का समाचार देने वाले हैं और ना ही ये संदेश देने के लिए बने हैं। अस्तु इस घटना से एक बात का परिज्ञान होता है कि मनुष्य अपनी मान्यता बनाकर उसी दृष्टि से विश्व को देखता है जैसा कि कयामत की मान्यता। कयामत सृष्टिक्रम के विरुद्ध है। यह आज और अधिक स्पष्ट हुआ जब कि इस्लाम को बने १४०० वर्ष पूर्ण होने जा रहे हैं; कयामत का अवधिकाल पूर्ण होने जा रहा है; और कयामत का नाम नहीं। दूसरी बात यह भी सिद्ध होती है कि सृष्टि में एक[1] नियम है जिसको वैदिक सिद्धान्त के अध्ययन से जाना जा सकता है। जो मनुष्य की बुद्धि से परे है। जिसको वैज्ञानिक भी न समझ सकने वा न मानने के कारण वैदिक सृष्टिविद्या के विरुद्ध कल्पना कर बैठते हैं। अन्त में उनको अपनी भूल स्वीकार करनी पड़ती है।

इसी प्रकार सम्पूर्ण सूर्यग्रहण की बात है अर्थात् धूमकेतु और सूर्य-ग्रहण के फलों की कल्पना शकुन के समान निराधार है। अपशकुनों की निस्सारता इन बातों से स्पष्ट हो चुकी। अब उनकी शान्ति के लिए कही हुई कुछ बातों पर विचार करते हैं जिससे बात और भी पुष्ट हो जाए।

अपशकुनों की शान्ति के लिए प्रयत्न किया जाता है और उससे अनिष्ट दूर होने का विश्वास कर लिया जाता है। जैसे—कुमारी कन्या से कह दिया जाता है कि हम अमुक समय पर अमुक मार्ग से निकलने वाले हैं वहां तुम पहले ही पहुँच जाना। जब हम दीखें तो हमारे सामने आना। ऐसा ही जब वह समक्ष आती है तब उसे थोड़ा गुड़ देकर हंसते हुए प्रवास के लिए चल पड़ता है। यदि यह नाटक मूर्खता से रहित है तो ऐसा करने पर करने वाले का कोई कार्य नहीं बिगड़ना चाहिए? सब कार्य सफल होने चाहिएं। कर्मफल पाने में जीव स्वतन्त्र माना जाना चाहिए। किन्तु ऐसा देखा सुना नहीं जाता। यह नाटक करने वाले परमात्मा को भूल जाते हैं वा मूर्ख बनाते हैं।

जल भरे घड़े सिर पर उठाए आती हुई पनिहारियों को देखते हैं और

---

१. ४ अरब ३२ करोड़ वर्षों तक सृष्टि तथा इतने ही काल तक प्रलय रहता है। यह नियम है।

समझते हैं कि जैसा घड़ा भरा हुआ है वैसा ही हमारा काम भी पूर्ण होगा। कभी २ गाय लाकर मार्ग में बांध देते हैं और उसका स्पर्श करके यात्रा पर चल पड़ते हैं। इससे समझा जाता है कि भावी संकट आने से पूर्व ही समाप्त होंगे। दही को हथेली में लेकर चखते हैं। इससे कोई भी अनिष्ट नहीं होगा, ऐसा माना जाता है। इस प्रकार न जाने क्या २ करते हैं? जितने अपशकुन होंगे (इनकी दृष्टि में) उससे अधिक शान्ति के उपाय हैं जैसा कि ऊपर लिखा है। (रूढ़िवादी) वृद्ध लोगों से अपशकुनों की शान्ति वा अपशकुनों को शुभ शकुनों के रूप में परिवर्तित करने के लिए क्या करना चाहिए, पूछ कर देखिए। उन बातों को सुनकर आप उनकी अयुक्तता, कृत्रिमता, अनभिज्ञता, अवैज्ञानिकता और मूर्खता को स्वयं समझ जायेंगे। आश्चर्य इस बात का है कि ये ही अनपढ़, पदार्थ विद्या से शून्य, तर्क-वितर्क से कोसों परे, अविद्या के स्थिरनिधि इस मनुष्य समाज के नेता हैं वा अगुआ हैं। इन ही को पूछ २ कर काम किया जाता है। ये भी यही समझते हैं कि "हम ही सर्वज्ञ हैं। हमारे कथनानुसार किया जाना चाहिए। धर्म के तत्त्व हम ही जानते हैं।" जब कोई तर्क, वितर्क विद्या, भूगोल-खगोल के अनुसार करता हो, इनको नहीं पूछता हो, उसको ये लोग मूर्ख समझते हैं और कहते हैं कि तुम तो हमारे सामने के बच्चे हो, तुम क्या जानो?

इस पाषण्ड को वैज्ञानिक रूप देने के लिए लोग हाथ-पैर हिलाते दिखाई देते हैं? उनका समाधान है कि प्रवास में जाते समय दही चखने से प्यास नहीं लगती। पता नहीं ये भोले लोग बुद्धि पर ताला डालकर क्यों घूमते हैं। प्यास की निवृत्ति के लिए करना था तो दही किसी पात्र में भरकर ले जाते जैसे कि आवश्यकता के लिए रुपये साथ ले जाते हैं अथवा खा लेते। एक तोला दही चाटने से क्या आगे लगने वाली प्यास रुक जायेगी?

कुछ लोगों का कथन है कि **"पापघ्नो गोस्पर्शः"** गाय के स्पर्श से पाप नष्ट होते हैं। गोस्पर्श से अनिष्ट का कारण पाप पहले से समाप्त हो जायेगा। पाप के नष्ट होने से अनिष्ट ही नहीं होगा। यह कौन से वेद का वाक्य है? वेद में ठीक इसके विरुद्ध लिखा है। देखिए—

"न किल्विषमत्र न आधारो न यन्मित्रैः सममान एति।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनराविशाति ॥"

परमात्मा की व्यवस्था त्रुटिरहित है। बिना कर्म के फल नहीं। न वहां कोई मध्यवर्ती है और न उसकी बात चलती है। हमारे कर्मों का पात्र

कम न करके यथावत् रखा है लौटकर कर्त्ता को प्राप्त होता है। यदि आप मानते हों कि विना भोगे पापों की निवृत्ति होती है तो गाय के स्पर्श से निर्भय होकर किसी के घर में डाका क्यों नहीं डालते ? किसी की हत्या क्यों नहीं करते ? परस्त्री-गमन वा बलात्कार क्यों नहीं करते ? दिन दहाड़े किसी की दुकान को क्यों नहीं लूटते ? किसी आरक्षक के गालपर चार थप्पड़ क्यों नहीं लगाते ? किस का भय है ? किस से संकोच है ? किस बात के लिए देरी है ? यदि आप गाय का स्पर्श करके इन पापों से नहीं छूट सकते तो यात्राजन्य पापों से कैसे छूटेंगे ?

परीक्षार्थी परीक्षा के लिए जाते समय यदि यह मान लें कि छींकते समय जा रहा हूँ; वा मार्ग में बिल्ली आई है, अथवा एक ब्राह्मण दीख गया अपशकुन हो गया तो उसकी नाड़ी वहीं रुक जाएगी, श्वास फूल जायेगा, पसीना छूट जायेगा। ऐसा विद्यार्थी क्या धूल लिखेगा।

एक ज्योतिर्विद्याविद् वैज्ञानिक हायगेन्स ने शनिग्रहके उपग्रह टाईटिन को पहले १७१२ वि० में देखा था। इस वैज्ञानिक ने अपने शनि-सम्प्रदाय सम्बन्धी पुस्तक में लिखा कि 'छः ग्रह (बुध, शुक्र, पृथिवी, मंगल, गुरु और शनि) और छः उपग्रह (१ पृथिवी का, ४ बृहस्पति के और १ शनि का) मिलकर कुल १२ हुए; जो अत्यन्त शुभ संख्या है। इसलिए अब अधिक उप-ग्रह न होंगे'। अपने अन्धविश्वास के कारण हायगेन्स ने उपग्रहों का अन्वेषण करना छोड़ दिया।[1] वास्तव में शनि के और भी उपग्रह हैं जिनका पता आगे चलकर अन्य विद्वानों ने लगाया है।

इस प्रकार के अन्धविश्वासों ने न जाने संसार का कितना अनर्थ करवाया होगा।

एक ऐतिहासिक घटना उपस्थित करता हूँ। "मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध के प्रसिद्ध नगर देवल पर चढ़ाई की, जहां एक बड़ा मन्दिर था। आठ दिन तक तलवार चलती रही और मुहम्मद बिन कासिम हारकर भागने वाला हो था उस समय एक देशद्रोही पुजारी ने कासिम के पास जाकर कहा कि यदि मेरी रक्षा करो और दक्षिणा दो तो मैं देवल को विजय करने का उपाय बता दूं। कासिम इसको सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। पुजारी ने कहा कि "मन्दिर के शिखर पर जो झण्डा लगा हुआ है उसको गिराने से हिन्दुओं की हिम्मत टूट जाएगी, वे समझ लेंगे कि देवता अप्रसन्न हो गये।

१. सौर परिवार पृ० ६०७ के आधार पर

इसलिए झण्डा गिरा दिया गया और दाहर की सेना हिम्मत हारकर भागने लगी। देवल पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। नगर नष्ट कर दिया गया और तीन दिन तक वहां हिन्दुओं का कत्ल होता रहा। मन्दिर तोड़कर उसकी जगह मस्जिद बनवाई गई। उस पुजारी ने आकर कासिम से फिर कहा कि देखिये मैंने आपकी विजय कराई है। यदि आप मुझे इच्छानुसार भोजन दिलाने की कृपा करें तो मैं एक गुप्त खजाना आपको और बता सकता हूँ। कासिम ने उसको खूब भोजन कराया तब वह पुजारी कासिम को एक तहखाने में ले गया, जिसमें राज्य का खजाना रखा था। श्रीगणपति राय अग्रवाल ने अपनी पुस्तक में प्राचीन इतिहास के आधार पर लिखा है कि "उस खजाने में सोने से भरी हुई तांबे की ४० डेग रखी थीं, जिनमें १७२०० मन सोना भरा था जिसका मूल्य आजकल[1] के हिसाब से लगभग १७ अरब रुपया होगा। इसके अतिरिक्त सोने की बनी हुई ६०००[2] ठोस मूर्तियां थीं। जिनमें सबसे बड़ी तौल में तीस मन थी। हीरा पन्ना, माणिक, मोती तो इतने थे कि ये कई सौ ऊँटों पर लादे गये थे।"[3] इस घटना को पढ़कर रोमांच होता है। यदि यह अपारधनराशि भारत में होती तो आज भारत समृद्ध देश होता। विदेशों से ऋण लेने की आवश्यकता ही न होती।

यह अपरिहार्य हानि किस कारण हुई एकमात्र उत्तर होगा कि फलित को सत्य मानने से। हाय रे फलित विश्वासियो ! तुमने अपने जीवन को तो महाअन्धेर में ढकेल दिया ही किन्तु देश का भी सर्वनाश कर दिया। इससे भी फलित वालों की आखें खुलगी कि नहीं ?

भारत के आज के कर्णधारों के स्वरूप को सुस्पष्ट करने वाले एक आधुनिक उदाहरण को उपस्थित करता हूँ।

"आन्ध्र राज्य के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री ने जो पहले कांग्रेस के अध्यक्ष थे, अपने एक वक्तव्य में कहा कि मैंने अपनी सहज बुद्धि से पहले ही अनुमान लगा लिया था कि "कांग्रेस ने चित्तूर में लोकसभा के उपचुनाव पर जो पैसा लगाया है वह बेकार जायेगा।" उन्होंने कहा 'चित्तूर में जाने से पूर्व चुनाव आन्दोलन के लिए भगवान् वेंकटेश्वर का आशीर्वाद प्राप्त करने को मैं

१. यदि एक किलो का मूल्य ५५०० रुपए मान लिया तो न्यूनातिन्यून आज इस का मूल्य ३५२८५८००००० रुपए होगा।

२. मध्यम मान से एक २ मूर्ति १० मन की मानी जाय तो आज उसका मूल्य १२३०६००००००० रु० होगा।

३. युद्धनीति और अहिंसा।

तिरुपति गया था। तिरुमलै में जब मैंने भगवान् की हुण्डी में दस रुपये का नोट डालना चाहा तो वह मेरे हाथ से खिसक कर वर्षा के पानी में जा गिरा। यह घटना कुछ महत्त्वपूर्ण नहीं थी किन्तु मुझे वह इस बात का संकेत लगी कि कांग्रेस द्वारा इस उपचुनाव में खर्च की जाने वाली सारी रकम बेकार जाएगी। मैंने यह घटना और अपने मन की बात आंध्रप्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष को सुनाई किन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी थी क्योंकि नाम वापस लेने की आखिरी तारीख निकल चुकी थी।'' (ब्राह्मण समाज के तीन महापातक)

यह है वैज्ञानिक युग की घटना, प्रकाशयुग में भारत के कर्णधारों के चिन्तन की सरणि, दार्शनिक पृष्ठभूमि और राष्ट्रनिर्माण वा चरित्रनिर्माण के लिए विद्यमान मानसिक स्तर। इसी को लेकर भारत की नौका को भव-सागर से पार उतारने के लिए कमर कसे आगे बढ़ रहे हैं? अब पाठक सोच लें कि जो नेता पाषाण मूर्ति से चुनाव में सफलता का आशीर्वाद चाहता हो, दस रुपये का नोट हाथ से खिसक कर पानी में गिरने को निर्वाचन में जय-पराजय का सूचक (शकुन) मानता हो, वह उस निर्वाचन के लिए क्या पुरुषार्थ करेगा? वह क्या कर्मसिद्धान्त को जानता, मानता होगा? देश की उन्नति वा रक्षा के लिए क्या करेगा? वे इस घटना से इतने प्रभावित थे कि नाम लौटाने का समय शेष होता तो लौटा लेते।

इतना ही क्या इनके कृत्य तो इससे भी विलक्षण हैं। यहां तक सुनने में आया है कि निर्वाचन और नामांकन के समय संसद् और राज्यसभाओं के अनेक सदस्य नामधारी ज्यौतिषियों के पास से मुहूर्त शोध २ कर अपने नामांकन पत्र देते हैं।

इस शकुन के अन्धविश्वास ने मनुष्य-समाज के मस्तिष्क को ऐसा प्रभावित किया कि इसके प्रभाव से प्रभावित व्यक्ति स्वस्थ मस्तिष्क से युक्त कभी नहीं हो सकता। देश-धर्म के उत्थान तथा पतन की बात को सोच नहीं सकता और समझाने पर समझ भी नहीं सकता। तर्क-वितर्क से रहित हो जाता है। निस्तेज और निर्वीर्य हो जाता है। इनके समक्ष ईश्वर, पुरुषार्थ, सच्चरित्रता, संयम, त्याग और परोपकार आदि का कोई मूल्य नहीं रह जाता। मनुष्य सब उत्तम गुणों से रहित हो नीच स्थिति में आ खड़ा होता है। ऐसे लोग न कभी स्वतन्त्र तथा स्वाधीन देश की कल्पना कर सकते हैं न उसमें सहायक हो सकते हैं।

शकुन को शुभाशुभ मानने वालों से कुछ प्रश्न—

१. शकुन का क्या अर्थ है?

२. शकुन शुभ अथवा अशुभ किस प्रकार होते हैं यह प्रमाण पूर्वक सिद्ध करके बतलाइए।

३. शकुन के शुभाशुभत्व में वेदादि शास्त्रों का प्रमाण हो तो बतलाइए।

४. कर्मसिद्धान्त सत्य है अथवा शकुन विचार? कैसे?

५. यदि दुष्ट शकुन के पश्चात् मन में उत्साह होने पर कार्यारंभ कर सकते हों तो सफलता कैसे मिलेगी? यदि मिलती हो तो उत्साह निमित्त हुआ न कि शकुन। अपितु शकुन असत्य सिद्ध हुआ।

६. मन में उत्साह न हो, किन्तु शकुन शुभ हो तो कार्यारंभ करना चाहिए वा नहीं? क्यों?

७. शकुन कारक है वा सूचक? यदि कारक है तो शकुन का तथा फल का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है अथवा कार्य-कारण सम्बन्ध है कि वा समवाय सम्बन्ध? सहेतुक बतलाइए। यदि सूचक है तो शकुनशान्ति का विधान क्यों किया? क्योंकि सूचना के प्राप्त न होने पर भी घटना होगी ही।

८. विद्यार्थी परीक्षा देने जा रहा हो तो अशुभ शकुन होने पर लौट कर आवें वा चला जाये? यदि लौटकर आयेगा तो क्या सफल होगा? क्या शकुन की आशंका होने पर उसका उत्साह, साहस बना रहेगा? यदि चला जाये तो शकुन मिथ्या सिद्ध होता है।

९. शुभ शकुन दीखने पर अशुभ क्यों हुआ तथा होता है, और अशुभ शकुन दीखने पर शुभ क्यों होता है?

१०. शत्रु ने जब देश पर आक्रमण किया हो तब शकुन देखा जाय वा नहीं? यदि देखा जायगा तो क्या सफलता मिलेगी? यदि नहीं देखा जाय तो अन्यत्र क्यों देखा जाय? शकुन को सत्य मानने से जो बौद्धिक तथा नैतिकपतन हुआ, जो राष्ट्रीय स्तर की आर्थिक हानि हुई इसका उत्तर-दायित्व किस पर रहेगा? इसका समाधान कौन करेगा?

११. एक ही शकुन के परस्पर विरुद्ध अर्थ क्यों माने जाते हैं?

अथ चतुर्दशसमुल्लासः

अथ स्वप्नं व्याख्यास्यामः ।

जीव की तीन अवस्थाएं होती हैं । १ जागृत २ स्वप्न और ३ सुषुप्त । जागृतावस्था उसको कहते हैं जब मनुष्य इन्द्रियों से चेष्टाशील होता है । सुषुप्तावस्था उसको कहते हैं जब मनुष्य इन्द्रियों से वा मन से चेष्टारहित होता है । स्वप्नावस्था वह है जिसमें मनुष्य न इन्द्रियों से सचेष्ट रहता है और न प्रसुप्त ही होता है । अपितु जागृत में जो देखे, सुने होते हैं उनके संस्कारों को उलट २ कर देखता रहता है ।

स्वप्न अनेक प्रकार के होते हैं । प्रत्येक व्यक्ति को दीखते हैं । फलित वालों ने इन स्वप्नों के फलों की भी शुभाशुभ कल्पनाएं की हैं । उनकी मान्यताएं हैं कि कुछ स्वप्न शुभ हैं और कुछ अशुभ । कुछ ऐसे भी हैं जिनसे भविष्यत् का ज्ञान होता है । उदाहरण के लिए शुभाशुभों का स्वरूप नीचे दिया जाता है—

कुलदेवता, इष्टदेव, फूल, फल, हल्दी, कुंकुम, कोष आदि मांगलिक वस्तुओं को, फसल, वन, जंगलादि को, अपने को हाथी, घोड़े की गाड़ी पर चढ़ा हुआ, स्वयं अपने को ही बाधा अनुभव करता हुआ देखे, यदि अपने रक्त को देखता हुआ, वेदादि को पढ़ता हुआ, दूधदही को लेता हुआ, नये वस्त्र आभूषण आदि को धारण करता हुआ स्वप्न में देखे अर्थात् इन वस्तुओं को स्वप्न में देखे तो शुभ होगा । इस प्रकार के स्वप्न शुभ हैं । इससे धन की प्राप्ति, परीक्षाओं में सफलता, स्वास्थ्य लाभ और अभीष्ट सिद्धि आदि लाभ होंगे ।

स्वप्न में अपने को भोजन किया हुआ (खाया हुआ) कीचड़ में फंसा हुआ, सर्प, बन्दर, रीछ, यम के वाहन=भैंसे से खदेड़ा हुआ, उल्लू, कौआ आदि पक्षियों को, क्रूर जन्तु वा क्रूर कर्मों को, राक्षसों को, भूतों को, कुरूप मनुष्यों को, कुरूप स्त्रियों के चिल्लाने को, डूबती हुई नौका को, कंटीले स्थान को, बिना मूर्ति के मन्दिर को, दीपक से हीन घर को, अपने को श्मशान में

घूमता हुआ, मार्ग से भटका हुआ, विपत्ति में पड़ा हुआ और ताड़ी-शराब पीता हुआ देखे तो शीघ्र ही विपत्ति आएगी । दीर्घ रोग की प्राप्ति होगी । (राम वा हनुमान् के भक्तों को स्वप्न में बन्दर का दीखना वा बन्दर को देखना बुरा नहीं है ।) इत्यादि अशुभ स्वप्न हैं ।

देवी-देवता और भूतप्रेत आदि का होना कल्पित, असत्य, वेदादि शास्त्रों के और सृष्टिक्रम के विरुद्ध है । इनका स्वप्न में दीखना और इनसे शुभ का होना तो मृगमरीचिका के जल को पीकर प्यास बुझाने के समान है ।

स्वप्न में रक्त को देखने तथा अपने को बाधा अनुभव करते हुए देखने पर शुभ कैसे ? अपने को भोजन किया देखना अशुभ कैसे ? फसल, फूल और फलों को देखना शुभ कैसे ? स्वप्न में दीखने वाले फूल, फल और हल्दी आदि का और हित का क्या सम्बन्ध है ? इनके स्वप्न में दीखने से जागृत में कैसे हित होगा ? सर्प, बन्दर तथा रीछ का और विपत्ति का क्या सम्बन्ध है ? स्वप्न में दीखने वालों से जागृत में हित कैसे होगा ? इनका परस्पर कार्य-कारण सम्बन्ध है अथवा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है कि वा समवाय सम्बन्ध है ? और वह भी किस प्रकार युक्तिपूर्वक बतलावें । यदि राम-भक्तों को बन्दर का दीखना अशुभ नहीं है तो शिव भक्तों को सर्प का दीखना, काली भक्तों को सिंह का दीखना भी अशुभ कारक नहीं होना चाहिए ? शराब के भक्तों को शराब का दीखना भी अशुभकारक नहीं होना चाहिए ? क्या इस उधेड़बुन में रहने वाला कभी कर्म, कर्मफल, पुरुषार्थ, उन्नति, अवनति, परोपकार, सदाचार, देश, धर्म, आत्मा, परमात्मा, क्लेश, समाधि और मुक्ति जैसे विषयों को सोच और समझ सकता है ? क्या जिस देश में ऐसे व्यक्ति हों वह कला-कौशल, विद्या, विज्ञान, राष्ट्ररक्षा और राष्ट्रोन्नति आदि के लिए प्रयत्न कर सकता है ? क्या व्यक्ति और समाज तथा उसकी समस्याओं एवं उनके समाधान के विषय में सोच सकता है ? उसके लिए प्रयत्न कर सकता है ?

स्वप्न मिथ्या होता है । महर्षि व्यास ने लिखा है—**वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्** ॥ वेदान्त० २ ।२ । २९ ॥ जगत् सत्य है और स्वप्न उससे विरुद्ध होने से मिथ्या है । स्वप्न इसलिए मिथ्या है कि जागृत में बाधित होता है । जगत् सत्य इसलिए कि बाधित नहीं होता । स्वामी शंकर ने भी यद्यपि जगत् को मिथ्या कहा[1] है तथापि स्वप्न को मिथ्या ही कहा है । शंकर का माया-

१. यह शंकर स्वामी की कल्पना है वैदिक वा आर्ष सिद्धान्त नहीं है ।

वाद स्वप्न को मिथ्या मानकर ही प्रारम्भ होता है। स्वप्नों से भविष्यत् को जाना नहीं जा सकता। स्वप्न का भविष्य के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। यह प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि स्वप्न कल्पित होता है और उसमें दीखने वाला पदार्थ स्वप्न के प्रारम्भ से लेकर समाप्ति तक एक रूप में नहीं रहता। कल्पना भी अलग २ होती है सबकी एक समान नहीं होती। जैसा एक किसान जिस की अपनी गौएं नहीं हैं पर स्वप्न में अपनी गौओं को चरा रहा है किन्तु पश्चात् वे दूसरों की गौएं बन जाती हैं। एक विद्यार्थी है उसके पास भूगोल की पुस्तक नहीं हैं। किन्तु स्वप्न में परीक्षा तो भूगोल की देता है और सफल होता है इतिहास में। एक व्यापारी को स्वप्न में दूसरे व्यापारी ने दस सहस्र रुपये गिनकर दिये। किन्तु लेने वाला व्यापारी दूसरे कमरे में जाकर गिन लेता है तो रुपये १२ सहस्र निकले। दो सहस्र रुपये अधिक प्राप्त कर प्रसन्न होता है। निद्रा खुलती है। रुपये नहीं, पैसे नहीं। क्या इन स्वप्नों को कोई सत्य सिद्ध कर सकता है? सिद्ध करने की बात को जाने दीजिए 'सत्य है' ऐसा कह भी नहीं सकता। तब स्वप्नों का सत्य होना कैसा सिद्ध हुआ? यदि कहो कि कुछ तो सत्य होते हैं, तो कौनसा सत्य होता है और कौनसा असत्य, इसकी कसौटी क्या है? निर्णय क्या है? चाहे जिसको सत्य मानें अथवा कोई लक्षण भी है?

स्वप्नों के सत्यासत्य वा शुभाशुभ के विचार से पूर्व स्वप्न क्या है यह देखना आवश्यक है।

'स्मृतिरेषा यत् स्वप्नदर्शनम्'। स्वप्न जागृत का संस्कारमात्र है। जागृत संस्कारों का स्मरण ही स्वप्न है, उससे अतिरिक्त और कुछ नहीं। जागृत में जो कुछ संस्कार मन पर पड़ते हैं वे ही स्वप्न के रूप में स्मृत होते हैं। आयुर्वेद के परमाचार्य महर्षि अग्निवेश ने चरक संहिता में इसके संबंध में बहुत सूक्ष्मता से विश्लेषण किया है। उन्होंने लिखा है कि—

दृष्टं श्रुतानुभूतं च प्रार्थितं कल्पितं तथा।
भाविकं दोषजं चैव स्वप्नं सप्तविधं विदुः॥

अर्थ—देखा हुआ, सुना हुआ, अनुभव में आया हुआ, अभिलषित, कल्पित, आगे होने वाला और दोषज इस प्रकार स्वप्न सात प्रकार का होता है।

१. दृष्टम्—जो नित्यप्रति देखने में आते हैं, वे पदार्थ स्वप्न में दीखने लग जाते हैं। जैसे मित्र, बन्धु-बान्धव, माता-पिता, भाई-बहन, घर-द्वार पाठशाला, पुस्तक, वस्त्र, आभूषण, मनुष्य, पशु, पक्षी और वृक्षादि।

२. श्रुतम्—हम देखते तो नहीं किन्तु जो सुनते हैं, जो वस्तुएं सुनने में आती हैं वे स्वप्न में आती हैं। हम हरिश्चन्द्र, जनक, कपिल, कणाद, कृष्ण आदि को सुनते हैं। वायुकाय जीव परमाणु आकाश आदि को सुनते रहते हैं। जैसा वर्णन हम सुनते हैं उसके साथ हमारा अपना ज्ञान भी मिश्रित होता है। उन सबका उम्मिश्रण-पिण्डीभूत वस्तु ही हमारा स्वप्न है। यह कोई अंतिम सत्य नहीं। एक प्रकार से सुनी हुई बातों के अनुसार मन के अन्तस्थल में एक आकार, प्रकार, और रंगरूप आदि की कल्पना मनुष्य कर लेता है। बाह्य मन से इसका उसको पता नहीं चल पाता है। इसी प्रकार किसी ग्रन्थ को पढ़कर भी उसके आधार पर अनुमान कर लेता है। जैसा कि कृष्ण वा चाणक्य के विषय में पढ़ लिया। उसके आधार पर सोचता रहा। यही स्वप्न में दीख गया।

३. अनुभूतम्—जिन वस्तुओं को खाते हैं पीते हैं ओढ़ते हैं, पहनते हैं और संघते हैं, सुख-दुःख, हानिलाभ, प्रशंसा और निन्दा आदि का जो अनुभव करते हैं, वे और उन जैसे अन्य पदार्थ स्वप्न में दीखते हैं। जैसे—आम खाते हैं ऊपर से दूध पीते हैं। प्यास लगती है; पानी पीने पर प्यास बुझ जाती है। ये ही स्वप्न में दीखते हैं।

४. प्रार्थितम्—जिस वस्तु की अभिलाषा होती है, जिस वस्तु को मांगते हैं वह और उसके सदृश अन्य पदार्थ स्वप्न में दीखते हैं। जैसा—हमें परीक्षा देनी है। ५ पुस्तकें चाहिए; हमारे पास चार ही हैं। एक पुस्तक और चाहिए। वह हमारे पास नहीं जिस पुस्तक की आवश्यकता है वह पुस्तक दीखेगा। कभी २ हमें दस सहस्र रुपयों की आवश्यकता होती है। कहीं से भी प्राप्त नहीं हो रहे हैं। उसी चिन्ता में मग्न रहते हैं। अथवा मन में अभिलाषा लिये हुए हैं। स्वप्न में रुपयों का दृश्य दीखेगा। यह आवश्यक नहीं कि उतने ही रुपये मिलें। न्यूनाधिक भी मिल सकते हैं। लघुशंका आती रहती है। स्वप्न में लघुशंका कर रहे हैं। प्यास लग रही है स्वप्न में पानी पी रहे हैं। हमें घड़ी की इच्छा है स्वप्न में घड़ी दीखेगी वा घड़ियों का व्यापार दीखेगा। नेता बनने की लालसा मन में है। स्वप्न में नेता बने घूमते हैं। मन की अव्यक्त अभिलाषाएं सभी इस कोटि में आती हैं।

५. कल्पितम्—यद्यपि प्रत्येक स्वप्न में कुछ न कुछ अंश कल्पित होता है तथापि यहां 'कल्पितम्' का अर्थ बहुत अंशों में **'शब्द-ज्ञानानुपाती वस्तु-शून्यो विकल्पः'** योगद० १।९॥ के सदृश ही है। केवल शब्द ज्ञान ही नहीं दृष्ट, श्रुत, प्रार्थित अनुभूत के आधार पर भी कल्पनाएं होती हैं। कल्पित में

वाद स्वप्न को मिथ्या मानकर ही प्रारम्भ होता है। स्वप्नों से भविष्यत् को जाना नहीं जा सकता। स्वप्न का भविष्य के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। यह प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि स्वप्न कल्पित होता है और उसमें दीखने वाला पदार्थ स्वप्न के आरम्भ से लेकर समाप्ति तक एक रूप में नहीं रहता। कल्पना भी अलग २ होती है सबकी एक समान नहीं होती। जैसा एक किसान जिस की अपनी गौएं नहीं हैं पर स्वप्न में अपनी गौओं को चरा रहा है किन्तु पश्चात् वे दूसरों की गौएं बन जाती हैं। एक विद्यार्थी है उसके पास भूगोल की पुस्तक नहीं हैं। किन्तु स्वप्न में परीक्षा तो भूगोल की देता है और सफल होता है इतिहास में। एक व्यापारी को स्वप्न में दूसरे व्यापारी ने दस सहस्र रुपये गिनकर दिये। किन्तु लेने वाला व्यापारी दूसरे कमरे में जाकर गिन लेता है तो रुपये १२ सहस्र निकले। दो सहस्र रुपये अधिक प्राप्त कर प्रसन्न होता है। निद्रा खुलती है। रुपये नहीं, पैसे नहीं। क्या इन स्वप्नों को कोई सत्य सिद्ध कर सकता है? सिद्ध करने की बात को जाने दीजिए 'सत्य है' ऐसा कह भी नहीं सकता। तब स्वप्नों का सत्य होना कैसा सिद्ध हुआ? यदि कहो कि कुछ तो सत्य होते हैं, तो कौनसा सत्य होता है और कौनसा असत्य, इसकी कसौटी क्या है? निर्णय क्या है? चाहे जिसको सत्य मानें अथवा कोई लक्षण भी है?

स्वप्नों के सत्यासत्य वा शुभाशुभ के विचार से पूर्व स्वप्न क्या है यह देखना आवश्यक है।

'स्मृतिरेषा यत् स्वप्नदर्शनम्'। स्वप्न जागृत का संस्कारमात्र है। जागृत संस्कारों का स्मरण ही स्वप्न है, उससे अतिरिक्त और कुछ नहीं। जागृत में जो कुछ संस्कार मन पर पड़ते हैं वे ही स्वप्न के रूप में स्मृत होते हैं। आयुर्वेद के परमाचार्य महर्षि अग्निवेश ने चरक संहिता में इसके संबंध में बहुत सूक्ष्मता से विश्लेषण किया है। उन्होंने लिखा है कि—

दृष्टं श्रुतानुभूतं च प्रार्थितं कल्पितं तथा।
भाविकं दोषजं चैव स्वप्नं सप्तविधं विदुः॥

अर्थ—देखा हुआ, सुना हुआ, अनुभव में आया हुआ, अभिलषित, कल्पित, आगे होने वाला और दोषज इस प्रकार स्वप्न सात प्रकार का होता है।

१. दृष्टम्—जो नित्यप्रति देखने में आते हैं, वे पदार्थ स्वप्न में दीखने लग जाते हैं। जैसे मित्र, बन्धु-बान्धव, माता-पिता, भाई-बहन, घर-द्वार पाठशाला, पुस्तक, वस्त्र, आभूषण, मनुष्य, पशु, पक्षी और वृक्षादि।

२. श्रुतम्—हम देखते तो नहीं किन्तु जो सुनते हैं, जो वस्तुएं सुनने में आती हैं वे स्वप्न में आती हैं। हम हरिश्चन्द्र, जनक, कपिल, कणाद, कृष्ण आदि को सुनते हैं। वायुकाय जीव परमाणु आकाश आदि को सुनते रहते हैं। जैसा वर्णन हम सुनते हैं उसके साथ हमारा अपना ज्ञान भी मिश्रित होता है। उन सबका सम्मिश्रण-पिण्डीभूत वस्तु ही हमारा स्वप्न है। यह कोई अंतिम सत्य नहीं। एक प्रकार से सुनी हुई बातों के अनुसार मन के अन्तस्थल में एक आकार, प्रकार, और रंगरूप आदि की कल्पना मनुष्य कर लेता है। बाह्य मन से इसका उसको पता नहीं चल पाता है। इसी प्रकार किसी ग्रन्थ को पढ़कर भी उसके आधार पर अनुमान कर लेता है। जैसा कि कृष्ण वा चाणक्य के विषय में पढ़ लिया। उसके आधार पर सोचता रहा। यही स्वप्न में दीख गया।

३. अनुभूतम्—जिन वस्तुओं को खाते हैं पीते हैं ओढ़ते हैं, पहनते हैं और संघते हैं, सुख-दुःख, हानिलाभ, प्रशंसा और निन्दा आदि का जो अनुभव करते हैं, वे और उन जैसे अन्य पदार्थ स्वप्न में दीखते हैं। जैसे—आम खाते हैं ऊपर से दूध पीते हैं। प्यास लगती है; पानी पीने पर प्यास बुझ जाती है। ये ही स्वप्न में दीखते हैं।

४. प्रार्थितम्—जिस वस्तु की अभिलाषा होती है, जिस वस्तु को मांगते हैं वह और उसके सदृश अन्य पदार्थ स्वप्न में दीखते हैं। जैसा—हमें परीक्षा देनी है। ५ पुस्तकें चाहिए; हमारे पास चार ही हैं। एक पुस्तक और चाहिए। वह हमारे पास नहीं जिस पुस्तक की आवश्यकता है वह पुस्तक दीखेगा। कभी २ हमें दस सहस्र रुपयों की आवश्यकता होती है। कहीं से भी प्राप्त नहीं हो रहे हैं। उसी चिन्ता में मग्न रहते हैं। अथवा मन में अभिलाषा लिये हुए हैं। स्वप्न में रुपयों का दृश्य दीखेगा। यह आवश्यक नहीं कि उतने ही रुपये मिलें। न्यूनाधिक भी मिल सकते हैं। लघुशंका आती रहती है। स्वप्न में लघुशंका कर रहे हैं। प्यास लग रही है स्वप्न में पानी पी रहे हैं। हमें घड़ी की इच्छा है स्वप्न में घड़ी दीखेगी वा घड़ियों का व्यापार दीखेगा। नेता बनने की लालसा मन में है। स्वप्न में नेता बने घूमते हैं। मन की अव्यक्त अभिलाषाएं सभी इस कोटि में आती हैं।

५. कल्पितम्—यद्यपि प्रत्येक स्वप्न में कुछ न कुछ अंश कल्पित होता है तथापि यहां 'कल्पितम्' का अर्थ बहुत अंशों में **'शब्द-ज्ञानानुपाती वस्तु-शून्यो विकल्पः'** योगद० १।९॥ के सदृश ही है। केवल शब्द ज्ञान ही नहीं दृष्ट, श्रुत, प्रार्थित अनुभूत के आधार पर भी कल्पनाएं होती हैं। कल्पित में

भी कल्पना चलती है। जैसे—भूतप्रेत-चुड़ैल आदि के आकार प्रकार को मापना। भूतप्रेत कल्पित हैं उसमें भी उनके आकार-प्रकार की कल्पना। मनुष्य ऐसा स्वप्न देखता है जिसमें सोया हुआ स्वप्न भी देख रहा है। स्वप्न के समय मनुष्य अर्धनिद्रा में होता है। जागने पर दूसरों से कह रहा है कि मैं सो रहा था स्वप्न आया। उसमें बड़ा विचित्र स्वप्न आया। ऐसा अनुभव बहुतों को होता है। स्वप्न ही कल्पित है। स्वप्न में भी स्वप्न। नितरां कल्पित है। विना आधार की भी कल्पना होती है। जैसे—चित्रगुप्त, यमराज, देव, असुर (योनि-विशेष) स्वर्ग और नरक (स्थान-विशेष) आदि। ये निराधार हैं। इसी प्रकार दृष्ट को लेकर कल्पना चलती है एक गाय देखी है, एक पक्षी देखा है। दोनों को लेकर एक नई वस्तु की कल्पना हुई, वह है पंख वाली गाय। यह स्वप्न में दीखता है इसी प्रकार एक गरुड़ पक्षी के परों पर एक २ पर्वत है। अपना शिर कटा है और अपनी शवयात्रा में आप ही रोता हुआ जा रहा है। श्रुतों को लेकर कल्पना चलती है। जैसे— दश-शिर वाला रावण। पांच मुखवाला पूंछ सहित हनुमान्। इन दोनों में युद्ध होता है। अनुभूत को लेकर कल्पना चलती है। जैसा—एक व्यक्ति कई प्रकार की मिठाइयां खाता है। वह स्वप्न में एक वार ऐसी मिठाई खा लेता है कि जो अब तक नहीं खाई थी। यह नई मिठाई कल्पित है। प्रार्थित को लेकर कल्पना चलती है। जैसे—हमें किसी पुस्तक की आवश्यकता है। वही पुस्तक स्वप्न में दीखा। उसके पन्ने उलटने लगे कि उसमें हमारा नाम लिखा हुआ था। हमारा नाम कल्पित है।

६. भाविकम्—भावी=होने वाला। जिस कार्य को आगे चलकर करना हो उसे पहले स्वप्न में कर रहे होते हैं। जैसा—१५ दिन के पश्चात् परीक्षा होने वाली है। आज ही स्वप्न में देखते हैं कि परीक्षा में बैठे लिख रहे हैं। यह १५ दिन के पश्चाद्-भावी को अब स्वप्न में देखते हैं।

७. दोषजं—वात, पित्त, कफ तीन दोष माने गए हैं। ये शरीर में न्यूनाधिक होते रहते हैं। जो दोष प्रकुपित होता है स्वप्न में उसी प्रकार के पदार्थ दिखाई देते हैं। जब वात की प्रधानता होती है तब शरीरगत इस परिणाम का प्रभाव विचारों पर पड़ता है। तत्सम्बन्धी स्वप्न आते हैं। जैसा—उछलना, कूदना, उड़ना, गिरना दौड़ना और बोलना आदि। पित्त की अधिकता से स्वप्न आते हैं। जैसे कि मनुष्य प्यास से व्याकुल है। धूप में तप रहा है। कहीं अग्नि जल रहा है। कफ की अधिकता का भी प्रभाव होता है। उस समय वर्षा का आना, बाढ़ का आना, सर्दी, प्रतिश्याय जैसी

अनुभूति, नदी, तालाब और कूए में तैरना, बहजाना, सर्वत्र पानी ही पानी का दीखना और पानी का पी लेना आदि दोषज स्वप्न हैं। चित्त लेटते हैं। छाती पर मानो कोई मनुष्य बैठा हो और उठने नहीं देता हो, दबा रहा हो, ऐसे स्वप्न भी आते हैं। स्वप्न में मरने की स्थिति आती है। कभी २ सारे शरीर में पसीना आता है। ऐसा ही स्वप्न में भी अनुभव करते हैं। करवट लेते ही निद्रा खुल जाती है। पसीना आया हुआ दीखता है। हृदय में भी धड़कन तीव्र हुआ मिलता है।

स्वप्न कारणपूर्वक आते हैं। विना निमित्त कोई स्वप्न नहीं होता। भविष्य में जो होने वाला होगा उसका कारण अब नहीं है। जिसका कारण अब होगा भी तो भी हमें ज्ञात नहीं। अनेक प्रकार के संस्कार आत्मायुक्त मन में हैं। किस कारण का कौनसा कार्य है यह पहले से पता नहीं है। कारणरूप संस्कार से कार्यरूप स्वप्न होता है। जैसे संस्कार वैसे स्वप्न। जैसे विचित्र २ स्वप्न आते हैं वैसे ही विचित्र और कल्पनातीत संस्कार आत्मा में होते हैं। ये संस्कार केवल इसी जन्म के हों ऐसा नहीं, असंख्य जन्मों के हैं। यही कारण है कि ऐसे २ स्वप्न आते हैं जिनको हमने न कभी इस जन्म में देखा, न सुना और न कभी जिनकी कल्पना ही की हुई होती है। जब इस जन्म के नहीं हैं तो पता ही कैसे रहेगा कि कब के हैं। इसी कारण से ऐसा प्रतीत होता है और ऐसा माना जाता है कि जगत् में घटित घटनाओं का और स्वप्नों का कोई सम्बन्ध नहीं है। दृष्ट और श्रुत आदि के विना संस्कार नहीं। संस्कार के विना स्वप्न नहीं। यदि कोई संस्कारों के विना स्वप्न को मानता हो तो उससे प्रश्न है कि कारण के विना कार्य नहीं होता तो स्वप्नरूपी कार्य विना कारण के कैसे होगा? यदि विना कारण के कार्य होता हो तो चाहे जिससे चाहे जो हो जाएगा मिट्टी से वस्त्र बनना चाहिए और धागे से घड़ा। गेहूँ बोने से चने उगने चाहिए और चने बोने से गेहूँ। तब जन्मान्ध को रूप का स्वप्न आना चाहिए पर क्यों नहीं आता है? इससे सुतरां स्पष्ट है कि स्वप्न, पूर्व सञ्चित संस्कारों के आधार पर ही आते हैं। सञ्चित संस्कारों का भूतकाल से सम्बन्ध होता है, भविष्य से नहीं। अतः स्वप्नों का भविष्यत् में होने वाली घटनाओं से कोई भी सम्बन्ध नहीं। स्वप्नों से भविष्यत् का ज्ञान कथमपि नहीं हो सकता।

जब मनुष्य स्वप्नों को शुभाशुभ मान लेता है तो उससे उसी प्रकार अनर्थ होते हैं, जैसे शकुनों को सत्य मानने से होते हैं। यह पूर्व समुल्लास से स्पष्ट हो चुका है। इसके लिए कुछ ऐतिहासिक घटनाएं प्रस्तुत की जाती हैं।

१—"दक्षिण के ही एक राजा चेरामन पीरुमल की मूर्खता और अन्धविश्वास की कहानी भी बड़ी विचित्र है।…… राजा चेरामन पीरुमल को एक रात को स्वप्न हुआ जिसमें उसने देखा कि चाँद के दो टुकड़े हो गए हैं। प्रातः उठकर पण्डितों से स्वप्न का रहस्य पूछा। पण्डितों ने बतलाया किन्तु राजा सन्तुष्ट न हुआ। उन्हीं दिनों अरब का एक मुसलमान व्यापारी वहां आया और अवसर पाकर राजा से मिला। उसने स्वप्न की व्याख्या करते हुए कहा कि हजरत मोहम्मद साहब ने चाँद के दो टुकड़े कर दिए थे, वे ही आप को दिखलाई दिए हैं। हजरत की आप पर खास मेहरबानी है। आप उन्हीं की शरण में आइए, नहीं तो राज्य के लिए बड़ा अनिष्ट होगा। भोला भाला बुद्धू राजा उसकी बातों में आ गया और उसी के साथ मक्का को चला गया। वहां मुसलमान हो गया और वहीं रहने लगा। वहां से उसने इस्लाम के प्रचार के लिए मौलवी भेजे और अपने मन्त्री को फरमान लिख दिया कि उनका सारा खर्च राज्य के खजाने से दिया जाए और राज्य में कई मस्जिदें बनवा दी जावें। यही हुआ। राज्य भर में इस्लाम का प्रचार हुआ। किस की बेवकूफी से? उस अन्धविश्वास के शिकार भोलेभाले राजा की मूर्खता से …।"[1]

एक विधवा ब्राह्मणी थी, जो गोंडा (उ० प्र०) जिले की रहने वाली थी। एक रात उसने सपने में देखा कि जीभ लपलपाती भूखी काली मैया उसके बेटे का बलिदान मांग रही है। सपनों पर अन्धविश्वास के कारण उसने अपने सवा वर्ष के एकमात्र पुत्र को प्रातःकाल नहलाकर सुन्दर वस्त्र पहनाकर गांव के बाहर बने काली देवी के चबूतरे पर लेजा कर पहले भक्तिपूर्वक देवी को प्रणाम किया और फिर बच्चे को गोद में बिठाकर प्रेम से उसके मुंह को चूमने के बाद "जय काली मैया की" कहते हुए गंडासे से उसका शिर काटकर काली देवी के चरणों में उस बच्चे की लाश रख दी। घटना का पता लगते ही पुलिस ने मां को पकड़ लिया। ……… एक परम वात्सल्यमयी माता के चित्त में पशु से भी अधिक मूढता और कसाई से भी कई गुनी क्रूरता … कहां से पैदा हुई? सपनों की सचाई मानने के अन्धविश्वास से ही तो!!

… महलगांव (जिला भण्डारा) …। वहां एक महिला को सपने में गंगा मैया ने कहा।…"तू अपनी बेटी को मुझे समर्पित कर देगी, तभी सारा गांव बाढ़ से बच सकेगा, अन्यथा नहीं" महिला ने सुबह उठते ही यह बात

१. युद्धनीति और अहिंसा।

अपने पति से कही। पति ने गांव के लोगों से कही। सब मिलकर उस बेचारी सर्वथा निर्दोष तीन वर्ष की अबोध बच्ची को गंगा में बहाने के लिए तैयार हो गए। किसी तरह पुलिस को पता लग गया और उसने बालिका को बचा लिया। आखिर गंगा मैया की तृप्ति के लिए बालिका के बदले ग्यारह बकरे बहाए गए। काश! यदि जनता में सपनों का अन्धविश्वास न होता तो न किसी के मन में बालिका की हत्या का विचार उठता और न उसके बदले ग्यारह बकरों की ही बलि दी गई होती।

ग्रीक राजा ईडिपस …। वे बड़े सच्चरित्र थे। एक रात सपने में उन्होंने देखा कि वे अपने पिता की हत्या करके अपनी माता के साथ सम्भोग कर रहे हैं। जागने पर उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। और उन्हें अपने आप से तीव्र घृणा हो गई। हत्या और व्यभिचार के लिए सदा दूसरों को दण्डित करने वाले ईडिपस स्वयं दण्डमुक्त कैसे रहते? आखिर सपनों में किए गए इन दोनों पापों के दण्ड स्वरूप उन्होंने अपनी दोनों आंखें फोड़ डालीं। हाय रे सपने के अन्धविश्वास! तूने व्यर्थ ही एक सच्चरित्र राजा को अन्धा बनाने के लिए मजबूर कर दिया; सदा के लिए जबर्दस्ती उनकी आंखें छीन लीं।[1]

इन स्वप्नों से इस प्रकार के कितने अनर्थ हो गए होंगे इसकी कोई गणना नहीं है। जब तक यह अन्धविश्वास समूल नष्ट नहीं होगा, मनुष्य का उत्थान संभव नहीं है।

स्वप्न को सत्य मानने वालों से कुछ प्रश्न—

१. स्वप्न क्या हैं और उनका कारण क्या है?
२. स्वप्न शुभाशुभ और सत्य किस प्रकार हैं सिद्ध करके बतलाइए।
३. स्वप्नों के शुभाशुभ वा सत्य होने में वेदादिशास्त्रों का कोई प्रमाण हो तो बताइए?
४. स्वप्नों से भविष्यत् का ज्ञान किस प्रकार होता है सिद्ध कीजिए?
५. स्वप्नों का और कर्मसिद्धान्त का परस्पर किस प्रकार सम्बन्ध है?
६. कितने स्वप्न सत्य हैं और कितने असत्य?
७. स्वप्न सत्य हैं तो अनर्थ क्यों हुए?
८. शकुन के सम्बन्ध में किए गए प्रश्न इसमें भी समझने चाहिए।

१. फलित के अन्धविश्वास।

अथ पञ्चदशसमुल्लासः

अथाङ्गलक्षणानि व्याख्यास्यामः ।

जिस प्रकार शकुनों से किसी कार्य में सफलता वा असफलता की कल्पना की है इसी प्रकार शरीर के अवयवों की रचना के आधार पर विविध प्रकार के फलों का वर्णन किया है। शरीर के अवयव और उनकी रचना आकार एवं रूप संख्या आदि को तथा शरीर पर रहने वाले तिलों और रेखाओं को लेकर चित्र-विचित्र फलों का वर्णन किया है। उन सब पर लिखना इस छोटे से समुल्लास में संभव नहीं है और न उन सब पर लिखना आवश्यक ही है। इसलिए स्थाली पुलाक न्याय से विचार करते हैं। जैसे सिर, आंख, पलक, नाक, कान, ललाट, भ्रू, दन्त, ओष्ठ, गर्दन, भुजा, हाथ, अंगुलियां, हथेली, कलाई, छाती, पेट, नाभि, कमर, जङ्घा, पिण्डली, टखना, नाखून, चर्म, तलुए, तिल आदि को लेकर बड़े २ ग्रन्थ लिख दिए।

"मोटा हाथ दृढ़ता का सूचक है। छोटा और पतला हाथ कमजोरी और कायरता प्रकट करता है।"[1]

समी०—हाथ के मोटेपन का क्या लक्षण है? हाथ का मोटा होना किसकी दृढ़ता का सूचक है? हाथ की दृढ़ता का अथवा शरीर की दृढ़ता का? किं वा आत्मबल का सूचक है? दृढ़ता शब्द सन्देहास्पद और अनेकार्थक है। जिज्ञासु की रुचि के अनुसार इसकी चाहे जैसी व्याख्या की जा सकती है। चाहे जैसा तोड़ा मोड़ा जा सकता है। ज्यौतिष के नाम से लोगों की आंखों में धूल झोंकने का यह एक उपाय है। सम्पूर्ण फलित के ग्रन्थ इसी प्रकार सन्देहास्पद और अनेकार्थ-अविस्पष्टार्थ वाले शब्दों के पुलिन्दे हैं। फलादेश करने वाले भी इसी प्रकार के शब्दों का प्रयोग करते हैं। मोटा शब्द भी अस्पष्टार्थ वाला है। खाकर दुकान पर बैठे हुए लोगों का हाथ जितना मोटा होता है उतना एक किसान का नहीं होता। खा-पीकर बैठने वाले लाला लोगों का हाथ सबसे अधिक मोटा होता है। उतना मोटा हाथ एक बहुत बड़े मल्ल का भी नहीं होता। क्या लाला लोगों का हाथ दृढ़ता का

१. फलित के अन्धविश्वास।

सूचक है? अन्धेर नगरी है। मोटापे का दृढ़ता से क्या सम्बन्ध है? छोटे और पतले का मानदण्ड क्या है? क्योंकि ये शब्द आपेक्षिक हैं। हाथों का पतलापन हाथ की निर्बलता को बतलाता है अथवा शरीर की निर्बलता को किंवा आत्मिक निर्बलता को? हाथों के छोटेपन का तथा निर्बलता का क्या सम्बन्ध है?

"पतले और छोटे कान चरित्रवान् और ईमानदार व्यक्ति के होते हैं। लम्बे और पतले कान विलासिता, निर्दयता आदि के सूचक होते हैं। ऊपर से झुके हुए कान साहसी तथा बलवान् व्यक्ति के होते हैं।"[1]

पतले वा छोटे कान वाले सब चरित्रवान् वा ईमानदार हों यह कहीं भी सिद्ध नहीं है। पतले वा छोटे कान वाले दुष्ट से दुष्ट और नास्तिक भी हैं। हमने देखे हैं लम्बे वा पतले कान वाले संयमी वा दयालु हैं। हमने कई साहसी देखे हैं, उनके कान ऊपर से कहीं नहीं झुके हैं। कानों का पतले वा छोटेपन का चरित्र वा ईमान से क्या सम्बन्ध है? लम्बे वा पतले कानों का विलासिता से क्या सम्बन्ध है। बल वा साहस का ऊपर से झुके हुए कानों का क्या सम्बन्ध है? इनका परस्पर कार्यकारण सम्बन्ध है वा निमित्त नैमित्तिक अथवा समवाय किं वा सांकेतिक सम्बन्ध है? सिद्ध करके बतलाइए।

"बायें हाथ पर तिल का होना कुशल तार्किकता का लक्षण है।"[2]

कुशल तार्किकता का क्या लक्षण है? किसी विकार के कारण शरीर में जहां तहां तिल होते हैं। उनका तथा मस्तिष्क जिस स्थान में तर्क शक्ति के साधनभूत भाग रहता है=जिस भाग से तर्क करने में सहायता मिलती है उसका तथा तिल का कोई कार्यकारण सम्बन्ध नहीं है। ना ही आत्मा में होने वाली तार्किक प्रवृत्ति के ये तिल साधनभूत सिद्ध हुए हैं। तिल का तथा तार्किकता का कौन सा सम्बन्ध है? जिनके बायें हाथ पर तिल नहीं वे भी कुशल तार्किक हैं। कई तार्किक ऐसे हैं जिनके बायें हाथ पर तिल नहीं है।

जिसकी नासिका के अग्र भाग पर तिल है वह धनवान् है ऐसा माना जाता है। यह कहा वा माना जाता है किन्तु यह किसी प्रमाण से कोई सिद्ध नहीं करता कि तिल का धन का निमित्त, उपादान, साधारण आदि सम्बन्धों में से कौन सा सम्बन्ध है। यह शरीर-विज्ञान के आधार पर है अथवा व्यापार-विज्ञान अथवा किसी अन्य विज्ञान के आधार पर? इसको जब तक सिद्ध

१. २. वही।

नहीं किया जाता तब तक विज्ञान की कोटि में नहीं आता। और न कभी बुद्धिमानों के लिए मान्य हो सकता है। इसको जो भी मानना चाहेगा उसको खरगोश के सींग भी मानने पड़ेंगे। यदि नहीं माने तो कारण बतलाना पड़ेगा कि तिल की बातें सत्य कैसे और खरगोश के सींग की बातें असत्य कैसे? धनवान् का लक्षण क्या है? किसको धनवान् कह सकते हैं और किसको नहीं, लक्षण नहीं कहा। लेखक की जननी की नासिका के अग्रभाग पर तिल है किन्तु उनके पास धन-सम्पत्ति नहीं है।

"पांच से अधिक उंगली वाला व्यक्ति दरिद्र और याचक होता है।"

ग्रामरिंगनोद (ढोढर) जिला रतलाम मध्य प्रदेश के निवासी श्रीमान् सेठ मांगीलाल जी ललवानी के युवा सुपुत्र श्री सागरमल जी के दोनों हाथों और दोनों पावों के प्रत्येक पंजे में एक २ अंगुली अधिक है। कुल २४ अंगुलियां हैं। फिर भी न तो वे दरिद्र हैं न याचक ही। स्पेन के एक गांव में सभी स्त्री पुरुष सात २ अंगुलियों वाले हैं।

"स्पेन का सरबेरा डी० बीटरेगो नामक गांव इसलिए प्रसिद्ध है कि वहां के सभी लोग ५ नहीं ७ अंगुलियों वाले हैं। हाथ-पावों के प्रत्येक पंजे में एक २ अंगूठा और छः छः उंगलियां होती हैं। हम जैसे उनकी ७, ७ उंगलियों पर आश्चर्य करते हैं वैसे ही वे हमारी ५, ५ अंगुलियों पर आश्चर्य करते हैं। विवाह भी वे अपने गांव में ही करते हैं जिससे कि कोई ५ अंगुली वाला उस गांव में प्रवेश न पा सके।" विज्ञानलोक, अगस्त १९६४ से।

क्या इस उदाहरण के रहते हुए कोई मान सकता है कि ५ अंगुलियों से अधिक अंगुलियों वाले व्यक्ति दरिद्र तथा याचक होते हैं? दरिद्र तथा धनवान् का क्या लक्षण है? भिखारी का क्या लक्षण है? ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ वा संन्यासी ये सब गृहस्थों से भिक्षा मांगते हैं। भिखारी, धनवान् दोनों आपेक्षिक हैं। क्या उस गांव में सभी भिखारी याचक होंगे? धनवानों के विना कोई नगर हो सकता है?

"यदि बालक के ऊपर के दांत पहले निकलते हैं तो यह शुभ कार्य नहीं होता। विशेष करके ननिहाल वालों के लिए।" यह मान्यता भारत में ही नहीं, विदेशों में भी है। यदि किसी बालक के दांत नीचे के दांतों से पूर्व ऊपर के निकलें तो इसको परिवार के लिए भारी संकट की सूचना मानी जाती है। ऐसे बच्चों को जीवन से हाथ धोना पड़ता है। इसके साथ यह भी मान्यता थी कि यदि ऐसे बालक जीवित रहेंगे तो उनके दूध के दांत गिरने के समय उस परिवार के अन्य बच्चे मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे। यह

भी माना जाता था कि ऐसा बच्चा जिस खेत वा उद्यान में पैर रखेगा उसमें न्यून उपज होगी। यह भी विचार था कि ऐसे बच्चे दूसरों की अपेक्षा अधिक कटुभाषी होते हैं। ऐसी मान्यता जाम्बिया देश में आज भी है। इस मान्यता का प्रभाव इससे पूर्व अधिक था, अब न्यून होता चला जा रहा है। इस परम्परा के अनुसार उसकी माता अपने बच्चे को स्वयं नदी में फेंक देती थी। यदि कोई माता ऐसा करने को उद्यत न होती तो ग्राम वाले उसे इस बीभत्स कृत्य के लिए बाधित करते। कोई भी कार्य करते २ परम्परा में परिणत होता है। परम्परा बनने के पश्चात् उसकी उचितानुचितता का विवेचन दूर चला जाता है। जिस बच्चे के ऊपर के दांत पहले निकले उसको नदी में फेंकने की परम्परा बन गई थी। परम्परा बनने के कारण यह जघन्य कार्य भी साधारण बात बन गई थी। इन निरपराध बालकों की हत्या के सम्बन्ध में एक और निर्मम बात यह होती थी कि उनकी मृत्यु पर उनकी माता को शोक प्रकट नहीं करने दिया जाता था। कई माताएं अपने प्रिय सन्तान की इस हत्या को सहन न कर सकने के कारण उसके साथ नदी में कूद, डूब मरती थीं। अथवा अन्य प्रकार से आत्महत्या कर लेती थीं। कोई-कोई साहसी माता-पिता अपनी सन्तान के साथ ऐसा अत्याचार न करने का निश्चय कर लेते किन्तु इसके लिए उनको ग्राम में रहना सम्भव नहीं था। अतः सदा के लिए ग्राम को छोड़कर भागना पड़ता था।•

समी०—बालक के ऊपर के दांतों के प्रथम निकलने के साथ उनके ननिहाल वालों का क्या सम्बन्ध है और इसमें क्या प्रमाण है? क्या नीचे के दांतों के निकलने के पश्चात् ऊपर के निकलें तो ननिहाल वालों का कोई अशुभ नहीं होगा? इसमें युक्ति और प्रमाण हो तो बतलावें। विना युक्ति और प्रमाण के कोई बात सिद्ध नहीं होती। यदि सिद्ध होती तो वन्ध्या का पुत्र भी सिद्ध हो जाए। इस प्रकार प्रमाण विरहित अन्धविश्वासों ने न जाने कितने अबोध वा निरपराध बालकों को और उनके माता-पिता को मौत के घाट उतार दिया होगा। कितने माता-पिता, भाई-बहनों को जीवन भर के लिए दुःखसागर में डुबोया होगा, इसका कोई इतिहास नहीं।

श्री वेदप्रकाश जी ओबराय ने "आर्य गजट' पत्रिका में इस सम्बन्ध में जाम्बिया देश का एक रोमाञ्चकारी संस्मरण लिखा। उसको उन्हीं के शब्दों में उपस्थित करता हूँ—

• आर्य गजट, हिन्दी मासिक, वर्ष ६१, संख्या १ के अनुसार।

"भेंट करने वाली एक वृद्धा ने दुःखभरी आवाज में आपबीती सुनाते हुए बताया कि जब उसकी प्रथम सन्तान एक लड़की ने पहले ऊपर का दांत निकाला तो अन्धविश्वास के कारण उसने कलेजे पर पत्थर रखकर अपने दिल के टुकड़े को नदी में डुबो दिया। उस दर्दनाक दृश्य की याद करके अब भी बेचारी वृद्ध माता सिहर उठी। परन्तु बाद की घटना सुनाते हुए उसका चेहरा खिल उठा। उसको दूसरी सन्तान भी लड़की हुई। जैसे ही माता ने अनुभव किया कि इस बच्चे के ऊपर के मसूड़े निचले मसूड़ों की अपेक्षा अधिक सख्त हैं, तो वह समझ गई कि क्या होने वाला है परन्तु वह माता दूसरी बार वैसा ही अत्याचार करने को तैयार न थी। और उस दम्पती ने अपनी सन्तान की रक्षा करने के विचार से अपना गांव छोड़ दिया। उनका यह फैसला उचित ही था क्योंकि इस बच्चे ने भी ऊपर के दांत पहले निकाले। यदि वे अपने गांव में होते तो इस मासूम बच्ची को भी प्राणों से हाथ धोने पड़ते परन्तु बच्ची साधारण बच्चों की भांति ही बड़ी हुई तथा उसके बाद उस माता के और सन्तानें भी हुईं। जब उस बच्ची के दूध के दाँत गिरने लगे तो यह सोचकर कि अब बाकी बच्चों पर न जाने क्या विपत्ति आएगी, माता पिता को बहुत चिन्ता हुई परन्तु अन्धविश्वास के विपरीत बाकी बच्चे बिल्कुल स्वस्थ रहे। वह लड़की भी जिसको जीवित रखने के लिए माता पिता ने बड़ी हिम्मत से काम लिया था तथा अपने विचार से अपनी अन्य सन्तानों का जीवन खतरे में डाला था; आजकल सुखी विवाहित जीवन व्यतीत कर रही है तथा छः बच्चों की मां है।"

समी०—इस संस्मरण से उस अन्धविश्वास का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट हो गया। यह केवल अज्ञान से उत्पन्न मान्यता है। इसमें कोई विज्ञान नहीं है। यह अन्ध परम्परा अब भी यत्र तत्र है। निर्मूल नहीं हुई। अन्धविश्वासों के वशीभूत होकर आज मनुष्य मनुष्यता, आत्मा, परमात्मा, धर्म कर्म और मुक्ति आदि बातों से दूर हो क्रूर बनकर स्वयं कितना दुःखी और अन्यों को दुःखी बनाने में प्रवृत्त है यह स्पष्ट है। क्या मानव के मस्तक से यह कलङ्क कभी मिटेगा? अथवा पृथिवी को घोर नरक बनाकर छोड़ेगा? फलित वालो! अन्धविश्वासों को कब तक समेट कर रखोगे?

"ललाट पर पांच रेखाएं शतायु बताती हैं। चार रेखाएं ८० वर्ष की आयु बताती हैं और तीन रेखाएं ७० वर्ष की।"

"यदि ललाट पर दिखाई देने वाली ५ रेखाएं १०० वर्ष की आयु बताती हैं और ४ रेखाएं ८० वर्ष की तो तीन रेखाओं को ६० वर्ष की ही

आयु बतानी चाहिए ७० की नहीं। एक रेखा कम होने पर आयु में २० वर्ष कटते हैं तो दो रेखाएं कम होने पर ४० वर्ष क्यों नहीं कटेंगे? यदि पहली रेखा कम होने पर उम्र २० वर्ष घट जाती है और दूसरी रेखा कम होने पर आधी उमर १० वर्ष ही घटती है तो इसी क्रम से तीसरी रेखा कम होने पर ५ वर्ष, चौथी रेखा कम होने पर २॥ वर्ष और एक भी रेखा न होने पर सवा वर्ष उम्र घटनी चाहिए, और वही उम्र सभी स्त्री-पुरुषों की न्यूनतम होनी चाहिए। इस प्रकार ललाट की ५ रेखाएं १००, ४ रेखाएं ८०, ३ रेखाएं ७०, २ रेखाएं ६५, १ रेखा ६२॥ और सफाचट ललाट ६१३⁄४ वर्ष की आयु प्रकट करने वाले होंगे। इस तरह ६१३⁄४ वर्ष तक जीवित रहना प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिए अनिवार्य हो जायेगा जबकि संसार में ऐसा देखा नहीं जाता बहुत से लोग बचपन में ही अपने माँ-बाप से सदा के लिए बिछुड़ जाते हैं और बहुत से लोग जवानी में ही चल बसते हैं।

(१) ललाट में एक भी रेखा न रहने से मनुष्य ४० वर्ष तक जीवित रहता है। (२) जिसका कपाल रेखाशून्य हो वह व्यक्ति ६० वर्ष तक जीवित रहता है। (३) ललाट पर केवल दो रेखाएं दिखाई दें तो मनुष्य ४० वर्ष और एक रेखा में मात्र २० वर्ष जीवित रहता है। (४) जिसके कपाल के मध्य भाग से दोनों किनारों पर कान तक एक मात्र रेखा विस्तृत रहे तो वह मनुष्य १०० वर्ष की परम आयु लाभ करता है। (५) ललाट पर दो रेखाएं रहने से मनुष्य सत्तर और ३ रेखाएं रहने से ६० वर्ष की परम आयु लाभ करता है। (६) ललाट पर ३ रेखाएं रहने से मनुष्य १०० वर्ष की परम आयु लाभ करता है।●

समी०—पहले दो वाक्य परस्पर विरुद्ध हैं। यदि पहले वाक्य को सत्य माना जाए तो दूसरा वाक्य असत्य हो जाए। यदि दूसरे वाक्य को सत्य मानें तो पहला वाक्य असत्य हो जाता है। एक-एक समय एक-एक असत्य होकर दोनों वाक्य असत्य सिद्ध होते हैं। यदि किसी एक को सत्य मानना चाहो तो ठीक नहीं क्योंकि प्रमाण नहीं। इसी प्रकार ३,४ वाक्य में परस्पर विरोध है। तीसरे और पांचवें वाक्य में परस्पर विरोध है। पांचवें और छठे वाक्य का परस्पर विरोध सुस्पष्ट है। इसका कोई समाधान नहीं कि एक रेखा के रहने पर २० वर्ष जीवित रहेगा अथवा १०० वर्ष? यह क्यों? रेखाओं से शून्य मस्तक वाला ४० वर्ष तक जीवित रहेगा अथवा ६० वर्ष तक? तथा क्यों? दो रेखाओं के रहने पर ४० वर्ष जीवित रहेगा

● फलित के अन्धविश्वास

वा ७० वर्ष और क्यों ? इन रेखाओं के रहने पर ६० वर्ष जीवित रहेगा वा १०० वर्ष ? ऐसे २ प्रमादयुक्त लेखों को लिखने वालों वा उनको सत्य मानने वालों पर आश्चर्य है। ये अपनी बुद्धि का कुछ तो उपयोग करते।

"जिसका कपाल उन्नत विशाल शंखाकृति, उच्च नीच या अर्धचन्द्राकार होता है। वह निर्धन होने पर भी विभवशाली (धनवान्) होता है।

जो निर्धन है वह निर्धन है लोग उसे धनवान नहीं मान सकते, भले ही उसका भाल कैसा भी विशाल क्यों न हो। यदि कहा जाए कि ऐसा व्यक्ति शीघ्र धनवान् बन जाता है तो सवाल उठता है कि अभी वह निर्धन है। यदि शंखाकृति या अर्धचन्द्राकार ललाट का धन से अविनाभाव सम्बन्ध है तो वह व्यक्ति जन्म से मृत्युपर्यन्त धनवान ही रहना चाहिए। ऊँचा भाल भी आखिर भाल ही है। हड्डी मांस और चमड़ी से निर्मित शरीर के अन्य अङ्गों की तरह एक अङ्ग है। कोई ऊँचा पहाड़ नहीं है जिससे धन का झरना फूट निकले। वही पुस्तक

ऐसी बातों को शरीर शास्त्र को न जानने वाले कहते और मानते हैं। इन्हीं बातों से भोले लोगों को भ्रम में डालकर स्वार्थ साधते हैं।

अङ्ग लक्षणों को फलदायक मानने वालों से कुछ प्रश्न।

(१) अङ्गलक्षणों के फल का जो वर्णन किया है उनमें पूर्वापर तथा परस्पर घोर विरोध क्यों है ? क्या यह विज्ञान हो सकता है ?

(२) अङ्गलक्षणों का उनके फलों के साथ क्या सम्बन्ध है यह सिद्ध करके दिखलाइए ?

(३) वेद, उपवेद, ब्राह्मणग्रन्थ, शास्त्र, उपनिषदों और मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में इसका कहीं वर्णन हो तो प्रमाण दीजिए।

(४) जो लक्षण वा उनके फल बतलाए गए हैं ये सत्य हैं इसमें क्या प्रमाण हैं ?

(५) ये प्रत्यक्ष के विरुद्ध क्यों हैं ? प्रत्यक्षादि के विरुद्ध को शास्त्र कैसे सिद्ध करोगे ?

(६) कर्म का इसके साथ सामञ्जस्य कैसे बैठेगा ?

(७) कर्मसिद्धान्त प्रतिपादक पुस्तकों में इसका कहीं विचार ही नहीं है, ऐसा क्यों है ? क्या वे ऋषि लिखना तो नहीं भूले ?

अथ षोडशसमुल्लासः

अथ हस्तरेखाः व्याख्यास्यामः।

हथेली पर होनेवाली रेखाओं को हस्त रेखा कहते हैं। उनको देखकर मनुष्य के जीवन के विषय में जानने का विश्वास तथा चेष्टा की जाती है। इनसे मनुष्य की आयु, विद्या, स्वास्थ्य, धन सन्तान सम्मान, सुख-दुख, सफलता असफलता आवास-प्रवास और धार्मिकता अधार्मिकता आदि समस्त बातें जानी जाती हैं, और जानी जा सकती हैं यह विश्वास वनवासी से लेकर राजा तक मूर्ख से लेकर विद्वान् तक दुष्ट से लेकर सदाचारी तक एक दो में नहीं करोड़ों व्यक्तियों में बद्धमूल है। यहां तक माना जाता है कि इन रेखाओं से मनुष्य के भूत और भविष्य की बातें भी जानी जाती हैं और जानी जा सकती हैं। इस विषयक सैकड़ों ग्रन्थ मिलते हैं। सहस्रों व्यक्ति हस्त रेखाओं को देखने का व्यवसाय करते हैं। लाखों व्यक्ति इस विषय में पढ़ते रहते हैं। करोड़ों व्यक्ति इसको सत्य मानते हैं।

किन्तु ऐसा मानने वाले यह निर्णय नहीं कर पाए कि दोनों में से किस हाथ की रेखाओं का अध्ययन करना चाहिए। अर्थात् किस हाथ की रेखाओं से ये बातें जानी जाती हैं, यह अब तक निश्चय नहीं हो पाया। कुछ का कहना है कि मनुष्य का दाहिना हाथ अधिक क्रियाशील रहता है अतः दाहिने हाथ की रेखाओं का अध्ययन करना चाहिए। इसके विरुद्ध कुछ लोगों का विचार है कि बायां हाथ हृदय के अधिक निकट रहता है, इसलिए उसी की रेखाओं का अध्ययन करना चाहिए। इनसे भिन्न कुछ लोगों का कथन है कि दोनों का अध्ययन करना चाहिए। यह भी निर्णय नहीं कर पाए कि आयुरेखा कौन सी है, सन्तान रेखा कौन सी है और कौन सी रेखा का क्या अर्थ है। क्योंकि हथेली की एक ही रेखा को कोई आयु रेखा कहता है और कोई भोग रेखा। कोई पितृरेखा को ही आयुरेखा कहता है। कुछ लोग कनिष्ठा अंगुली के मूल स्थान के नीचे छोटी २ खड़ी रेखाओं को सन्तान रेखा बताते हैं। कुछ लोग मणिबन्ध से भोगरेखा के निचले भाग तक के

विस्तृत स्थान में हथेली के पास से उठी हुई रेखाओं को सन्तानरेखा कहते हैं। कुछ लोग अंगूठे के मूल स्थान से नीचे मणिबन्ध तक हथेली के पास से निकली हुई रेखाओं को ही सन्तान रेखा कहते हैं।

जहाँ कुछ लोग कनिष्ठिका से प्रकोष्ठ तक हथेली के किनारे खड़ी रेखाओं को सन्तति सूचक मानते हैं और अंगुष्ठ मूल से प्रकोष्ठ तक हथेली के तट पर स्थित रेखाओं को बन्धु-भगिनी सूचक, वहीं अन्य लोग कनिष्ठिका से प्रकोष्ठ तक की रेखाओं को बन्धु-भगिनी बोधक बनाते हैं और अंगुष्ठमूल से प्रकोष्ठ तक की रेखाओं को सन्ततिसूचक। इस प्रकार की अनेक मान्यताएं हैं जो परस्पर विरुद्ध हैं।

शरीर की रचना को समझे विना यह समझ में नहीं आ सकता कि यह अंग प्रत्यंग ऐसे क्यों होते हैं। शरीर पैतृक होता है। जैसे माता पिता के रजवीर्य होते हैं उसी के अनुरूप सन्तान का अर्थात् समस्त सांगोपांग शरीर होता है। कई अंश तो दो तीन पीढ़ियों तक के भी होते हैं। देश, काल (ऋतु आदि) और खाने-पीने के पदार्थों आदि का प्रभाव; इन सब का पिण्डी भूत रूप ही शरीर है। इन समस्त पदार्थों में भिन्नता, वैषम्य होने से, शरीर के आकार प्रकार रंग, रूप आदि भी विभिन्न प्रकार के होते हैं यह स्वाभाविक हैं। इसीलिए महर्षियों ने सुन्दर स्वस्थ शरीर के लिए अनेक प्रकार के आहार-विहार के नियमों का विधान कर दिया। यदि भाग्य वश होते तो इनके लिए विधान व्यर्थ होता है। अतः इनको देखकर विभिन्न फलों की कल्पना कर लेना ज्ञानहीनता की बात है।

हथेली में मणिबन्ध से आरम्भ होकर मध्यमा अंगुली की ओर जाने वाली भाग्यरेखा कही जाती है। यह रेखा जिसकी हथेली में रहती है वह बड़ा भाग्यवान् माना जाता है। धनधान्य से परिपूर्ण होता है। अमिस्तापुर ग्राम, महबूबनगर जिला, आन्ध्र प्रदेश में एक व्यक्ति अय्यप्पा नाम से है। उनकी हथेली में ऐसी रेखा है। भाग्य की बात दूर है उनको दो समय का भोजन भी बड़ी कठिनाई से मिलता है। उनको रेखा के अनुसार भाग्यवान् कहना चाहिए वा नहीं, यह फलित वाले बतलावें ? और यह भी बतलावें कि भाग्य रेखा का क्या अर्थ है ? कुछ लोग कहते हैं कि हमको अमुक ज्यौतिषी जी ने कहा था, जो सत्य निकला। ऐसा कहने वाले उन नामधारी ज्यौतिषियों की बातों की परीक्षा नहीं करते। न करना ही चाहते। न उनकी बातों को परीक्षा करने योग्य मानते हैं न परीक्षा कर ही सकते हैं किन्तु उनके कथन को अपने जीवन की किसी घटना के साथ जोड़कर समझ लेते हैं कि

ज्यौतिषी जी की बात सत्य निकली। जैसा—किसी ज्योतिर्विदाभास ने किसी से कहा कि "तुम राजा बनोगे।" नवयुवक बड़ा प्रसन्न हुआ। राजा बनने की प्रसन्नता में इधर उधर घूमता रहा किसी नाटक वालों के संघ में सम्मिलित हुआ। एक खेल में उसने राजा का पात्र लिया। जब वह राजा का वेश धारण कर मंच पर आया तब प्रसन्न था कि मुझे ज्योतिषी जी ने ठीक ही कहा था कि तुम राजा बनोगे।

रेखाएं टल (परिवर्तनशील) हैं अथवा अटल (स्थिर)? टल हैं अथवा अटल, दोनों ही पक्षों में हाथ आदि को न देखना चाहिए न दिखाना चाहिए। क्योंकि यदि टल हैं तो भूत भविष्यत् का ज्ञान नहीं, होगा वर्तमान को जानने की आवश्यकता ही नहीं क्योंकि स्वतः ज्ञात है। यदि अटल है तो उनको कोई अन्यथा नहीं कर सकता; नहीं बदल सकता। जब बदल ही नहीं सकता तो देखने दिखाने से क्या होने जाने वाला है ? संभवतः संवत् २०२९ वि० की घटना होगी। रोहतक में घटी। मैं रिक्शे में बैठा रिक्शे वाले से बात करता जा रहा था। उसने मेरे ज्यौतिषाध्ययन की बात सुनकर मुझसे प्रश्न किया कि "महाराज मेरी शादी होगी कि नहीं ?" लड़का लगभग १५, १६, वर्ष का था। मैंने उसको जो उत्तर दिया उसको नीचे उद्धृत करता हूँ। "यदि आपके कर्म विवाह होने योग्य होंगे तो विवाह होकर रहेगा, मनुष्य क्या भगवान् भी नहीं रोक सकता। क्योंकि परमात्मा कर्मों का ही फल देता है। यदि आपके कर्म विवाह होने योग्य नहीं होंगे तो विवाह नहीं होगा। भगवान् भी नहीं सहायक होगा क्योंकि भगवान् विना कर्मों के फल नहीं देता।" यही उत्तर सर्वत्र समझना चाहिए।

"जहां तक हो अपने स्वयं के हाथ के अध्ययन से बचिए। वैसे यह अव्यावहारिक बात है। हर व्यक्ति अपने विषय में अधिक से अधिक जान लेना चाहता है। लेकिन जब तक पूरा आत्मविश्वास (रेखा शास्त्र पर अन्ध विश्वास) न हो तब तक स्वयं की हथेली के अध्ययन की सलाह मैं नहीं देता।"

ऐसी सलाह देनी भी नहीं चाहिए क्योंकि दूसरों के विषय में मनुष्य कुछ भी कह सकता है; परन्तु अपने आपको धोखा नहीं दे सकता। जब वह देखेगा कि अपनी हथेली की रेखाएं रेखा शास्त्र के अनुसार जो कुछ बताती हैं उससे अपने जीवन का जरा भी मेल नहीं बैठता तब रेखाशास्त्र पर उसका विश्वास टिकेगा किस बल पर ?"•

• वही पुस्तक।

समी०—यदि रेखाओं से जीवन के सम्बन्ध में कुछ पता चलता हो तो अपने हाथ को देखकर जानने में क्या आपत्ति है ? यदि पूर्ण अध्ययन के विना। आत्मविश्वास के विना। अपना हाथ देखने का निषेध है तो दूसरों के लिए भी निषेध होना चाहिए। अपूर्ण ज्ञान से अपनी हानि यदि सम्भावित है तो उस ज्ञान से दूसरों की भी हानि हो सकती है। क्या जिस विद्या से दूसरों को लाभ होता हो उससे अपने को नहीं होता है ? अवश्य होता है। वास्तव में मनुष्य जिस किसी भी विद्या को सीखता है उससे प्रथम लाभ उसी को होता है। इसलिए यह लेख स्वार्थसिन्धुओं का है।

इन कल्पित निराधार अज्ञान वा मूर्खता मूलक बातों को लेकर आज मानव-समाज को आकुलित किया जा रहा है। सुनते हैं कि अमेरिका में इसके विषय में अध्ययन वा अनुसन्धान होता है। इसे "हस्तरेखा विज्ञान" कहा और माना जाता है। क्या आधारहीन तथा परस्पर विरुद्ध और प्रत्यक्ष आदि प्रमाण-विरुद्ध बातों को विज्ञान कहा जा सकता है ? हां अन्वर्थक न होकर निरर्थक तो हो सकता है, जैसा कि कंगाल का नाम लक्ष्मीपति, नवीन का नाम पुराण, निरक्षरभट्ट का नाम विद्यानिधि रखा जाता है। यह पता नहीं इसमें विज्ञान का कौन सा लक्षण घटता है ? इसको विज्ञान का नाम देकर लोग भाग्यवादी, आत्मविश्वासहीन, कायर, पुरुषार्थहीन, दब्बू, बने हुए हैं। समाज को भी उन्होंने इसी प्रकार बना कर 'लोभी गुरु लालची चेला दोनों खेलें दाव। भवसागर में डूबते बैठ पत्थर के नाव॥'······के अनुसार सुखसौभाग्य के हेतुभूत विद्या से विमुख करके दुःखसागररूपी नरक के हेतुभूत अज्ञान के मार्ग में ला खड़ा किया।

देखिए इन स्वार्थसिन्धुओं की चाल को—"हाथ की रेखाएं आपकी अन्तिम निर्णायिकाएं नहीं हैं। अपने व्यक्तित्व और प्रगति की सामाजिक उपादेयता, सफलता और उपलब्धि के निर्णय का अधिकार आपके अपने पास है। यह आप पर निर्भर है कि नये क्षण में आप आगे बढ़ते हैं या पीछे हटते हैं। आसमान के सातवें पर्दे पर यदि कोई ताकत आपके प्रारब्ध का निर्णय करने बैठी होती तो आप जड़ कहलाते चेतन नहीं। चेतना का लक्षण विकास है; यह विकास प्रयत्नों की अगली स्थिति है। विकास की परिणति उपलब्धि में है और उपलब्धि अच्छी या बुरी, आपको चुननी है; चुनिए। उसके अनुरूप प्रयत्न कीजिए। हाथ की रेखाएं खुद-ब-खुद आप बनाएंगे कोई और नहीं। प्रकृति अपने पुत्रों के साथ सौतेला व्यवहार नहीं करती। इतना ही जीवन, समय और बल ईसा, बुद्ध और गांधी को मिला

था, इतना ही शेक्सपियर, कालिदास और गोर्की, लेनिन, लिंकन और मार्क्स को आप कुपुत्र हैं या सुपुत्र ? खुद निर्णय कर लीजिए। ऐसा न हो कि कल की अदालत में आप पर निकम्मेपन का आरोप लगाया जाए। आप हथेली फैलाकर रेखाओं के सबूत देना चाहें और आपके विचारों के ही अनुसार उनकी परिवर्तन शीलता, आपका पक्ष कमजोर कर दे। सुबह की रोशनी अपने स्नायुओं में भरकर चल पड़िए अभी वक्त है, लेकिन यह नहीं ठहरता, चलना इसका धर्म है।"

ये हैं एक बहुत बड़े रेखाशास्त्री माने जाने वाले श्री प्रकाश दीक्षित के उद्गार। मैं दीक्षित जी से पूछता हूँ कि "यदि ये विचार आपके ही हैं तो रेखाओं का फल वर्णन करने वाले, उनको सत्य मानने वाले, आपके विचार कपोल कल्पित हैं। यदि वे विचार हार्दिक हैं तो ये विचार कपोल-कल्पित हैं। एक समय में एक २ करके दोनों विचार कपोलकल्पित हैं।" ऐसी मान्यता दीक्षित जी की ही बन जाती है, मेरी नहीं। फलित वाले सभी इन दोनों प्रकार के विचारों को मानते हैं; कहते हैं और लिखते हैं। इसका एक मात्र कारण है कि जो फलादेश किया जाता है उसके अनुसार सिद्ध हो जाए तो वैसा सत्य है। वैसा नहीं तो ऐसा सत्य है। चित्त भी मेरा पट्ट भी मेरा। दोनों हाथों में लड्डू हैं। जैसे इनको फलित पर विश्वास नहीं है वैसे ही किसी को नहीं है। सबका मन्तव्य एक समान है। किन्तु स्वार्थ से, अन्ध परम्परा तथा संस्कारों से पराभूत होकर समयानुसार आवश्यकतानुसार कहते हैं चाहे सत्य हो चाहे असत्य।

दीक्षित जी यह बतलाइये कि यदि आपके विचार सत्य हैं तो पूर्वत्र फलविधान का क्या अर्थ रह जाता है ? वास्तव में रेखाओं का कोई अर्थ नहीं होता। सब फल की लीला कल्पित एवं निराधार है। ये फलित वाले किसी के हाथ को वा शरीर को देखकर उनके जीवन के विषय में जिस समय बतलाने लग जाते हैं उस समय उनकी अटकलों वा तुकबन्दियों को देखते ही बनता है। जिज्ञासु के चेहरे को देखते जाते हैं और कहते जाते हैं। ऐसी बातें कहते जाते हैं जो सन्दिग्ध, अस्पष्ट वा बह्वर्थक होती हैं जिनके कई २ अर्थ निकलते हैं और जिनकी कई २ प्रकार की व्याख्या की जा सके ऐसा अवसर रहता है। इनकी चालों का पता इनको, ज्योतिष जानने वालों को और भगवान् को ही होता है और किसी को नहीं।

पाश्चात्य, वैज्ञानिकों ने हस्तरेखाओं के विषय में अत्यन्त सूक्ष्मता से अन्वेषण किया है। उसको और उसके परिणाम को उद्धृत किया जाता है।

New Delhi-Dec. 26 (U.N.I) Can a Palmist really tell an individual life expectancy ? This is very unliky say. Two American scientists who did some studies on the subject Mr. M. I. Wilson and Mr. L. E. Matler of Washington University have described Their experiments in a letter to the Journal the American Medical Association. Both men measured the life-lines on the palm of 51 cadavers and correlated these to body-size by measuring the hand on each body, then they computerised the date to determine some link between age and life-line-length. But the two researchers found nothing to indicate that life-line could predict when a person would die. Hindustan Times 27-12-74.

अनुवाद—हिन्दुस्तान टाइम्स १७·१२-७४ नई दिल्ली

दिसम्बर २६. (यू.एन.आई.) क्या एक सामुद्रिकशास्त्री वास्तव में किसी व्यक्ति की आयु की संभावना का अनुमान लगा सकता है ? यह बहुत ही अवास्तविक है। दो अमेरिकन वैज्ञानिकों श्री एम. आई. विल्सन और श्री एल. ई. मॉटलर ने जो कि वाशिंगटन विश्वविद्यालय के थे, इस विषय में एक पत्र द्वारा अमेरिकन मैडिकल एसोसिएशन के जरनल (पत्र) में अपने प्रयोगों का वर्णन किया है। उन्होंने इस विषय में कुछ अध्ययन किया था। दोनों व्यक्तियों ने ५१ मृतकों की हथेली की जीवन रेखा को मापा और उसका सम्बन्ध शरीर के माप और प्रत्येक शरीर के हाथ के माप से स्थापित किया और फिर उन्होंने आयु और जीवनरेखा में कुछ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उन आंकड़ों का गणकयन्त्र द्वारा समाधान निकाला। परन्तु दोनों शोधकर्त्ताओं को ऐसा कोई भी संकेत अथवा परिणाम नहीं मिला जो यह सूचित करे कि जीवनरेखा यह बतला सकती हो कि कोई मनुष्य कब मरने वाला है।" वेद क्या कहता है यह देखिए—

'अयं ते हस्तो भगवानयं ते बलवत्तरः। अथर्व

अर्थ—यह आपका हाथ ही भगवान् है भगवान् से भी बलवान है।
"कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः" पुरुषार्थ मेरे दक्षिण हस्त में है और जय मेरे वाम हस्त में है।

मनुष्य के लिए यही वेद का सन्देश है। वेद ने मनुष्य को क्रतु कहा

है। यदि मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र न होता तो उसके लिए वेद का यह आदेश व्यर्थ होता। वेद ने मनुष्य को उत्तम कर्म सदा करते रहने का वारंवारं उपदेश दिया है। हथेली देखते हुए बैठने को वेद ने कहीं नहीं कहा।

यन्मनसा ध्यायति तद् वाचा वदति यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति। यत्कर्मणा करोति तदेवाभिसम्पद्यते ॥

मन से जिस बात का चिन्तन-विचार किया जाता है वाणी से वही बोलने में आता है। जो वाणी से कहने में आया वही (शरीर से) किया जाता है। जो (शरीर से) किया जाता है वैसा ही बन जाता है। वेदशास्त्र आदि उद्घोषपूर्वक कह रहे हैं कि पुरुषार्थ करो। जैसा करोगे वैसा ही बनोगे। किन्तु खेद है फलितवालों पर जो हाथ मुंह को देखते दिखाते आलसी निकम्मा बनते जाते हैं और दूसरों को भी ऐसे ही बनाने के लिए प्रयत्न करते रहते हैं। इनका काम हाथ माथे पर रखकर रोते, भाग्य को कोसते रहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं। जो वेद के इस आदेश को नहीं मानेगा वह जीवन को नष्ट-भ्रष्ट करलेगा। बुद्धिमान् मनुष्यों का यह कर्त्तव्य है कि मूर्खतापूर्ण पाखंड को छोड़ पुरुषार्थी बनकर धर्मार्थ काममोक्ष को प्राप्त करने में समर्थ होवें।

इसको सामुद्रिक भी कहा जाता है। "समुद्र ऋषि का बनाया होने से उन ही के नाम से सामुद्रिक कहा जाता है" ऐसा कहा और सुना जाता है। किन्तु इसमें कोई प्रमाण नहीं कि समुद्र नाम के कोई ऋषि रहे हों और उन्होंने इस शास्त्र को बनाया हो। सामुद्रिक शब्द का यह अर्थ कई विद्वानों ने माना है कि यह इस देश का नहीं है। विदेश से आया हुआ है। समुद्र पार से आया हुआ होने से सामुद्रिक है।

अथ सप्तदशसमुल्लासः

अथ नवग्रहान् व्याख्यास्यामः ।

चाहे आस्तिक हो वा नास्तिक, ज्यौतिष को जानता हो वा नहीं, नवग्रह को तो मानता है। विवाह होता हो वा गृहनिर्माण अथवा प्रवेश उपनयन होता हो वा यज्ञयागादि कोई भी शुभ कार्य हो सर्वत्र नवग्रह, पूजा की जाती है और करनी पड़ती है। इसके विना शुभकार्य हो ही नहीं सकता। नवग्रहपूजा पर विचार करने से पूर्व नवग्रह क्या हैं यही देख लें। प्रथम ग्रह शब्द को लीजिए। ग्रह उपादाने धातु से ग्रह शब्द बनता है। गृह्णातीति ग्रहः। ग्रहण करता है इसलिए ग्रह है। मनुष्य, पशु, पक्षी, जल, स्थल, ओषधि, वनस्पति, वृक्ष और पर्वत आदि समस्त पदार्थों को ग्रहण तथा धारण करता है इसलिए ग्रह है इससे अतिरिक्त (ग्रह शब्द के) अनेक अर्थ हैं। तद्यथा यज्ञसम्बन्धी पात्र, इन्द्रिय और ग्रहण आदि २। किन्तु प्रस्तुत प्रसङ्ग में ग्रह से अभिप्राय आकाशस्थ उन लोकों से है जो स्वयं प्रकाश से रहित तथा सूर्य के चारों ओर अपनी २ कक्षा में घूमते हैं। इन ग्रहों के चारों ओर भी कुछ लोक घूमते हैं जिनमें स्वयं प्रकाश नहीं है। इनको उपग्रह कहा जाता है। नवग्रह कहने वाले बहुत सारे लोगों को संभव है यह पता नहीं होगा कि नौ ग्रह कौन २ हैं। और वे आकाश में किस स्थान पर हैं। सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नवग्रह कहे जाते हैं। सर्वप्रथम ग्रह सूर्य है। सूर्य को ग्रह कहा जाता है किन्तु सूर्य ग्रह नहीं है। अपितु नक्षत्र है। ग्रह स्वयं प्रकाशित नहीं होते। सूर्य स्वयं प्रकाशित है। नवग्रहों में से दूसरा ग्रह चन्द्र है। चन्द्र भी ग्रह नहीं है। न नक्षत्र ही है। यह तो ग्रह के चारों ओर घूमने वाला उपग्रह है। यह पृथिवी के समान स्वयं प्रकाशहीन है। राहु, केतु भी ग्रह कहे जाते हैं। ये दोनों न ग्रह हैं और न नक्षत्र हैं, न उपग्रह हैं, न उल्का हैं और नहीं धूमकेतु हैं। न द्रव्य हैं, न गुण हैं और न कर्म। फिर हैं क्या बला? यही देखना है। चन्द्र जिस मार्ग से आकाश में भ्रमण करता है वह एक वृत्त है। क्रान्तिवृत्त भी इसी प्रकार का एक वृत्त है। ये दोनों वृत्त परस्पर दो स्थानों पर स्पर्श करते हैं। अथवा स्पर्श करते

हुए प्रतीत होते हैं। ये ही दो बिन्दु राहु और केतु नाम से कहे जाते हैं। जिस बिन्दु को स्पर्श करता हुआ चन्द्र क्रान्ति वृत्त से उत्तर में जाता है वह राहु और जिस बिन्दु को स्पर्श करता हुआ क्रान्तिवृत्त से दक्षिण में जाता है वह केतु है। वास्तव में ये दोनों वृत्त लगभग ९ करोड़ मील से अधिक दूरी पर हैं। कभी २ तो ये १० करोड़ तक पहुँच जाते हैं। ये न कभी स्पर्श करते और न कभी स्पर्श कर ही सकते हैं। किन्तु स्पर्श करते हुए प्रतीत होते हैं। चन्द्रवृत्त हमसे २३८००० मील दूर पर है जब कि सूर्य का वृत्त ९३०००००० मील दूर पर है। अब सोचिए इन दोनों का क्या सम्बन्ध हो सकता है। इन दोनों को मिला हुआ कहना, मानना ऐसा ही है जैसा दस कोस अन्तर पर खड़े हुए दो व्यक्ति परस्पर गले मिल रहे हों। ये ग्रह कैसे? छायाग्रह का क्या अर्थ है? कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानुमती ने कुनबा जोड़ा जैसी लीला यह है। ग्रहों को नौ कहने वाले ज्यौतिष की वर्णमाला भी नहीं जानते।

कुछ लोग कहते हैं कि पूर्वाचार्यों को सब कुछ ज्ञात था किन्तु उन्होंने केवल उन्हीं को गिना जिनका मनुष्य जीवन पर गणनीय प्रभाव पड़ता है। किन्तु प्रश्न यह है कि वे इन ग्रहों से अतिरिक्त अन्य ग्रहों को, जो आज ज्ञात हो चुके हैं जानते थे, इसमें क्या प्रमाण है? जब तक सिद्ध नहीं होगा साध्य कोटि में है। इसलिए मध्यकाल के आचार्यों को केवल पांच ग्रहों का ही पता था इससे अधिक का नहीं। हां यदि खींचातानी से कहना चाहें तो छः ग्रह कहे जा सकते हैं। छठा ग्रह पृथिवी है। किन्तु मध्यकालीन आचार्य पृथिवी को ग्रह मानते नहीं थे। इसलिए नव ग्रह नहीं अपितु पञ्च ग्रह हैं। पाञ्चों भी क्या सृष्टि के आरंभ से हैं अथवा मध्य में उत्पन्न हुए, यह भी विचारणीय है। पहले मंगल ग्रह नहीं था। अब बुध का इतिहास देख लीजिए। अत्रि ऋषि से पूर्व चन्द्र नहीं था। जब चन्द्र नहीं था तो चन्द्र का पुत्र बुध कहां रहेगा। अत्रि रामायणकाल में थे यह आगे प्रतिपादित किया जाएगा। तब जब बुध नहीं था तो ग्रह पांच नहीं थे। अब गुरु की भी गाथा को देखते हैं। ये आङ्गिरस गोत्रोत्पन्न हैं। अङ्गिरा ऋषि से पूर्व के कथमपि नहीं हो सकते। चन्द्र रामायणकाल से परवर्ती है। इसने गुरु की पत्नी से व्यभिचार किया था। इससे यह सिद्ध हो चुका कि गुरु भी रामायणकाल से परवर्ती है। जब गुरु उत्पन्न नहीं हुआ था, तब पञ्च ग्रह भी नहीं थे। शुक्र के चरित्र को देखते हैं। यह भार्गव गोत्रोत्पन्न है। भृगु का समय कौन सा है यह इतिहासकारों को ज्ञात होगा किन्तु यह तो निश्चित है कि भृगु सृष्टि

के आदि में नहीं थे। पृथिवी पर मनुष्यों की उत्पत्ति के पश्चात् के ही हैं। संभव है रामायणकालीन हों अथवा महाभारतकालीन हों। जो भी हो उनसे पूर्व तो शुक्र नहीं था। तब पाँचों में से चार ग्रह थे ही नहीं। अब शनि की कथा पर आते हैं। शनि सूर्य का पुत्र है। आगे चलकर यह सिद्ध किया जाएगा कि सूर्य रामायणकालीन है अतः शनि उससे भी परवर्ती है। शनि से पूर्व पांच ग्रह नहीं थे। यह नव ग्रह वालों की ही मान्यता है। यदि कोई पूर्वोक्त ६ ग्रहों को हठता से मानना ही चाहे और कहे कि ये सब सृष्टि के आरम्भ से हैं तो दुर्जनतोष न्याय से थोड़ा विचार कर लेते हैं। सूर्य सृष्ट्यारंभ से नहीं है। यह भी रामायणकालीन है, इसे आगे सिद्ध किया जाएगा। चन्द्र भी उसी काल का है। राहु भी उसी काल का है। केतु तो प्रसिद्ध ही है कि राहु का शिर है, अतः कोई स्वतन्त्र ग्रह नहीं है। जब ग्रह पांच ही हैं तब नव ग्रह मानकर कही जाने वाली बातें भ्रान्त वा कल्पित हैं। रामायणकाल से पूर्व कोई भी ग्रह नहीं था यही पौराणिकों का अभिप्राय है। यह ग्रहों के इतिहास से स्पष्ट हो जाएगा। अब नवग्रहों के जन्म के सम्बन्ध में विचार करते हैं। इनकी उत्पत्ति का पूर्ण वर्णन करना बहुत कठिन है और निष्प्रयोजन भी तथापि संक्षेप में विचार करते हैं—

ग्रहों की उत्पत्ति। **सूर्य**—प्रभव नामक संवत्सर, माघ शुद्ध सप्तमी, विशाखा नक्षत्र में काश्यप गोत्र और कलिंगदेश में सूर्य का जन्म हुआ[1]। आनन्दाश्रम प्रेस द्वारा प्रकाशित एवं "ले ले शास्त्री द्वारा संशोधित सौर पुराण के ३०वें अध्याय में सूर्य का जन्म दो माताओं से लिखा है। प्रथम जन्म—

विनता जनयामास विख्यातौ गरुडारुणौ ॥ ६ ॥

अर्थ—विनता नामक स्त्री ने कश्यप ऋषि से गरुड और सूर्य नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। द्वितीय जन्म—

कश्यपाददितिर्लेभे भास्करं तेजसाधिकम् ॥ १७ ॥

अर्थ—कश्यप ऋषि से अदिति नाम्नी स्त्री ने तेज को प्राप्त करके सबसे अधिक तेजस्वी भास्कर=सूर्यनामक पुत्र को प्राप्त किया।[2]

समी०—वाह जी, ज्योतिषी जी? आप की विद्या का कोई पारावार नहीं। सूर्य के विना सारे पदार्थ कैसे बन गए? सूर्य के विना पृथिवी कैसे

---

१. नवग्रहाराधनसमीक्षा।
२. नवग्रहसमीक्षा।

बनी? उस पर प्राणी कैसे हुए? पृथिवी के विना कलिंग देश कहां था? वहां कौन रहता था? कैसे रहता था? देश का नाम किसने रखा? काश्यपगोत्र कब से चला। कश्यप नामक गोत्रप्रवर्त्तक इस भूलोक में रहता था अथवा कहीं अन्यत्र? क्या सूर्य की उत्पत्ति से पूर्व ही माघ मास बन गया? जब सूर्य का जन्म ही नहीं हुआ तब दिन, शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष, मास और वर्ष कैसे हुए? सूर्य के विना नक्षत्र का ज्ञान कैसे हुआ? क्यों कि तब चन्द्र प्रकाशहीन होने से दीखता ही नहीं था। किस नक्षत्र पर चन्द्र है, इसका कैसे पता चला? अर्थात् नक्षत्रों की गणना किस आधार पर की? माघ शुक्ला सप्तमी को विशाखा नक्षत्र कैसे आएगा?

पूर्णिमा के समय चन्द्र जिस नक्षत्र वा नक्षत्र के क्षेत्र में होता है वह पौर्णिमा तथा वह मास उसी नक्षत्र के नाम से कहा जाता है। जैसा कि ज्येष्ठा नक्षत्र को लीजिए। पूर्णिमा के समय चन्द्र ज्येष्ठा नक्षत्र पर है तो वह ज्येष्ठ पूर्णिमा कहायेगी और वह मास ज्येष्ठमास कहलायेगा। अश्विनी नक्षत्र से युक्त पौर्णिमा आश्विन पौर्णिमा और आश्विन मास कहलाता है। इसी प्रकार कृत्तिका से कार्तिक, मृगशिरा से मार्गशीर्ष, पुष्य से पौष, मघा से माघ, उत्तरा फाल्गुनी से फाल्गुन, चित्रा से चैत्र, विशाखा से वैशाख, ज्येष्ठा से ज्येष्ठ, पूर्वाषाढा से आषाढ़, श्रवण से श्रावण, पूर्वाभाद्रा से भाद्रपद मास होते हैं। वास्तव में देखें तो चन्द्र और नक्षत्र का कोई सम्बन्ध नहीं है। चन्द्र २३८००० मील दूरी पर है। जब कि ज्येष्ठा नक्षत्र १०२००००००००००००० मील दूरी पर है। इन दोनों का कोई संम्बन्ध नहीं तथापि पृथिवी पर रहने वाले मनुष्यों को संयुक्त के समान दीखते हैं।

माघ शुक्ला सप्तमी के दिन विशाखा नक्षत्र नहीं हो सकता। माघ से पूर्व पौष मास होता है। पौषी पूर्णिमा के दिन पुष्य नक्षत्र का होना सुस्पष्ट है। आगे कृष्ण पक्ष के १५ दिन उससे अगले शुक्ल पक्ष की सप्तमी तक ७ दिन मिलकर २२ दिन होते हैं। इसलिए पुष्य नक्षत्र से लगभग २२वां नक्षत्र क्या होता है यह देखा जाता है। लगभग इसलिए कि एक वा अधिकाधिक दो नक्षत्रों का अन्तर पड़ सकता है। पुष्य के आगे १९वां नक्षत्र रेवती है। उससे आगे के ३ नक्षत्रों को मिलाने से २२ नक्षत्र होंगे। तीसरा नक्षत्र कृत्तिका होता है। अतः माघ शुक्ला सप्तमी के दिन कृत्तिका नक्षत्र अथवा कृत्तिका से अगला वा पिछला नक्षत्र हो सकता है। किन्तु विशाखा नक्षत्र कथमपि नहीं हो सकता। इसके साथ इसको एक अन्य प्रकार से भी समझा जा सकता है। माघ पूर्णिमा के दिन मघा नक्षत्र होता है। शुक्ला सप्तमी को अर्थात् पूर्णिमा

से ८ दिन पूर्व मघा से पूर्व ८वां जो नक्षत्र होगा वही होना चाहिए, वह कृत्तिका है। यदि शुक्ला सप्तमी के दिन विशाखा नक्षत्र होवे तो पूर्णिमा को उससे अगला ८वां नक्षत्र शतभिषक् होगा मघा नहीं हो सकता। अतः यह भूल नहीं ज्यौतिष की नितान्त अनभिज्ञता है। फलित के लिखने वाले लगभग सब ऐसे ही लोग हैं। अथवा ज्योतिषी जी महाराज ने भाँग के मद में लिख दिया होगा। नहीं तो विशाखा नहीं लिख सकते।

विनता से सूर्य का जन्म हुआ अथवा कश्यप और अदिति से? अथवा विनता तथा अदिति दोनों से? क्योंकि आप के लिए असंभव कुछ भी नहीं। सूर्य कहां विनता स्त्री कहां? पृथिवी से १३ लाख गुना बड़े सूर्य का कलिंग देश में और विनता वा अदिति नामक स्त्री से उत्पन्न होना कैसे सम्भव होगा? इस पुराण को बनाने वाले की खोपड़ी है अथवा कद्दू? ऐसी यहाँ असंभव लीला को रचने वाला ज्यौतिषानभिज्ञ तो है ही किन्तु इनको सत्य मानने वाले उनसे विचित्र हैं।

चन्द्र—नन्दन नामक संवत्सर, कार्तिक शु० १४, कृत्तिका नक्षत्र, आत्रेयस गोत्र और यामुन देश में चन्द्र का जन्म हुआ। अत्रि से निकले हुए तेज को दिशाएं नहीं सहन कर सकीं। उन्होंने इस तेज को समुद्र के ऊपर डाल दिया। ब्रह्मा ने उसको पुरुषरूप दिया। देवताओं ने जब सोममन्त्र से प्रार्थना की तब वह चन्द्र बन गया। ऐसा मत्स्यपुराण में है। अत्रि का वीर्यवायु के स्पर्श से तीन भागों में विभक्त होकर अत्रि के नेत्र में गिरा उसमें से चन्द्र का जन्म हुआ, यह मार्कण्डेय पुराण का कथन है। क्षीर-समुद्र के मथन से उत्पन्न हुआ है ऐसा महाभारत आदि में है।[1]

"जातस्यासीत्सुतो भ्रातुरत्रिपितृसमो गुणैः।
तस्य दृग्भ्यो ऽभवत्पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल॥

भा० पु० ६। १४। ३॥

अर्थ—अत्रि के नेत्रों से अमृतमय चन्द्र उत्पन्न हुआ।

लक्ष्मीभ्राता शीतरश्मिः जातश्च सुधया ततः॥

पद्मपुराण ब्रह्मखण्ड ३ अध्याय, ६३ श्लोक॥

अर्थ—लक्ष्मी के पश्चात् उसका भ्राता चन्द्र उत्पन्न हुआ।

अनसूया तु सुषुवे क्रमात्पुत्रत्रयं द्विजाः।
दत्तात्रेयं चन्द्रमसं तथा दुर्वाससं मुनिम्॥
आत्रेया इति ते ख्याता॥ सौ० पु० ३०। २३,२४॥

१. न० आ० स०।

अर्थ—अत्रि ऋषि द्वारा अनसूया में चन्द्र उत्पन्न हुआ•।

चन्द्र ने बृहस्पति की पत्नी तारा से सम्भोग किया उससे बुध नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। तारा अपने गुरु बृहस्पति की स्त्री होने के कारण गुरु शिष्य में बड़ा झगड़ा हुआ। अन्त में देवसभा ने अपने राजा चन्द्रमा के पक्ष में अपना निर्णय दिया। भा० पु० ६। १४॥

बुध जैसे पुत्र की उत्पत्ति से चन्द्र प्रसन्न होकर आकाश में उड़ गया। तब से आकाश में है।

समी०—यह है चन्द्र की जन्म कथा। यहां छः प्रकार का जन्म कहा गया है। परन्तु एक से एक नहीं मिलता। किसका सत्य माना जाए और किसका असत्य? २१६० मील व्यास, ६८८५ मील परिधिवाला इतना बड़ा पिण्ड छोटे से मनुष्य के गर्भ में कैसे समायेगा? क्या चन्द्र कोई चेतन है? अब तो वैज्ञानिक चन्द्रमा पर हो आए वह तो ऊँची नीची, निर्जन, जड़ और भूमि है, जहां पर प्राणी के होने की संभावना ही अतिन्यून है। क्या मनुष्यों से बड़े २ लोक उत्पन्न हो सकते हैं? इसको कोई बुद्धिमान् मान सकता है? क्या यह लेख बुद्धिमानों का हो सकता है? ऐसे लेख को लिखने वा मानने वाले क्या ज्यौतिषी हो सकते हैं? यामुन देश कौन सा है जिसमें चन्द्र का जन्म हुआ? यह इसी पृथिवी पर है अथवा अन्य किसी लोक में है? भोले लोगो! जब चन्द्रमा ही नहीं तो चैत्रादि मास कैसे हुए और किस से गिनते रहे? कार्तिक मास कैसे बना? अकस्मात् शुक्ला चतुर्दशी कैसे हुई? चन्द्र के विना तिथियां कैसे गिनी गईं? क्या मुसलमानों के खुदा के जैसे तो नहीं कि कुन कहते ही बन गया हो? कृत्तिका नक्षत्र कैसे गिना? आत्रेयस गोत्र कैसे हुआ? क्योंकि **"अपत्यं पौत्रप्रभृतिगोत्रम्"** के अनुसार पुत्र से लेकर गोत्र नहीं चलता अपितु पौत्र से चलता है। यह भूल कैसे हुई? तारा भी स्त्री और चन्द्र भी स्त्री। दोनों स्त्रियों के सम्पर्क से क्या सन्तान हो सकती है? आकाश में उड़ जाने से पूर्व चन्द्र कहां पर था?

मंगल—अक्षय नामक संवत्सर, वैशाख कृ० २, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में अवन्ती देश और भारद्वाजस गोत्र में मंगल उत्पन्न हुआ। गुरु ने अपने छोटे भाई उतथ्य की गर्भवती पत्नी तब से मोहित हो सम्पर्क किया तो गर्भस्थ शिशु ने पैर आडा रख दिया जिससे वीर्य भूमि पर गिर गया और उससे शिशु बन गया। तब गुरु और भाई की पत्नी के, परस्पर 'उस बच्चे को

• न० अ० स०

तुम रखो,' 'तुम रखो,' ऐसा कहने के कारण उसका नाम भारद्वाज हुआ ।•

समी०—मङ्गल को भूमिज, कुज आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। भूमिज और कुज का अर्थ "पृथिवी से उत्पन्न" होता है। पृथिवी मंगल की माता है अथवा पिता ? यदि माता है तो पिता कौन ? पृथिवी स्त्री है वा पुरुष और कैसे ? पृथिवी के किस भाग से और कब उत्पन्न हुआ ? जब उत्पन्न हुआ तब मंगल ग्रह कहां था और कितना था ? आप धन्य हो, जो कि वर्ष, मासों तक गिनकर रख दिया। किसी वैज्ञानिक को इतना पता नहीं होगा जितना आपको। क्योंकि ज्योतिर्वित् तो कहते हैं कि ग्रहों के उत्पन्न होने में दिन, मास, वर्ष नहीं लाखों वर्ष लग जाते हैं। वैशाख कृ० २ को पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र होता ही नहीं। अवन्ति एक छोटा सा देश है उ में मंगल का जन्म कैसे हुआ ? क्या अवन्ति देश में पृथिवी रहती है ? अवन्ति देश हो तो पृथिवी हो और पृथिवी हो तो अवन्ति देश हो, यह इतरेतराश्रय हुआ। आश्चर्य है इन बातों को लिखने तथा मानने वालों पर ! चिउंटी जैसे अवन्ति देश में हाथी जैसा मंगल उत्पन्न हुआ। भारद्वाज गोत्र की कथा लिखने वाले को तनिक भी लज्जा नहीं आई ?

बुध—यह सौम्य नामक संवत्सर, भाद्रपद शुक्ला ११ के दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र, में आत्रेयस गोत्र में और मगध देश में उत्पन्न हुआ। इसकी उत्पत्ति चन्द्र से तारा में हुई।

समी०—बुध की माता-पिता का पूरा पता ही नहीं कि कौन २ हैं। तारा नामक कोई ग्रह वा नक्षत्रादि नहीं है जो बृहस्पति की पत्नी हो और बुध की जननी भी। यदि हो तो बताइए ? यदि अब नहीं तो पहले भी नहीं थी। यदि थी तो कब थी ? अब कहीं गई वा मर गई ? राई के समान पति उससे दस सहस्र गुणित पत्नी और सफेद चने जितनी सन्तान अद्भुत है यह ज्यौतिष शास्त्र ! मगध देश में कैसे जन्मा ? चन्द्र तो यामुन देश का अधिपति था। बृहस्पति सिन्ध देश का अधिपति। तो उसकी स्त्री भी वहीं रहती होगी। मगध देश में बुध कैसे उत्पन्न हुआ ? भाद्रपद शु० ११ के दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र नहीं होता। इतनी बड़ी भूल ?

गुरु—सौम्य संवत्सर, आश्वयुज शु० १२ के दिन धनिष्ठा नक्षत्र, आंगिरस गोत्र. और सिन्धु द्वीप में बृहस्पति का जन्म हुआ।[२]

समी०—सिन्धु पृथिवी पर एक छोटा सा द्वीप है। उसमें सम्पूर्ण

• आ० स०

पृथ्वी से भी १३०० गुणा बड़े बृहस्पति का जन्म कैसे हो सकता है ? जब बृहस्पति ही नहीं था तो प्रभवादि वर्ष किससे गिनते रहे ? जैसे बाइबिल में लिखा है और ईसाई मानते हैं कि परमात्मा ने चौथे दिन सूर्य को बनाया है वैसे तो नहीं ? आश्वयुज शु० १२ के दिन धनिष्ठा नक्षत्र लिखने वाला ज्यौतिष विद्या को क्या जाने ? जब चन्द्र (शिष्य) ने बृहस्पति की पत्नी से व्यभिचार किया होगा तो चन्द्र से कई सहस्र गुणा बड़े दीर्घकाय गुरु ने चन्द्र को क्यों नहीं मार डाला ? अपने अन्य शिष्यों के पास क्यों गया ? गुरु के शिष्य भी विचित्र हैं जो कि उन्होंने गुरु तुल्य गुरुपत्नीगामी चन्द्र के पक्ष में अपना निर्णय दिया। देवसभा क्या है, अन्धेर नगरी और गबरगण्ड राजा।

शुक्र—मन्मथ नामक संवत्सर, श्रावण शु० १० के दिन पुष्य नक्षत्र, भार्गव गोत्र और कांभोज देश में शुक्र का जन्म हुआ।•

भृगोः सकाशादभवच्छुक्रो दैत्यगुरुर्महान् ॥२१॥ सौ० पु० ३०॥

अर्थ—भृगु ऋषि से शुक्र उत्पन्न हुआ। शुक्र ने संजीवनी विद्या को प्राप्त कर अपने शिष्यों को देवदानव युद्ध में अमर किया।[२] बलि के वामन को तीन पग भूमि देने पर पानी हाथ में लेकर छोड़ते समय मध्य में शुक्र आया तब वामन ने दर्भ को आंख में चुभो दिया तो शुक्र एकाक्षी हुआ।•

समी०—यदि भृगु से जन्मा तो भार्गव गोत्र कैसे हुआ ? कांभोज देश तो पृथिवी पर है तो शुक्र ने पृथिवी पर ही जन्म लिया। शुक्र तो लगभग पृथिवी के समान बड़ा है तो इसके माता-पिता भी इसी जाति के होंगे तो ऐसे व्यक्ति का पैर भी कांभोज में नहीं आ सकता। श्रावण शु० १० के दिन पुष्य नक्षत्र होता ही नहीं। कोई इसे सत्य मानता हो तो सिद्ध करके बतलावें। संजीवनी विद्या कौन सी है ? किसको ज्ञात है ?

शनि—विकारि नामक संवत्सर, मार्गशीर्ष कृ० ६ के दिन, रोहिणी नक्षत्र, काश्यप गोत्र सौराष्ट्र में शनि का जन्म हुआ।[१] और सौरपुराण ३०। २८-३० के अनुसार सूर्य से छाया नामक पत्नी में जन्म हुआ।[२]

समी०—छायानामक कोई स्त्री है अथवा छाया है ? क्या वह सूर्य के समान बड़ी है अथवा छोटी ? सूर्य की और छाया की एक ही जाति है वा भिन्न २ जाति ? छाया द्रव्य है अथवा गुण है कि वा कर्म ? छाया और

• ना० आ० स० २. न० ग्र० स०

सूर्य के मिलने से शनि उत्पन्न हुआ अथवा विना मिले ही और कैसे ? छाया कहां रहती है ? सौराष्ट्र में अथवा अन्यत्र ? सौराष्ट्र में शनि का जन्म हुआ तब कुछ वर्षों तक तो सौराष्ट्र में ही निवास करता रहा होगा। पृथिवी से लगभग एक सहस्र गुना बड़ा शनि पृथिवी के एक छोटे से भाग पर कैसे समा सकता है ? मार्गशीर्ष कृ० ६ के दिन रोहिणी नक्षत्र होता ही नहीं। यह प्रमादियों का लेख है।

राहु०—राक्षस नामक संवत्सर, माघ कृ० १४ के दिन आश्लेषा नामक नक्षत्र, पैठीनस नामक गोत्र और बर्बर देश में राहु उत्पन्न हुआ।[1]

तारश्च शम्बरश्चैव कपिलः शङ्करस्तथा।
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च बाणस्यैते सुताः द्विजाः ॥ सौ० पु० ३० । ६, ७ ॥

अर्थ—सिंहका के गर्भ से बाणासुर के तार, शम्बर, कपिल, शङ्कर, राहु तथा वृषपर्वा नामक छः पुत्र उत्पन्न हुए, नानकों के पक्ष से राहु चन्द्र की मौसी का पुत्र था।[2]

समी०—राहु कोई द्रव्य नहीं। इसलिए यह सारा झूठ है। वन्ध्या के पुत्र के दर्शन करने के समान है। माघ कृ० १४ के दिन आश्लेषा नक्षत्र का होना सर्वथा असंभव है।

केतु—पार्थिव नामक संवत्सर, फाल्गुन पूर्णिमा के दिन अभिजित् नक्षत्र, पैठीनस गोत्र, और अन्तर्वेदि देश में केतु ने जन्म लिया।• जैसे कि पूर्वत्र लिखा जा चुका है कि विष्णु ने राहु का शिर काट डाला। धड़ से अलग हुआ सर ही केतु है। पद्म० पु० ब्रह्मखण्ड १८-२१ ॥

समी०—क्या विना धड़ के शिर और विना शिर के धड़ जीवित रह सकता है ? यदि कोई इसको सत्य मानता हो तो शिर धड़ से अलग करके जीवित दिखावें। यदि उसका शिर वा धड़ जीवित रहता हो, चलता फिरता हो, तो केतु को सत्य माना जाए। यदि नहीं तो राहु केतु भी नहीं रह सकते। फाल्गुनी नक्षत्र से युक्त पौर्णिमा को फाल्गुनी पौर्णिमा कहते हैं। यह साधारण सी बात है। किन्तु इसके लिखने वाले को इस बात का पता नहीं 'मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी' मुख है इसलिए कहना चाहिए कि हरड़ दश हाथ लम्बी होती है के अनुसार फाल्गुनी पौर्णिमा के दिन अभिजित नक्षत्र लिखा है ऐसी पुस्तक लिखने वाले को ज्यौतिष विद्या नहीं आती है ? इस पुस्तक को पढ़ने वाले को ज्यौतिष समझ में नहीं आ सकता।

• न० आ० स० २. न० ग्र० स०

ग्रहों का उत्पत्ति काल—ग्रहों को उत्पन्न हुए कितना काल हुआ यह भी विचारणीय है। प्रभवादि वर्षों में सूर्यादि की उत्पत्ति हुई। इन वर्षों की गणना सहस्रों वर्षों की होगी। लाखों वर्षों की नहीं हो सकती। यदि पूर्व पक्ष को इतने से सन्तोष न हो तो दूसरी पद्धति का अवलम्बन कर सकते हैं। जैसा कि ऊपर लिखा है ये सारे ग्रह भिन्न २ गोत्रों में उत्पन्न हैं। अब गोत्रों को देखते हैं। सभी गोत्रों के मूल पुरुषों का जैसा इतिहास मिलता है उसी के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि इनकी उत्पत्ति को होकर कितने वर्ष व्यतीत हुए। पौराणिक इतिहास से यह स्पष्ट है कि अत्रि, वसिष्ठ, भारद्वाज आदि ऋषि राजा दशरथ वा रामचन्द्र जी के समय में विद्यमान थे। महर्षि वसिष्ठ ने राम को बाल्य में शिक्षा दी थी। रामचन्द्रजी के वन गमनानन्तर भरत के अयोध्या आगमन तक दशरथ के राज्य को संभालते थे। वनवास के समय ऋषिवर अत्रि की पत्नी अनसूया का सीता को उपदेश देना प्रसिद्ध ही है। श्रीराम अत्रि के दर्शनार्थ गए। भारद्वाज आश्रम में रहे। चन्द्र की उत्पत्ति के साथ रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण और शूर्पणखा का जन्मादि सौर पुराण ३०। १६ में लिखा है—

कुबेरो देववर्णिन्यां केकस्यां रावणस्तथा।
कुम्भकर्णः शूर्पणखा तथैव च विभीषणः ॥

अर्थात्—जिस काल में बाणासुर से राहु और विनता से गरुड़ तथा सूर्य पैदा हुए, उसी काल में देववर्णिनी तथा कैकसी नाम की स्त्री से पुलस्त्य गोत्रज कुबेर ने कुम्भकर्ण, रावण, विभीषण तथा शूर्पणखा को जन्म दिया। इन से पूछना चाहिए कि सूर्य ही नहीं तो पृथिवी, मनुष्यादि कैसे हुए ? इस मे स्पष्ट है कि ये चन्द्र, मंगल और बुध आदि ग्रहों का इन ऋषियों के पश्चात् उत्पन्न होना मानते हैं। ये ऋषि श्रीराम के काल में अर्थात् लगभग ९ लाख वर्ष पूर्व हुए। इससे यह स्पष्ट हुआ कि दस लाख से अधिक वर्ष पूर्व इनकी दृष्टि में ये नवग्रह थे ही नहीं। परन्तु वैदिक मान्यता यह है कि सृष्टि को होकर लगभग दो अरब वर्ष हुए। ग्रहों को उत्पन्न होकर आज के रूप में आने में करोड़ों वर्ष लग गए हैं। दस लाख वर्षों में तो ऐसे स्वरूप को प्राप्त कर ही नहीं सकते यह सुनिश्चित है। यदि हम आधुनिक वैज्ञानिकों की सम्मति लेना चाहें तो वे कहते हैं कि सृष्टि को होकर लगभग चार अरब वर्ष व्यतीत हुए हैं। यह मत अभी विचारणीय है तथापि पौराणिक फलित दुर्ग को ध्वस्त करने के लिए दिया है।

अधिपति—नवग्रहाराधन समीक्षा पुस्तक में उद्धरण दिए गए हैं कि

सूर्य कलिंग देश का, चन्द्र यामुन देश का, मंगल अवन्ति देश का, बुध मगध देश का, बृहस्पति सिन्धु द्वीप का, शुक्र कांभोज का, शनि सौराष्ट्र का, राहु बर्बर का और केतु अन्तर्वेदि का अधिपति है। सूर्य सिंह राशि का, चन्द्र कर्क राशि का, मंगल मेष तथा वृश्चिक राशि का, बुध कन्या तथा मिथुन का, गुरु धनुष् तथा मीन का शुक्र वृषभ तथा तुलाराशि का और शनि मकर वा कुम्भराशि का अधिपति है। राहु और केतु को धक्का मिल गया।

समी०—अधिपति का क्या अर्थ है? किस विषय का अधिपति है। जैसा चन्द्र को लीजिए—चन्द्र यामुन देश का अधिपति है और कर्कराशि का भी। चन्द्र यामुन देश में क्या करता है? सूर्य, चन्द्र आदि जिस मार्ग से भ्रमण करते हैं उस वृत्त को १२ भागों में बांट दिया। एक २ का नाम राशि रख दिया। इस प्रकार राशियों के मेषादि नाम हुए। सम्पूर्ण विश्व १२ भागों में विभक्त हुआ। इस क्षेत्र में अनन्त दूरी तक जो भी लोक हैं वे सब इसी राशि में माने जाते हैं। इस सृष्टि के विषय में वैज्ञानिकों का कथन है ५ अरब प्रकाश वर्ष दूर तक के तारे दूरवीक्षण यन्त्रों से देखे जा रहे हैं। इन लोकों की संख्या नहीं गिनी जा सकती। कितने उपग्रह, पुच्छल तारे, नक्षत्र और नीहारिकाएं हैं इनको गिनना कठिन है। क्या कर्कराशि के अन्तर्गत आने वाले इन सब का यह छोटा सा चन्द्र अधिपति है? किस प्रकार अधिपति है? अधिपति बनकर क्या काम करता है? लंका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि देश वा भूभागों वा भारत के शेष भागों का कोई अधिपति क्यों नहीं है? ये राज्य क्यों अराजक हैं? अथवा कोई अधिपति बनना ही नहीं चाहता? इसी प्रकार अन्य ग्रहों के अधिपतित्व की समीक्षा समझें। इन ग्रहों के रंग अधिदेवता तथा प्रत्यधिदेवता की इसीप्रकार की कल्पना कर रखी है। इनकी भी समीक्षा आवश्यक है तथापि उनको यहां नहीं लिखा जाता। अधिपति के सम्बन्ध में जो समीक्षा है उससे इसकी भी समीक्षा समझ लेवें।

क्रूरमृदुस्त्रीपुरुषब्राह्मणादि वर्णविषय—सूर्य, शनि, कुज, राहु और केतु क्रूर ग्रह हैं और गुरु, शुक्र, बुध, चन्द्र सौम्य हैं। लिखा है कि रवि कुज गुरु पुरुष हैं। राहु चन्द्र शुक्र स्त्रियां हैं। बुध शनि केतु नपुंसक है। गुरुशुक्र ब्राह्मण हैं। रविकुज क्षत्रिय हैं। चन्द्रबुध वैश्य हैं और शनि शूद्र है। भुवनदीपिका नामक पुस्तक में शनि को म्लेच्छ बुध को शूद्र लिखा है।

समी०—जड़ पदार्थों में क्रूरता और सौम्यता कैसे होती है? क्या ये मनुष्य हैं वा पशु पक्ष्यादि हैं जो क्रूर तथा सौम्य कहे जा सकें? इनकी क्रूरता और सौम्यता का पता कैसे चला और किसको चला? पुं० स्त्री नपुंसक

का लक्षण क्या है। कौन सा ग्रह पुरुष है कौन सा स्त्री है इत्यादि का पता कैसे चला? वे यहां आकर दिखा गए अथवा फलित वालों ने उनके पास जाकर देखा? इनका कभी विवाह हुआ है? यदि नहीं हुआ तो क्यों? यदि हुआ है तो किसका किसके साथ और कब? इनकी सन्तान हुई है वा नहीं? यदि नहीं तो क्यों? यदि हुई हो तो कौनसी और कहां रहती है? ये ग्रह कब २ और कहां २ मिलते हैं? इसमें कौन से प्रमाण हैं? क्या यही फलित है और ज्यौतिष भी? यदि इसी को फलित कहते हों तो यह ज्यौतिष से विरुद्ध क्यों है? यदि चन्द्र वैश्य है तो चन्द्रवंशीय क्षत्रिय का मूल पुरुष वैश्य कैसे? सूर्य क्षत्रिय है। तुम्हारी वर्णव्यवस्था जन्म से होती है तो सूर्य पुत्र शनि शूद्र कैसा? आपने इससे तो स्वीकार कर लिया कि वर्णव्यवस्था गुण कर्म-स्वभाव से ही होती है जन्म से नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के क्या २ लक्षण हैं? क्या ग्रहों की भी वर्णव्यवस्था होती है? क्या जड़ पदार्थ ब्राह्मणादि हो सकते हैं?

ऋग्वेदप्रभृतीश्वरा गुरु भृगुक्ष्मापुत्र सौम्याः··· ॥ कालामृत

गुरु ऋग्वेद का, शुक्र यजुर्वेद का, मंगल सामवेद का और बुध अथर्ववेद का अधिपति है। यह समझ में नहीं आता कि अधिपति का क्या अर्थ है और क्या प्रयोजन है? क्या जड़ पदार्थ वेद को समझते हैं? जड़पदार्थ विद्या को न जानते न जान सकते। किन्तु यह बात जड़ बुद्धियों को समझने में नहीं आ सकती।

जैसा मनुष्यादि चेतन प्राणियों में शत्रु, मित्र और समभाव होता है, वैसा ग्रहों में भी कल्पित कर लिया।

ग्रह	मित्र	शत्रु	सम
रवि	चन्द्र, कुज, गुरु	शनि, शुक्र	बुध
चन्द्र	सूर्य, बुध	——	कुज, गुरु, शनि, शुक्र
मंगल	गुरु, चन्द्र, सूर्य	बुध	शुक्र, शनि
बुध	सूर्य, शुक्र	चन्द्र	कुज, गुरु, शनि
गुरु	रवि, चन्द्र, कुज	बुध, शुक्र	शनि
शुक्र	बुध, शनि	रवि, चन्द्र (मंगल)	(मंगल) गुरु
शनि	बुध, शुक्र	रवि, चन्द्र, कुज	गुरु

मुहूर्तदर्पण में मङ्गल को शुक्र का शत्रु लिखा है किन्तु "कालामृत" में सम लिखा है।

समी०—ये कब से मित्र शत्रु सम हैं? इनके मित्र शत्रु सम होने में आधार=कारण क्या हैं? जब से ये जन्मे हैं तब ही से अथवा कालान्तर में निमित्तों से हुए? यदि जन्म से हैं तो सहज वैरी हुए जैसे कि सर्प और नेवला। जैसा सर्प का नेवला शत्रु है वैसे ही नेवले का शत्रु सर्प भी है। ऐसा नहीं हो सकता कि सर्प का नेवला मित्र हो अथवा नेवले का सर्प मित्र। किन्तु इस प्रकार ग्रहों में नहीं दीखता। उदाहरण के लिए बुध और चन्द्र को लीजिए। चन्द्र का बुध मित्र है किन्तु बुध का चन्द्र शत्रु है। लोक में कहीं यह नहीं हो सकता कि देवदत्त यज्ञदत्त का मित्र हो और यज्ञदत्त देवदत्त का सम हो अथवा यज्ञदत्त देवदत्त का मित्र हो और देवदत्त यज्ञदत्त का सम हो। किं वा देवदत्त यज्ञदत्त का शत्रु हो और यज्ञदत्त देवदत्त का सम हो अथवा यज्ञदत्त देवदत्त का शत्रु हो, देवदत्त यज्ञदत्त का सम हो। परन्तु ग्रहों में ऐसा है। जैसा कि चन्द्र और मंगल को लीजिए। चन्द्र मंगल का मित्र है परन्तु मंगल चन्द्र का सम है तथा बुध मंगल का शत्रु है किन्तु मंगल बुध का सम है। यदि मित्र शत्रु भाव स्वाभाविक नहीं तो कालान्तर में तथा कारणों से हुआ होगा। विचारने पर यह सिद्ध होता है कि यह पक्ष भी नहीं है। क्योंकि व्यवहार से ही शत्रु मित्र होते हैं अकारण नहीं। ऐसा नहीं हो सकता कि एक के दो शत्रु हों। उनमें से एक उसके प्रति शत्रुता रखता हो और दूसरा समभाव। किन्तु ग्रहों में ऐसा ही है। लीजिए एक उदाहरण गुरु का; बुध और शुक्र का। गुरु के दोनों बुध शुक्र शत्रु हैं। किन्तु बुध गुरु के प्रति समभाव रखता है वही बुध मंगल का शत्रु है जब कि मंगल बुध का सम है। यह मित्र शत्रुभाव प्रत्यक्ष विरुद्ध, विज्ञान विरुद्ध और शास्त्र विरुद्ध है। जब गुरु का बुध शत्रु है तो बुध का गुरु शत्रु क्यों नहीं? जब चन्द्र ने गुरु की पत्नी से व्यभिचार किया, तब गुरु ने देवों के समक्ष अपना रोना रोया। देवों ने चन्द्र के पक्ष में निर्णय दिया। ऐसा चन्द्रगुरु का शत्रु कैसा और गुरु चन्द्र के प्रति सम कैसा मित्र शत्रुभाव उपकार अपकार के विना कैसे हुआ? यदि अकारण है तो प्रमाण दीजिए। यदि प्रमाण नहीं तो अप्रामाणिक है। यदि सकारण है तो सिद्ध कीजिए कि गुरु का चन्द्र मित्र कैसा? क्या ये दोनों कभी मिलते हैं वा पत्रव्यवहार होता है? इनकी मित्रता दूरभाष से हुई अथवा किसी अन्यप्रकार से ३८, ८५ करोड़ मील दूरी पर रहने वाले गुरु का यह चन्द्र मित्र कैसा? विचारे गुरु को उपग्रह चन्द्र का कभी दर्शन भी नहीं होता होगा। शनि को कभी चन्द्र का दर्शन ही नहीं होता, यह भी पता नहीं कि चन्द्र कैसा होता है उस शनि का चन्द्र क्यों शत्रु बन गया? चन्द्र ने शनि का क्या बिगाड़ दिया? अथवा शनि ने चन्द्र का क्या बिगाड़ा किसी ने किसी का भी न उपकार ही किया न अपकार ही। न कर ही सकते हैं किन्तु यह सारी ज्यौतिष वेषधारियों की मनोरंजन करने की, पेट भरने की, और भोले लोगों को ठगने की क्रीडा है। जैसे ये मनुष्यों को शत्रु मित्र बनाते रहते हैं; वैर विरोध लड़ाई झगड़ा कराते रहते हैं वैसे ग्रहों को क्यों नहीं बनाते?

प्रश्न—शत्रुमित्रादि शब्दों के द्वारा ग्रहों के द्वारा मनुष्यों पर होने वाले प्रभाव को बतलाया जाता है। क्या ग्रहों का फल नहीं होता?

उत्तर—जब प्रभाव को आपने सिद्ध ही नहीं किया तो सिद्ध कैसे हुआ? साध्य कोटि में है। "जैसा पोप लीला का है वैसा नहीं किन्तु जैसा सूर्य चन्द्रमा की किरण द्वारा उष्णता शीतता अथवा ऋतुवत्काल चक्र के सम्बन्धमात्र से अपनी प्रकृति के अनुकूल प्रतिकूल सुख दुःख के निमित्त होते हैं परन्तु जो पोपलीला वाले कहते हैं, "सुनो महाराज सेठ जी! यजमानो तुम्हारे आज आठवां चन्द्र सूर्यादि क्रूर घर में आए हैं। अढ़ाई वर्ष का शनैश्चर पग में आया है। तुम को बड़ा विघ्न होगा। घर द्वार छुड़ाकर परदेश में घुमावेगा। परन्तु जो तुम ग्रहों का दान, जप, पाठ, पूजा कराओगे तो दुःख से बचोगे" हमको सूर्यादि ग्रहों की प्रसन्नता अप्रसन्नता प्रत्यक्ष दिखलाओ। जिसको आठवां सूर्य, चन्द्र और दूसरे को तीसरा[1] हो दोनों को ज्येष्ठ महीने में विना जूता पहिने तपी हुई भूमि पर चलाओ। जिस पर प्रसन्न हैं उनके पग, शरीर न जलने और जिस पर क्रोधित हैं उनके जल जाने चाहिए तथा पौष मास में दोनों को नंगे कर पौर्णमासी की रात्रि भर मैदान में रखें। एक को शीत लगे दूसरे को नहीं तो जानो कि ग्रह क्रूर और सौम्यदृष्टि वाले होते हैं और क्या तुम्हारे ग्रह सम्बन्धी हैं? और तुम्हारी डाक वा तार उनके पास आती जाती है? अथवा तुम उनके वा वे तुम्हारे पास आते जाते हैं? ......सच तो यह है कि सूर्यादि लोक जड़ हैं। वे न किसी को दुःख और न सुख देने की चेष्टा कर सकते हैं किन्तु जितने तुम ग्रहदानोपजीवी हो वे सब तुम ग्रहों की मूर्तियाँ हो क्योंकि ग्रह शब्द का अर्थ तुममें ही घटित होता है। "ये गृह्णन्ति ते ग्रहाः" जो ग्रहण करते हैं उनका नाम ग्रह है। जब तक तुम्हारे चरण राजा, रईस, सेठ, साहूकार और दरिद्रों के पास नहीं पहुँचते तब तक किसी को नवग्रह का स्मरण भी नहीं होता। जब तुम साक्षात् सूर्य शनैश्चरादि मूर्तिमान् क्रूर रूप धर उन पर जा चढ़ते हो तब विना ग्रहण

१. एक मनुष्य के आठवें भाव में सूर्य चन्द्र और अन्य के तीसरे भाव में हों।

किए उनको कभी नहीं छोड़ते और जो कोई तुम्हारे ग्रास में न आवे उसकी निन्दा नास्तिकादि शब्दों से करते फिरते हो।

पोप जी—देखो ज्योतिष् का प्रत्यक्ष फल। आकाश में रहने वाले सूर्य चन्द्र और राहुकेतु के संयोगरूप ग्रहण को पहले ही कह देते हैं। जैसे यह प्रत्यक्ष होता है वैसे ग्रहों का भी फल प्रत्यक्ष हो जाता है। देखो धनाढ्य, दरिद्र, राजा, रङ्क, सुखी, दुःखी ग्रहों ही से होते हैं ?

सत्यवादी—जो यह ग्रहण रूप प्रत्यक्ष फल है सो गणित विद्या का है फलित का नहीं। जो गणित विद्या है वह सच्ची, और फलित विद्या स्वाभाविक सम्बन्ध जन्य को छोड़के झूठी है। जैसे अनुलोम, प्रतिलोम, घूमने वाले पृथिवी और चन्द्र के गणित से स्पष्ट विदित होता है कि अमुक समय अमुक देश अमुक अवयव में सूर्य वा चन्द्र ग्रहण होगा······जो धनाढ्य, दरिद्र प्रजा, राजा-रङ्क होते हैं, वे अपने कर्मों से होते हैं ग्रहों से नहीं। बहुत से ज्योतिषी लोग अपने लड़का लड़की का विवाह ग्रहों की गणितविद्या के अनुसार करते हैं[1]। पुनः उनमें विरोध वा विधवा अथवा मृतस्त्रीक पुरुष हो जाता है। जो फल सच्चा होता तो ऐसा क्यों होता ? इसलिए कर्म की गति सच्ची और ग्रहों की गति सुख-दुःख भोग में कारण नहीं। भला ग्रह आकाश में और पृथिवी भी आकाश में बहुत दूर २ पर हैं इनका सम्बन्ध कर्त्ता और कर्मों के साथ साक्षात् नहीं। कर्म और कर्म के फल का कर्त्ता भोक्ता जीव और कर्मों के फल भोगाने हारा परमात्मा है···।

स० प्र० ११ समु०

······कहिए, ज्योतिर्वित् जैसी यह पृथिवी जड़ है वैसे ही सूर्यादि लोक हैं। वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते। क्या वे चेतन हैं जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होके सुख दे सकें······॥ २ समु०

प्र०—संसार भर के प्रायः अधिकांश भूभाग पर यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि ज्योतिष शास्त्र में फल ज्योतिष का विषय बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथा मनुष्य जाति के लिए परमोपयोगी शास्त्र है।

उत्तर—आपने इसको फलित ज्यौतिष कहा है। यह साध्य है। वास्तव में यह ज्यौतिष नहीं है। ज्यौतिष का कोई भी लक्षण इसमें नहीं है। यह पहले समुल्लास में सिद्ध किया जा चुका है। वहीं देख लेवें। तथाकथित फलित कल्पित है और मिथ्या है यह भी सिद्ध किया जा चुका है।

१. यह कोई विद्या नहीं किन्तु पूर्वपक्ष वाले इसको विद्या मानते हैं। उनकी दृष्टि से इसे विद्या मानकर कहा गया है।

प्रश्न—ग्रहण के समय जन्म लेने वाले बालकों के हाथ, पैर, नाक आदि में वक्रता आदि साक्षात् देखे जाते हैं। ओष्ठ फटे हुए होते हैं मानो चीर दिया हो। क्या इन सबके होते हुए आप सूर्यचन्द्रादि के प्रभाव का निषेध कर सकते हैं ?

उत्तर—यह आपका कथन अपढ़ लोगों में बद्धमूल रूप में देखने में आता है, इसमें कोई सन्देह नहीं तथापि यह परीक्षण का विषय है; साध्य है, सिद्ध नहीं। पाश्चात्य पद्धति से चिकित्सा करने वालों का भी यही मत है कि ग्रहण का इन बातों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। मैंने चरक सुश्रुतादि ग्रन्थों में जितना अध्ययन किया उनमें ऐसी बात मेरी दृष्टि में नहीं आई। यदि कथञ्चित् मान भी लेवें कि ग्रहण का प्रभाव होता है तो यह माना जा सकता है कि शारीरिक प्रभाव होता है किन्तु उसके साथ यह भी ध्यान में रखने योग्य बात है कि ग्रहण के समय पृथिवी पर जितने शिशु जन्म लेते हैं उन सब पर एक समान प्रभाव होता है। ऐसा नहीं कि किसी पर होवे और किसी पर न होवे। इन ग्रहों का निर्माण किन पदार्थों से हुआ है; उनका पृथिवी का परस्पर क्या सम्बन्ध है; आकर्षण आदि का क्या २ परिणाम होता है। इसका ज्ञान ज्यौतिषविद्या तथा पदार्थविद्या के पढ़ने से होता है, हो सकता है किन्तु नवग्रह-पूजा-पुस्तकों से नहीं। यदि कोई इस बात को सत्य नहीं माने तो हम पूछना चाहेंगे, उनको उत्तर देना होगा। वे यह बतलावें कि नवग्रहों की पुस्तकों के आधार पर शनि किन २ पदार्थों के मिश्रण से बना है। फलित मानने वालों के पास ऐसा कोई उपाय नहीं जिससे जान लेते कि भावी जन्म लेने वाला बालक ग्रहण के समय में जन्म लेगा और उस अनिष्ट से बचने के लिए कुछ पूर्व चिकित्सा ही प्रारंभ करते। खेद है आपके फलित पर जिसको मानकर बड़ी २ प्रतिज्ञाएं कर बैठते हैं किन्तु यह नहीं जान सकते कि शिशु कब जन्म लेगा; ग्रहण से पूर्व वा पश्चात् अथवा ग्रहण के समय पर। आप उन शिशुओं के कटे ओष्ठ ग्रह-शान्ति, ग्रहदान, पूजा पाठ आदि से क्यों नहीं जोड़ते ? ज्यौतिष से अनभिज्ञ ही क्यों न हों किन्तु वैद्यों से ही सिलाए जाकर जुड़ सकते हैं वा विना सिलाए रह जाएंगे।

प्रश्न—कुछ लोग पूर्णिमा को कुछ अमा को रुग्ण होते हैं। उन दिनों वे कभी उन्मत्त भी देखे जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि ग्रहों का प्रभाव होता है।

उत्तर—हमने आपको कई वार कहा है भौतिक प्रभाव पड़ता है

किन्तु सब पर पड़ता है। इस प्रभाव को जन्मपत्री से नहीं जाना जा सकता है; और न श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्रमसे नमः का ११ सहस्त्रवार जप करने से दूर होता है; न चावल का दान करने से ही होता है। इसको तो चिकित्सक ही जान सकते हैं और औषधि से दूर कर सकते हैं। आप यह सिद्ध नहीं कर सके कि ग्रहों का धर्माधर्मरूपी कर्मों पर प्रभाव पड़ता है। फलित पुस्तकों में कहे हुए और आपसे प्रतिपाद्यमान ग्रह एक ही हैं, यह भी आप अब तक सिद्ध नहीं कर सके न आगे करने की संभावना है।

"इन्हीं तारों को सूर्य, चन्द्र, भौमादि ग्रह कहते हैं। इन ग्रह नक्षत्रों के साथ में हमारी पृथिवी का लौह चुम्बक सम्बन्ध होने से जो एक प्रकार की आकर्षण शक्ति रहती है उसमें प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। गति वैलक्षण्य से कोई ग्रह पृथिवी के एकदम समीप आ जाता है तथा कोई ग्रह बहुत दूर चला जाता है।

पृथिवी से सबसे निकट उपग्रह चन्द्रमा है। इसके पृथिवी के जल तत्त्व पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक पूर्णमासी पर समुद्र में ज्वार, भाटा का आना इसके प्रभाव का एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। जल-तत्त्व चल है। उससे मन अत्यन्त चंचल है। इसलिए मनुष्य-शरीर के जल तत्त्व के अतिरिक्त इसका प्रभाव मन पर भी पड़ता है। चन्द्रमा सब ग्रहों से द्रुतगामी है। इसलिए यहाँ मनुष्यों के मन को सदा चलायमान करने का यह एक विशेष कारण है। चन्द्र राशि से ही मनुष्य के स्वभाव, मन की वृत्ति का पता लगाने के लिए फलित शास्त्र में सर्वत्र वर्णन मिलता है। सूर्य का प्रभाव प्रकाशक है। उसका सम्बन्ध मनुष्य की नेत्र-शक्ति (तथा चेतना) से है। इसलिए अंतः-करण की वृत्ति को जानने के लिए फलितशास्त्र में सूर्य को मुख्य माना है। इसी प्रकार सभी ग्रह मनुष्य के मनस् कोष (अंतःकरण) से भिन्न २ प्रकार की प्रेरणाएं, योग्यताएं देते रहते हैं और जीवों के कर्माशय के अनुकूल इन चेतनाओं को प्रस्फुटित होने का अपने २ समय-विभाग में अवसर प्रदान करते रहते हैं। ग्रहों के तारतम्य से ऐसे अवसरों का अध्ययन ही फलित ज्योतिष् का विषय है।

देखिए, हमारे दैनिक जीवन में सूर्य और चन्द्र ये दो ही पिंड हर क्षण हम पर अनुशासन कर रहे हैं। सूर्य हमारा हृदय तथा चन्द्रमा मन है। हृदय की गति अनवरत बनी रहती है। इसी तरह हमें सूर्य से अनवरत शक्ति मिलती रहती है; सूर्य बुद्धि है, स्थिर है। चन्द्रमा मन है अस्थिर है। सूर्य अटल है चन्द्रमा द्रुतगामी है। यजुर्वेद में कहा भी है—"चन्द्रमा मनसो

जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत, सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इसी प्रकार फलित ज्योतिष में भी बताया गया है—'कालात्मा दिनकृन्मनस्तु हिमगु सत्वं कुजोज्ञो वचो' देखा भी गया है कि मन पर चन्द्रमा का बड़ा प्रभाव पड़ता रहता है। यह स्पष्ट है कि चन्द्रमा आदि ग्रहों का प्रभाव अवश्य है। भले ही मनुष्य को उस प्रभाव के ढंग का पता न हो। वनस्पति-शास्त्रवेत्ताओं से पूछिए कि वनस्पतियों पर सूर्य-चन्द्र का क्या प्रभाव पड़ता है। वह इनके प्रभाव को मानते हुए स्पष्ट शब्दों में कहेंगे कि अत्यधिक प्रभाव पड़ता है और देखिए यह सभी जानते हैं कि स्त्रियों का औसतन मासिक-धर्म का आवर्त-काल २८ दिन के करीब होता है। यह आवर्तकाल चन्द्रमा के भगण-काल के लगभग बराबर है। इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध है। ऋतुधर्म का चन्द्रमा के भगण-काल के साथ सम्बन्ध फलित शास्त्र की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। दो आवर्तकालों का विष्पन्दकाल एक दिन है। यदि किसी स्त्री के ऋतु-काल के समय अमावस्या हो तो यह स्पष्ट है अगले ऋतुकाल के समय कृष्ण चतुर्दशी होगी। दूसरे ऋतुकाल के समय कृष्ण त्रयोदशी होगी। यह स्पष्ट है कि १५वें ऋतुकाल के समय पूर्णिमा होगी और लगभग ३०वें ऋतुकाल के समय पुनः अमावस्या होगी। इस प्रकार पुनः आरम्भ जैसी स्थिति बन जाएगी। अब और अध्ययन कीजिए, अनुभव करिए, एक ही स्त्री के दो बच्चों की कल्पना कीजिए। एक वह बच्चा जो कि अमाकालीन ऋतु सम्बन्धी गर्भाधान से पैदा हुआ हो और दूसरा वह जो कि पूर्णिमा-कालीन ऋतुसम्बन्धी गर्भाधान से पैदा हुआ हो। इन दोनों जातकों में अन्य स्थितियों में एक होने पर भी काफी अन्तर (बुद्धि, प्रकृति, आकृति आदि में) देखने को मिलेगा। ज्वार, भाटा तथा मासिक धर्म के विवेचन से चन्द्र का प्रभाव फलितशास्त्र में बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो जाता है।

यह ज्योतिष शास्त्र हमारा पुरातन विज्ञान है। इसका उद्गम स्थान भारत ही है। अन्य देशवालों ने इस शास्त्र का ज्ञान इस भारत से ही प्राप्त किया है। आज भारत में उन्हीं ऋषि, महर्षियों की संतानें कहती हैं कि फलितशास्त्र में हमारी श्रद्धा और विश्वास नहीं है। ऐसा कहने वाले सज्जनों ने न तो इस शास्त्र का अध्ययन किया है न अनुभव।

मैं कहता हूँ कि आज भी भारत में राज्याश्रय न होते हुए भी एक घास की झोंपड़ी में बैठा हुआ फलित ज्योतिषवेत्ता एक दो सप्ताह महीना ही नहीं, अपितु वर्षों पूर्व यह घोषणा कर सकता है कि अमुक वर्ष में अमुक तिथि को अमुक प्रांत में इतनी वर्षा होगी, जबकि राज्याश्रय पाकर

आधुनिक वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा वायु के दबाव को देखकर रेडियो द्वारा एवं समाचारपत्रों द्वारा १, २ दिन पूर्व घोषणा करते हैं। लेखक का निजी अनुभव है कि प्राणियों पर ग्रहों का प्रभाव अनुपेक्षणीय सिद्ध पाया गया है। उस प्रभाव का ढंग जानना ही बड़ी भारी समस्या है। भविष्यवाणी का विफल होना फलित ज्योतिष का दोष नहीं है। यह भविष्यवाणी कर्त्ता की अल्पज्ञता का दोष है। मेरा यह आग्रह नहीं है कि मेरा कथन आप मानें। जनसमुदाय माने या न माने, मैं निःसंकोच कहता हूँ कि प्रतिक्षण ग्रहों का प्रभाव प्राणीमात्र पर पड़ता है और हमारा फलित ज्योतिष सत्य है।"

समी०—फलित को ज्यौतिष मानने वालों तथा सत्य मानने वालों की ये युक्तियां हैं। इनसे वे समझ लेते हैं कि फलित एक विज्ञान है और सत्य है। इसलिए यह ज्यौतिष है। इनके इन विचारों को पढ़ने वा सुनने से आपाततः ऐसा प्रतीत होता है कि फलित की सत्यता का प्रतिपादन हो गया और फलित सत्य सिद्ध हो गया। किन्तु इनकी युक्तियों पर विचार करने से प्रतीत होगा कि ये कितनी सारहीन तथा असम्बद्ध और विज्ञान विरुद्ध हैं। आपका (फलित वालों का) सारा व्याख्यान भोले लोगों को भ्रम में डालने वाला है। आप जो दृष्टान्त दे रहे हैं उसका और दार्ष्टान्त का कोई सम्बन्ध नहीं। जो हेतु दे रहे हैं वे हेत्वाभास हैं। जिसको आप सिद्ध मान रहे हैं वह साध्य है। जिसको फलित ज्यौतिष कह रहे हो वह ज्यौतिष ही नहीं है। जिसको वैज्ञानिक विज्ञानसिद्ध मान रहे हो वह वैज्ञानिक तो क्या अर्धवैज्ञानिक भी नहीं है। यह इसके पूर्व के समुल्लासों के पढ़ने से ज्ञात हो जाएगा। स्पष्टता के लिए यहां पर भी लिखता हूँ। अत्र फलित-ज्यौतिष की समीक्षा करते हैं—आप जो यह कहते हैं कि 'इन ग्रह नक्षत्रों के साथ में··· बहुत दूर तक चला जाता है आदि।' आप जिनको ग्रह कहते हैं और मानते हैं उनका स्वरूप हमने ऊपर लिख दिया है। आकाश में जो सूर्य, चन्द्र, मंगल आदि ग्रह हैं उनसे आपके मान्य ग्रहों का कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि है तो बतलाइए कि क्या "बुध, चन्द्र द्वारा तारा में उत्पन्न है" सिद्ध करके दिखा सकते हैं? रवि, मंगलादि पुरुष हैं? क्या राहु स्त्री है? क्या गुरु शुक्र ब्राह्मण हैं? इसी प्रकार नक्षत्रों की बात है। कुछ नक्षत्रों को आपने स्त्री मान रखा है कुछ को पुरुष। क्या आप इसको सिद्ध कर सकते हैं? किसी वैज्ञानिक के द्वारा इसको सिद्ध करवा सकते हैं? आपके ग्रह नक्षत्र ही निराले हैं। नक्षत्रों के विषय में नक्षत्र-समुल्लास में सविस्तर लिखा है, वहीं देख लेवें। क्या आपके किसी फलित ग्रन्थ में यह लिखा और आपने पढ़ा कि ग्रहनक्षत्रों का और पृथिवी का परस्पर आकर्षकाकृष्यमाण सम्बन्ध है? है तो बताइये।

जब है ही नहीं तो आपका आकर्षण हेतु क्या मूल्य रखता है? आप पृथिवी को ग्रह मानते हैं वा नहीं? यदि नहीं मानते तो बतलाइए कि पृथिवी क्या है? यह ज्यौतिषशास्त्र के अन्तर्गत आता है वा नहीं? यह भूगोल-खगोल में आता है कि नहीं? यदि आता है तो किसी फलित ग्रन्थ में इसका आकर्षण माना हो बतलावें। यही बतलावें कि इसको ग्रह क्यों नहीं माना? क्या इसका आकर्षण नहीं? किसी फलित ग्रन्थ में पृथिवी को चल कहा हो, गतिशील कहा हो तो प्रमाण दीजिए। आपके आचार्य तो पृथिवी को स्थिर मानते हैं। यदि उनको कोई बतलावें कि पृथिवी घूमती है तो वे उसको असत्य कहते हैं और पृथिवी को स्थिर सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। आकर्षण को जैसा आप समझते रहे हैं वैसे आपके ग्रन्थों में कहीं हो तो बतलाइए। क्या वे ग्रहों की गति को मानते थे? असमान गति में क्या कारण मानते थे, यह सूर्यसिद्धान्त के शब्दों में पढ़ लीजिए—

अदृश्यरूपा कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः।
शीघ्रमन्दोच्चपाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः॥
तद्वातरश्मिभिर्बद्धास्तैः सव्येतरपाणिभिः।
प्राक्पश्चादपकृष्यन्ते यथासन्नं स्वदिङ्मुखम्॥
प्रवहाख्यो मरुत्तांस्तु स्वोच्चाभिमुखमीरयेत्।
पूर्वापरापकृष्टास्ते गतिं यान्ति पृथग्विधाम्॥
······················शीघ्रमन्दोच्चसंज्ञकैः।
देवतैरपकृष्यन्ते सुदूरमतिवेगिताः॥ २,१-३, १०

अर्थ—शीघ्रोच्च मन्दोच्च और पात आदि अदृश्यरूपी, भगणाश्रित काल की मूर्ति और ग्रहों की गति के हेतु हैं॥ १॥ उच्चादि के वायु के किरणों से बन्धे हुए बायें-दायें हाथों से आगे पीछे अपनी ओर खींच लेते हैं॥ २॥ उन ग्रहों को प्रवह वायु उच्च की ओर प्रेरित करता है। आगे पीछे को खिचने से भिन्न २ गति को प्राप्त करते हैं॥ ३॥ मंगल आदि ग्रह अल्पमूर्ति वाले होने के कारण शीघ्रोच्चादि देवताओं द्वारा दूर तक अति वेग से खिचते हैं॥ १०॥ इससे स्पष्ट है उनको आकर्षण का वह ज्ञान नहीं था जिसको आप कहना चाहते हो। क्या आधुनिक ज्योतिर्वित् इसी के बल पर चन्द्रमा पर पहुँच गए हैं?

आपको इस बात का पता होना चाहिए कि जिसको आप फलित ज्यौतिष कहते हो उसका ज्यौतिष वा विज्ञान से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध न था, न है और न होगा। यदि आप आकाशस्थ ग्रहनक्षत्रों के सम्बन्ध में यह

बात कह रहे हो तो भी ठीक नहीं है। क्योंकि हमारी पृथिवी के साथ आपके माने हुए किसी भी नक्षत्र की कोई आकर्षण शक्ति हो सिद्ध करके बतलाइए। बुध, गुरु और शनि का पृथिवी के साथ आकर्षण शक्ति का कोई सम्बन्ध हो तो सिद्ध कर दीजिए। "लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिर्नतु प्रतिज्ञामात्रेण" किसी वस्तु के लक्षण करके उसमें प्रमाण देने से उसकी सत्यता सिद्ध होती है। कहने मात्र से नहीं।

आपका "पृथिवी से सब से······प्रभाव पड़ता है" आदि कथन ठीक नहीं है। क्योंकि सम्पूर्ण चन्द्र सम्पूर्ण पृथिवी को आकृष्ट करता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी चन्द्र को आकृष्ट करती है केवल किसी अंश, जल आदि को नहीं। इसी कारण जल का उपरि भाग जितना ऊपर उठता है भूमि का उपरितल उतना नहीं उठता है। चन्द्र के आकर्षण से पृथिवी का उपरि भाग लगभग साढ़े चार इंच ऊपर उठता है ऐसा वैज्ञानिकों का कथन है। यह नियम सम्पूर्ण पृथिवी के लिए एक समान है। किन्तु ऐसा नहीं कि देवदत्त पर न्यून पड़े और यज्ञदत्त पर अधिक। जिस चन्द्र का जल-तत्त्व पर प्रभाव का पुल बांध रहे हैं क्या यह वही है जो अपनी गुरुपत्नी के साथ व्यभिचार करके बुध को उत्पन्न करता है? आपने यह कल्पना की होगी जैसे पुराण इत्यादि पुस्तकों में लिखा है कि "चन्द्र जल प्रधान है अथवा जलीय है अतः जल (समुद्र) से उसका सम्बन्ध है। मैं आप से यह पूछना चाहता हूँ कि जैसे चन्द्रमा के प्रभाव की कल्पना कर रहे हो क्या उससे अत्यधिक प्रभावशालिनी पृथिवी द्वारा मनुष्य पर होने वाले प्रभाव पर आपने कभी विचार किया है? आप तो क्या आप के किसी फलिताचार्य ने किया हो तो प्रमाण बतलाइए। जब पृथिवी के प्रभाव के सम्बन्ध में ही विचार किया हुआ नहीं दीखता तब चन्द्रादि की कथा ही क्या कहनी? यह 'उपस्थितं परित्यज्य अनुपस्थितं याचत इति बाधितन्यायः' अर्थात् उपस्थित को छोड़ कर अनुपस्थित की चिन्ता करने के सदृश है।

आपका यह कथन कि "प्रत्येक पूर्णमासी···मन पर भी पड़ता है" आदि। वाह जी, क्या कहना, आपके इस शोध पर आपको उपाधि मिलनी चाहिए थी। जैसा आपने कहा है कि 'जल तत्त्व पर चन्द्र का प्रभाव पड़ता है, मन क्या जल से बना हुआ है? आपने वेद मन्त्रों का एक २ खण्ड देकर यह मान लिया है कि "मैं वेदों का विद्वान् बन गया तथा फलित वेदों से प्रतिपादित है और मैंने सिद्ध कर दिया कि फलित वेदोक्त है" आपने वेद मन्त्र का जो खण्ड दिया कि "चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत"

इसका अर्थ करके इसके साथ फलित का सामञ्जस्य बतलाते तो आपको पता चलता। इसका अर्थ—उस विराट् पुरुष (सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः, एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः पादोऽस्य विश्वा भूतानि॥ यजु० ३१ अ०॥ के मननशील के सामर्थ्य से चन्द्रमा, तेजस्वरूप से सूर्य उत्पन्न हुआ।" परमेश्वर चराचर जगत् का आत्मा के समान है। अब आप यह बतलाइए कि इन मन्त्रों में यह कहां लिखा है कि चन्द्रमा का मन पर प्रभाव पड़ता है। आपका यह व्यवहार ऐसा ही है जैसा कि हल्दी की गांठ को लेकर चूहे का पन्सारी बन बैठना। मन के चञ्चल होने का क्या अर्थ है? उसका उपादान कारण क्या है? मन स्वयं चलता है अथवा जीवात्मा चलाता है? जड़ है अथवा चेतन है? क्या योगशास्त्र में कहीं ऐसी चर्चा है कि चन्द्रमा के कारण से मन चंचल होता है? क्या आयुर्वेद में कहीं यह लिखा है कि जल से मन बना हुआ है अथवा न्याय, वैशेषिक, सांख्य और वेदान्त आदि किसी शास्त्र में है?

आप कहते हैं कि "चन्द्रमा सब ग्रहों में द्रुतगामी है···सर्वत्र वर्णन मिलता है" आदि। यह आपकी अपनी ज्यौतिष शास्त्र से अनभिज्ञता है। चन्द्रमा से द्रुततरगामी ग्रह अन्य भी हैं। आप के कथनानुसार यह मानना पड़ेगा कि जिस प्रकार चन्द्रमा कभी गतिशून्य नहीं हो सकता, इसी प्रकार मन भी कभी रुक नहीं सकता। पतञ्जलि जी कहते हैं कि मन का निरोध होता है और हो सकता है। यदि मन के चाञ्चल्य का कारण चन्द्रमा होगा (आकाश में चन्द्रमा क्या कोई भी ग्रह बिना गति के नहीं रह सके) तो मन भी अनवरत गतिशील होगा। इस पर आत्मा का कोई नियन्त्रण नहीं रहेगा अपितु चन्द्रमा का नियन्त्रण होगा। इसके अनुसार सुषुप्तावस्था भी किसी प्राणी की नहीं हो सकती। योगाभ्यास वा समाधि आदि कुछ भी नहीं रहेंगे। धर्माचरण मन के एकाग्र करने के लिए है। तब तो धर्म का आचरण भी व्यर्थ होगा। जैसे चन्द्रमा को निश्चेष्ट नहीं किया जा सकता वैसे ही मन को भी नहीं किया जा सकता क्योंकि चन्द्रमा की गति के साथ मन की गति का समवाय सम्बन्ध होगा। किन्तु यह सृष्टिक्रम के विरुद्ध, वेदविरुद्ध, आप्त-प्रमाणविरुद्ध, प्रत्यक्षविरुद्ध और अनुमानादि प्रमाण विरुद्ध है। विद्या-विज्ञानशून्य ऐसे ही लोगों ने मनुष्यों को भाग्यवादी बनाया है और धर्म-कर्मों से हीन कर दिया है। आपके मत में द्विचक्रिका, धूम्रयान, विमान, राकेट, जेट आदि सब चन्द्रमा की गति के कारण ही गतिशील होंगे? आप-की जिह्वा भी उसी से संचालित होकर निरन्तर चलती होगी। इसी कारण

आप फलित के पक्ष को लेकर निरन्तर कुछ न कुछ बोलते होंगे। फलित को शास्त्र कहना शास्त्र शब्द का अपमान करना है। फलित तुकबन्दियों वा शेखचिल्ली की कल्पनाओं का पुलिन्दा है। इसका हेतुवाद के साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। मन की वृत्ति का पता लगाने के लिए अन्तर्मुखी होने की आवश्यकता है न कि जन्मकुण्डली टटोलने की। एक व्यक्ति रात्रि में राजमार्ग के पास बिजली के दीपक के प्रकाश में अपनी खोई हुई अंगूठी को ढूंढ रहा था। किसी पथिक ने पूछा कि भाई क्या ढूंढते हो? तो उसने बताया कि मैं अपनी अंगूठी ढूंढ रहा हूँ। पथिक ने फिर पूछा कि "कहां गिरी थी?" तो उसने उत्तर में कहा कि "हमारे अन्धेरे कमरे में गिरी थी" इस पर पथिक ने पुनः प्रश्न किया 'जहां गिरी वहां ढूंढने से मिलेगी कि दूसरे स्थान पर ढूंढने से?' तब उसने कहा "भोले भाई कमरे में अन्धेरा है यहां उजाला है इसीलिए यहाँ ढूंढ रहा हूँ" आपका कथन भी इसी के सदृश है। दया आती है आप के भोलेपन पर। ओ भोले भाई, मन की वृत्ति को ढूंढने के लिए धर्मानुसार व्यवहार करते हुए प्रतिदिन बैठकर अन्तर्मुखी हो, देखने का प्रयास करो। फलित के चक्र से बचो। आपके मन को चन्द्रमा चलायमान नहीं कर रहा है अपितु आप जिसको फलित ज्योतिष कहते हो वही कर रहा है।

जो कहते हो "सूर्य का प्रभाव प्रकाशक है—सूर्य को मुख्य माना है आदि।" आप को चेतना क्या है, मन क्या है, अन्तःकरण क्या है और हृदय क्या है पता ही नहीं है। यदि पता होता तो जो मन में आया सो न लिखते। आपके कथन की पुष्टि में न कोई शास्त्र प्रमाण है न ही युक्ति। जिस शास्त्र में आपका ज्ञान वा प्रवेश नहीं उसमें आपको टांग अड़ानी नहीं चाहिए। भला अन्तःकरण की वृत्ति का और सूय का क्या सम्बन्ध है? अब तक तो यह कह रहे थे कि मन का चन्द्रमा के साथ सम्बन्ध है और अब कह रहे हैं कि सूर्य के साथ है। और भी सोच लीजिए। सोचकर निर्णय कर लीजिए कि चन्द्र के साथ है वा सूर्य के साथ? वा सूर्य चन्द्र दोनों के साथ सम्मिलित सम्बन्ध है? आपने एक अभूतपूर्व बात लिख दी कि सूर्य का चेतना से सम्बन्ध है। ऐसा जैमिनि, कणाद, गौतम, पतञ्जलि, कपिल और व्यासादि महर्षियों के छः शास्त्रों में कहीं नहीं पढ़ने को मिला। आपको कहीं मिल गया हो तो बतला दीजिए। संभव है आपका ही उन ऋषियों को पता न हो। नेत्रशक्ति को चेतनाशक्ति किस शास्त्र में लिखा है? क्या नेत्रहीनों में चेतना नहीं होती? क्या चेतनायुक्त=जीवित मनुष्य में नेत्रशक्ति का रहना अनिवार्य है? वृद्धावस्था में दृष्टिमान्द्य होता है क्या साथ २ चेतनाशक्ति

भी मन्द होती है? क्या सूर्य का जड़ पदार्थों से सम्बन्ध है अथवा चेतन आत्मा से?

आगे आप लिखते हैं—'इसी प्रकार सभी ग्रह मनुष्य के मनुस कोष··· प्रदान करते रहते हैं' आदि २ क्या सारे (नवग्रह) अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर बैठे हैं जो इच्छानुसार प्रेरणाएं=योग्यताएं देते रहते हैं? अन्तःकरण को प्रेरणा सूर्य-चन्द्रादि से मिलती है इसमें वेदादि शास्त्रों का कोई प्रमाण हो तो देवें। आपकी कल्पना के अतिरिक्त इसमें कोई प्रमाण नहीं। "नवग्रह कर्माशयानुसार योग्यताएं प्रेरणाएं देते हैं" इसको विना प्रमाण के ही कोई सत्य मानता हो तो वह वन्ध्या के पुत्र को क्यों नहीं मानता? मानने में क्या आपत्ति है। सूर्य चन्द्रादि की अपेक्षा पृथिवीस्थ सहस्रों पदार्थों से प्रेरणा मिलती है। सूर्यचन्द्र की रचना विशेष के ज्ञान से तो कुछ प्रेरणा मिल भी जाय विना जाने नहीं। बुध, गुरु और शनि आदि ग्रह तो हमें किसी भी प्रकार की योग्यताएं नहीं दे रहे हैं। यदि वे दे रहे हों तो सिद्ध करके बतलाइए। ग्रहों का कर्माशयों से किस प्रकार सम्बन्ध है यह आप सिद्ध करते तो आप का कथन सत्य होता। कहने मात्र से तो कोई बात सिद्ध नहीं होती। यदि कर्माशयों के अनुसार योग्यता वा प्रेरणाओं को मान भी लिया जाए तो कर्मफल अनिवार्य होने से ग्रहशान्ति, पूजापाठ, दान आदि का विधान व्यर्थ है क्योंकि लिखा है कि—

> "नाऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
> यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
> तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुवर्तते॥"

कल्पकल्पान्तरों में भी किया हुआ कर्म (फल) विना भोगे क्षीण नहीं होता। ग्रहों के प्रभाव को भी नहीं रोका जा सकता। आप सहस्रों ग्रहदान, मन्त्रपाठ करवाइए, पूर्णिमा को तो ज्वार-भाटा आयेगा ही। उसको कोई रोक नहीं सकता। इसी प्रकार ग्रहों का फल होगा ही तब सुकर्म करने के अतिरिक्त और क्या उपाय है? आपके ही कथनानुसार इस प्रभाव के ढग को जानना ही जब भारी समस्या है तो उसको ठीक २ कौन बतला सकता है? वसिष्ठ जैसे महर्षि ही भूल कर गए तो साधारण लोग भूलों के समुद्र होंगे। तब आपके कथनानुसार फलित को देखना-दिखाना अधिक हानि-कारक है। फलित को न मानकर शुभकर्म करते जाने में क्या आपत्ति है? यदि कहो कि ग्रहगति को विना जाने किया गया प्रयत्न निष्फल होगा तो भी ठीक नहीं। प्रयत्न व्यर्थ नहीं जाता। कर्म है तो उसके साथ फल मिलकर

रहेगा। यदि इन योग्यताओं को स्वीकार किया जाए तो मनुष्य कर्म करने में परतन्त्र होता है।

प्रश्न—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःख भी तो संसार में हैं। ये सारे ग्रहों से होते हैं। इनको दूर करने के लिए शास्त्रों में उल्लेख है। इसको आप भी मानते हैं। यही ग्रहों का प्रभाव है।

उत्तर—आपने जो त्रिविध दुःखों को ग्रहों से बतलाया ऐसा किसी शास्त्र में नहीं बतलाया ? ऋषि कपिल ने इन दुःखों का मूल कारण अविद्या बतलाई है और योगाङ्गों के अभ्यास के द्वारा ही दूर किया जाना संभव कहा है। कहीं नवग्रहों को कारण नहीं कहा और ना ही नवग्रहों की पूजा-पाठ से इन दुःखों का दूर होना लिखा है। आपसे हमारा प्रश्न यह सदा रहेगा जिसका समाधान आपको करना चाहिए कि "आपके नवग्रह वे ही हैं जो कलिंग आदि देशों में काश्यपादि गोत्रों में उत्पन्न हो दूसरों को भी जन्म देते फिरते हैं अथवा करोड़ों मील दूर पर रहने वाले पृथिवी जैसे लोक ?" नवग्रहों की संख्या ही अशुद्ध है। ग्रहों का अन्तःकरण के साथ सम्बन्ध कल्पना से अधिक कुछ नहीं। जब सम्बन्ध ही कल्पित है तो उनसे कर्माशयों के अनुकूल प्रेरणाओं के प्रस्फुटित होने की बात शशविषाण खरगोश के सींग के समान असंभव है तथा मिथ्या है। 'यदि ग्रहों के तारतम्य से…… अनुशासन कर रहे हैं' आदि तो आपके कथनानुसार जहां छहों शास्त्रों का, वेदों का क्षेत्र समाप्त होता है वहां से आगे आपके ज्यौतिष का विषय प्रारंभ होता है। क्योंकि वेदों में वा शास्त्रों में ऐसा कहीं मेरे देखने में नहीं आया।

आपने जो कहा "सूर्य हमारा हृदय तथा……प्रभाव के ढङ्ग का पता न हो" आदि २। यह कोरी कल्पना है। इसमें कोई प्रमाण नहीं है। न युक्ति ही है। हृदय शब्द से आपका अभिप्राय रक्तप्रसारण यन्त्र से है अथवा अन्तःकरण चतुष्टय से ? यदि रक्त प्रसारण यन्त्र से है तो उसका और सूर्य का क्या सम्बन्ध है यह सिद्ध करके बतलाइए। यदि अन्तःकरण चतुष्टय से है तो सूर्यरूपी बुद्धि अटल है तो मन भी अटल है। यदि मन चञ्चल है तो बुद्धि भी चंचल है। जैसे सूर्य की गति अनवरत है वैसी ही चन्द्र की गति भी अनवरत है। आप सूर्य को जो अटल कह रहे हो, यह भी मिथ्या है। सूर्य अटल नहीं है। चन्द्र के समान गतिमान है। इस अनन्त आकाश में कोई भी पदार्थ विना गति के नहीं है। सूर्य से अनवरत शक्ति मिलती है यह ठीक है। किन्तु जड़-चेतन सबके लिए एक समान मिलती है। किन्तु शुभाशुभ

कर्मों से सूर्यचन्द्र आदि का कोई सम्बन्ध नहीं है। आप पूछ रहे हैं कि "वनस्पतिशास्त्रवेत्ताओं से पूछिए ··· अत्यधिक प्रभाव पड़ता है" आदि। यह आपका कथन "हाथी के दान्त दिखाने के और होते हैं एवं चबाने के और" के अनुसार है। प्रश्न है कि कर्मों पर ग्रहों का क्या प्रभाव पड़ता है ? आपका उत्तर शरीर पर पड़ने वाले प्रभावों का है। इसका कौन निषेध करता है ? वनस्पतियों पर पड़ने वाले सूर्यचन्द्र के प्रभाव को वनस्पति-शास्त्रियों से पूंछने जाने की आवश्यकता क्या है ? एक अपढ़ किसान से पूछकर देखिए। आपको तो स्यात् पता न होगा किन्तु आपको वह स्पष्ट बतला देगा। खेतों में घूमने वाले बच्चे को पता रहता है। क्या सूर्य-चन्द्र का प्रभाव कर्मों पर पड़ता हुआ किसी वैज्ञानिक वा तत्ववेत्ता ऋषि को आजतक दीखा है ? किसी उपनिषत्कार को दीखा है ? आपका यह दृष्टान्त विषम है और भोले लोगों को बहकाने के लिए है। क्या एक स्थान पर वर्तमान दस वनस्पतियों पर सूर्यचन्द्र का अलग २ प्रभाव पड़ता है। क्या सूर्य वा चन्द्र एक वनस्पति पर प्रसन्न और एक वनस्पति पर अप्रसन्न भी होते हैं ? क्या वनस्पति के द्वारा ग्रहदान करवाया जाय तो ग्रह निरुपद्रव रहेंगे ? वनस्पति का बीजारोपण वा अङ्कुरोत्पादन जिस क्षण में होता हो उस क्षण की जन्मकुण्डली बनाकर क्या कोई वैज्ञानिक वा फलितंमन्य यह बतला सकता है कि उसके कितने पत्ते, शाखा, फूल और फल होंगे; उसको कौनसा पशु खा जाएगा अथवा कितने दिन तक जीवित रह सकेगा ? आप से मेरा प्रश्न है कि क्या फलित ग्रन्थों में वर्णित चन्द्र वही है जिसके पिछले भाग पर पितर लोग निवास करते हैं ? क्या इसी चन्द्र का वनस्पतियों पर प्रभाव पड़ता है ? क्या सूर्य वही है जिसको हनुमान ने बचपन में निगल लिया था और जो सात घोड़ों के रथ पर बैठे हुए अहर्निश गमन कर रहा है ? क्या अदिति से उत्पन्न हुआ भी वही है ?

आप लिखते हैं कि "और देखिए यह सभी जानते हैं स्त्रियों का ···बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है" आदि। आपका अनुसन्धान मानवीय इतिहास में आश्चर्यजनक घटना है। २८ दिन का समय चन्द्र का भगणकाल है अथवा अमावस्या का काल है ? यहां तो औसत का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। न तो २८ दिन चन्द्रका भगणकाल है न चान्द्रमास का काल। भगण का काल सवा सत्ताईस दिन का है और चान्द्रमास का काल साढ़े उन्तीस दिन है। केवल मनुष्यों के लिए ही ऐसा नियम है अथवा पशु-पक्षियों के लिए भी ? यदि पशु-पक्षियों के लिए है तो अश्वजाति में इस नियम को

बतलाइए। गो जाति में भी २८ दिन का नियम नहीं दीखता। मनुष्यों के लिए भी ऐसा कोई नियम नहीं है। यह वैद्यों को ज्ञात है। किसी स्त्री को २८ दिन के पश्चात् रजोदर्शन होता है तो किसी को २६ दिन के पश्चात्। किसी को ३० दिन के पश्चात् किसी को उससे अधिक दिनों में भी होता है। तब यह नियम कैसे बनेगा? मासिक धर्म का चन्द्र के भगण के साथ संबंध होने में क्या प्रमाण है? २८ संख्या के साथ यदि सम्बन्ध है तो २८ नक्षत्रों के साथ सम्बन्ध क्यों नहीं? आपको यह पता होना चाहिए दिन सावन हैं तिथि चान्द्र हैं एक चान्द्रमास में तिथियाँ २८ नहीं तीस ही होती हैं। प्रत्येक मान में प्रत्येक मास के अपने मानानुसार ३० ही दिन होते हैं न्यूनाधिक नहीं होते। २८ दिन का नास का क्या सम्बन्ध है? यदि यह आप सोचते समझते तो अपनी बात का मूल्य जान लेते कि "औसत" शब्द का क्या मूल्य है। अमा के दिन गर्भ को धारण करके सन्तान को जन्म देने पर वे सब आपके कथनानुसार एक प्रकार के होने चाहिए किन्तु प्रति अमा को सहस्रों स्त्रियां गर्भ को धारण करती हैं किन्तु उनकी सन्तान एक समान नहीं होती। यदि इस प्रकार देखा जाए तो समस्त मनुष्य २८ प्रकार के होने चाहिए। प्रत्यक्ष इसके विरुद्ध है। एक से एक की शारीरिक वा मानसिक समता नहीं है। स्त्रियों के शरीर में भी जैसा जलीय अंश है वैसे पुरुषों के शरीर में भी जब जलीय अंश है, घोड़ियों में और घोड़ों में, गायें और साण्डों के शरीर में भी जब जलीय अंश है तो उन पर प्रभाव क्यों नहीं होता? यदि होता हो तो सिद्ध कीजिए?

"यह ज्योतिष शास्त्र हमारा पुरातन विज्ञान···न अनुभव" आदि २ फलित को ज्योतिष कहना अपने को ज्योतिष से अनभिज्ञ घोषित कर देना है और विज्ञान कहना उपहासास्पद है। "अब एस्ट्रोलोजी ज्योतिष किसका सत्य है, भारत का अथवा पश्चिम का? फिर भारत में भी उत्तर भारत का अथवा दक्षिण भारत का? मतमतान्तर बहुत हैं। वैज्ञानिक वस्तु में सिद्धान्त होता है विवाद नहीं होता। मतमतान्तर नहीं हो सकते। यह सब के अनुभव से सिद्ध नहीं है। प्रत्येक के व्यक्तिगत' विचार[1] के अनुसार ग्रह अच्छे वा बुरे माने गए हैं। यह तो हाथी को टटोलने जैसी बात है कि किसी के हाथ पूंछ आई तो किसी के हाथ सूंड। उदाहरण के लिए भारत की एक प्रसिद्ध ज्योतिष की पत्रिका में मासों तक यह विवाद चला कि कुम्भ का राहु अच्छा है अथवा बुरा। बड़े २ पंडितों

१. व्यक्तिगत अनुभव का अभिप्राय "अपनी २ कल्पना के अनुसार है"।

ने बड़े २ लोगों की कुण्डलियां दीं अपने २ तर्कों की पुष्टि के लिए और एक दूसरे के तर्कों को काटा। अतएव इसे वैज्ञानिक मानने में कठिनाई है। दूसरी बात यह है कि यह मानना कि "मानव पर इन ग्रहों का कोई सीधा प्रभाव पड़ता है" कठिन है। आज के भौतिक विज्ञान (फ़िजिक्स) आदि से किरणों का प्रभाव मालूम हो चुका है। ग्रहों का अपना कोई 'रेडियेशन' या किरणें नहीं हैं, सूर्य के अतिरिक्त सारे ग्रह सूर्य से ही प्रकाश को लेकर देते हैं। उनकी अपनी कोई किरणें नहीं हैं।

१. आत्मा प्रभावश्शक्तिश्च पितृचिन्ता रवेः फलम्।
२. मनो बुद्धिः प्रसादं च मातृचिन्ता च चन्द्रमाः।
३. भ्राता भृत्यगणो भूमिर्भौमेनैव विचिन्तयेत्।
४. प्रज्ञा च कर्म विज्ञानं बुधेनैव विचिन्तयेत्।
५. गुरुणा देहपुष्टिश्च बुद्धिः पुत्रार्थसम्पदः।
६. शुक्रो विवाहं भाग्यं च भोगस्थानं च वाहनम्।
७. आयुष्यं जीवनोपायं मरणं च शनैश्चरः।
८. तटाकारामविश्रामो राहुर्मातामहं भवेत्।
९. केतोः पितामहश्चिन्ता बहुदानश्च मोक्षदः।

आत्मा, प्रभाव, शक्ति और पितृचिन्ता रवि का फल है। मन, बुद्धि, प्रसन्नता और मातृचिन्ता चन्द्र का विषय है। भ्राता, भृत्यगण और भूमि को मंगल से देखें। बुद्धि, कर्म और विज्ञान बुध से देखने चाहिए। देहपुष्टि, बुद्धि, पुत्र और अर्थसम्पदा गुरु से देखें। विवाह, भाग्य, भोगस्थान और वाहन शुक्र से हैं। आयु, जीवनोपाय और मरण ये शनि के काम हैं। तालाब, उपवन, विश्राम और मातामह की बातें राहु से देखें। पितामह की चिन्ता, बहुत दान और मोक्ष केतु से होते हैं।

जहां प्रत्येक ग्रह का अपना २ फल है वहां (यह भी स्मरण रखने योग्य बात है कि) उस २ ग्रह से भिन्न २ फल भी कहे गए हैं। इन विभिन्न फलों का वर्णन करना इस ग्रन्थ में संभव नहीं। एक उदाहरण लीजिए—

शनिक्षेत्रे यदा भानुः भानुक्षेत्रे यदा शनिः।
सद्य एव भवेन्मृत्युः शंकरो यदि रक्षति॥

अर्थ—जब शनि क्षेत्र में सूर्य हो और सूर्य के क्षेत्र में शनि, तो बालक जन्मते ही मर जाता है चाहे शंकर भी उसकी रक्षा करे।

शनि का क्षेत्र मकर और कुम्भराशि है। भानु का क्षेत्र सिंहराशि है। शनि तीस वर्ष में ढाई वर्ष निरन्तर सिंह राशि पर रहता है। इसी प्रकार

भानु एक वर्ष में मकर कुंभराशियों में एक २ मास पर्यन्त रहता है। यह पुष्य तथा माघ मास अथवा २२ दिसम्बर से २२ फरवरी तक का काल है। इस श्लोक के अनुसार उपरिलिखित तीस वर्ष में से दो वर्षों में दो मास तक पृथिवी पर जन्मे समस्त बालक जिस दिन उत्पन्न हुए उसी दिन मर जाने चाहिए किन्तु ऐसा नहीं होता। आप किसी चिकित्सालय के अधिकारी से सम्पर्क स्थापित करके देख लीजिए इस बात की पुष्टि हो जाएगी।

यदि यह विज्ञान है तो शेखचिल्ली की कल्पनाएं सुविज्ञान हैं। और भी आगे जो आपने कहा कि "प्राणियों पर ग्रहों का प्रभाव···पाया गया है" आदि। यह आपकी प्रतिज्ञामात्र है। यह आपके अगले वाक्य 'उस प्रभाव का ढङ्ग जानना ही बड़ी भारी समस्या है' से ही झलक रहा है। ग्रहों का प्राणियों पर कोई प्रभाव होता तो जान लेते, जान सकते। जब है ही नहीं तो उसको जानने का दावा भारी समस्या नहीं तो और क्या है? सिद्ध न कर सके, प्रतिज्ञामात्र रह जाए तथा अज्ञता वा ढोंग की उपाधि मिले और जिज्ञासु ग्राहक भी हाथ से फिसलने लगें, जीविका मारी जाने लगे, ये सब भारी समस्याएं ही तो हैं।

प्रश्न—'सत्यार्थप्रकाश' के प्रथम समुल्लास में ईश्वर के नामों में नौ ग्रहों के नाम हैं। आप ही बतलाइए कि इससे ग्रह चेतन हैं वा नहीं?

उत्तर—ग्रहों के नाम परमात्मा के भी हैं। इससे ग्रह परमात्मा तो नहीं हुए। एक ही नाम कइयों का हो सकता है। देवदत्त नाम वाले सारे एक तो नहीं हैं। देवदत्त नामक ब्राह्मण के गुण कहे जायें तो इसी नाम के क्षत्रिय के तो वे गुण नहीं हुए? यदि यह नाम परमात्मा का भी है और ग्रहों का भी तो दोनों एक कैसे हुए? जड़ के तथा चेतन के कुछ गुण समान होने पर क्या जड़-चेतन वा चेतन जड़, कहा जा सकता है? ग्रहों से पूर्व परमेश्वर वर्तमान होता है इसलिए ये नाम परमात्मा के हैं। परमात्मा के ही नामों को लेकर ग्रह आदि पदार्थों के नाम रख दिए। क्या इससे ग्रह चेतन हो गए हैं? किसी ने अपने पुत्र का नाम राम रख लिया हो तो क्या वह दशरथ का पुत्र राम कहा जा सकता है?

प्रश्न—वेदों में ग्रहों से कल्याण करने की प्रार्थना की गई है।

शन्नो ग्रहाश्चान्द्रमसः शमादित्यश्च राहुणा।
शन्नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः॥ अथर्व० १९।९।१०॥

अर्थ—चन्द्रमा के साथ सब ग्रह तथा सूर्य के साथ राहु और मृत्यु-

सूचक धूमकेतु एवं विकराल रुद्रगण हमको कष्ट न दें।···उसके अनुसार सबको प्रार्थना करनी चाहिए। नवग्रहों के मन्त्र हैं आकृष्णेन रजसा आदि। वेद से सिद्ध होता है कि ग्रहों का फल होता है निषेध क्यों करते हो?

उत्तर—वेदों में ग्रहों को चेतन के समान मानकर उनसे प्रार्थना की गई हो ऐसा नहीं है। यदि एक मनुष्य इस प्रकार से आचरण करता है कि उसे सूर्य की धूप और गर्मी कष्ट न पहुँचाने पाये तो उसने फलित को कैसे मान लिया? यदि कोई कह दे कि लेखनी ने मुझे तंग किया तो क्या फलित सिद्ध हो गया? अथवा लेखनी चेतन हो गई? जो व्यक्ति पहले से जानता हो कि लेखनी ठीक २ नहीं चलेगी। यदि वह परीक्षा में लिखने जाते समय यह प्रार्थना करे कि "हे परमात्मा लेखनी से किसी प्रकार का विघ्न न हो, मैं निर्विघ्न परीक्षा में लिख पाऊँ" तो ऐसी प्रार्थना करने वाला क्या लेखनी को चेतन मान रहा होता है? क्या इससे फलित सिद्ध होता है? वर्षा हमारे लिए सुखकारी हो, पर्वत हमारे लिए सुखकारी हों, नदियां, ओषधियां वनस्पतियां सुखकारी हों ऐसी २ प्रार्थना भी वेदों में है। क्या ये सब पदार्थ चेतन हो गए? वा इनको कोई चेतन मानता है? प्रार्थना सूर्य चन्द्रादि से नहीं की गई, न की जा सकती है किन्तु परमात्मा से की जा रही है और की जा सकती है कि "हमें इनसे कोई हानि न पहुँचे। ये प्राकृतिक पदार्थ हमारे स्वास्थ्य आदि को उन्नत करने वाले हों।" जो जड़ पदार्थों से प्रार्थना करना वेद में लिखा मानता है वह वेद को नहीं जानता। पौराणिकों के अनुसार तो ग्रह रामायणकालीन अथवा उससे भी परवर्ती होंगे किन्तु सृष्टि के आरम्भ के नहीं हो सकते। वेद आदि-सृष्टि के हैं। जब वेद आदि सृष्टि के हैं तो परवर्ती ग्रहों का वर्णन पूर्ववर्ती वेदों में कैसे हो सकता है? वास्तव में जो नवग्रहों के मन्त्र कहे जाते हैं उनका ग्रहों से कोई सम्बन्ध नहीं है। उन मन्त्रों में ग्रहों का गन्ध भी नहीं है। ग्रहशान्ति की तो बात ही क्या। ग्रहों के मन्त्र तथा उनके अर्थ देखें तो यह स्पष्ट होगा। क्रमशः पढ़िए। सूर्य के लिए जो मन्त्र पढ़ा जाता है वह अर्थसहित दिया जाता है। यह अर्थ महर्षि दयानन्दकृत है। उनकी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका से दिया जाता है—

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ यजु० ३३।४३।

भाष्यम्—(आकृष्णेन)। अभिप्रायः—अत्राप्याकर्षणविद्याऽस्तीति। सविता परमात्मा सूर्य्यलोको वा। रजसा सर्वैर्लोकैः सहाकृष्णेनाकर्षणगुणेन सह वर्तमानोऽस्ति। कथंभूतेन गुणेन? हिरण्ययेन ज्योतिर्मयेन। पुनः कथं

भूतेन ? रमणानन्दादिव्यवहारसाधकज्ञानतेजोरूपेण रथेन । किं कुर्वन् सन् ? मर्त्यं मनुष्यलोकममृतं सत्यविज्ञानं किरणसमूहं वा स्वस्वकक्षायां निवेशयन्व्यवस्थापयन् सन् तथा च मर्त्यं पृथिव्यात्मकं लोकं प्रत्यमृतं मोक्षमोषध्यात्मकं वृष्ट्यादिकं रसं च प्रवेशयन् सन् सूर्यो वर्तमानोऽस्ति । स च सूर्यो द्योतनात्मको भुवनानि सर्वान् लोकान् धारयति । तथा पश्यन् दर्शयन्सन् रूपादिकं विभक्तं याति प्रापयतीत्यर्थः ।

अस्मिन् पूर्वमन्त्राद् द्युभिरक्तुभिरिति पदानुवर्तनात्सूर्य्यो द्युभिः सर्वैर्दिवसैरक्तुभिः सर्वाभी रात्रिभिश्चार्थात्सर्वाँल्लोकान् प्रतिक्षणमाकर्षतीति गम्यते । एवं सर्वेषु लोकेष्वात्मिका स्वा स्वाप्याकर्षणशक्तिरस्त्येव तथानन्ताकर्षणशक्तिस्तु खलु परमेश्वरेऽस्तीति मन्तव्यम् । रजो लोकानां नामास्ति । अत्राहुर्निरुक्तकारा यास्काचार्य्याः 'लोका रजांस्युच्यन्ते ।' निरु० ४।१९ 'रथो रंहतेर्गतिकर्मणः स्थिरतेर्वा स्याद्विपरीतस्य, रममाणोऽस्मिंस्तिष्ठतीति वा, रपतेर्वा, रसतेर्वा ।।' निरु० ९ । ११ ।। 'विश्वानरस्यादित्यस्य' ।। निरु० १२। २१ ।। अतो रथशब्देन रमणानन्दकरं ज्ञानं तेजो गृह्यते । इत्यादयो मन्त्रा वेदेषु धारणाकर्षणविधायका बहवः सन्तीति बोध्यम् ।।

भाषार्थ—(आकृष्णेन०) अभिप्राय इस मन्त्र में भी आकर्षण विद्या है। सविता जो परमात्मा, आयु और सूर्यलोक हैं, वे सब लोकों के साथ आकर्षण धारण गुण से सहित वर्तते हैं। सो हिरण्य अर्थात् अनन्तबल, ज्ञान और तेज से सहित 'रथेन' आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करने के योग्य ज्ञान और तेज से युक्त हैं। इसमें परमेश्वर सब जीवों के हृदयों में अमृत अर्थात् सत्य विज्ञान को सदैव प्रकाश करता है और सूर्यलोक भी रस आदि पदार्थों को मर्त्य अर्थात् मनुष्यलोक में प्रवेश करता, और सब लोकों को व्यवस्था से अपने २ स्थानों में रखता है। वैसे ही परमेश्वर धर्मात्मा ज्ञानी लोगों को अमृतरूप मोक्ष देता और सूर्य लोक भी रसयुक्त जो ओषधि और वृष्टि के अमृतरूप जल को पृथिवी में प्रविष्ट करता है। सो परमेश्वर सत्य असत्य का प्रकाश और सब लोकों का प्रकाश करके सबको जनाता है। तथा सूर्यलोक भी रूपादि का विभाग दिखलाता है।

इस मन्त्र से पहले मन्त्र में 'द्युभिरक्तुभिः' इस पद से यही अर्थ आता है कि दिन रात अर्थात् सब समय में सब लोकों के साथ सूर्यलोक का और सूर्यादि लोकों के साथ परमेश्वर का आकर्षण हो रहा है तथा सब लोकों में ईश्वर ही की रचना से अपना २ आकर्षण है और परमेश्वर की तो आकर्षण रूप शक्ति अनन्त है। यहां लोकों नाम 'रज है और रथ शब्द के अनेक अर्थ हैं; इस कारण से कि जिससे रमण और आनन्द की प्राप्ति होती है उसको रथ कहते हैं। इस विषय में निरुक्त का प्रमाण इसी मन्त्र के भाष्य में लिखा है, सो देख लेना। ऐसे धारण और आकर्षण विद्या के सिद्ध करने वाले मन्त्र वेदों में बहुत हैं।"

आकर्षणानुकर्षण वि०

समी०—इस मन्त्र में सूर्य में तथा अन्य समस्त लोकों में आकर्षण है. यह वर्णन है। इसमें सूर्य की शान्ति का नाम तक नहीं। यह पता नहीं कि इस मन्त्र में सूर्य से शान्ति की कल्पना कहां से करली। इस मन्त्र से सुपारी वा हल्दी की गांठ धर कर उसको दृष्टि में रखकर मन्त्र का पाठ कर उसके स्थान पर पान रख देते हैं। क्या ही हास्यास्पद बात है।

इसके आगे अर्थ सहित चन्द्र का मन्त्र दिया जाता है—

इमं देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा ।। यजु० ९ । ४०

भाष्यम्—(देवाः) हे देवा विद्वांसः सभासदः ! (महते क्षत्राय) अतुलराजधर्माय (महते ज्यैष्ठ्याय) अत्यन्तज्ञानवृद्धव्यवहारस्थापनाय (महते जानराज्याय) जनानां विदुषां मध्ये परमराज्यकरणाय (इन्द्रस्येन्द्रियाय) सूर्यस्य प्रकाशवन्न्यायव्यवहारप्रकाशनायान्यायान्धकारविनाशाय (अस्यै विशे) वर्तमानायै प्रजायै यथावत्सुखप्रदानाय (इमम्) (असपत्नं सुवध्वम्) इमं प्रत्यक्षं शत्रूद्भवरहितं निष्कंटकमुत्तमराजधर्मं सुवध्वमीशिध्वमैश्वर्यसहितं कुरुत । यूयमप्येवं जानीत--(सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा) वेदविदां सभासदां मध्ये यो मनुष्यः सोम्यगुणसम्पन्नः सकलविद्यायुक्तोऽस्ति स एव सभाध्यक्षत्वेन स्वीकृतः सन् राजास्तु । हे सभासदः, ! (अमी) ये प्रजास्था मनुष्या सन्ति तान्प्रत्येवमाज्ञा श्राव्या—(एष वो राजा) अस्माकं वो युष्माकं च ससभासत्कोऽयं राजसभाव्यवहार एवं राजास्तीति । एतदर्थं वयं (इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रं) प्रख्यातनाम्नः पुरुषस्य प्रख्यातनाम्न्याः स्त्रियाश्च सन्तानमभिषिच्याध्यक्षत्वे स्वीकुर्म इति ।

भाषार्थ—(इमं देवा असपत्नम्) अब ईश्वर सब मनुष्यों को राजव्यवस्था के विषय में आज्ञा देता है कि—हे विद्वान् लोगो ! तुम इस राजधर्म को यथावत् जानकर अपने राज्य का ऐसा प्रबन्ध करो, कि जिससे तुम्हारे देश पर कोई शत्रु न आ जाय। (महते क्षत्राय) हे शूरवीर लोगो ! अपने क्षत्रियधर्म, चक्रवर्तिराज्य, श्रेष्ठकीर्ति, सर्वोत्तम राज्यप्रबन्ध के अर्थ (महते जानराज्याय) सब प्रजा को विद्वान् करके ठीक २ राज्य व्यवस्था में चलाने

के लिए, तथा (इन्द्रस्येन्द्रियाय) बड़े ऐश्वर्य; सत्य, न्याय के प्रकाश करने के अर्थ (सुवध्वं) अच्छे २ राज्य-सम्बन्धी प्रबन्ध करो कि जिनसे सब मनुष्यों को उत्तम सुख बढ़ता जाय।

समी०—इस मन्त्र में राजा वा प्रजा के धर्म का निर्देश है। चन्द्र का नाम भी नहीं। यदि सोम शब्द का अर्थ चन्द्र लिया जाय तो भी ठीक नहीं क्योंकि मन्त्र में असपत्न शब्द है जिसका अर्थ शत्रुरहित है। चन्द्र शत्रुरहित नहीं है। उसके सबसे प्रबल शत्रु राहु वा केतु हैं।

मङ्गल का निम्न मन्त्र है—

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वति॥[1]

भाष्यम्—(अयमग्निः) परमेश्वरो भौतिको वा (दिवः) प्रकाशवल्लोकस्य (पृथिव्याः) प्रकाशरहितस्य च (पतिः) पालयितास्ति (मूर्द्धा) सर्वोपरि विराजमानः, (ककुत्) तथा ककुभां दिशां च मध्ये व्यापकतया सर्वपदार्थानां पालयितास्ति। 'व्यत्ययो बहुलमिति' सूत्रेण भकारस्थाने तकारः। (अपां रेतांसि) अयमेव जगदीश्वरो भौतिकश्चापां प्राणानां जलानां च रेतांसि वीर्याणि (जिन्वति) पुष्णाति। एवं चाग्निर्विद्युद्रूपेण सूर्यरूपेण च पूर्वोक्तस्य रक्षकः पुष्टिकर्त्ता चास्ति।

भाषार्थ—(अग्निः) यह जो अग्निसंज्ञक परमेश्वर वा भौतिक है, वह (दिवः) प्रकाश वाले, और (पृथिव्याः) प्रकाशरहित लोकों का पालन करने वाला तथा (मूर्धा) सब पर विराजमान और (ककुत्पतिः) दिशाओं के मध्य में अपनी व्यापकता से सब पदार्थों का राजा है। 'व्यत्ययो बहुलम्' इस सूत्र से 'ककुभ' शब्द के भकार को तकारादेश हो गया है। (अपां रेतांसि जिन्वति) वही जगदीश्वर प्राण और जलों के वीर्यों को पुष्ट करता है। इस प्रकार भूताग्नि भी विद्युत् और सूर्य रूप से पूर्वोक्त पदार्थों का पालन और पुष्टि करने वाला है।

समीक्षा—इस मन्त्र में मङ्गल का शब्द भी नहीं है। न उसकी पूजा का और न ही पीड़ाशान्ति का वर्णन है।

निम्न मन्त्र बुध का है—

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते संसृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत॥[2]

---

१. यजु० ३। १२ २. यजु० १५। ५४

(उद् बुध्यस्वाग्ने) हे अग्ने परमेश्वर! अस्माकं हृदये त्वमुद्बुध्यस्व प्रकाशितो भव। (प्रतिजागृहि) अविद्यान्धकारनिद्रातस्सर्वान् जीवान् पृथक्कृत्य विद्यार्कप्रकाशे जागृतान् कुरु। (त्वमिष्टापूर्ते) हे भगवन्! अयं जीवो मनुष्यदेहधारी धर्मार्थकाममोक्षसामग्र्याः पूर्ति सृजेत् समुत्पादयेत्, त्वमस्येष्टं सुखं सृजेः। एवं परस्परं द्वयोः सहायपुरुषार्थाभ्यामिष्टापूर्ते संसृष्टे भवेताम्। (अस्मिन् सधस्थे) अस्मिन् लोके शरीरे च, (अध्युत्तरस्मिन्) परलोके द्वितीये जन्मनि च, (विश्वे देवा यजमानश्च सीदत) सर्वे विद्वांसो, यजमानो विद्वत्सेवाकर्त्ता च कृपया सदा जीवन्तु वर्तन्ताम्। यतोऽस्माकं मध्ये सदैव सर्वा विद्याः प्रकाशिता भवेयुरिति। व्यत्ययो बहुलमित्यनेन सूत्रेण पुरुषव्यत्ययः।

(उद् बुध्यस्वाग्ने) हे परमेश्वर! हमारे हृदय में प्रकाशित हूजिए। (प्रतिजागृहि) अविद्या की अन्धकार रूपी निद्रा से हम सब जीवों को अलग करके, विद्यारूप सूर्य के प्रकाश से प्रकाशमान कीजिए कि जिससे (त्वमिष्टापूर्ते) हे भगवन्! मनुष्यदेहधारण करने वाला जो जीव है, जैसे वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सामग्री की पूर्ति कर सके, वैसे आप इष्ट सिद्ध कीजिए। (अस्मिन् सधस्थे) इस लोक और इस शरीर तथा (अध्युत्तरस्मिन्) परलोक और दूसरे जन्म में (विश्वेदेवाः यजमानश्च सीदत) आपकी कृपा से सब विद्वान् और यजमान अर्थात् विद्या के उपदेश का ग्रहण और सेवा करने वाले मनुष्य लोग सुख से वर्तमान सदा बने रहें, कि जिससे हम लोग विद्यायुक्त होते रहें। 'व्यत्ययो बहुलम्' इस सूत्र से 'संसृजेथां' 'सीदत' इन प्रयोगों में पुरुष व्यत्यय अर्थात् प्रथम पुरुष की जगह मध्यम पुरुष हुआ।

इसमें यजमान का वर्णन है। बुध का कहीं नाम नहीं है। उद्बुध्यस्व शब्द क्रियावाची है। किसी का नाम नहीं। अक्षरसाम्य से बुध मान लेना यह परिपूर्ण अविद्या का चिह्न है।

यह बृहस्पति का मन्त्र है—

बृहस्पते अतियदर्य्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यद् दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्॥[1]

भाष्यम्—(बृहस्पते) हे बृहतां वेदानां पते पालक! (ऋतप्रजात) वेदविद्याप्रतिपादित जगदीश्वर! त्वं (जनेषु) यज्ञकारकेषु विद्वत्सु लोकलोकान्तरेषु वा (क्रतुमत्) भूयांसः क्रतवो भवन्ति यस्मिंस्तत्, (द्युमत्) सत्यव्यवहारप्रकाशो विद्यते यस्मिंस्तत्, (दीदयच्छवसः) दानयोग्यं, शवसो बलस्य प्रापकं,

---

१. यजु० २६। ३

(यदर्यो अर्हात्) येन विद्याविधनेन युक्तः सन्, अर्यः स्वामी राजा, वणिग्जनो वा धार्मिकेषु जनेषु (विभाति) प्रकाशते, (चित्रं) यद्धनमद्भुतम् (तदस्मासु द्रविणं धेहि) तदस्मदधीनं द्रविणं धनं कृपया धेहीत्यनेन मन्त्रेणेश्वरः प्रार्थ्यते ।

भाषार्थ—(बृहस्पते) हे वेदविद्यारक्षक ! (ऋतप्रजात) वेदविद्या से प्रसिद्ध जगदीश्वर ! आप, (तदस्मासु द्रविणं धेहि) जो सत्यविद्यारूप अनेक प्रकार का (चित्रं) अद्भुत धन है, सो हमारे बीच में कृपा करके स्थापन कीजिए। कैसा वह धन है कि (जनेषु) विद्वानों और लोकलोकांतरों में (क्रतुमत्) जिससे बहुत सें यज्ञ किए जायें, (द्युमत्) जिससे सत्य व्यवहार के प्रकाश का विधान हो, (शवसः) बल की रक्षा करने वाला और (दीदयत्) धर्म और सबके सुख का प्रकाश करने वाला तथा (यदर्य्यो०) जिसको धर्म-युक्त योग्य व्यवहार के द्वारा राजा और वैश्य प्राप्त होकर (विभाति) धर्म-व्यवहार अथवा धार्मिक श्रेष्ठ पुरुषों में प्रकाशमान होता है, उस सम्पूर्ण विद्यायुक्त धन को हमारे बीच में निरंतर धारण कीजिए। ऐसे इस मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना की जाती है।

समी०—इस मन्त्र में बृहस्पति परमेश्वर का वाचक है। यौगिक है रूढ़ नहीं। ग्रह-पूजा वा ग्रहपीड़ा निवारण का नाम नहीं।

यह शुक्र का मन्त्र है—

अन्नात् परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धसः इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥[1]

भाष्यम्—(क्षत्रं) यत्र यद्राजकर्म क्षत्रियो वा (ब्रह्मणा) वेदविद्भिश्च सह, (पयः) अमृतात्मकं, (सोमं) सोमाद्योषधिसम्पादितं, (रसं) बुद्ध्यानन्द-शौर्यधैर्यबलपराक्रमादिसद्गुणप्रदं, (व्यपिबत्) पानं करोति, तत्र स सभा-ध्यक्षो राजन्यः (ऋतेन) यथार्थवेदविज्ञानेन, (सत्यं) धर्मं राज्यव्यवहारं च (इन्द्रियं) शुद्धविद्यायुक्तं शान्तं मनः, (विपानं) विविधराजधर्मरक्षणं, (शुक्रं) आशुसुखकरम्, (अन्धसः) शुद्धान्नस्येच्छाहेतुं, (पयः) सर्वपदार्थसारविज्ञान-युक्तं, (अमृतं) मोक्षसाधकं, (मधु) मधुरं सत्यशीलस्वभावयुक्तं, (इन्द्रस्य) परमैश्वर्ययुक्तस्य सर्वव्यापकान्तर्यामिन ईश्वरस्य कृपया, (इन्द्रियं) विज्ञान-युक्तं, मनः प्राप्य (इदं) सर्वं व्यावहारिकपारमार्थिकं सुखं प्राप्नोति। (प्रजा-पतिः) परमेश्वर एवमाज्ञापयति—यः क्षत्रियः प्रजापालनाधिकृतो भवेत्, स एवं प्रजापालनं कुर्यात्। (अन्नात्परिस्रुतः) स चामृतात्मको रसोऽन्नाद्

१. यजु० १९।७५

भोज्यात्पदार्थात्परितः सर्वतः सुतश्च्युतो युक्तो वा कार्य्यः। यथा प्रजायामत्यन्तं सुखं सिध्येत्तथैव क्षत्रियेण कर्त्तव्यम्।

भाषार्थ—जो राजकर्म अथवा क्षत्रिय है, वह सदा न्याय से (ब्रह्मणा) वेदवित् पुरुषों के साथ मिलकर ही राज्य पालन करे। इसी प्रकार (पयः) जो अमृतरूप (सोमं) सोमलता आदि ओषधियों का सार, तथा (रसं) जो बुद्धि, आनन्द, शूरता, धीरज, बल और पराक्रम आदि उत्तम गुणों का बढ़ाने वाला है, उनको (व्यपिबत्) जो राजपुरुष अथवा प्रजास्थ लोग वैद्यक शास्त्र की रीति से पीते हैं वे सभासद् और प्रजास्थ मनुष्य लोग (ऋतेन) वेदविद्या को यथावत् जान के, (सत्यं) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (इन्द्रियं) शुद्ध विद्यायुक्त शांतस्वरूप मन, (विपानं) यथावत् प्रजा का रक्षण (शुक्रम्) शीघ्र सुख करने हारा, (अन्धसः) शुद्ध अन्न की इच्छायुक्त, (पयः) सब पदार्थों का सार, विज्ञानसहित (अमृतं) मोक्ष के ज्ञानादि साधन, (मधु) मधुरवाणी और शीलता आदि जो श्रेष्ठ गुण हैं; (इदं) उन सब से परिपूर्ण होकर (इन्द्रस्य) परमैश्वर्ययुक्त व्यापक ईश्वर की कृपा से, (इन्द्रियं) विज्ञान को प्राप्त होते हैं। (प्रजापतिः) इसलिए परमेश्वर सब मनुष्यों और राजपुरुषों को आज्ञा देता है कि तुम लोग पूर्वोक्त व्यवहार और विज्ञान विद्या को प्राप्त होके, धर्म से प्रजा का पालन किया करो (अन्नात्परिस्रुतः) उक्त अमृत स्वरूप रस को उत्तम भोजन के पदार्थों के साथ मिलाकर सेवन किया करो कि जिससे प्रजा में पूर्ण सुख की सिद्धि हो।

समी०—मंत्र का देवता=प्रतिपाद्य विषय प्रजापति है। मंत्रगत शुक्र शब्द को देखकर शुक्र ग्रह समझना उपहासास्पद है।

अब शनि का मंत्र है—

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥[1]

भाष्यम्—(आप्लृ व्याप्तौ) अस्माद्धातोरप्शब्दः सिद्ध्यति, स नियत-स्त्रीलिङ्गो बहुवचनान्तश्च। 'दिवु' क्रीडाद्यर्थः। (देवीः) देव्यः आपः, सर्व-प्रकाशकः, सर्वानन्दप्रदः, सर्वव्यापक ईश्वरः (अभीष्टये) इष्टानन्दप्राप्तये, (पीतये) पूर्णानन्दभोगेन तृप्तये, (नः) अस्मभ्यं, शं कल्याणकारिका भवन्तु, स ईश्वरो नः कल्याणं भावयतु प्रयच्छतु। ता आपो देव्यः स एवेश्वरो, नोऽस्माकमुपरि (शंयोः) सर्वतः सुखस्य वृष्टिं करोतु। अत्र प्रमाणम्—

यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः।
असच्च यत्र सच्चान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥[2]

१. यजु० ३६।१२ २. अथर्व० १०।७।१०

अनेन वेदमन्त्रप्रमाणेनाप्छब्देन परमात्मनो ग्रहणं क्रियते। तद्यथा—(आपो ब्रह्म जना विदुः) विद्वांस आपो ब्रह्मणो नामास्तीति जानन्ति। (यत्र लोकांश्च कोशांश्च) यस्मिन् परमेश्वरो सर्वान् भूगोलान्निधींश्च, (असच्च यत्र सच्च) यस्मिन्नानित्यं कार्यं जगदेतस्य कारणं च स्थितं जानन्ति। (स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः) स जगद्धाता सर्वेषां पदार्थानां मध्ये कतमोऽस्ति, विद्वंस्त्वं ब्रूहीति पृच्छ्यते (अन्तः) स जगदीश्वरः सर्वेषां जीवा-दिपदार्थानामाभ्यन्तरेऽन्तर्यामिरूपेणावस्थितोऽस्तीति भवन्तो जानन्तु।

भाषार्थ—(शन्नो देवी) आप्लृ व्याप्तौ इस धातु से अप् शब्द सिद्ध होता है। सो वह सदा स्त्रीलिङ्ग और बहुवचनान्त है। तथा जिस 'दिवु' धातु के क्रीडा आदि अर्थ हैं उससे देवी शब्द सिद्ध होता है। (देवीः) अर्थात् जो ईश्वर सबका प्रकाश और सबको आनन्द देने वाला, (आपः) सर्वव्यापक है, (अभीष्टये) वह इष्ट आनन्द और (पीतये) पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिए, (नः) हमको सुखी होने के लिए (शं) कल्याणकारी (भवन्तु) हो। वही परमेश्वर (नः) हम पर (शंयोः) सुख की (अभिस्रवन्तु) वृष्टि करे।

इस मन्त्र में 'आप' शब्द से परमात्मा के ग्रहण होने में प्रमाण यह है कि (आपो ब्रह्म जना विदुः) अर्थात् विद्वान् लोग ऐसा जानते हैं कि 'आप' परमात्मा का नाम है।

प्रश्न—(यत्र लोकांश्च कोशांश्च) सुनो जी, जिसमें पृथिव्यादि सब लोक, सब पदार्थ स्थित, (असच्च यत्र सच्च) तथा जिसमें अनित्य कार्य जगत् और सब वस्तुओं के कारण ये सब स्थित हो रहे हैं, (स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः) वह सब लोकों को धारण करने वाला कौन पदार्थ है?

उत्तर—(अन्तः) जो सब पृथिवी आदि लोक और जीवों के बीच में अन्तर्यामीरूप से परिपूर्ण भर रहा है। ऐसा जानकर आप लोग उस परमेश्वर को अपने ही अन्तःकरण में खोजो।

समी०—इस मन्त्र का देवता आप्लृ है। इस मन्त्र में शनि का कहीं नाम नहीं है। शं तथा नः दो शब्दों के मिले हुए शन्नो समूह से शनि की कल्पना करके शनि मन्त्र कहा जाता है। ऐसा कहने वाले वेद विरोधी हैं।

अब राहु के मन्त्र को देखिए—

कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता॥●

भाष्यम्—(कया) उपासनारीत्या। (शचिष्ठया) अतिशयेन

● यजु० २७। ३९॥

सत्कर्मानुष्ठानप्रकारया (वृता) शुभगुणेषुवर्तमानया, (तया) सर्वोत्तमगुणा-लङ्कृतया सभया प्रकाशितः (चित्रः) अद्भुतानन्तशक्तिमान्, (सदावृधः) सदानन्देन वर्धमान इन्दुः परमेश्वरः, (नः) अस्माकं (सखा) मित्रः (आभुवत्) यथाभिमुखो भूत्वा (ऊती) स जगदीश्वरः कृपया सर्वदा सहायकरणेनास्माकं रक्षको भवेत्, तथैवास्माभिः स सत्यप्रेमभक्त्या सेवनीय इति॥

भाषार्थ—(कया) जो किस उपासना रीति (शचिष्ठया) और सत्य-धर्म के आचरण से सभासद् सहित, (वृता) सत्यविद्यादि गुणों में प्रवर्तमान, (कया) सुखरूप वृत्ति सहित सभा से प्रकाशित (चित्रः) अद्भुत स्वरूप, (सदावृधः) आनन्द स्वरूप, और आनन्द बढ़ाने वाला परमेश्वर है, वह (नः) हमारे आत्माओं में (आभुवत्) प्रकाशित हो। (ऊती) तथा किस प्रकार वह जगदीश्वर हमारा सदा सहायक होकर कृपा से नित्य रक्षा करे कि (उषद्भिः समजायथाः) हे अग्ने जगदीश्वर! आपकी आज्ञा में जो रमण करने वाले हैं, उन्हीं पुरुषों से आप जाने जाते हैं। और उन धार्मिक पुरुषों के अन्तः-करण में आप अच्छे प्रकार प्रकाशित होते रहो।

समी०—इस मन्त्र में राहु शब्द ही नहीं है। इसमें क्या चारों वेदों में नहीं है। क्या ऐसे राहु का, जिसका सिर विष्णु ने काटा हो, वर्णन कहीं वेदों में है? यह पता नहीं कि राहु पीडानिवारण इस मन्त्र में कहां है।

अब केतु को देख लीजिए—

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्य्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः॥●

भाष्यम्—हे (मर्य्या) मनुष्याः! (उषद्भिः) परमेश्वरं कामयमानै-स्तदाज्ञायां वर्तमानैर्विद्वद्भिर्युष्माभिः सह समागमे कृते सत्येव, (अकेतवे) अज्ञानविनाशाय, (केतुं) प्रज्ञानम्, (अपेशसे) दारिद्र्यविनाशाय, (पेशः) चक्रवर्तिराज्यादिसुखसम्पादकं धनं च (कृण्वन्) कुर्वन् सन् जगदीश्वरः (अजा-यथाः) प्रसिद्धो भवतीति वेदितव्यम्।

भाषार्थ—हे विज्ञान स्वरूप, अज्ञान के दूर करने हारे ब्रह्मन्! आप (केतुं कृण्वन्) हम सब मनुष्यों के आत्माओं में ज्ञान का प्रकाश करते रहिए तथा (अकेतवे) अज्ञान और (अपेशसे) दरिद्रता के दूर करने के अर्थ (पेशः) विज्ञान धन और चक्रवर्ति राज्य धर्मात्माओं को देते रहिए कि जिससे (मर्याः) जो आपके उपासक लोग हैं वे कभी दुःख को न प्राप्त हों।

समी०—इस मन्त्र में केतु शब्दसाम्य को देखकर केतु-मन्त्र मान लिया। इस मन्त्र में कटे सिरवाले केतु का कहीं नाम नहीं है। सर्वत्र कहीं

१. यजु० २९। ३७॥

शब्दसाम्य से, कहीं पर्याय से, कहीं अक्षरसाम्य से, कहीं अधिदेव के वाचक से, कहीं कल्पना से काम लिया है किन्तु कहीं भी ग्रह का प्रसङ्ग नहीं। सूर्य चन्द्रादि जो शब्द हैं उनके साथ ग्रह शब्द कहीं नहीं। तब इनके ग्रह होने में क्या प्रमाण है? इसीलिए सूर्य चन्द्र को छोड़कर मंगल आदि के साथ ग्रह शब्द को जोड़ दिया। चारों वेदों में जो भी देव आए हैं उनमें से किसी के साथ ग्रह शब्द जोड़ा नहीं जाता। किसने नवग्रहों का पूजाविधान किया इसका कुछ पता नहीं। यदि इसके नाम का ज्ञान होता तो किस काल का बना है स्यात् इसका पता चलता। ऋषि मुनियों के बनाए गृह्य सूत्रों में नवग्रह पूजा का विधान कहीं नहीं, अतः यह अवैदिक एवं अनार्ष है।

नवग्रहों की शान्ति के लिए ग्रहदान वा मन्त्र जप करते और कराते हैं। इसके विषय में निम्न कोष्ठक से पता चलेगा—

ग्रह दान के द्रव्य

सूर्य—माणिक्य, गेहूँ, सवत्सा गौ, कमलपुष्प, कसूमी वस्त्र, लाल चन्दन, सुवर्ण और ताम्र।

चन्द्र—वंशपात्र, चावल, श्वेतवस्त्र, चांदी, वृषभ वा गौ कांस्यपात्र में घृत-कपूर और मोती।

भौम—मूंगा, मसूर, गेहूँ, लालवृषभ, गुड़, लालपात्र, कनेर के फूल, सुवर्ण और ताम्र।

बुध—कांस्य का पात्र, वस्त्र, हस्ती, मूंगा, गौ, सुवर्ण वा चांदी, दासी और पुष्प।

गुरु—पीतधान्य, पीतवस्त्र, सुवर्ण, पुखराज, हल्दी, अश्व, लवण और शर्करा।

शुक्र—चावल श्वेत चित्र, चांदी, सुवर्ण, श्वेत अश्व, सुगन्ध द्रव्य और सवत्सा गौ।

शनि—तिल, तैल, कृष्णवस्त्र, कुलथी, लोहा, भैंस, उड़द, नीलम और दक्षिणा

राहु—नीलवस्त्र, गोमेदरत्न, तिल, तैल, लोहा, कम्बल, गेहूँ, अश्व और अभ्रक।

केतु—कम्बल, कस्तूरी, वैदूर्यमणि, तिल तैल, काले फूल और काला वस्त्र।

नवग्रह गोचर दोष को शान्त करने के लिए मन्त्र एवं संख्या—

सूर्य	ओं	ह्रां	ह्रीं	ह्रूं	सः	सूर्याय नमः	७०००
चन्द्र	ओं	श्रां	श्रीं	श्रौं	सः	चन्द्रमसे नमः	११०००
कुज	ओं	क्रां	क्रीं	क्रौं	सः	भौमाय नमः	१००००
बुध	ओं	ब्रां	ब्रीं	ब्रौं	सः	बुधाय नमः	९०००
बृहस्पति	ओं	ह्रां	ह्रीं	ह्रौं	सः	बृहस्पतये नमः	१९०००
शुक्र	ओं	द्रां	द्रीं	द्रौं	सः	शुक्राय नमः	१६०००
शनि	ओं	खां	खीं	खौं	सः	शनये नमः	२३०००
राहु	ओं	भ्रां	भ्रीं	भ्रौं	सः	राहवे नमः	१८०००
केतु	ओं	प्रां	प्रीं	प्रौं	सः	केतवे नमः	१७०००

'जो ग्रहों का दान जप, पाठ, पूजा करावें तो दुःखों से बचते हैं नहीं तो दुःखों से सन्तप्त रहेंगे' ऐसा विश्वास है।

ज्योतिषी कहते हैं कि नीलम, नीले ग्रह शनि को शान्त करने के लिए, मूंगा मूंगिया रंग के मङ्गल को शान्त करने के लिए पहनना चाहिए। वैज्ञानिक दृष्टि से इसका कोई महत्त्व नहीं है। इतनी दूरी से किरणों का कोई प्रभाव नहीं हो सकता। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि सूर्य को छोड़कर किसी ग्रह के पास किरणें हैं ही नहीं'''। साप्ताहिक हिन्दुस्तान २८ वैशाख, २०३२

समी०—"सुनो पोप जी! तुम्हारा और ग्रहों का क्या सम्बन्ध है? ग्रह क्या वस्तु हैं?

पोप जी—दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदैवतम्॥

देखो कैसा प्रमाण है—देवताओं के आधीन सब जगत्, मन्त्रों के आधीन सब देवता और वे मन्त्र ब्राह्मणों के आधीन हैं। इसलिए ब्राह्मण देवता कहाते हैं क्योंकि चाहें जिस देवता को मन्त्र के बल से बुला प्रसन्न कर काम सिद्ध कराने का हमारा ही अधिकार है। जो हम में मन्त्रशक्ति न होती तो तुम्हारे से नास्तिक हमको संसार में रहने ही न देते।

सत्यवादी—जो चोर, डाकू, कुकर्मी लोग हैं वे भी तुम्हारे देवताओं के आधीन होंगे? देवता ही उनसे दुष्टकाम कराते होंगे? जो वैसा है तो तुम्हारे देवता और राक्षसों में कुछ भेद न रहेगा। जो तुम्हारे आधीन मन्त्र हैं उनसे तुम चाहो सो करा सकते हो तो उन मन्त्रों से देवताओं को वशकर राजाओं के कोष उठवाकर अपने घर में भरकर बैठ के आनन्द क्यों नहीं भोगते? घर २ में शनैश्चरादि के तैल आदि छायादान लेने को मारे-मारे क्यों फिरते हो? और जिसको तुम कुबेर मानते हो उसको वश में करके चाहो जितना धन लिया करो, विचारे गरीबों को क्यों लूटते हो? तुमको दान देने से ग्रह प्रसन्न और न देने से अप्रसन्न होते हों तो हमको सूर्यादि ग्रहों की प्रसन्नता अप्रसन्नता प्रत्यक्ष दिखलाओ''''''जो तुम में मन्त्रशक्ति हो तो तुम स्वयं राजा वा धनाढ्य क्यों नहीं बन जाओ? वा शत्रुओं को अपने वश में

क्यों नहीं कर लेते हो ? नास्तिक वह होता है जो ईश्वर की आज्ञा न माने और वेदविरुद्ध पोपलीला चलावे। जब तुम को ग्रहदान न देवे, जिस पर ग्रह हैं वही ग्रहदान को भोगे तो क्या चिन्ता है ? जो तुम कहो कि नहीं हम ही को देने से वे प्रसन्न होते हैं अन्य को देने से नहीं तो क्या तुमने ग्रहों का ठेका ले लिया है ? जो ठेका लिया हो तो सूर्यादि को अपने घर में बुलाके जल मरो……।'' स० प्र० ११ समु०

ये वाममार्ग के बीजाक्षर हैं। इनको मिलाकर मन्त्रनाम से उस २ ग्रह को नमस्कार किया है। संस्कृत से अनभिज्ञ व्यक्ति "इनमें कोई रहस्य होगा जिसके जाप से ग्रहजनित पीड़ा नष्ट होती है" यह समझते हैं और अपने जीवन को नष्ट करते हैं। जो संस्कृत को जानते हैं वे 'इन ह्रां, श्रां, क्रां, अक्षरों में कोई छिपी हुई शक्ति होगी' ऐसा मानते हैं। गेहूँ, चावल का इन ग्रहों के साथ क्या सम्बन्ध है ? सोना चांदी का और ग्रहों का क्या सम्बन्ध है ? ये नवग्रह मन्त्र वास्तव में वाममार्ग वालों के बीजाक्षर हैं। इन को लेकर फलित को मानने वालों ने यह सिद्ध किया कि वे वाममार्ग को मानते हैं। वास्तव में यह वाममार्ग का छिपा हुआ प्रचार है। जब तक यह फलित की लीला बनी रहेगी वाममार्ग भी इस देश से हिल नहीं सकता। आज जो वाममार्ग विद्यमान है उसका यह भी एक आधार है। हन्त ! क्वात्रास्ता: क्व पतिता: । सोच क्या रहे थे और हो क्या गया ?

प्रत्येक प्राणी का भविष्यत् भिन्न २ होता है। ज्यौतिष पिण्ड प्रत्येक मनुष्य के भाग्य के अनुसार अपनी गति परिवर्तित नहीं करते जिससे भाग्य को जान सके। क्रियमाणानुसार ग्रह कैसे परिवर्तित होते रहेंगे ? यदि नहीं परिवर्तित होंगे तो मनुष्य कर्म करने में परतन्त्र होगा।

"कहा जाता है कि गुरु पुष्ययोग में सभी प्राणियों को सुख मिलता है परन्तु रामायण से यह बात कट जाती है। घटना उस समय की है जब वन गमन का निश्चय करके राम अन्तःपुर में गए थे। सीता को तब तक वन-वास की बात बिल्कुल मालूम नहीं थी। अपने पतिदेव को उद्विग्न देखकर सीता साश्चर्य पूछती है बुद्धिमान् ब्राह्मणों ने कहा है कि आज गुरुपुष्य योग है। फिर क्या कारण है कि आप दुर्मन (उद्विग्न) हैं।'[1] इससे जहां एक ओर यह प्रमाणित होता है कि गुरुपुष्य योग की सुखदायकता कल्पित है, वहीं दूसरी ओर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य की उद्विग्नता और प्रसन्नता

१. अद्य बार्हस्पत: श्रीमन् युक्त: पुष्येण राघव ।
प्रोच्यते ब्राह्मणै: प्राज्ञै: केन त्वमसि दुर्मना: ॥ वा० रा० २।२६।६

उसकी अपनी मनःस्थिति और परिस्थिति पर निर्भर है, ग्रहस्थिति पर नहीं…।''[1]

जब शरीर पर एक चिऊंटी चढ़ जाती है तो मनुष्यों को पता चल जाता है, तब इतने बड़े २ खरबों टन तोल के ग्रह किसी पर चढ़ जावें और उस को पता ही नहीं चले इससे बड़ा आश्चर्य और क्या ? गुरु जैसा ग्रह पृथिवीस्थ मनुष्य पर क्या पृथिवी पर ही गिर जाये तो पृथिवी चूर २ हो जाये। तथापि फलित वाले कहते हैं कि शनि चढ़ बैठा है, इससे बढ़कर असत्य क्या ?

करदीप से या भौतिक प्रकाश से जब हम प्राणियों के पेट का मल भी नहीं देख पाते तो फिर ज्यौतिष पिण्डों के प्रकाश से प्राणियों का भवितव्य कैसे दिखाई दे सकेगा कि जो मल की अपेक्षा सूक्ष्म और अन्तरित है ?

ग्रह जड़ हैं। जप होमादि करने वालों पर वे प्रसन्न और न करने वालों पर अप्रसन्न नहीं हो सकते। उनसे भय करना कायरता की पराकाष्ठा है तो उनसे कृपा की आशा करना मूढ़ता की। ग्रहों को सुखदुःख में कारण मानें तो कर्मसिद्धान्त कट जाता है। यदि ग्रह ही कारण हैं तो दान, स्वाध्याय, सन्ध्या और यज्ञादि व्यर्थ माने जायेंगे। इस प्रकार सिद्धान्त विरोध होगा। मनुष्य ग्रहों के प्रकोप को शान्त करने के लिए नवग्रहपूजा आदि में उलझा रह जाता है, संयम, उदारता, परोपकार, सहिष्णुता आदि सब शुभ गुण व्यर्थ हो जाते हैं। वह भूल जाता है कि जिन सद्गुणों की उसके द्वारा उपेक्षा हो रही है वे सुख शान्ति के वास्तविक उपाय हैं।

शास्त्रों में आत्मोन्नति वा पतन के निमित्तों में नवग्रहों को न साधक कहा है और न बाधक ही। इसके विरुद्ध यह लिखा है कि मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही है। आप ही अपना बन्धु है और आप ही अपना शत्रु। इसलिए अपने आप ही अपने आत्मा का उद्धार करे पतन नहीं। देखिए—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । मै० सं० १ ॥
उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसीदयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ गीता
आत्मानमेव मन्येत कर्त्तारं सुखदुःखयोः । चरक

"हमारे देश के सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं, जिनमें फलित ज्यौतिष के सम्बन्ध में कोई विशेष[2] उल्लेख नहीं है। यह विश्वास भारत के आदि युग में बिलकुल ही नहीं था कि मनुष्य के भाग्य का नियन्त्रण कोई आकाश-

१. फलित के अन्ध विश्वास से २. वेद में फलित के सम्बन्ध में लेश भी नहीं है।

चारी ग्रह या नक्षत्र कर रहा है। अपने शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरूप ही मनुष्य शुभ या अशुभ फल पाता है; किसी दूसरे के कारण नहीं। यही साधारण विचार था।"""कुछ यूरोपियन पण्डितों का विश्वास है कि यह बात वेबिलोनिया और असीरिया से भारतवर्ष में आई होगी। उन दिनों यूफ्रेटस की घाटियों में पुरोहितों को भविष्यफल बताना पड़ता था। इन पुरोहितों को 'बारे' कहा करते थे। ये लोग बलि दिए पशुओं के जिगर की और आसमान में चलने वाले ग्रहों की गति के अनुसार फल बताते थे। बहुत सम्भव है कि यूफ्रेटस उपत्यका की यह विद्या भारत में आई हो क्योंकि उन दिनों भारतीय व्यापारी यूफ्रेटस की घाटियों में व्यापार करने जाया करते थे। यह बात ईसा के छः सात सौ साल पहले की है"""कुछ यूरोपियन पंडितों की धारणा है कि ग्रह और राशियों का परिचय ग्रीकों ने भारतवासियों को दिया"""।

हजारीप्रसाद जी द्विवेदी

ग्रन्थ के अन्त में विस्तारपूर्वक विचार करके यह इस देश का नहीं हो सकता ऐसा सिद्ध करेंगे। उसमें केवल एक प्रमाण प्रस्तुत करेंगे। स्थानाभाव के कारण यहां अधिक प्रमाण नहीं दिये जा सकते। जो भी हो इस अन्धविश्वास से मनुष्य का सर्वविध पतन होता है। इसलिए इसको छोड़कर धर्मार्थकाममोक्ष की प्राप्ति के लिए मनुष्य सतत प्रयत्न करे, अन्यथा अमूल्य मनुष्य का जन्म व्यर्थ की चेष्टाओं में विनष्ट होगा परमानन्द से वंचित रहेगा न अपनी उन्नति होगी न दूसरों की।

—:o:—

अथाष्टादशसमुल्लासः

अथ राशिं व्याख्यास्यामः !

पृथिवी पर रहने वाले मनुष्यों को सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादि पृथिवी के चारों ओर घूमते प्रतीत होते हैं। वे जिस मार्ग से घूमते हैं वह हमें वृत्ताकार में ही प्रतीत होता है। उनकी स्थिति को जानने के लिए आकाश (वृत्त) को १२ भागों में बांट दिया। एक २ का नाम राशि रख दिया। एक २ राशि के ३०-३० भाग करके एक २ का नाम अंश रख दिया। एक २ अंश के ६०, ६० विभाग कर एक २ का नाम कला रख दिया। कला को ६० भागों में विभक्त कर एक २ का नाम विकला रख दिया। इससे भी सूक्ष्म अवयव हैं।

इस समुल्लास में राशियों के विषय में विचार करेंगे। राशि का अर्थ जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, वृत्त का बारहवां भाग है। मुख्य करके क्रान्तिवृत्त के भागों के लिए ही इस प्रकार का व्यवहार है। नक्षत्र भी इसी में सम्मिलित होते हैं। २७ नक्षत्रों के १२ भाग करने से एक राशि में २¼ नक्षत्र आते हैं। इन राशियों के मेष, वृषभ आदि प्रसिद्ध नाम हैं। जैसे नाम हैं वैसी ही उनकी आकृतियां भी बतलाई जाती हैं। ये आकार क्या हैं? इन राशियों का आकारों के साथ क्या सामञ्जस्य है? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर में फलित वालों का समाधान यह है कि जिस राशि में जो नक्षत्र हैं उनका समूह मेष आदि आकारों का है। जैसा अश्विनी के तीन नक्षत्र वा भरणी के तीन नक्षत्र और कृत्तिका का एक पाद ये सब मिलकर मेषाकार के समान सन्निविष्ट हैं। इसी प्रकार वृषभ आदि मीनान्त समस्त राशियां हैं। 'यथाऽकारास्तथा गुणाः' के अनुसार इन राशियों के भिन्न-भिन्न फल हैं। इतना ही नहीं एक ग्रह मेषराशि पर जो फल देता है वही वृषभ राशि पर भिन्न फल देता है जैसा कि पूर्व समुल्लास में लिखा है। इत्यादि बहुत प्रकार के फलों का वर्णन किया है। जैसा फलित वालों ने मृत्यु के सम्बन्ध में लिखा है वह नीचे दिया जाता है। यह उद्धरण ज्योतिश्चन्द्रिका से दिया जाता है—

आयुस्तस्य विनिर्देश्यं कार्तिकस्य सितेतरे ।
पक्षे बुधे नवम्यां च निशीथे च शिरोरुजा ।
निधनं स्यात् निशानाथे जन्मकाले जलस्थिते ॥
माघमासे नवम्यां च शुक्लपक्षे भृगोर्दिने ।
रोहिण्यां निधनं विद्याज्जन्मनीन्दौ वृषस्थिते ॥
वैशाखे शुक्लपक्षे च द्वादश्यां बुधवासरे ।
मध्याह्ने हस्तनक्षत्रे निर्याणं च विनिर्दिशेत् ॥
माघमासे सिते पक्षे नवम्यां भृगुवासरे ।
रोहिणीनामनक्षत्रे व्रजेदायुः प्रपूर्णताम् ॥
फाल्गुनस्य सिते पक्षे पञ्चम्यां सोमवासरे ।
मध्याह्ने जलमध्ये च मृत्युर्नूनं न संशयः ॥
चैत्रकृष्णत्रयोदश्यां निधनं रविवासरे ।
पञ्चाशीतिर्भवेदायुर्वैशाखस्याद्यपक्षके ।
सार्पेऽष्टम्यां भृगोर्वारे निधनं पूर्वयामके ॥
ज्येष्ठमासे सिते पक्षे दशम्यां बुधवासरे ।
हस्तनक्षत्रसंयुक्ते मध्ये रात्रिगते सति ॥
आषाढस्य सिते पक्षे पञ्चम्यां भृगुवासरे ।
निशायां हस्तनक्षत्रे निधनं सर्वथा भवेत् ॥
श्रावणस्य सिते पक्षे दशम्यां भौमवासरे ।
ज्येष्ठायां निधनं नूनं चन्द्रे मकरसंस्थिते ॥
भाद्रमासे सिते पक्षे चतुर्थ्यां शनिवासरे ।
भरणीनामनक्षत्रे गृणन्ति मरणं नृणाम् ॥
आश्विनस्य सिते पक्षे द्वितीयायां गुरोर्दिने ।
कृत्तिकानामनक्षत्रे सायं मृत्युर्न संशयः ॥ जातकाभरण ॥

अर्थ—जिसकी **मेषराशि** हो उसकी मृत्यु कार्तिकबदि नवमी बुधवार को हो। **वृषराशि** वाले मनुष्य की मृत्यु माघशुदि नवमी, शुक्रवार को रोहिणी नक्षत्र में हो। **मिथुनराशि** वाला मनुष्य वैशाखशुदि द्वादशी बुधवार को मध्याह्न समय हस्त नक्षत्र में मृत्यु को प्राप्त हो। **कर्कराशि** वाले मनुष्य की आयु माघशुदि नवमी शुक्रवार को रोहिणी नक्षत्र में पूर्ण हो। (वृषराशि वाले मनुष्य के लिए भी यही समय निश्चित किया है।) **सिंहराशि** वाले मनुष्य की मृत्यु फाल्गुनशुदि पञ्चमी सोमवार को मध्याह्न समय जल के बीच हो। इसमें कुछ सन्देह नहीं है। **कन्याराशि** वाले मनुष्य की मृत्यु चैत्रबदि त्रयोदशी रविवार को हो। **तुलाराशि** वाला मनुष्य ८५

वर्ष की आयु में वैशाखबदि ८ शुक्रवार को श्लेषा नक्षत्र में मरण को प्राप्त हो[1]। **वृश्चिक राशि** वाले मनुष्य की मृत्यु ज्येष्ठशुदि दशमी बुधवार को हस्त नक्षत्र में मध्यरात्रि पर हो। **धनुराशि** वाले मनुष्य की मृत्यु आषाढ शुदि पञ्चमी शुक्रवार को हस्तनक्षत्र में हो।[2] **मकर राशि** वाले की मृत्यु अवश्य श्रावणशुदि दशमी मंगलवार को ज्येष्ठ नक्षत्र में हो। **कुम्भराशि** वाले की मृत्यु भाद्रपदशुदि चतुर्थी शनिवार को भरणी नक्षत्र में हो। (यहां भी जातकाभरणकर्त्ता ने गणित में भूल की है। क्योंकि भरणी नक्षत्र, श्रवण नक्षत्र से सातवां है। इसलिए श्रावण की पूर्णमासी से ७ दिन पश्चात् अर्थात् भाद्रपद कृष्ण को आवेगा। शुक्ल पक्ष की ४ को कदापि नहीं आ सकता।) **मीनराशि** वाले की मृत्यु आश्विनशुदि २ बृहस्पतिवार को सायंकाल कृत्तिका नक्षत्र में हो। इसमें सन्देह नहीं। यहां भी गणित में भूल है। क्योंकि कृत्तिका नक्षत्र पूर्वाभाद्रपद से ५वां है। इसलिए आश्विनवदि ५ को आना चाहिए। आश्विन शुदि २ को किसी प्रकार से नहीं आ सकता।

गणित की भूलों को छोड़कर (जिनसे ग्रन्थकर्त्ता की गणितज्ञता अच्छी प्रकार झलकती है) इस ग्रन्थ के अनुकूल सब मनुष्यों को उक्त ११ दिन में मरना चाहिए। वर्ष भर के शेष ३४६ दिन में किसी की मृत्यु न होनी चाहिए, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य की कोई राशि अवश्य होती है। परन्तु संसार भर के मनुष्यों की गणना दूर रहो, एक नगर ही की परीक्षा से इस बात का मिथ्यात्व प्रकट हो जायेगा। अर्थात् परीक्षा से ज्ञात होगा कि कोई दिन ऐसा न होगा कि कुछ मनुष्यों की मृत्यु न हुई हो। परीक्षा से यह भी खुल जायेगा कि एक राशि के सब मनुष्यों की मृत्यु एक ही (नियत) दिन नहीं होती। केवल इतना ही नहीं किन्तु इस विषय में फलित के ग्रन्थों में परस्पर बड़ा विरोध है। जातकाभरण के विरुद्ध मानसागरी के कर्त्ता-महाशय की गणितज्ञता और पाण्डित्य का भी कुछ परिचय दिया जाता है।

(मेष) कार्तिकमासे तिथि चौथ वार मंगल भरणी नक्षत्रे देहं त्यजति। (वृष) माघमासे शुक्लपक्षे तिथौ ६ शुक्रदिने रोहिणीनक्षत्रे अर्द्धरात्रौ देहं त्यजति। (मिथुन) पौषमासे कृष्णपक्षे अष्टमीदिने बुधवारे आर्द्रानक्षत्रे प्रथम-प्रहरे देहं त्यजति। (कर्क) फाल्गुनमासे शुक्लपक्षे ४ प्रहरे गोधूलिवेलायां देहं त्यजति। (सिंह) श्रावणमासे शुक्लपक्षे दशमीदिने पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रे रविवारे १ प्रहरे देहं त्यजति। (कन्या) भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे नवमीदिने

---

१. वैशाखबदि अष्टमी को अश्लेषा नक्षत्र कथमपि नहीं हो सकता। ले०

२. आषाढ शुदि पञ्चमी को हस्त नक्षत्र होता नहीं, अतः यह भूल है। ले०

बुधवारे हस्तनक्षत्रे गोधूलिकवेलायां देहं त्यजति । (तुला) वैशाखमासे शुक्लपक्षे १३ शुक्रवारे शतभिषानक्षत्रे मध्याह्नवेलायां देहं त्यजति। (वृश्चिक) ज्येष्ठमासे कृष्णपक्षे तिथौ ११ मंगलवारे अनुराधानक्षत्रे १ प्रहरे देहं त्यजति । (धनु) आषाढमासे शुक्लपक्षे तिथि १ गुरुवारे हस्तनक्षत्रे गोधूलिका वेलायां देहं त्यजति। (मकर) कार्तिकमासे शुक्लपक्षे तिथि ५ शुक्रवारे श्रवणनक्षत्रे देहं त्यजति। (कुम्भ) माघमासे शुक्लपक्षे तिथि २ गुरुवारे उत्तराभाद्रपदनक्षत्रे मृत्युर्भवति । (मीन) माघमासे शुक्लपक्षे तिथि १२ उत्तराभाद्रपदनक्षत्रे गुरुवारे प्रातःकाले देहं त्यजति ।। मानसागरी

अर्थ—**मेषराशि** वाला मनुष्य कार्तिक की चतुर्थी मंगलवार को भरणी नक्षत्र में शरीर त्यागता है। (वाह ग्रन्थकर्त्ता जी ! आपका पाण्डित्य धन्य है कहिए तो यह कौन भाषा है ? संस्कृत, प्राकृत अथवा कोई अन्य ? यह ग्रन्थ व्याकरण की अशुद्धताओं से सर्वत्र भरपूर है अतएव इस बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया, पाठकगण स्वयं देख सकते हैं। गणित की भूलों से भी यह ग्रन्थ ऐसे ही आच्छादित है। पूर्वोक्त गणित में ग्रन्थकर्ता ने यह युक्ति की है कि पक्ष नहीं बतलाया। परन्तु भरणी नक्षत्र कृत्तिका से एक दिन पूर्व है। इसलिए कार्तिक की पूर्णमासी के एक दिन पूर्व अर्थात् कार्तिक शुदि १४ को आवेगा, किसी पक्ष की चतुर्थी को नहीं आ सकता।) **वृषराशि** वाले मनुष्य की मृत्यु माघशुदि नवमी शुक्रवार को रोहिणी नक्षत्र में अर्धरात्रि समय हो। **मिथुनराशि** वाले मनुष्यों की मृत्यु पौषबदि अष्टमी बुधवार को आर्द्रानक्षत्र में प्रथम पहर में हो। (यहां भी गणित में भूल है। क्योंकि आर्द्रानक्षत्र मृगशिरा से एक दिन आगे है। इसलिए पौषबदि एक को आवेगा। **सिंह-कर्कराशि** वाले मनुष्य की मृत्यु फाल्गुन शु० ४ गोधूलिका वेला में हो। **सिंह-राशि** वाले मनुष्य की मृत्यु श्रावण शु० १० रविवार को १ प्रहर में पूर्वा-फाल्गुनी नक्षत्र में हो। (यहाँ भी गणित में भूल है। क्योंकि पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र श्रवण से ११ नक्षत्र पूर्व है। इसलिए श्रावण शुदि ४ को आएगा) **कन्याराशि** वाले मनुष्य की मृत्यु भाद्रपद शु० ६ बुधवार को गोधूलिका वेला में हस्त नक्षत्र में हो। (यहां पर भी भूल है। क्योंकि हस्त नक्षत्र श्रवण से १८ वां है। इसलिए भाद्रपदशुदि ३ को आएगा। **तुलाराशि** वाले मनुष्य की मृत्यु वैशाख शुदि १३ शुक्रवार को मध्याह्न समय शतभिषा नक्षत्र में हो। (यहां भी गणित में भूल है। क्योंकि शतभिषा नक्षत्र विशाखा से १६ नक्षत्र पूर्व है। इसलिए वैशाख की पूर्णमासी से १६ पूर्व अर्थात् वैशाख बदि ११ को आएगा)। **वृश्चिकराशि** वाले मनुष्य की मृत्यु ज्येष्ठबदि ११ मंगल-वार को अनुराधा नक्षत्र में हो। (अनुराधा नक्षत्र विशाखा से एक पश्चात्

है इसलिए ज्येष्ठ बदि एक को आएगा।) **धनुराशि** वाले मनुष्य की मृत्यु आषाढ शुदि १, बृहस्पतिवार को हस्तनक्षत्र में हो। (हस्तनक्षत्र पूर्वाषाढा से ७ नक्षत्र पूर्व है। इसलिए आषाढ शुदि ८ को आएगा। एक को कदापि नहीं आयेगा।) **मकरराशि** वाले मनुष्य की मृत्यु कार्तिक शु० ५, शुक्रवार को श्रवण नक्षत्र में हो। **कुम्भराशि** वाले मनुष्य की मृत्यु माघ शुदि २, गुरुवार को उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में हो। **मीनराशि** वाले मनुष्य की मृत्यु माघ शुदि १२, गुरुवार को उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में हो।

यहां गणित में प्रत्यक्ष विरोध है क्योंकि (कुम्भ और मीन राशि में) माघ शुदि २ तथा शुदि १२ के लिए एक ही (उत्तराभाद्रपद) नक्षत्र है परन्तु यह सर्वथा असंभव है।

यह इन ज्योतिषियों के पाण्डित्य और गणितज्ञता का कुछ परिचय है। इस परस्पर विरोध में भी इन लोगों की यह युक्ति है कि यदि कोई मनुष्य इन दोनों में (जो मानसागरी और जातकाभरण में एक ही राशि के लिए नियत किए गए हैं) किसी दिन मर जाए तो वैसा ही प्रमाण सुना दें। जब राशिफल ही की यह दशा है तो, "प्रथमग्रासे मक्षिकाभक्षणम्" यही कहावत चरितार्थ होती है। फिर यह बेनींव का घर, यह बालू की भीत कब तक ठहर सकती है ? अर्थात् इस झूठे ज्योतिष को (जिसमें केवल अविद्या, छल और कपट भरे हैं) विद्वान् और सभ्य लोग कैसे मान सकते हैं ?

पृ० ६० से ६८ तक

यह विज्ञान, सृष्टिक्रम, आप्त प्रमाण वा प्रत्यक्ष विरुद्ध है। राशियां किसी वृत्त का भाग वा अंश हैं तो उनका और जीवन-मरण का क्या सम्बन्ध है। मृत्यु का कारण, 'जन्म' नहीं बनता है कि अमुक दिन जन्मने से अमुक दिन मरना पड़ेगा। यदि इन बातों को सत्य माना जाये तो एक समस्या उप-स्थित होगी जिसका समाधान करना असंभव है। वह है कालाकाल मृत्यु। 'अकाल मृत्यु नहीं होगी', यह आयुर्वेद, वेद तथा वैदिक साहित्य के विरुद्ध है।[1] सदाचार, सच्चरित्रता, पथ्यापथ्य, हिताहित, आयुर्वर्धक, आदियों का विचार भी व्यर्थ होगा। इनके प्रतिपादक शास्त्र व्यर्थ होंगे। इनकी गणित की योग्यता तो प्रत्यक्ष है जैसा कि उन्होंने लिखा है कि कुम्भ राशि वाले की मृत्यु भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी के दिन को भरणी नक्षत्र में हो। भाद्रशुक्ला चतुर्दशी को भरणी नक्षत्र होगा ही नहीं। इससे यह निकलता

१. इसके सम्बन्ध में लेखक का पंडित ओमप्रकाश जी शास्त्री के साथ हुआ और २ एफ, कमलानगर, दिल्ली ७ से प्रकाशित कालाकाल मृत्यु विषयक शास्त्रार्थ पढ़िए।

है कि कुम्भराशि वाले की मृत्यु होगी ही नहीं। नक्षत्र को अशुद्ध लिया जाए तो भी ५० वर्ष आयु भी किसी की नहीं हो सकती। उससे बहुत न्यून होगी। इससे आधुनिक समय में राशिफलों का क्या स्वरूप बन गया इसका दिग्दर्शन कराया जाता है। यह 'फलित ज्योतिष समीक्षा' से उद्धृत किया जाता है—'आज के अखबारी युग में समाचार-पत्रों की संख्या के साथ ही समाचार-पत्र पढ़ने वालों की संख्या भी अबाधगति से बढ़ती जा रही है। प्रायः जो समाचार पत्र लेता है वह समाचारों के साथ २ भविष्यफल भी अवश्य पढ़ता है। बहुत से मनुष्य ऐसे भी मिलेंगे जो केवल भविष्यफल जानने के लिए ही समाचार-पत्र पढ़ते वा खरीदते हैं। अखबारीय भविष्यफल को भविष्यफल नहीं माना जाना चाहिए। वह कालातीत भी नहीं होता। कुछ समाचार-पत्रों के सम्पर्क में आने पर हमने पाया है कि एक शहर के संस्करण में जो भविष्यफल छापा जाता है दूसरे शहर के संस्करण में उसे आगे का भविष्यफल बना दिया जाता है। इतना ही नहीं जब बीच में रविवार पड़ता है तो किसी पूर्व प्रकाशित भविष्यफल को नया दिनांक देकर छाप दिया जाता है। कभी २ ऐसा भी पाया गया है कि कर्क का भविष्यफल मेषराशि के नाम से और मेष का भविष्यफल कन्याराशि के नाम से प्रकाशित कर दिया जाता है।...कुछ ऐसे भी अखबार हमने देखे हैं जो एक वर्ष तक के लिए तो किसी ज्योतिषी से भविष्यफल लिखवा लेते हैं और बाद में उसे ही घुमा फिराकर प्रकाशित किया करते हैं—साथ ही कुछ ऐसे वाक्य भी प्रयोग में लाए जाते हैं जो द्विअर्थी[1] के या कामन होते हैं।

मेष—सम्पत्ति आदि के कामों में सफलता[2], परिवार जनों से सुख, यात्रा में सुख।

---

१. अर्थात् अनेकार्थक, सन्दिग्ध, अविस्पष्ट होते हैं।

२. सम्पत्ति आदि कार्यों में लाभ हो जाय तो फलितवाले कहेंगे कि हमने पहले ही बतलाया था। हानि होने पर यदि पूछें कि "आपने कहा था लाभ होगा और हो गई हानि ?" तो उसका उत्तर फलित वाले यह देते हैं कि "स्वल्प हानि हुई नहीं तो बहुत बड़ी हानि होती" यही लाभ है। यह है फलित का दिग्दर्शन। "यात्रा में सुख" एक व्यक्ति ने कहा, "महाराज, आपने यात्रा में लाभ कहा था, यात्रा में तो मेरा पैर टूट गया ?" उसका समाधान करते हुए कहा, "यही तो प्रसन्नता की बात है कि आपका पैर टूट गया नहीं तो मर जाते।" यह कोई कम लाभ है। क्या शास्त्र की बात झूठ कभी हो सकती है ? प्रश्न करने वाला और उत्तर देने वाला दोनों ही कहते हैं "कि नहीं, कभी नहीं। शास्त्र को समझने में हमारी भूल हो सकती है" इसी प्रकार सबको मूर्ख बनाते रहते हैं।

वृष—आय-व्यय समान, स्त्री पक्ष से चिन्ता, स्वास्थ्य में गड़बड़ का भय है[1]।

हां एक बात और आपको स्वीकार करनी होगी कि ये...बहुत सतर्क होते हैं पहली तारीख को प्रायः हर राशि में उलटफेर कर लिखा जाता है। "आर्थिक लाभ का योग", "कहीं से पर्याप्त पैसा प्राप्त होगा", 'जितना खर्च करना चाहोगे उतना पैसा मिलेगा।' "इस सप्ताह आपके आर्थिक ग्रह योग अच्छे हैं। आपको समय पर मनचाहा पैसा मिलेगा, लेकिन सप्ताह के अन्त तक सब खर्च हो जाएगा, फिर भी तंगी नहीं रहेगी।' इसी तरह देशमें समय समय पर फैलने वाली महामारी या दैवी प्रकोप, बाढ़, संकट, भूकम्प, अति-वृष्टि आदि को देखकर भी सामग्री संजोई जाती है।• पृष्ठ २८ से ३२ तक

इस प्रकार कोई इन फलों को प्राप्त हो वा नहीं किन्तु दिन भर, सप्ताह भर मास भर, वा वर्ष भर उसके मन में भय बना ही रहता है। पृथिवी पर रहने वाले मनुष्यों की संख्या आज लगभग तीन अरब बताई जाती है और राशियाँ हैं केवल १२। इस प्रकार प्रत्येक राशि में २५ करोड़ मनुष्यों का समावेश हो जाता है। इसका यह अर्थ हुआ कि २५ करोड़ मनुष्यों का गुणकर्म-स्वभाव एक प्रकार का होना चाहिए। २५ करोड़ मनुष्यों की बात ही क्या एक माता के दो बच्चों का गुणकर्म-स्वभाव एक समान नहीं होता। तब इस राशिफल को कौन मानेगा ? इसकी अयुक्तता के लिए दो श्लोक दिए जाते हैं। उसकी समीक्षा की जाती है—

भगवान् पुत्रवानुग्रः परोपकरणे रतः।
धर्मकर्मसमायुक्तः सुशीलो राजवल्लभः॥
गुणाभिरामः सततं देवब्राह्मणपूजकः।
कोषसाकल्यभोक्ता च ताम्रविश्रुतलोचनः॥
शूरः शीघ्रप्रसादी च कामी दुर्बलजानुकः।

अर्थ—जिस मनुष्य की मेषराशि हो वह भाग्यवान्, पुत्रवाला, उदार, परोपकारी, धर्मकर्मयुक्त, सुशील, राजाओं का प्रिय, सुन्दर गुणयुक्त, सदा

---

१. "स्वास्थ्य में गड़बड़ का भय है" इसके कई अर्थ निकलते हैं। स्वास्थ्य में गड़बड़ होगी कि नहीं इस वाक्य से इसका कुछ भी पता नहीं चलता। यदि गड़बड़ हो जाए तो फलित वाले यह कहेंगे कि हमने कह दिया था कि गड़बड़ होगी। यदि गड़बड़ न हुई तो कहेंगे कि हमने पहले ही कह दिया था कि "गड़बड़ तो नहीं किन्तु कुछ उसकी आशंका रह सकती है।" इसका सीधा सादा अर्थ है कि चित्त भी मेरा और पट्ट भी मेरा।

देव ब्राह्मणों का पूजने वाला, कोष का भोगने वाला, तांबे के समान लाल-आंखों वाला, शूरवीर, शीघ्र प्रसन्न होने वाला, कामी और दुर्बल जानु-वाला हो।

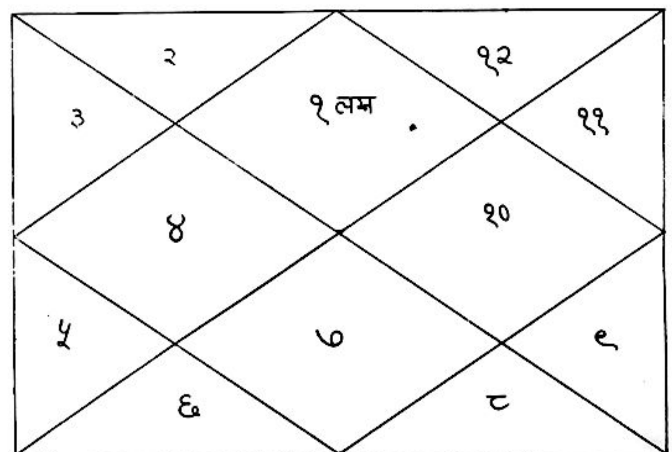
समी०—धर्मयुक्त और कामी दोनों परस्पर विरुद्ध प्रवृत्तियां एक में नहीं हो सकती। कामी और शूरवीर नहीं हो सकता। शूरवीर है तो दुर्बल कैसा ? करोड़ों मेषराशि वाले होंगे। क्या वे सभी धनी और ससन्तान होंगे ? परीक्षा करने पर यह मिथ्या सिद्ध होगा। मेषराशि वाले निर्धन, निस्सन्तान भी होते हैं। राशि तो प्रत्येक मनुष्य की होती है। मेष राशि वाले लाखों नास्तिक हैं। क्या वे धार्मिक माने जा सकते हैं ? मेष राशि वालों में से लाखों व्यक्ति दुष्ट, दुराचारी, चोरी-जारी करने वाले हैं। क्या मेषराशि वाले ईसाई और मुसलमान देव-ब्राह्मणों की पूजा करते हैं ? प्रत्येक नाम के प्रथमाक्षर के अनुसार राशि का ज्ञान होता है। एक राशि-वाले दो व्यक्तियों का जीवन भी क्या एक समान हो सकता है ? राम वा रावण की, कृष्ण वा कंस की, अर्जुन वा अश्वत्थामा की, भीम वा भीष्म की मोहनदास गान्धी वा मोहम्मदली जिन्ना की एक राशि है। किन्तु इनके जीवनों को देखते हैं तो कितना अन्तर दीखता है ? अन्तर की बात कहां, लगभग परस्पर विरुद्ध थे। इसी प्रकार सम्पूर्ण राशियों का फल कल्पित है। इनमें कोई भी सत्यता नहीं है।

अश्विनी के तीन तारे भी एक आकार के नहीं हैं। न वे सब पृथिवी से समान दूरी पर हैं। परस्पर भी अरबों-खरबों मील दूरी पर हैं। उन सब का समूह मेषाकार कहना, मानना नितान्त असत्य है। आज के वैज्ञानिकों ने चार अरब प्रकाश वर्ष की दूरी पर रहने वाले नक्षत्रों को दूरवीक्षणादि यन्त्रों से देखा है और देख रहे हैं। अश्विन्यादि नक्षत्रों का समूह मेषादि आकारों में होता हो ऐसा किसी वैज्ञानिक ने न देखा न कहा। यह केवल ज्योतिषानभिज्ञों की मिथ्या कल्पनाएं हैं। जब इनकी राशियां ही कल्पित हैं तो राशियों के आकारों के आधार पर कहे जाने वाले फलों के शशविषाण के समान मिथ्या होने में क्या सन्देह है ?

अथोनविंशसमुल्लासः

अथ कुण्डलीं व्याख्यास्यामः।

मनुष्य की जन्मकालीन ग्रहस्थिति वा तिथिनक्षत्रादिकों द्वारा उसके जीवन के सुखदुःखादिकों का निर्णय जिसके द्वारा किया जाता है उसे जातक कहा जाता है। जिस प्रकार सम्पूर्ण जीवन के सुख दुःखादिकों का निर्णय किया जाता है उसी प्रकार वार्षिक वा मासिक अथवा दैनिक सुखदुःखों का भी निर्णय किया जाता है। इसको जन्मपत्र, कुण्डली वा जन्मकुण्डली कहते



कुण्डली (जन्मपत्रिका)

हैं। इसके १२ कोष्ठक हैं। क्षितिज पर क्रान्तिवृत का जो भाग स्पर्श करता है उसे लग्न कहते हैं। जन्म-समय में लग्न जिस राशि का हो उसे प्रथम कोष्ठ १ संख्या के स्थान पर लिखते हैं। शेष राशियों को क्रमशः आगे २ रखते हैं। यह लग्न कुण्डली है। इसी प्रकार जन्म के समय चन्द्र जिस राशि पर रहता है उसको १ स्थान पर रखकर शेष राशियों को क्रमशः आगे के

कोष्ठों में रखते हैं। जिस राशि में जो ग्रह हों, उस २ राशि में अर्थात् वह राशि जिस कोष्ठक में हो उस २ में उनको लिख देते हैं। यह राशि कुण्डली है। मुख्यतया जन्मकुण्डली से ही फलादेश किया जाता है। कोई-कोई कभी-कभी चन्द्रकुण्डली से भी फलादेश करते हैं। कुण्डली के इन १२ भागों को १२ विषयों में विभक्त किया। १२ कोष्ठ क्रमशः तनु, धन, सहज, सुहृत्, सुत, रिपु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय नामक हैं। इनको भाव वा स्थान भी कहते हैं। मनुष्य जीवन के लिए अपेक्षित समस्त विषय इन ही के अन्तर्गत माने जाते हैं।

जिस समय बालक जन्म लेता है उस क्षण को ध्रुवात्रुटि कहते हैं। उसी के आधार पर जन्मपत्र बनते हैं। उपरिलिखित १२ भावों में से ७वां भाव जाया है। मानसागरी आदि फलितग्रन्थों में यही लिखा है कि सातवें घर में किस राशि का क्या फल होता है। परन्तु प्रश्न यह है कि जीवन पर्यन्त कई लोग विवाह ही नहीं करते हैं। आजीवन ब्रह्मचारी रहते हैं जैसे महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी शंकराचार्य आदि। कुछ ऐसे भी होते हैं जिनका जीवन-पर्यन्त विवाह नहीं हो पाता। कुछ ऐसे भी होते हैं जो विवाह से पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। ऐसे लोगों के लिए इन राशियों का क्या अर्थ होगा? उनके लिए यह जन्मपत्र किस काम का होगा? यह मनुष्य मात्र के लिए कैसे हुआ? इस जन्मपत्रिका को सत्य मानें तो प्रत्येक मनुष्य की जाया माननी पड़ेगी जो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। इसलिए भावों की कल्पना करने वाले बुद्धिमान् हो ही नहीं सकते। इसमें यह भी समस्या उपस्थित होगी कि पुरुष की तो जाया हो सकती है किन्तु स्त्री के लिए जाया का क्या अर्थ होगा? क्या स्त्री की भी पत्नी होती है? कुछ लोग इसका समाधान करते हुए यह कहते हैं कि पुरुष के लिए जाया का अर्थ स्त्री है और स्त्री के लिए जाया का अर्थ पुरुष हो जायेगा किन्तु ऐसा किसी ग्रन्थकार ने नहीं माना। जाया शब्द का अर्थ पत्नी है। न पुरुष हो सकता है और न पति ही। जाया का अर्थ "पुरुष" किसी प्रकार नहीं किया जा सकता। इस एक हेतु ने जन्मकुण्डली के भवन को धूलिसात् कर दिया।

तीसरे कोठे (सहजस्थान) से भाई बहिनों के सम्बन्ध में ज्ञान होता है। पुरुष ग्रह हो तो भाई, स्त्रीग्रह हों तो बहिन, नपुंसक ग्रह हों तो भाई-बहिन हों ऐसा लिखा है। शुभ ग्रह हों तो वे बचें, अशुभ ग्रह हों तो मरें वा कोई न हो। जिस मनुष्य के चार भाई और चार बहिन हैं तो उन आठों भाई बहिनों के तीसरे कोठे में एक से ग्रह होने चाहिए। क्योंकि उन आठों

में प्रत्येक के उतने ही भाई-बहिन हैं। पर एक के ग्रह देखो तो आप कहेंगे इसके भाई हैं। दूसरे के ग्रह देखो तो आप कहेंगे कि बहिन हैं। तीसरे के केतु हैं और शनि की दृष्टि है। आप कहेंगे भाई बहिन कुछ भी नहीं।

शनि क्षेत्र में सूर्य हो और सूर्य के क्षेत्र में शनि हो तो बालक होते ही मर जाए चाहे ईश्वर भी उसकी रक्षा क्यों न करे।' यह फलितवालों का सिद्धान्त है। शनि क्षेत्र=मकर और कुम्भ राशि में सूर्य दो मास रहता है और सूर्य क्षेत्र=सिंहराशि में शनि २॥ वर्ष रहता है; तो ३० वर्ष में दो वर्ष ऐसे होने चाहिए कि जिनमें माघ और फाल्गुन के महीने में, सारी पृथ्वी में जो बालक हों वे उत्पन्न होते ही मर जाएं। क्या आपने ऐसे दो वर्ष देखे हैं? धनी लोगों के जन्मपत्रों में लिखा देखा गया है कि शनि उच्च का है इसलिए धनी होगा। हिसाब लगाकर देखो तो शनि २॥ वर्ष तक तुला में उच्च का होता है। २ वर्ष तक जो लोग उत्पन्न हुए सभी का शनि उच्च का होगा पर उनमें से बहुतेरे घोर दरिद्री होते हैं।

पहले कोठे से बालक का रंग बतलाते हैं गोरा है वा काला। क्या योरोप और अमेरिका भर में सब ग्रहों का एक ही फल रहता है जो सब ही गोरे होते हैं, और हबशी देश में सब ही के केतु होता है जो सब काले होते हैं?[२] जन्मपत्री देखकर यह नहीं बताया जा सकता कि यह आर्य की है वा मुसलमान की अथवा ईसाई की किंवा भारतीय की वा अंग्रेज की।

"हमारे एक परिचित भारतीय रेलवे में उच्च अधिकारी हैं......। उनका कहना है कि १७ वर्ष के जब वे थे, एक ज्योतिषी ने उनकी कुण्डली देखी। वह कुण्डली उत्तर प्रदेश में एक विशिष्ट पंचांग के आधार पर बनी थी जिसमें बुध की स्थिति अक्सर गलत होती है। यह गलती उस पंचांग में अब तक चली आ रही है। खैर ज्योतिष पढ़कर उन्हें अब स्वयं पता चल गया है कि उनकी कुण्डली गलत बनी है। उस गलत कुण्डली को देखकर उनके कैरियर के बारे में सही २ बताया। जो उसने बताया था वह वही है। तो गलत कुण्डली के आधार पर सही भविष्यवाणी।"

साप्ताहिक हि० २८ वै० २०३२ वि०

"जो राशि क्षितिज पर आ आकर लगती रहती है उसे ज्योतिष में लग्न कहते हैं। राशियां कुल १२ हैं। इसलिए लग्न भी १२ ही हो सकते हैं।

---

१. शनिक्षेत्रे यदा भानुः भानुक्षेत्रे यदा शनिः।
सद्य एव भवेन्मृत्युः शंकरो यदि रक्षति॥ यह षोडश समुल्लास में भी लिखा है।

२. स० प्र० भाष्य (दूसरा समुल्लास)

एक ग्रहोरात्र में २४ घण्टे होते हैं। इसलिए सिद्ध हुआ कि एक लग्न आसमान में कुल दो घंटे तक ठहर सकता है अधिक नहीं। एक लग्न में अर्थात् दो घंटे की अवधि में हजारों नये २ बच्चे इस दुनिया में पैदा हो जाते हैं। क्या उन सबका भविष्य एक जैसा हो सकता है ? इस सवाल का कोई उत्तर न होने पर भी अपना थोथा बचाव करते हुए फलित के कुछ पक्षपाती कह देते हैं, "अजी साहब, लग्न के दो घण्टों में से प्रत्येक सैकण्ड में कुछ न कुछ विशेषता होती है। इसलिए पैदा होने वाले सब बच्चों का भविष्य भी भिन्न २ हो जाता है।"

परन्तु "दुनिया की जनसंख्या आज प्रतिमिनट १०० के हिसाब से बढ़ रही है। ("संगम" मई, १९६२ ई०)" इसलिए दो घंटों में बारह हजार बच्चे पैदा होते हैं। उधर दो घंटों के सैकण्ड तो कुल सात हजार दो सौ (७२००) ही होते हैं। इसलिए शेष ४ हजार ५०० बच्चे किधर जाएंगे ? उन्हें भी किसी न किसी सैकण्ड में स्थान देना ही पड़ेगा और तब फिर वही सवाल खड़ा होगा कि क्या ४ हजार ८०० बच्चों का भविष्यफल एक सरीखा हो सकता है ? यही तो वह सवाल है जिसने फलितज्ञों की नाक में दम कर रखा है। क्योंकि चार हजार आठ सौ सैकण्डों तक प्रति सैकण्ड दो बच्चे होते हैं ऐसा मान लिया जाए तो भी सैकण्डों की विशेषता से भवितव्य के पार्थक्य की बात भूल भरी साबित होती है।······ फलित के अन्धविश्वास

एक मनुष्य की कुण्डली सौ ज्यौतिषियों को दीजिए। एक २ से फलादेश लिखा लीजिए। सबका मिलान कर के देखिए। सौ के सौ भिन्न २ प्रकार के होंगे। एक से एक का नहीं मिलेगा। इतना ही नहीं। एक ही व्यक्ति को वर्ष दिन वा मासों के अन्तर से एक ही पत्रिका दीजिए और फलादेश लिखवा लीजिए। अब सब फलों को मिलाकर देखिए पता चल जायेगा कि यह कुण्डली विज्ञान है अथवा मनोरञ्जन का साधन है। एक दूसरे से नहीं मिलेगा।

निम्बाहेड़ा (राजस्थान) में वर्धमान प्रिंटिंग प्रेस के निकट एक विशाल हवेली में रहते हैं श्रीमान्······। पंडित श्री बलदेवप्रसाद नामक सुप्रसिद्ध ज्योतिषी से उनकी जन्मपत्रिका बनवाई गई थी जिसमें उनके जीवन का भविष्य बताते हुए इस बात का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि अपनी उम्र के ६२ वर्ष ४ महीने और २१ दिन बीत जाने पर २२वें दिन उनकी मृत्यु हो जायेगी। इस लिखित भविष्यवाणी के अनुसार मृत्यु तिथि निकट आने पर उन्होंने माला हाथ में ले ली और निरन्तर रामनाम

का जप करने लगे। कुछ वर्ष पहले कुण्डली में लिखे जून, १९६२ ई० में किसी काम से जब मैं वहाँ पहुँचा तब उनके हाथ में माला देखकर सहज जिज्ञासा से पूछ बैठा कि आप कितने वर्षों से इस प्रकार माला फिरा रहे हैं। इसके उत्तर में जो कुछ उन्होंने कहा, उसका आशय यह था कि अपनी मृत्युतिथि से डरकर उसी दिन उन्होंने माला हाथ में उठाई थी, ग्यारह वर्ष हो गए अब तक नहीं छूटी। उसे हाथ में रखने का उनका स्वभाव ही बन गया है। जैसे हाथ घड़ी रखने वालों की घड़ी कभी खो जाय तो उन्हें चैन नहीं पड़ती, उसी प्रकार माला हाथ से छूटने पर उनका भी किसी काम में मन नहीं लगता।

कुछ भी हो यहां तो मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि एक सुप्रसिद्ध ज्योतिषी के द्वारा घोषित मृत्यु तिथि को निकले (जून, १९६५ ई० को) लगभग १४ वर्ष बीत चुके हैं। फिर भी अब तक श्रीमान् जी स्वस्थ रूप में जीवित हैं। —वही पुस्तक

फलित ज्योतिष से विश्वास उठ गया—महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर जी द्विवेदी काशी के सबसे बड़े ज्योतिषी माने जाते थे। उन्होंने इस विषय पर कई ग्रन्थ लिखे। वे काशी के सरकारी संस्कृत कालेज में ज्योतिष शास्त्र के मुख्याध्यापक थे। उनके यहां एक पुत्री का जन्म हुआ। उन्होंने उसकी जन्म-कुण्डली बनाई। और उसका जन्म समय लिखकर, अपने मित्रों और शिष्यों को लिख भेजा। सबने उस लड़की की जन्मकुण्डली बनाकर भेजी और लिखा कि कन्या का सौभाग्य अटल होगा। उन्होंने स्वयं भी ऐसा ही हिसाब लगाया परन्तु लड़की विवाह होने के छः मास बाद विधवा हो गई। अब पंडित जी का फलित ज्योतिष से सदा के लिए विश्वास उठ गया। उन्होंने काशी के टाउनहाल में फलित ज्यौतिष के विरुद्ध व्याख्यान दिया और सब ज्यौतिषियों को चैलेंज किया कि "आओ इस पर शास्त्रार्थ कर लो" परन्तु कोई भी ज्योतिषी सामने न आया। उन्होंने घोषणा की कि "फलित ज्यौतिष पर मेरा विश्वास नहीं। मैं इसको खेल समझता हूँ। ये ज्योतिषी लोग अपने झूठे बकवास से जनता का धन लूटते हैं।"

—पं० मनसाराम कृत "भारत की अधोगति"

फलित के अनुसार मनुष्य मात्र की आयु १२० वर्ष की है। यह निश्चित है। इससे न्यूनाधिक नहीं हो सकती। संभव है कुछ लोग १०८ वर्ष की आयु मानते होंगे। जो भी हो वेदों में मनुष्य की आयु के सम्बन्ध में लिखा है कि—

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥

यजु० ३५ । १५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग परमेश्वर के नियम (कि धर्म का आचरण करना और अधर्म का आचरण छोड़ देना चाहिए) का उल्लंघन नहीं करते, अन्याय से दूसरे के पदार्थों को नहीं लेते, वे नीरोग होकर सौ वर्ष तक जी सकते हैं और ईश्वराज्ञा विरोधी नहीं । जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ कर धर्म का आचरण करते हैं उनको मृत्यु मध्य में नहीं दबाता ।

(महर्षि दयानन्द भाष्यानुसार)

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ यजु० ४० । २ ॥

भावार्थ—मनुष्य आलस्य को छोड़कर सब देखनेहारे न्यायाधीश परमात्मा और करने योग्य उसकी आज्ञा को मानकर शुभ कर्मों को करते हुए और अशुभ कर्मों को छोड़ते हुए ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्या और अच्छी शिक्षा को पाकर उपस्थ इन्द्रिय के रोकने से पराक्रम को बढ़ाकर अल्प मृत्यु को हटावें, युक्त आहार विहार से सौ वर्ष की आयु को प्राप्त होवें । जैसे २ मनुष्य सुकर्मों में चेष्टा करते हैं वैसे २ ही पाप कर्म से बुद्धि की निवृत्ति होती और विद्या, अवस्था और सुशीलता बढ़ती है ।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ यजु० ३६ । २४ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आपकी कृपा और आपके विज्ञान से आपकी रचना को देखते हुए आपके साथ युक्त नीरोग और सावधान हुए हम लोग समस्त इन्द्रियों से युक्त सौ वर्ष से भी अधिक जीवें; सत्य शास्त्रों और आपके गुणों को सुनें, वेदादि को पढ़ावें, सत्य का उपदेश करें, कभी किसी वस्तु के विना पराधीन न हों, सदैव स्वतन्त्र हुए निरन्तर आनन्द भोगें और दूसरों को आनन्दित करें ।

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ यजु० ३ । ६२ ॥

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से जैसे विद्वान् लोग विद्याधर्म और परोपकार के अनुष्ठान से आनन्दपूर्वक तीन सौ वर्ष पर्यन्त आयु को

भोगते हैं, वैसे ही तीन प्रकार के ताप से शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार रूप अन्तःकरण इन्द्रिय और प्राण आदि को सुख करने वाले विद्या विज्ञान सहित आयु को हम लोग प्राप्त होकर तीन सौ वा चार सौ वर्ष पर्यन्त सुखपूर्वक भोगें ।

आयुर्वेद में भी इसी प्रकार है । वैदिक परम्परा में मनुष्य की आयु सौ वर्ष सुनी वा मानी जाती है । फलित वालों की यह मान्यता वेद तथा वैदिक परम्पराओं के विरुद्ध होने से त्याज्य है । १२० वर्ष से अधिक आयु वाले होते हैं । आज भी हैं ऐसा सुनते हैं और समाचार-पत्रों में पढ़ते हैं । उनके लिए यह फलित व्यर्थ है । मनुष्य के लिए सार्थक नहीं है तो यह शास्त्र कैसा ? यह तो शास्त्र क्या प्रत्यक्ष विरुद्ध है । यह अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव दोषों से दूषित होने से विद्वानों को मान्य नहीं हो सकता ।

लग्न ऐसा झमेला है जिसने सबको भ्रमा रखा है । जैसा कि हमने पूर्वत्र लिख दिया है, "लग्न क्रांति वृत्त का वह विन्दु है जो क्षितिज से स्पर्श करता है ।" जब ग्रहों का मनुष्यों के कर्मों पर कोई प्रभाव नहीं होता तो क्रांतिवृत्त का क्या होगा ? जब गाय से लाभ नहीं हुआ तो गाय के पदचिह्नों से क्या लाभ होगा ?

इसी जन्मपत्र का मिलान करके ग्रहों के गण, योनि आदि कूटों को देखकर उसके अनुसार विवाह किए जाते हैं । नक्षत्र राशि जड़ होने से उनका कर्मों के साथ कोई सम्बन्ध न होने से उनको मित्र शत्रु मान उनकी योनि आदि की कल्पना करके उनके अनुसार विवाह करना व्यर्थ है । जन्मपत्रिकाओं का मिलान करके विवाह करने पर विवाहितों का जीवन सुखमय होना चाहिए । इसकी अनुकूलता को देखकर विवाह होने के पश्चात् पति-पत्नी में विरोध क्यों होता है ? विवाहानन्तर ही क्यों विधवा बन जाती है ? पुरुष क्यों मृतस्त्रीक होते हैं ? विवाह आयुर्वेद-शरीर शास्त्र वा धर्म शास्त्र का विषय है । आयुर्वेद में जहां तक मैंने अध्ययन किया है चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थों में शरीर की अनुकूलता को देखकर विवाह करने के लिए ही कहा है । ग्रह नक्षत्र राशि आदि के अनुसार विवाह करने का कोई प्रश्न ही नहीं है । धर्मशास्त्र मनुस्मृति में भी विवाह का प्रसङ्ग आया है । शारीरिक वा मानसिक वा आत्मिक गुणकर्म स्वभाव वतलाए गए हैं । ग्रह नक्षत्र राशि आदि का कोई प्रश्न ही नहीं है । विवाह तो दो बातों की परीक्षा करके करना चाहिए एक शरीर का तत्त्व दूसरा आत्मा का गुण कर्म स्वभाव । फलित इस में "अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते" विना बुलाए आता है विना पूछे

बहुत बोलता है कि उक्ति को चरितार्थ करता है। इसलिए जन्म-पत्रों को मिलाकर विवाह का निर्णय करना अवैज्ञानिक, अधार्मिक, समाज में वैषम्योत्पादक वा घातक और जीवनों को नरक के द्वार पर पहुँचाने वाला है। वैदिक परम्परा में तथा प्राचीन काल में गुणकर्म स्वभाव को देखकर ही विवाह होते थे। उस समय फलित की उत्पत्ति ही नहीं हुई थी।

"हिन्दु ही फलित ज्योतिष के अनुसार मुहूर्त आदि निकलवाकर विवाह करवाते हैं। इन्हीं में विधवाएँ बहुत हैं।......यदि विधवा स्त्रियों और सुहागन स्त्रियों की जन्मपत्रियां इकट्ठी पड़ी हों तो कोई भी ज्योतिषी उनको अलग २ नहीं कर सकता...। यदि आयु अटल है तो नाड़ीवेध में करने से टल क्यों जाती है? यदि कर्मरेखा अटल है तो फिर आप ज्योतिषी के पास क्यों जाते हैं और कर्म रेखा को टालने के लिए उसको चांदी के फूल चढ़ाते हैं? जब टल नहीं सकती तो ज्योतिषी जी का क्या काम रहा? यदि टल सकती है तो फलित ज्योतिष की क्या आवश्यकता रही? क्योंकि उसके अनुसार सब बातें उत्पन्न होते ही समय नियत हो गई और टल नहीं सकतीं। क्योंकि यदि तब निश्चित न हों तो जन्मपत्री कैसे बने? एक बात पर पक्के रहो[1]।"

प्राचीन काल में विवाह स्वयंवर से होते थे। उस समय जन्मपत्र मिलाने की साक्षी कहीं नहीं मिलती। जैसी जनक जी महाराज ने सीता जी का विवाह स्वयंवर से किया था और अपनी दूसरी कन्या उर्मिला का और जनक जी के भाई कुशध्वज ने अपनी दोनों कन्याओं का श्री वसिष्ठ और विश्वामित्र दोनों मुनिवरों की सम्मति से महाराज दशरथ के तीन पुत्र लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न से एक ही दिन एक ही मण्डप में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में विवाह कर दिया था, जन्म पत्र का मिलान नहीं किया था! आजकल प्रचलित 'शीघ्रबोध' आदि में वर्णित वर्ग, वर्ण, योनि, गण आदि के अनुसार श्रीराम पुनर्वसु नक्षत्र में उत्पन्न हुए देवता गण और सीता जी का नक्षत्र शतभिषा है, राक्षसगण। देवता और राक्षसगण होने से श्रीराम और सीता जी में सदा कलह रहना चाहिए था परन्तु सीता जी परम पतिव्रता थीं।[2]

"एक ज्योतिषी के हाथ में एक जन्मपत्री दे दीजिए। उसके एक ओर एक चित्रकार बिठा दीजिए और दूसरी ओर एक संक्षिप्त लिपि से लिखने वाले को बिठा दीजिए। जब ज्योतिषी पत्री पढ़ता जाय तो जिसकी पत्री हो; चित्र-

१. सत्या० प्र० भाष्य द्वि०स०

२. ...

कार ज्योतिषी की बातें सुनकर उसका पूरा चित्र खेंच लेवें और संक्षिप्त लिपि का लेखक (Stenographer) उसका विस्तृत जीवन लिख लेवे। फिर उस जीवन को छपवा दिया जावे। अब एक और मनुष्य आता है आकर कहता है कि मेरी भी वही पत्री है, क्योंकि मेरा जन्म भी उसी समय हुआ था, अब ज्योतिषी कोई और बात नहीं बता सकता, उसके लिए आवश्यक है वह वही बातें बताये जो वह पहले बता चुका है। और यदि ज्योतिषी नई बातें बताने लग जाता है, तो इसका तात्पर्य यह होगा कि जो जन्मपत्री उसने पहले पढ़कर सुनाई थी वह जीवन का ऐसा वर्णन नहीं जिसका एक ही अर्थ हो सके, क्योंकि उसी पत्री से न्यून से न्यून एक और वर्णन और सर्वथा भिन्न वर्णन बन सकता है।[1]

"२४ घण्टे के एक दिन के अन्दर १२ लग्न होते हैं। इसलिए यदि सात ग्रहों वाली प्रत्येक कुण्डली एक निश्चित तिथि है, प्रत्येक तिथि की १२ कुण्डलियाँ भिन्न २ लग्नों की बन जायेंगी।

अब एक वर्ष के अन्दर सात ग्रहों वाली कुण्डलियां लग्न का ध्यान छोड़कर कितना बन सकेंगी? यदि उन पञ्चाङ्गों को (जो कि इसके लेखक दीवान बहादुर ऐल० डी० कन्नूपिल्ले एम० ए०, बी० एल० एल० डी० आई० एस० ओ० के बनाये हुए हैं,) (Called the Perpetual Planetary Almanac) देखा जाये तो पता लगेगा कि चन्द्रमा का हिसाब न लगाया जाये तो २४ भिन्न २ कुण्डलियां बन सकेंगी और यदि चन्द्रमा का भी हिसाब गिन लिया जाये तब १७४ कुण्डलियां बनेंगी, क्योंकि चन्द्रमा २¼ दिन में एक नई राशि में प्रवेश कर जाता है। मोटे रूप में हम यह कहेंगे कि एक वर्ष में १८० कुण्डलियां बन सकती हैं। इसी हिसाब से १०० वर्षों में १८००० कुण्डलियां बनेंगी, केवल सात ग्रहों के हिसाब से और लग्न का भी ध्यान छोड़कर यदि लग्न का भी हिसाब लगाया जाये तो १०० वर्षों में सात ग्रहों वाली २१६००० कुण्डलियों से अधिक नहीं बनेंगी। इसका यह तात्पर्य होगा कि संसार का प्रत्येक व्यक्ति (जो कि इस समय जीवित है और उसकी आयु १०० वर्ष से अधिक नहीं है,) की कुण्डली इन्हीं २१६००० में से एक होगी अर्थात् एक कुण्डली इस हिसाब से ७००० मनुष्यों की हुई। इस समय यदि हम शेष दो ग्रह राहु और केतु को भी इस हिसाब में जोड़ लेवें तब प्रत्येक पूरी ९ ग्रहों वाली और लग्न वाली कुण्डली के हिस्से में ६०० मनुष्य आयेंगे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक कुण्डली की ६०० भिन्न २ व्याख्याएं हो सकती

१. वही पुस्तक

चाहिए जो कि ६०० मनुष्यों के जीवन पर घट सकें जिन मनुष्यों की वह कुण्डली सांझी है। आपकी जन्मपत्री देखकर एक ज्योतिषी जो बातें आपको बताता है वे आपके जीवन के सम्बन्ध में हैं वा शेष ५६६ मनुष्यों के सम्बन्ध में जिनके साथ आपकी कुण्डली सांझी है इस बात का कोई प्रमाण नहीं। देखना यह है कि कुल कितनी कुण्डलियां बनेंगी, १०० वर्षों में नहीं बल्कि सब समयों में ? यथापूर्व हम सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि इन सात ग्रहों को लेंगे। यह हिसाब कुछ तो अलजब्रे (बीजगणित) का है और कुछ ज्योतिष (Astronomy) का है। यह बीजगणित से तो यही सम्बन्ध रखता है कि सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति, शुक्र और शनि इन पांच ग्रहों के हिसाब से $१२^{५}$=२४८८३२ कुण्डलियां बनना सम्भव हो सकता है। यदि मङ्गल को भी हिसाब में गिन लिया जाय तो कुण्डलियां तिगुनी हो जायेंगी और बुध का हिसाब लगाया जाये तब फिर पाँच गुणी हो जायेंगी, अर्थात् दोनों के हिसाब से १५ गुणी सातों ग्रहों के हिसाब से २४८८३२×१५= ३७३२४८० अथवा मोटे रूप में साढ़े सैंतीस लाख कुण्डलियां बनेंगी। ऊपर यह बताया जा चुका है कि एक वर्ष में १७४ कुण्डलियां बन सकती हैं, इस हिसाब से ३७३२४८० कुण्डलियां २१५६६ वर्ष के लिए पर्याप्त होंगी। जितने लोग सृष्टि के आदि से लेकर अब तक मर चुके हैं उनकी गणना असंख्य है। इसी प्रकार उनकी कुण्डलियों की गणना भी असंख्य ही है, और यह साढ़े सैंतीस लाख कुण्डलियाँ जो कि लगभग २१६०० वर्ष के लिए पर्याप्त हैं उन असंख्य कुण्डलियों के सामने कुछ भी नहीं, परन्तु फिर भी २१६०० वर्ष आवश्यकतानुसार पर्याप्त दीर्घ समय है।

एक उदाहरण ले लीजिए वराह मिहिर के बृहज्जातक के चौथे अध्याय में एक कुण्डली है। उसके अनुसार उस कुण्डली वाले बालक के जन्म पर उस बालक और उसकी माता दोनों का मरना अनिवार्य है। वह कुण्डली इस प्रकार है—"सूर्य वा चन्द्र ग्रहण की अवस्था में उदय हों, शनि लग्न में बृहस्पति आठवें घर में" शायद आप यह विचार करें कि इस प्रकार से कई बार ग्रहणों में हो सकता है। परन्तु सूर्य वा चन्द्र ग्रहण दशा में ही उदय हों शनि लग्न में हो और बृहस्पति शनि से २१०° अधिक वा १५०° कम हो ऐसा बहुत कम होता है। मैंने पंचांगों के पृष्ठ उलटकर देखा कि ये शर्तें गत ३६३ वर्षों में एक वार हुई थीं अर्थात् मंगलवार, ११ जुलाई, १७८६ ईस्वी के दिन। यदि इसके साथ मिलती हुई कोई तिथि ढूंढना चाहें तो आपको सैकड़ों वर्ष पीछे जाना पड़ेगा अर्थात् १२ नवम्बर, १६२८ दिन के चार बजे। उस समय बहुतसी शर्तें पूरी होंगी, परन्तु उस दिन सूर्य ग्रहण की अवस्था में उदय नहीं

हुआ, इसलिए उस दिन कुछ विशेष भय नहीं था। भाव यह है कि यदि यह ठीक है कि ११ जुलाई, १७८६ के दिन एक विशेष लग्न में जो १४० बच्चे मद्रास प्रान्त में उत्पन्न हुए (क्योंकि श्रीयुत पिल्ले मद्रासी हैं) वे सारे अपनी माताओं सहित मर गए तो यह बात इतिहास की पुस्तकों में लिखी होनी चाहिए थी।

एक भारतीय लेखक यह समझता है कि कुण्डली उसके नायक की उपाधि है जिससे कि उस नायक का विशेष आदर होता है। रामायण, रघुवंश और हर्षचरित आदि की कुण्डलियां इसी प्रकार की हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि ६ ग्रह उच्च हों यह एक सहस्र वर्ष में कितनी बार हो सकता है ? ६ ग्रह उच्च हों यह बात कलियुग के आरम्भ से लेकर अब तक एक वार भी पूरी नहीं हुई। पांच ग्रह उच्च हों जिनमें बृहस्पति तो सम्मिलित है परन्तु चन्द्रमा सम्मिलित नहीं है। ये शर्तें कलियुग के आरम्भ से लेकर अब तक केवल एक वार पूरी हुई हैं अर्थात् बुधवार, ७ एप्रिल, १०४२ ईस्वी के दिन। सूर्यसिद्धान्त में लिखा है कि यदि इन पांच ग्रहों में जो उच्च हैं, बृहस्पति के स्थान में चन्द्रमा को सम्मिलित किया जावे तब शर्तें अधिक वार पूरी हुई हैं।

यह दिखाया जा चुका है कि ६ वा ७ ग्रहों वाली कुंडली एक निश्चित तिथि होती है जो कि बार २ नहीं आती। वह तिथि नियम नहीं हो सकती, यदि उसे उन सब लोगों के लिए नियम न स्वीकार किया जाय जो कि उस तिथि पर उत्पन्न हुए। यदि कुछ हजार मनुष्य मद्रास प्रान्त में एक विशेष तिथि पर उत्पन्न होते हैं और उस प्रान्त में १४० बच्चे प्रति घण्टा जिनका लग्न एक ही हुआ उत्पन्न होते हैं। इसलिए जो कुछ एक बच्चे के भविष्य जीवन के सम्बन्ध में ज्योतिषी बताये उसे वही शेष १३६ बच्चों के सम्बन्ध में भी कहना चाहिये।

बहुत से ज्योतिषी कुण्डली देखकर फीस लेकर ठीक जीवन बृत्तान्त बताने का दावा करते हैं। परन्तु यह ऊपर बताया जा चुका है कि नो ग्रहों और लग्न वाली एक कुण्डली ६०० मनुष्यों की सांझी होती है। यदि इस प्रकार से हिसाब लगाकर उन ज्योतिषियों से पूछा जाये कि महाराज आप कैसे प्रत्येक व्यक्ति को पृथक्-पृथक् जीवन-वृत्तान्त बताने का दावा करते हैं और बीती हुई बातें कैसे ठीक बता सकते हैं। तो उनका उत्तर होता है कि इन नाड़ी ग्रन्थों के रचयिताओं ने एक २ फल (एक लग्न का तीन सौवां भाग) तक का हिसाब लगाकर कुण्डलियां बनाई हुई हैं। इन ऋषियों के लिए प्रत्येक जीवन वृत्तान्त का विवेक करना कोई असम्भव बात नहीं थी। बहुत

अच्छा। परन्तु इस प्रकार मानने से एक बड़ी भारी अड़चन और खड़ी हो जायेगी। वह अड़चन यह है कि हम ऊपर यह देख चुके हैं कि ७ ग्रहों वाली कुण्डलियां जिनमें कि राहुकेतु और लग्न का हिसाब नहीं जोड़ा, साढ़े सैंतीस लाख बन सकती हैं। यदि हम लग्न और राहु को भी सम्मिलित करलें तो ५४०००००० कुण्डलियां बनेंगी। यदि प्रत्येक लग्न को ३०० भागों में बांटा जाये तो १६२०००००००० कुण्डलियाँ होनी चाहिए तब प्रत्येक पल की कुण्डली बन सकती है। शायद १०००००० आपको बहुत बड़ी संख्या प्रतीत नहीं होगी। परन्तु यदि एक कुण्डली एक ऐसे पत्र पर पूरी लिखी हो जिसकी मोटाई १/१५० इञ्च हो तब दस लाख कुण्डलियों का इतना बण्डल बन जायेगा जिसकी मोटाई एक फर्लांग होगी। यदि कोई ऋषि इतनी कुण्डलियां बनाये जो कि सदा काम दे सकें प्रायः यह विश्वास पाया जाता है कि इस प्रकार की कुण्डलियां ऋषियों की बनाई हुई हैं। तब उन कुण्डलियों की संख्या १६२०००००००० होनी चाहिए। यदि वह पुस्तक जिसमें कि इतनी कुण्डलियां हों खोली जायें और उसके मुख-पृष्ठ का एक सिरा पृथिवी पर स्थिर हो तब दूसरे मुखपृष्ठ का दूसरा सिरा पहले से तब मिलेगा जब सारी पृथिवी के गिर्द एक बार लिपट जायेगा। क्योंकि दोनों मुखपृष्ठ एक दूसरे से २० हजार मील की दूरी पर हैं। इससे कम कुण्डलियां सब मनुष्यों के भूत, भविष्य और वर्तमान के लिए पर्याप्त नहीं हो सकतीं तब भी हमने एक लग्न को तीन सौ भागों में ही बांटा है। (एक पल लग्न का ३००वां भाग है) परन्तु हम ऊपर देख चुके हैं कि एक कुण्डली ६०० व्यक्तियों की सांझी है। इसका यह तात्पर्य हुआ कि इससे भी दुगुनी कुण्डलियां हों तब प्रत्येक व्यक्ति की एक कुण्डली हो सकती है। यदि ऊपर वाली अड़चन और भी अधिक बढ़ जायेगी तब यह मानना पड़ेगा कि यह ज्योतिषी अपने ग्राहकों के जीवन की घटनाओं का परिचय और साधनों से प्राप्त कर लेते हैं। और जन्मपत्री देखने के बहाने (भृगुसंहिता के आधार पर) उस प्रकार से प्राप्त किए हुए परिचय को जीवन वृत्तान्त के नाम से भेज देते हैं। इसीलिए बीती हुई घटनाएं तो सच्ची होती हैं और भविष्य के विषय में सामान्य सी बातें बताई जाती हैं। बीती हुई बातों के

१. इस लेख का अभिप्राय भृगुसंहिता की सत्ता पर विचार करना है। लोग प्रायः यह मानते हैं भृगुसंहिता नामक कोई ग्रन्थ है और उसमें संसार में जितने भी मनुष्य हो चुके हैं वा होंगे उनकी कुण्डलियां पहले से बनी हुई हैं।

(भाष्यकार स० प्र० द्वि० समु०)

सच्ची होने से भविष्य पर भी ग्राहक को विश्वास हो जाता है। इस प्रकार से ज्योतिषी जी प्रसिद्ध हो जाते हैं।"[1]

इस उद्धरण से स्पष्ट हो गया कि भृगुसंहिता वास्तव में कोई पुस्तक नहीं है। यह (शशविषाण) खरगोश के सींग के समान है। तथाकथित फलितज्ञों का कहना है कि समस्त संसार के मनुष्यों की (जो भूत में थे, अब हैं और जो भविष्यत् में होंगे) कुण्डलियां भृगुसंहिता में हैं। यह महर्षि भृगु प्रोक्त कही जाती है। यह कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं। इसका अस्तित्व प्रतिज्ञामात्र है। इस मान्यता के कारण बहुत सारे लोगों का कहना है कि हमारे पास भृगुसंहिता है। इस प्रकार कई लोग कहते हैं कि हमारे पास भृगुसंहिता है। प्रत्येक भृगुसंहिता वाला कहता है कि उसके पास जो विद्यमान है वही वास्तविक है और जो दूसरों के पास बतलाये जाते हैं वे भृगुसंहिता के नाम से कल्पित हैं वास्तविक नहीं। आश्चर्य की बात यह है कि जिनके पास भृगुसंहिता नामक पुस्तक बतलाये जाते हैं, वे सब एक समान नहीं हैं। दूसरी बात यह है कि जिनके पास यह पुस्तक बतलाया जाता है वे उसको दूसरों को नहीं दिखलाते हैं। यह है भृगुसंहिता की कहानी।

श्री श्यामाचरण जी त्रिवेदी, एम० एस० सी० भृगु और कपाली शास्त्री, जगदम्बा भवन, कृष्णनगर, होशियारपुर, पंजाब के नाम से ही प्रसिद्ध है कि ये भृगुसंहिता के विद्वान् हैं। ऐसा पत्रिका में आया था कि त्रिवेदी जी पंजाब विश्वविद्यालय की सेनेट के लिए रजिस्टर्ड ग्रेजवेट निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ रहे हैं।[2] कर्ण परम्परा से सुनने में आया कि वे चुनाव में नहीं जीत पाये अपितु हार गए हैं। यदि भृगुसंहिता में संसार के प्रत्येक मनुष्य की कुण्डली होती और उससे मनुष्य के जीवन के विषय में पता चल सकता होता तो त्रिवेदी जी चुनाव के लिए खड़े ही नहीं होते। अथवा कहीं भूल से खड़े होते तो तुरन्त भृगुसंहिता में से अपनी कुण्डली को पढ़कर अपना नाम लौटाते। इससे अत्यन्त स्पष्ट है कि भृगुसंहिता कल्पित है।

दिल्ली के प्रसिद्ध ज्योतिषी कहे जाने वाले श्री हवेलीराम जी हैं। उनके पास "अरुणसंहिता" नामक एक ग्रन्थ बताया जाता है। उसके विषय में उनका मत है कि "इस ग्रन्थ में हरेक व्यक्ति के भूत, वर्तमान और भविष्य के बारे में लिखा हुआ है……यह ग्रन्थ देश के अन्य किसी भी ज्योतिषी के पास उपलब्ध नहीं है। भृगुसंहिता में मनुष्य के जीवन के बारे में पूरी जान-

१. स० प्र० भाष्य २ समु०

२. ट्रिब्यू रवि० २६। ६। १९७६।

कारी नहीं मिलती, जितनी कि अरुणसंहिता में।" उनकी मान्यता है कि भृगुसंहिता से अरुणसंहिता श्रेष्ठ है।[१]

"दिल्ली के प्रकाण्ड पण्डित और ज्योतिषी कहे जाने वाले वयोवृद्ध श्री रामेश्वरप्रसाद जी धस्माना अरुणसंहिता और भृगुसंहिता दोनों को झूठा सिद्ध करते हैं। उनका कहना है कि "भृगु अथवा अरुण संहिता कोई वैज्ञानिक पद्धति नहीं है। न ही किसी के पास असली संहिता है। उनका तर्क है कि जब से ऋषि भृगु पैदा हुए हैं तब से आज तक के लोगों के भविष्य के बारे में रिकार्ड रखना एक बड़ी ही असम्भव सी बात है। उनका यह मत है कि भृगुसंहिता वाले ज्योतिषी १०० वर्ष के पञ्चाङ्ग लेकर विविध जन्म कुंडलियां तैयार कर लेते हैं और उसी के आधार पर संहिताएं बनाकर जिज्ञासुओं के सामने पढ़कर उन्हें फुसलाते हैं॥"[२]

यह भृगुसंहिता के अस्तित्व और स्वरूप का चित्रण है। विचारशील सज्जनों के लिए यह करतलामलकवत् है कि भृगुसंहिता नाम से लोगों को भ्रान्त करके स्वार्थ सिद्ध करने के लिए कुछ चतुर पुरुषों के ये कृत्य हैं। यह कुण्डली नहीं सर्प कुण्डली है। इसको महर्षि दयानन्द सरस्वती के शब्दों में पढ़िए—

प्रश्न—क्या जो यह जन्मपत्र है सो निष्फल है?

उत्तर—हां वह जन्मपत्र नहीं किन्तु उसका नाम "शोकपत्र रखना" चाहिए क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है तब सबको आनन्द होता है। परन्तु वह आनन्द तब तक होता है कि जब तक जन्मपत्र बन के ग्रहों का फल न सुनें, जब पुरोहित जन्मपत्र बनाने को कहता है तब उसके माता-पिता पुरोहित से कहते हैं "महाराज! आप बहुत अच्छा जन्मपत्र बनाइए।" जो धनाढ्य हो तो बहुत सी लाल, पीली रेखाओं से चित्रविचित्र और निर्धन हों तो साधारण रीति से जन्मपत्र बना के सुनाने को आता है। तब उसके मां बाप ज्योतिषी जी के सामने बैठ के कहते हैं "इसका जन्मपत्र अच्छा तो है?" ज्योतिषी कहता है "जो है सो सुना देता हूँ। इसके जन्मग्रह बहुत अच्छे और मित्रग्रह भी बहुत अच्छे हैं जिसका फल धनाढ्य और प्रतिष्ठावान्, जिस सभा में जा बैठेगा तो सब के ऊपर इसका तेज पड़ेगा, शरीर से आरोग्य और राज्यमानी होगा"। इत्यादि बातें सुन के पिता आदि बोलते हैं, "वाह-वाह ज्योतिषी जी आप बहुत अच्छे हो। ज्योतिषी जी समझते हैं इन बातों से कार्य सिद्ध नहीं होता तब ज्योतिषी बोलता है कि "ये ग्रह तो बहुत अच्छे

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, २५ वैशाख, विक्रमी २०३२।

हैं, परन्तु ये ग्रह क्रूर हैं अर्थात् फलाने २ ग्रह के योग से ८ वर्ष में इसका मृत्युयोग है" इसको सुन के माता-पितादि पुत्र के जन्म के आनन्द को छोड़ के शोकसागर में डूबकर ज्योतिषी जी से कहते हैं कि "महाराज जी! अब हम क्या करें" तब ज्योतिषी जी कहते हैं 'उपाय करो'। गृहस्थ पूछे 'क्या उपाय करें?' ज्योतिषी जी प्रस्ताव करने लगते हैं कि "ऐसा २ दान करो। ग्रह के मन्त्र का जप कराओ और नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराओगे तो अनुमान है कि नवग्रहों के विघ्न हट जाएंगे"। अनुमान शब्द इसलिए है कि जो मर जायेगा तो कहेंगे हम क्या करें, परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है। हमने तो बहुत सा यत्न किया और तुमने कराया उसके कर्म ऐसे ही थे। और जो बच जाए तो कहते हैं कि देखो हमारे मन्त्र, देवता और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है। तुम्हारे लड़के को बचा दिया। यहां यह बात होनी चाहिए कि जो इनके जप पाठ से कुछ न हो तो दूने तिगुने रुपये इन धूर्तों से ले लेने चाहिए। और बच जाए तो भी ले लेने चाहिए क्योंकि जैसे ज्योतिषियों ने कहा कि "इसके कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी का नहीं" वैसे गृहस्थ भी कहें कि "यह अपने कर्म और परमेश्वर के नियम से बचा है तुम्हारे करने से नहीं"। स० प्र० द्वि० स०।

जन्मपत्र आदि की मान्यता से बहुत सारे अनर्थ हुए, होते हैं और होते रहेंगे।

फलित पुस्तकों की घोषणा है कि "किसी बालक का जन्म यदि मूल नक्षत्र के पहले चरण में या अश्लेषा नक्षत्र के चौथे चरण में हो तो उसके पिता की और मूल के दूसरे या अश्लेषा के तीसरे चरण में हो तो माता की मृत्यु होती है।[१] साथ ही इस अनिष्ट से बचने का उपाय बताते हुए कहते हैं कि ज्येष्ठा की अन्तिम पांच घड़ियों में अथवा मूल की प्रारम्भिक आठ घड़ियों में जिस शिशु का जन्म हो उसका त्याग कर दिया जाये। यदि ऐसा करना असम्भव हो तो उसका मुख पिता को आठ वर्ष तक नहीं देखना चाहिए।[२]

पहले तो मूल या अश्लेषा से किसी की मृत्यु का सम्बन्ध मानना ही

१. आद्ये पिता नाशमुपैति मूलपादे द्वितीये जननी तृतीये।
धनं चतुर्थोऽस्य शुभोऽथ शान्त्या सर्वत्र सत्स्यादहिभे विलोमम्। सर्व सं०॥

२. अथोचुरन्ये प्रथमाष्टघट्यो मूलस्य शाक्रान्तिमपञ्चनाड्यः।
जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वा मुखं पितास्याऽष्टसमा न पश्येत्॥
वही, पृ० १८१॥

हास्यास्पद है। फिर यदि ऐसा हो भी तो इन नक्षत्रों में सभी मानवों की मृत्यु हो जानी चाहिए—अमुक शिशु के मां बाप की ही क्यों ? क्योंकि पैदा कोई दूसरा हो और उसके जन्ममात्र से मृत्यु किसी दूसरे की हो जाये यह बात सर्वथा असम्भव है, असंगत है। जन्म लेने वाला बच्चा बिलकुल निरपराध होता है। अपराधी तो उसे तभी माना जा सकता है, जब वह गर्भावस्था में ही फलितशास्त्र की इस मान्यता का जानकार हो और माता-पिता की मृत्यु का निमित्त बनने के लिए मूल या अश्लेषा में जानबूझ कर उसने जन्म लिया हो। परन्तु यह सब असम्भवतम है।

अपने छोटे से बच्चे का चांद सा हंसता हुआ मुखड़ा चूमने के लिए, उसकी भोली चेष्टाएं निरखने के लिए प्रत्येक पिता उत्सुक रहता है। हृदय में उमड़ते हुए वात्सल्य रस से अपने शिशु को वह नहला देना चाहता है। उसके इस अनुपम असीम आनन्द में जो फलितशास्त्र बुरे नक्षत्रों की विभीषिका खड़ी करके बाधा डालते हैं, अच्छा होगा कि उन्हीं का परित्याग किया जाए, शिशु का नहीं। पैदा होने से पहले शुभाशुभ नक्षत्रों का विचार न कर सकने के कारण बच्चा बिलकुल निर्दोष होता है और इसीलिए माता-पिता के वात्सल्य को पाने का पूरा अधिकारी होता है। उस अबोध निर्दोष शिशु को—चाहे वह किसी भी नक्षत्र की किसी भी घड़ी में जन्मा हो, फेंक देना आठ वर्ष तक उसका मुंह न देखना स्पष्ट कर्तव्य-भ्रष्टता है। प्रत्यक्ष अत्याचार है। और इस अत्याचार का प्रचार होता है—फलित शास्त्रों से······।

अकर्मण्यतावृद्धि—फलितज्ञ ने यदि बता दिया कि आपकी कंगालियत हट जायगी और थोड़े ही दिनों में आप लखपति बन जायेंगे। तो यह सुनकर आप मारे खुशी के फूलकर कुप्पे हो जाएंगे और झूठे घमण्ड में आकर निश्चिन्ततापूर्वक सारा काम छोड़ बैठेंगे। दूसरी ओर यदि आप लखपति हैं और बता दिया कि एक सप्ताह में ही आप कंगाल बन जायेंगे, तो यह सुनते ही आपका सारा उत्साह ठण्डा पड़ जाएगा। सारी खुशियां मिट्टी में मिल जायेंगी, मुंह लटक जायेगा। चेहरा मुरझा जाएगा और चिन्ताग्रस्त होकर आप सारा काम (चालू काम भी) छोड़ बैठेंगे।

इस प्रकार ज्योतिषी जी महाराज अच्छा भविष्य (फलित) बतायें या बुरा—दोनों अवस्थाओं में मनुष्य अकर्मण्य बनता है। पैसे खोकर या देकर भी आलस्य खरीदता है। —फलित के अन्धविश्वास

"यह देखा गया है कि फलित ज्योतिष के बड़े कट्टर भक्त भी प्रायः ज्योतिषी की उपेक्षा करते हैं और अपनी इच्छानुसार अपने काम कर लेते हैं। यह तो हो सकता है कि यदि नौकरी का चार्ज लेना है तो कोई ज्योतिषी से पूछ लेवे कि "मुझे चार्ज लेने कितने बजे जाना चाहिए और उतने बजे ही जाये। परन्तु चार्ज ले चुकने पर यदि उस दफ्तर में प्रतिदिन ११ बजे जाना है तब वह ज्योतिषी से नहीं पूछता कि "मैं इस नियम का पालन करूँ वा न (करूं)" और प्रतिदिन ११ बजे दफ्तर जाता है।"

"अब भी पुरोहित और ६ घरवाले ब्राह्मण जो इस देश में उत्तम वा बड़े घर वाले कहे जाते हैं, वे जब अपना और अपने घर में विवाह करते हैं तब जन्मपत्रों का मिलान नहीं करते।" —स० प्र० भाष्य द्वि० समु०

अनर्थ गर्भ वाले इस जन्मपत्र वा फलित को छोड़ने में ही कल्याण है।

कुण्डली को सत्य मानने वालों से कुछ प्रश्न।

१. कुण्डली से जीवन के सम्बन्ध में ज्ञान कैसे होगा यह युक्ति से सिद्ध करिए।

२. कुण्डली का विधान अथवा संकेत किसी वेदशास्त्र में हो तो प्रमाण दीजिए।

३. कुण्डली का कर्म सिद्धान्त से] क्या सम्बन्ध है सप्रमाण बतलाइए।

४. जन्मकुण्डली से जीवन का ज्ञान होता है अथवा चन्द्रकुण्डली से और क्यों ? यदि दोनों में परस्पर विरोध हो तो किसको मानें किसको नहीं ?

५. कुण्डली के अनुसार मनुष्य की आयु १२० वर्ष ही होती है। वेदादि में सौ वर्ष लिखी है। कुण्डली मिथ्या है अथवा वेदादि ? प्रत्यक्ष में देखा जाता है कि एक सौ बीस से अधिक आयु वाले होते हैं। क्या प्रत्यक्ष भी मिथ्या है ?

६. पति-पत्नी की सन्तान रेखाएं एक समान क्यों नहीं होतीं ? क्योंकि दोनों की वही सन्तान है ? क्या इससे जन्मकुण्डली मिथ्या सिद्ध नहीं होती ?

७. अशुद्ध कुण्डली से वास्तविक जीवन का ज्ञान क्यों हुआ ?

८. मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है अथवा परतन्त्र ? यदि स्वतन्त्र है तो कुण्डली को देखने की क्या आवश्यकता है ? यदि परतन्त्र है तो भी देखने की आवश्यकता ही नहीं।

अथ विंशसमुल्लासः

अथाङ्कज्यौतिषं व्याख्यास्यामः।

मनुष्य के जीवन के विषय में जानने के लिए वा उसके मन की बात को जानने वा उसकी सफलता और असफलता को जानने के नाम से जैसे जन्मपत्रिका की कल्पना की गई है इसी प्रकार अङ्क ज्यौतिष नाम से एक प्रवृत्ति चल रही है। इसकी पद्धति को बतलाने वाले ग्रन्थ हैं। पुस्तकों को पढ़कर मनुष्य अपने को ज्योतिषी मानते हैं। इस प्रकार की एक अङ्क ज्योतिष नामक पुस्तक डा० नारायणदत्त जी श्रीमाली की लिखी हुई मेरे देखने में आई। उसके आधार पर अङ्क ज्यौतिष नामक विषय पर विचार करते हैं।

यथा—"अङ्क नौ हैं। प्रत्येक अङ्क का अपना २ अलग २ प्रभाव है; अलग २ अर्थ हैं। उस अङ्क से स्वास्थ्य, धन, विद्या और धर्म आदि समस्त विषयों को जान सकते हैं। राष्ट्र का उत्थान-पतन और हानि-लाभ आदि का ज्ञान भी इससे होता है। सफलता मिलेगी वा नहीं इसका भी ज्ञान इससे होता है। जन्म दिनाङ्क इसका आधार है। इसी से समस्त ज्ञातव्य बातों का ज्ञान होता है। कोई भी दिनाङ्क हो उसको एक ही अङ्क में संक्षिप्त कर लिया जाता है। जैसा किसी का जन्म २९।६।७६ को हुआ होतो २+९=११,१+१ =२; यह जन्म दिनाङ्क का लघुतम अंक है। इसी का प्रभाव उसके जीवन पर होगा। इन्हीं अंकों से राशियों का, ग्रहों का, वारों आदि का सम्बन्ध किया जाता है। अंकों का सम्बन्ध अक्षरों के साथ भी जोड़ा गया है। नाम के अक्षरों से अंकों को जानकर जीवन के विषय में बताया जाता है" इत्यादि अनेक बातें हैं।

अब इनकी परीक्षा करते हैं। जन्म दिनाङ्क, मास तथा वर्ष कौनसा होना चाहिए? इस समय सृष्टि संवत्, कलि संवत्, विक्रमी संवत्, ईसवी संवत्, शकसंवत्, हिजरी संवत् और फसली संवत् आदि अनेक संवत् हैं। इनमें से कौन सा लिया जाये और कौन सा नहीं? और क्यों? यदि कहो कि ईसवी संवत् लिया जाना चाहिए तो प्रश्न होता है कि विक्रमी आदि क्यों नहीं लिये जायें? ईसवी संवत् से मनुष्य के जीवन का किस रूप में कार्य कारण रूप

में अथवा सांकेतिक सम्बन्ध रूप में किंवा समवाय आदि रूप में है सिद्ध कीजिए? सृष्टि की उत्पत्ति, पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, ग्रह और नक्षत्रादि की उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय के साथ इस संवत् का किस प्रकार सम्बन्ध है, सिद्ध कीजिए? इसका सृष्टि क्रम के साथ सम्बन्ध है अथवा ईसा के साथ? यदि कहो कि सृष्टिक्रम के साथ है, तो सिद्ध करना पड़ेगा।

इसका सृष्टिक्रम के साथ किसी भी प्रकार सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि २१ मार्च के दिन सूर्य भूमध्य रेखा पर आता है जब कि मार्च के अन्त में आना चाहिए। इस एक बिन्दु के चलने से मकर संक्रमण कर्कसंक्रमण में भी अन्तर उसी प्रकार बना रहता है। २२ दिसम्बर के दिन सूर्य का उत्तरायण प्रारम्भ होता है यह मास का, न आरम्भ है और न अन्त ही। न वर्ष का आरम्भ है न अन्त ही। वास्तव में यह संवत् किसी ऐतिहासिक घटना अथवा भौगोलिक किंवा खगोलीय कारण को लेकर नहीं बना। ईसा के जन्म के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं। ऐतिहासिकों का कहना है कि ईसा के जन्म के चार वर्ष पश्चात् इस का प्रारम्भ हुआ। इसका भूगोल वा खगोल से भी सम्बन्ध नहीं है।

इस वर्ष गणना में कितने ही परिवर्तन करने पड़े। रोमन सम्राट् जूलियस सीजर के नाम से जुलाई मास तथा अगस्टस सीजर के नाम से अगस्त मास का सन्निवेश किया गया। उनके सम्मानार्थ मासों में भी फरवरी के दो दिन को लेकर जुलाई के वा अगस्त के ३१-३१ दिन बना दिए। मासों का नाम भी वैज्ञानिक नहीं है। मासों में समान २ दिन न होकर न्यूनाधिक होने का कोई वैज्ञानिक कारण नहीं है। मार्च में ३१ दिन और अप्रैल में ३० दिन क्यों हैं? विषमता का कारण क्या है? इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है। काल्पनिक गणना है जो सृष्टि के साथ कोई समता नहीं रखती। "ईसवी वर्ष सायन वर्ष से लगभग १२ मिनट बड़ा है। इस अन्तर को कम करने के लिए १६ शती में रोमन कैथलिक चर्च की ट्रण्ट कौन्सिल के निर्णयानुसार पोप ग्रेगरी तेरह ने १५८२ ई० में एक धर्मादेश जारी करके शुक्रवार ५ अक्तूबर को १५ अक्तूबर घोषित कर दिया। इस प्रकार दस वर्ष ४०० से विभाजित न हो वह लीप वर्ष न माना जायगा। इस प्रकार ४०० वर्षों में लीप वर्षों की संख्या १०० न होकर ९१ रह गई जिसमें वर्ष का मान ३६५.२४२५ दिन रह गया इसमें भी ३०० वर्षों में एक दिन का अन्तर रह जायगा।"[1] इससे स्पष्ट है कि इस वर्ष मास दिन गणना का सृष्टि के साथ कोई सम्बन्ध

---

१. वीरेन्द्र बहादुर दैनिक "स्वदेश"

नहीं है। कल्पना के अतिरिक्त इसमें कोई कारण नहीं।• जब यह गणना ही अवैज्ञानिक है तो इसके दिनांक को, मासाङ्क को वा वर्षाङ्क को लेकर मनुष्य के जीवन के सम्बन्ध जानने की चुनौती करना वा मानना सत्य कैसे हो सकता है? मनुष्य का जन्म जिस दिनाङ्क को हो उसको लेकर उसके जीवन के विषय में बतलाना तब ही संभव है, जब मनुष्य के जीवन का और ईसवी संवत् की दिन मास वर्ष गणना का कार्य कारण वा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध हो, मनुष्य जीवन को समझने के लिए योजनापूर्वक यह ईसवी संवत् की गणना बनाई हो, ऐसा तो है ही नहीं। तब यह प्रतिज्ञा कि "दिनाङ्क से मनुष्य-जीवन के विषय में जाना जा सकता है" साहसमात्र नहीं तो और क्या है? यदि इसको मनुष्य जीवन को पढ़ने के लिए ग्रन्थ के रूप में बनाया जाकर चलाया जाता तो उससे जीवन का अध्ययन संभव था। जैसा कोष में कितने रुपये हैं इसका ज्ञान बही खाते से होता है। खाते को देखकर यह बतलाया जा सकता है कि कोश में कितने रुपये हैं। यह ईसवी संवत् ऐसा नहीं है।

यदि ईसवी संवत् के दिनाङ्क से मनुष्य के भविष्य का ज्ञान हो सकता हो तो सृष्टि संवत्, कलि संवत्, विक्रमी संवत्, शक संवत्, आदि के प्रत्येक दिनाङ्क वा तिथि आदि से भी हो सकता है। यदि होता हो तो यह संभव नहीं है। क्यों कि प्रत्येक संवत् के अनुसार भिन्न २ जन्म दिनाङ्क होंगे, भिन्न २ अङ्कों के अनुसार भिन्न २ भविष्य मानना पड़ेगा। यह परस्पर विरुद्ध और प्रत्यक्ष विरुद्ध होने से असत्य है। यदि ईसवी संवत् से ही होता हो तो सिद्ध करिए। जब तक मनुष्य के जीवन का तथा ईसवी संवत् का कार्य कारण वा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता, कोई भी बुद्धिमान् उसको नहीं मानेगा। मनुष्य जीवन के साथ इनका सम्बन्ध सिद्ध करना ऐसा ही है जैसा वर्षा की बून्द को पकड़कर सूर्यलोक में पहुँच जाना।

अब रह गई अङ्कों की बात। अङ्क नौ हैं। इनका उपयोग संख्या को जानने के लिए ही है। एक २ अङ्क के विभिन्न गुण वर्णित हैं। जैसे— किसी का जन्म दिनाङ्क १ है किसी का दो है, इसी प्रकार नौ तक हैं। उनमें से प्रत्येक अङ्क के गुण पृथक् २ वर्णित हैं। दो संख्या वालों के विषय में लिखा है—

"दो का अङ्क पूर्णता का द्योतक है। यह अंक इस बात का सूचक है

• [illegible] समुल्लासान्तर्गत "परमुखापेक्षा" विषय में लिखित प्रकरण भी यहां

है कि जीवन में जो कार्य भी हो वह रुचिपूर्ण हो, सलीकेदार हो तथा अपने में पूर्ण व्यवस्थित हो। दो के अंक से सम्बन्धित यद्यपि शारीरिक रूप से अधिक प्रबल एवं पुष्ट नहीं होते परन्तु मानसिक रूप से ये स्वस्थ सबल होते हैं। श्रम की अपेक्षा मानसिक कार्यों में इनकी रुचि विशेष होती है तथा ये अपनी बुद्धि से कुछ ऐसा कार्य कर जाते हैं जिससे आने वाली पीढ़ियां इनकी ऋणी बनी रहती हैं। ऐसे व्यक्ति अत्यन्त भावुक होते हैं। दूसरों के कार्यों को प्रसन्नतापूर्वक करते हैं और उनके लिए हित सम्पादन में बराबर सचेष्ट रहते हैं। 'न' कहना इनके वश की बात नहीं। स्वभाव से दयालु होने के कारण ये दूसरों की भलाई में अपने आपको खपा देने में विश्वास रखते हैं।

सौन्दर्य के प्रति इनकी रुचि परिष्कृत होती है। प्रेम और सौन्दर्य को जितनी बारीकी से ये समझ पाते हैं उतने अन्य लोग नहीं। इनकी आंखों में कुछ ऐसा आकर्षण होता है कि सामने वाला बरबस इनकी ओर आकृष्ट हो जाता है। सम्मोहन करने की कला इनमें अद्भुत होती है। ये अपरिचित से अपरिचित व्यक्ति को चुटकियों में अपना मित्र बना लेते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों में सब से बड़ी विशेषता यह होती है कि अपनी गलती स्वीकार करने में ये एक क्षण भी हिचकिचाते नहीं। स्वतन्त्र निर्णय लेने में ये कमजोर होते हैं। किसी भी कार्य को करने या न करने के निर्णय को लेकर ये काफी समय तक उधेड़बुन में बने रहते हैं। क्षण-क्षण में इनके विचारों में परिवर्तन आता रहता है और मित्र जैसी राय देते हैं उसी के अनुरूप अपने निर्णय कर लेते हैं। सब से बड़ी बात यह है कि भावुक एवं कोमल हृदय होने के कारण तुरन्त निर्णय नहीं ले पाते और दूसरों के विश्वास पर ये कई बार ठगे भी जाते हैं। मीठे बोलकर या इनकी चापलूसी कर कोई भी इनसे अपना काम निकलवा सकता है। यद्यपि ये मन ही मन समझते हैं कि सामने वाला व्यक्ति मुझे मूर्ख बना रहा है फिर भी ये मूर्ख बने रहते हैं और उसे कुछ भी नहीं कहते।

अधिक कल्पनाशील होने के कारण ये भावुक होते हैं तथा एक प्रकार से इनके जीवन में बराबर मानसिक संघर्ष बना रहता है। अधैर्य के कारण कई बार ये गलत निर्णय ले लेते हैं और फिर मन के अनुरूप कार्य न होने के कारण मन ही मन पछताते रहते हैं, झुंझलाते रहते हैं और जीवन में अपने आपको अत्यन्त दुःखी तथा अपमानित अनुभव करते रहते हैं। कई बार समय [illegible] भी बने रहते हैं। यद्यपि इनके

नहीं है। कल्पना के अतिरिक्त इसमें कोई कारण नहीं।[१] जब यह गणना ही अवैज्ञानिक है तो इसके दिनांक को, मासाङ्क को वा वर्षाङ्क को लेकर मनुष्य के जीवन के सम्बन्ध जानने की चुनौती करना वा मानना सत्य कैसे हो सकता है ? मनुष्य का जन्म जिस दिनाङ्क को हो उसको लेकर उसके जीवन के विषय में बतलाना तब ही संभव है, जब मनुष्य के जीवन का और ईसवी संवत् की दिन मास वर्ष गणना का कार्य कारण वा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध हो, मनुष्य जीवन को समझने के लिए योजनापूर्वक यह ईसवी संवत् की गणना बनाई हो, ऐसा तो है ही नहीं। तब यह प्रतिज्ञा कि "दिनाङ्क से मनुष्य-जीवन के विषय में जाना जा सकता है" साहसमात्र नहीं तो और क्या है ? यदि इसको मनुष्य जीवन को पढ़ने के लिए ग्रन्थ के रूप में बनाया जाकर चलाया जाता तो उससे जीवन का अध्ययन संभव था। जैसा कोष में कितने रुपये हैं इसका ज्ञान बही खाते से होता है। खाते को देखकर यह बतलाया जा सकता है कि कोश में कितने रुपये हैं। यह ईसवी संवत् ऐसा नहीं है।

यदि ईसवी संवत् के दिनाङ्क से मनुष्य के भविष्य का ज्ञान हो सकता हो तो सृष्टि संवत्, कलि संवत्, विक्रमी संवत्, शक संवत्, आदि के प्रत्येक दिनाङ्क वा तिथि आदि से भी हो सकता है। यदि होता हो तो यह संभव नहीं है। क्यों कि प्रत्येक संवत् के अनुसार भिन्न २ जन्म दिनाङ्क होंगे, भिन्न २ अङ्कों के अनुसार भिन्न २ भविष्य मानना पड़ेगा। यह परस्पर विरुद्ध और प्रत्यक्ष विरुद्ध होने से असत्य है। यदि ईसवी संवत् से ही होता हो तो सिद्ध करिए। जब तक मनुष्य के जीवन का तथा ईसवी संवत् का कार्य कारण वा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता, कोई भी बुद्धिमान् उसको नहीं मानेगा। मनुष्य जीवन के साथ इनका सम्बन्ध सिद्ध करना ऐसा ही है जैसा वर्षा की बून्द को पकड़कर सूर्यलोक में पहुँच जाना।

अब रह गई अङ्कों की बात। अङ्क नौ हैं। इनका उपयोग संख्या को जानने के लिए ही है। एक २ अङ्क के विभिन्न गुण वर्णित हैं। जैसे— किसी का जन्म दिनाङ्क १ है किसी का दो है, इसी प्रकार नौ तक हैं। उनमें से प्रत्येक अङ्क के गुण पृथक् २ वर्णित हैं। दो संख्या वालों के विषय में लिखा है—

"दो का अङ्क पूर्णता का द्योतक है। यह अंक इस बात का सूचक है

१. तीसरे समुल्लासान्तर्गत "परमुखापेक्षा" विषय में लिखित प्रकरण भी यहाँ संगृहीत है।

है कि जीवन में जो कार्य भी हो वह रुचिपूर्ण हो, सलीकेदार हो तथा अपने में पूर्ण व्यवस्थित हो। दो के अंक से सम्बन्धित यद्यपि शारीरिक रूप से अधिक प्रबल एवं पुष्ट नहीं होते परन्तु मानसिक रूप से ये स्वस्थ सबल होते हैं। श्रम की अपेक्षा मानसिक कार्यों में इनकी रुचि विशेष होती है तथा ये अपनी बुद्धि से कुछ ऐसा कार्य कर जाते हैं जिससे आने वाली पीढ़ियां इनकी ऋणी बनी रहती हैं। ऐसे व्यक्ति अत्यन्त भावुक होते हैं। दूसरों के कार्यों को प्रसन्नतापूर्वक करते हैं और उनके लिए हित सम्पादन में बराबर सचेष्ट रहते हैं। 'न' कहना इनके वश की बात नहीं। स्वभाव से दयालु होने के कारण ये दूसरों की भलाई में अपने आपको खपा देने में विश्वास रखते हैं।

सौन्दर्य के प्रति इनकी रुचि परिष्कृत होती है। प्रेम और सौन्दर्य को जितनी बारीकी से ये समझ पाते हैं उतने अन्य लोग नहीं। इनकी आंखों में कुछ ऐसा आकर्षण होता है कि सामने वाला बरबस इनकी ओर आकृष्ट हो जाता है। सम्मोहन करने की कला इनमें अद्भुत होती है। ये अपरिचित से अपरिचित व्यक्ति को चुटकियों में अपना मित्र बना लेते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों में सब से बड़ी विशेषता यह होती है कि अपनी गलती स्वीकार करने में ये एक क्षण भी हिचकिचाते नहीं। स्वतन्त्र निर्णय लेने में ये कमजोर होते हैं। किसी भी कार्य को करने या न करने के निर्णय को लेकर ये काफी समय तक उधेड़बुन में बने रहते हैं। क्षण-क्षण में इनके विचारों में परिवर्तन आता रहता है और मित्र जैसी राय देते हैं उसी के अनुरूप अपने निर्णय कर लेते हैं। सब से बड़ी बात यह है कि भावुक एवं कोमल हृदय होने के कारण तुरन्त निर्णय नहीं ले पाते और दूसरों के विश्वास पर ये कई बार ठगे भी जाते हैं। मीठे बोलकर या इनकी चापलूसी कर कोई भी इनसे अपना काम निकलवा सकता है। यद्यपि ये मन ही मन समझते हैं कि सामने वाला व्यक्ति मुझे मूर्ख बना रहा है फिर भी ये मूर्ख बने रहते हैं और उसे कुछ भी नहीं कहते।

अधिक कल्पनाशील होने के कारण ये भावुक होते हैं तथा एक प्रकार से इनके जीवन में बराबर मानसिक संघर्ष बना रहता है। अधैर्य के कारण कई बार ये गलत निर्णय ले लेते हैं और फिर मन के अनुरूप कार्य न होने के कारण मन ही मन पछताते रहते हैं, झुंझलाते रहते हैं और जीवन में अपने आपको अत्यन्त दुःखी तथा अपमानित अनुभव करते रहते हैं। कई बार समय पर कार्य न होने की वजह से ये गमगीन भी बने रहते हैं। यद्यपि इनके

जीवन में मित्रों की कमी नहीं होती परन्तु अधिकतर मित्र स्वार्थी ही होते हैं और मित्रों से इनको कोई विशेष लाभ नहीं मिलता। वास्तविक मित्र इनके जीवन में नहीं के बराबर होते हैं। एकान्त में या अकेले में ये नहीं रह सकते। सच्चे मित्रों का अभाव इन्हें बराबर खटकता रहता है। मित्र इनसे लाभ उठाते रहते हैं, परन्तु इनको मित्रों से कोई विशेष लाभ नहीं मिलता।

दूसरों के हृदय की बात जान लेने का इनमें सहज गुण होता है। सामने वाला व्यक्ति कहे या न कहे, तुरन्त ही उसके मन की थाह तक पहुँच जाते हैं और ये सब कुछ समझ जाते हैं कि सामने वाला व्यक्ति क्या कहना चाहता है। ललित कलाओं में इनकी विशेष रुचि होती है तथा इस शौक के कारण इनका काफी समय और शक्ति व्यर्थ ही चली जाती है। इनकी पत्नी सुन्दर, सुशील एवं शिक्षित होगी। परन्तु दोनों में बराबर वैचारिक मतभेद बना रहेगा जिससे कि इनका गृहस्थ जीवन सामान्य स्तर का ही रहेगा। कुल मिलाकर इस प्रकार के व्यक्ति भावुक, सहृदय, परोपकारी तथा मस्तिष्क प्रधान होते हैं।' अंकज्योतिष, पृष्ठ २२ से

इसी प्रकार शून्य से लेकर नौ तक के गुण कहे हैं।

समीक्षा— २ अक्तूबर महात्मा गान्धी जी का तथा लालबहादुर शास्त्री जी का जन्म दिनांक है। इनके जीवन दो अंक से प्रभावित होने चाहिएं। दोनों व्यक्तियों का जीवन एक समान होना चाहिए किन्तु ऐसा नहीं। २ को जन्म लेने वालों का जीवन एक समान होना चाहिए। जिस दिन जिस समय महात्मा जी का जन्म हुआ होगा उसी समय पृथिवी पर कई बालकों ने जन्म लिया होगा किन्तु महात्मा गान्धी दूसरा कोई नहीं बना। लालबहादुर दूसरा नहीं बना। इसका कारण क्या है?

"दो का अंक पूर्णता का द्योतक है" किस की पूर्णता दो से द्योतित होती है? पूर्णता का लक्षण क्या है? दो संख्या वाले लाखों व्यक्ति होंगे संभव है करोड़ों हों। क्या ये सब पूर्ण हैं? यदि हैं तो किस प्रकार हैं सिद्ध करिए। पूर्ण तो कोई भी मनुष्य नहीं है। न हो ही सकता है। जो जन्म-मरण के चक्र में आता है वह पूर्ण कैसे?

"दो के अंक से सम्बन्धित व्यक्ति यद्यपि शारीरिक रूप से अधिक प्रबल एवं पुष्ट नहीं होते।" पृथिवी पर आज एक दिन में सहस्रों बालक जन्म लेते हैं क्या वे सब शारीरिक दृष्टि से निर्बल पुष्टिहीन ही होते हैं?

"ये अपनी बुद्धि से कुछ ऐसा कार्य कर जाते हैं जिससे आने वाली पीढ़ियां ऋणी बनी रहती हैं।" दो अंक वाले व्यक्ति सारे विश्व में अनुपात से १० प्रतिशत से अधिक बैठेंगे। ग्रामीण जनता में जाकर देखिए इस वाक्य की असत्यता का स्पष्ट दर्शन हो जायेगा। जैसा लिखा है वैसा बुद्धि से कार्य करने वाले १० प्रतिशत तो क्या १ प्रतिशत मिलना कठिन है?

"ऐसे व्यक्ति अत्यन्त भावुक होते हैं···। 'न' कहना इनके वश की बात नहीं है।" महात्मा गांधी जी अत्यन्त भावुक नहीं थे। अपने विचारों के विरुद्ध सारे लोग एक ओर और दूसरी ओर वे अकेले होते थे तथापि सीधा नकारा कर देते थे, भावुकता वश हां नहीं भरते थे।

"स्वतन्त्र निर्णय लेने में ये कमजोर होते हैं···मित्र जैसी राय देते हैं उसी के अनुरूप अपना निर्णय कर लेते हैं।" गान्धी जी का जीवन ठीक इससे विरुद्ध था। वे अपने निर्णय आप लेते थे। यह नहीं है कि वे दूसरों से पूछ कर ही निर्णय लेते हों। अथवा मित्र जो परामर्श दें उसी प्रकार निर्णय लेते हों।

"एकान्त में या अकेले में ये नहीं रह सकते" यह भी महात्मा गान्धी जी के जीवन से मिथ्या सिद्ध होता है। वे घण्टों, दिनों एकान्त में रह सकते थे।

"ललित कलाओं में इनकी विशेष रुचि होती है तथा इस शौक के कारण इनका काफी समय और शक्ति व्यर्थ ही चली जाती है।" महात्मा जी किसी ललितकला में रुचि नहीं रखते थे, न इसके कारण उनके जीवन का समय और शक्ति व्यर्थ चली गई।

"इनकी पत्नी सुन्दर, सुशील एवं शिक्षित होगी।" क्या हब्शी लोगों की स्त्रियां भी सुन्दर होंगी? अफ्रीका आदि देशीय लोगों की स्त्रियां भी सुन्दर और शिक्षित होंगी? आश्चर्य है इस पङ्क्ति को लिखने वा सत्य मानने वालों पर? क्या मध्यकाल के लोगों की स्त्रियां शिक्षित होती थीं जब कि यह मिथ्या परम्परा कि 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः' 'स्त्रियां और शूद्र न पढ़ें ऐसा वेद प्रमाण होने से' माना जाता था? क्या दो अंक वाले सब पुरुष ही होते हैं? स्त्रियां नहीं होतीं? यदि कहो नहीं होतीं, तो यह बात असत्य है। यदि कहो कि होती हैं तो यह बतलाइए कि क्या स्त्रियों की पत्नियां होती हैं? यदि कहो कि पत्नी के स्थान पर स्त्रियों का 'पति' अर्थ होगा तो हम कहते हैं कि इसकी व्याख्या नहीं चाहते। इसकी व्यवस्था पुस्तकों में क्यों नहीं लिखी गई? "परन्तु दोनों में बराबर वैचारिक मतभेद बना रहेगा

जिससे कि इनका गृहस्थ जीवन सामान्य स्तर का ही होगा।" महात्मा जी का गार्हस्थ्य जीवन ठीक इससे भिन्न रहा। विवाह के कुछ वर्षानन्तर पति पत्नी में मतभेद समाप्त हुआ। उनका गृहस्थ जीवन उन्नत स्तर का था यह बहुजन विदित है।

विस्तार भय से मैंने कुछ ही वाक्यों की समीक्षा की है। इसी प्रकार दो अंक के विषय में बहुत सारी कल्पित बातें हैं। इस प्रकार अन्य अंकों के विषय में भी युक्ति प्रमाणहीन बहुत सारी बातें लिखी हैं। उनको भी इसी प्रकार मिथ्या समझें।

इन अंकों का ग्रहों, राशियों, वारों, रत्नों आदि से सम्बन्ध का कथन भी प्रमाणहीन केवल कल्पना मात्र है। यदि सम्बन्ध सिद्ध करेंगे तो भी मिथ्या है। यह विस्तारपूर्वक पूर्वत्र वर्णित है वहीं देख लें।

नाम और अङ्क—"किसी के नाम को आंग्ल भाषा में लिखें उसके अक्षरों के[1] अङ्कों का योग करके उस अंक से उसके विषय में जान सकते हैं। जैसे—वह नाम जिसका है, उसके व्यक्तित्व को ऊँचा उठायेगा वा नहीं? जिस नगर में वह रहता है क्या वह उसके अनुकूल तथा लाभदायक है? इत्यादि प्रश्नों का समाधान उससे मिल जाता है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति और देश आदि के विषय में भी इसी नाम के आधार पर जानते हैं।" यह है अंक ज्योतिष को मानने वालों की मान्यता। अब तक इसको सिद्ध नहीं किया जा सका कि अंक किसी के गुण को बतला सकते हैं। अब यह भी सिद्ध करना पड़ेगा कि नाम का अक्षरों का क्या सम्बन्ध है? यह भी सिद्ध करना पड़ेगा कि अंग्रेजी भाषा के ही अक्षरों का संख्या के साथ सम्बन्ध है और यह भी प्रश्न होगा कि अंग्रेजी भाषा का अंकों के साथ किस रूप में सम्बन्ध है? असमाधेय यह प्रश्न भी उनके समक्ष मुख खोले खड़ा होगा कि नाम के साथ जीवन के भवितव्य का क्या सम्बन्ध है। क्या नाम नामी के भवितव्य के ज्ञापन के लिए रख दिया जाता है? जितने नाम लोक में हैं क्या उन सब का इसी प्रकार सम्बन्ध है? यदि नहीं तो यह नामधारी अंक ज्योतिष सर्वथा असत्य है। यदि है तो भी यह सर्वथा असत्य है। क्योंकि ग्रामीण व्यक्ति किसी का अन्वर्थक नाम रखना लगभग नहीं जानते। जब बच्चे के विचार व्यक्त नहीं, गुणकर्म स्वभाव व्यक्त नहीं हो, पाये उसके पिछले जन्म के वा वर्तमान जन्म के कर्मों का ही पता नहीं तो उसके भविष्यत् के विषय में नाम रखने वालों को क्या पता?

---

१. ए० बी० सी० आदि अक्षरों के १, २, ३, आदि अंक माने हुए हैं।

नाम से नामी के भविष्यत् को जाना जाना असम्भव है। यह मान्यता विद्या विज्ञान विवेकहीन मनुष्यों की होती है।

प्रश्न—यह विद्या पाश्चात्यों ने आविष्कृत की है। कीरो जैसे विद्वान् ने इसको सत्य माना है? यह असत्य कैसे हो सकती है?

उत्तर—यह विद्या नहीं है अविद्या है। विद्या वह होती है जो कार्य कारण सम्बन्धयुक्त हो। जिसमें कार्यकारण सम्बन्ध का गला घोंटा जाता हो वह अविद्या ही है। चाहे पाश्चात्यों द्वारा कथित वा मान्यता प्राप्त हो अथवा पौर्वात्यों द्वारा; सृष्टिक्रम के, विद्या के विरुद्ध होने से सत्य नहीं हो सकता। कीरो कोई सर्वज्ञ तथा निर्भ्रान्त नहीं है। जैसा डार्विन ने अपने विकास सिद्धान्त द्वारा स्वयं भटक कर करोड़ों लोगों को भटका रखा है। इसी प्रकार कीरो है। कीरो की मान्यता सबकी मान्यता नहीं है। सबकी हो भी जाय तो भी प्रमाण विरुद्ध होने से मान्य नहीं हो सकती।

अङ्कों के आधार पर मनुष्य के भविष्यत् को जानने का विश्वास निराधार है। यह अज्ञ लोगों के द्वारा उपस्थित और स्वार्थी लोगों द्वारा प्रचारित है। इसको सत्य मानना अविद्या की पराकाष्ठा है। परमात्मा इन भ्रान्त लोगों को सद्बुद्धि प्रदान करे जिससे ये अपने को वा अन्यों को भ्रमाना छोड़कर विद्या और पुरुषार्थ को अपनाकर जीवन को सुखमय बनाते हुए प्राणिमात्र के कल्याण में समर्थ हो सकें।

अथैकविंशसमुल्लासः

अथ भविष्यद्वाणीं व्याख्यास्यामः ।

ज्यौतिष का अर्थ "भविष्यत् को जानना" यह सर्वसाधारण में प्रचलित है। एक दो व्यक्तियों को छोड़कर लगभग सभी इसी बात को मानते हैं। अब इस विषय पर विचार करते हैं। काल के तीन विभाग हैं भूत, भविष्यत् और वर्तमान। जब क्रिया विद्यमान हो वह वर्तमान काल है। क्रिया, गति, चेष्टा, प्रयत्न एकार्थक हैं। जिस क्षण=जिस समय क्रिया हो रही हो=वर्तमान हो, वह वर्तमान काल है। जो वर्तमान क्षण से पूर्व का काल है वह भूतकाल है। जो वर्तमान क्षण से अगले समय में होने वाला काल है वह भविष्यत् वा अनागत काल है। यह मान्यता लोगों में घर की हुई है कि ज्यौतिष से भूत भविष्यद्वर्तमान की बातों को जाना जा सकता है और जाना जाता है।

मनुष्य को अपने विषय में जानने की इच्छा स्वाभाविक रूप से रहती है। यदि कोई व्यक्ति उसके सम्बन्ध में बताने लग जाये तो वह सुनने को उद्यत हो जाता है। उसका भविष्य किस प्रकार का रहेगा, इसके सम्बन्ध में कोई कुछ बतलाने लगे तो रुचिपूर्वक सुनता है। उसकी रुचि वा प्रवृत्ति को देखकर चतुर मनुष्य उसकी मनोवृत्ति के अनुकूल भावी जीवन के विषय में कार्य की सफलता, असफलता आदि के सम्बन्ध में जो चाहे सो कह दें। इस प्रकार मनुष्य अपने विषय में दूसरों से कुछ सुनने का अभ्यासी हो जाता है। सुनाने वाले भी उसके अनुकूल वा प्रशंसायुक्त तथा आशाजनक और सहानुभूतिपूर्ण बात कहते जायें तो सुनने वाला शनैः २ उसका भक्त बन जाता है। आगे चलकर ऐसी स्थिति हो जाती है कि उसके हां में हां मिलाने लग जाता है और अपनी मान्यता यह बना लेता है कि भविष्यत् के सम्बन्ध में जाना जा सकता है और बतलाया जा सकता है। आज भविष्यत् को बतलाने की चेष्टा करने वाले उस पर विश्वास करने वाले सभी इसी कोटि के हैं। मनुष्य की सहज प्रवृत्ति से लाभ उठाने के लिए भविष्यद्वाणी की कल्पना कर ली। वर्तमान और भविष्यत् की बातों को बतलाने के समान भूतकाल की

बातें नहीं हैं। उनमें कुछ अन्तर है। अपने भूत को मनुष्य कुछ २ जानता है इस लिए उसमें उलटी सीधी बातों के अधिक मिश्रण वा बनावट से निर्वाह नहीं हो सकता। इसलिए भूतकाल की बातों को और वर्तमान की बातों को बतलाने के लिए उनके मित्र, बन्धु, बान्धव, परिचित, पड़ौसी, सेवक और गुप्तचर आदि के द्वारा पता कर लेते हैं। कहीं सिद्ध साधक बनकर, कहीं अनजान बनकर परिचय पूछ २ कर कहीं गुप्तचरों द्वारा, कहीं उनके सेवकों द्वारा कहीं मिलने वाले मित्रों तथा सम्बन्धियों द्वारा, कहीं ऊहापोह से कहीं उन्हीं से अस्पष्ट वा वक्र पद्धति से पूछ २ कर भी जान लेते हैं और द्व्यर्थक वा अनेकार्थक बातों द्वारा बतलाते हैं। जब उनकी बात असत्य सिद्ध हो जाय न तो अपने चातुर्य से श्रोता को अनजान के रूप में उपस्थित करते हुए अपनी बात की अन्य प्रकार से व्याख्या करके अपने को सत्यवक्ता सिद्ध करते हुए देखे जाते हैं।

प्रश्न—क्या मनुष्य भविष्यत् को जान सकता है?

ज्योतिषी—भविष्यत् का क्या अर्थ है?

फलितवाले—जो आगे होने वाली बातें हैं उन ही भावी अथवा अनागत बातों को भविष्यत् कहते हैं। वे जानी जा सकती हैं। इसी के लिए ज्यौतिष है।

ज्योतिषी—भविष्यत् की बातें दो प्रकार की हैं। एक कार्य कारण-सम्बद्ध बातें और दूसरी विना कार्य कारण से सम्बद्ध। यह सार्वत्रिक वा सर्वविदित नियम है कि कारण के होने पर कार्य होता है। विना कारण के कार्य नहीं हो सकता। जैसा कि महर्षि कणाद ने लिखा है कि **कारणभावात् कार्यभावः** ।। वैशे० ४।१।३।। **कारणाभावात्कार्याभावः** ।। १।२।१।। यह सिद्धान्त निरपवाद है। जो बातें कार्यकारण सम्बद्ध हैं जैसा चैत्र के पश्चात् वैशाख आयेगा, वसन्त के पश्चात् ग्रीष्म होगा, पश्चात् वर्षा; उत्तरायण के पश्चात् दक्षिणायन होगा, शैशव के पश्चात् यौवन तत्पश्चात् वार्धक्य; कल प्रातः सूर्योदय होगा, आज बुधवार है, कल गुरुवार होगा तो परसों शुक्रवार होगा। अध्यापक अपने विद्यार्थियों की योग्यता वा प्रयत्न को जानता है इसलिए विद्यार्थियों के भविष्यत् के सम्बन्ध में बतला देगा कि कौन विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण होगा और कौन नहीं। एक वैद्य रोगी के रोग को जानने के कारण उसके भविष्यत् के विषय में बतला सकता है कि रोग साध्य है वा असाध्य, रोगी रोगमुक्त होगा वा नहीं, कब मुक्त हो सकता है और कब नहीं। बाजार की स्थिति को जानने के कारण व्यापार

का भविष्य में क्या रूप रहेगा, क्या स्थिति रहेगी यह व्यापारी बतला देगा। समाज की स्थिति को जानने के कारण राजनीति की दृष्टि से क्या होने वाला है यह एक नेता बतला सकता है। मेघों को देखकर वर्षा का भविष्य बतलाया जा सकता है। इस प्रकार कार्यकारण से सम्बद्ध बातों को बतलाया जा सकता है। यह भविष्य है। इसको बतलाया जा सकता है, जाना जा सकता है। लोक में बतलाते ही हैं। किन्तु किसी जातक को देखकर यह बतला देना कि "शनि उच्च का है इसलिए धनवान् बनेगा। नीच का है इसलिए निर्धन बनेगा। लड़का लड़की दोनों का एक गण है इसलिए विवाहित सुखी रहेंगे। अमुक मुहूर्त में कर्म करेंगे तो निश्चित सफलता मिलेगी। वर्षाधिपति अमुक ग्रह है इसलिए अमुक लाभ होगा। अमुक तिथि में यात्रा करो तो लाभ होगा" इत्यादि बातें कार्य कारण रूप में सम्बद्ध न होने से हेतुरहित वा कल्पित होने से भविष्यत् नहीं अतः मिथ्या हैं। कार्यकारण सम्बन्ध से रहित बातों को कोई भी नहीं बतला सकता। जैसा कि बालक खेलते हैं कि "चित्त होगा वा पट्ट" यदि चित्त होगा तो वर्षा होगी और पट्ट होगा तो नहीं। चित्त पट्ट का वर्षा के होने से जैसा सम्बन्ध नहीं है वैसा ही भविष्यद्वाणी के सम्बन्ध में है। जीव के कार्य ही ज्ञात नहीं हैं तो भविष्य में उसका जीवन किस प्रकार का होगा इसको किस प्रकार बतलाया जा सकता है? यदि कोई कुछ बतलाता है तो हेतुरहित होने से निराधार है। कार्यकारण सम्बन्ध से रहित भविष्यत् को परमात्मा भी नहीं जान सकता। मनुष्य की बात ही क्या है। भविष्यत् वर्तमान में नहीं होता। जो अब है ही नहीं तो उसको कोई कैसे जान लेगा?

मुहूर्त, वार, तिथि, नक्षत्र, कुण्डली, ग्रह, राशि, शकुन, स्वप्न, पल्लीपतन, छींक, अंगों के लक्षण, प्रश्न और रमल आदि के द्वारा जो भी बतलाया जाता है वह सब भविष्यत् में ही आता है।

"मिस्टर सी, राजर्स नामक एक अंग्रेज फलितज्ञ ने भावी युद्ध का समय जानने के लिए एक नया तरीका निकाला था। वह यों है। "अन्तिम युद्ध जिस वर्ष पूरा हुआ हो अर्थात् चालू युद्ध का जिस वर्ष अन्त हुआ हो, वह वर्ष लिखकर उसके सब अंक जोड़िये और उस वर्ष में मिला दीजिए। इससे जो फलित आए, समझ लीजिए कि उसी वर्ष नया युद्ध प्रारम्भ होगा।" अपनी इस बात की पुष्टि के लिए नीचे लिखे प्रमाण भी उसने पेश किए थे। भारत में सन् सत्तावन का गदर[1] १८५८ ई० में समाप्त हुआ। इस वर्ष के अंकों

[1] यह गदर नहीं किन्तु देश-धर्म की रक्षा के लिए किया गया संग्राम था।

का योग २२ है। इसलिए १८५८+२२=१८८० में अंग्रेजों का ईजिप्त में युद्ध हुआ। इस युद्ध की समाप्ति १८८१ में हुई थी। इसलिए १+८+८+१=१८ और १८८१+१८=१८९९ ई० में बोअर का युद्ध प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध की समाप्ति हुई १९०२ ई० में इसलिए १+९+०+२=१२, १९०२+१२=१९१४ ई० में प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हुआ।

बस इन्हीं तीन घटनाओं के आधार पर इसने दूसरे महायुद्ध के समय की भविष्यवाणी पहले महायुद्ध के समय की समाप्ति होते ही करनी थी। पहले महायुद्ध की समाप्ति होते ही कर दी थी। चूंकि पहले महायुद्ध की समाप्ति १९१८ ई० में हुई थी। इसलिए १+९+१+८=१९। १९१८+१९=१९३७ ई० में दूसरा महायुद्ध होगा। ऐसी घोषणा उसने कर दी थी। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में यह भविष्यवाणी प्रकाशित भी हो गई थी। परन्तु सब जानते हैं कि दूसरा महायुद्ध १९३९ में प्रारम्भ हुआ था। १९३७ में नहीं। घुणाक्षर न्याय से कभी युद्ध के सन् के आंकड़े मिल भी गए तो क्या महाकाल कभी भी ऐसी निस्सार घोषणाओं की पोल खोल सकता है?

फलित के अन्धविश्वास

विचारणीय बात यह है कि युद्ध का और ईस्वी संवत् का कार्य कारण सम्बन्ध है वा समवाय सम्बन्ध है अथवा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है किंवा कोई अन्य सम्बन्ध? ईसा के जन्म के पूर्व क्या संसार में युद्ध नहीं होते थे जो युद्ध संसार में हुए हैं, क्या वे सब इसी नियम का अनुसरण करते हुए हैं? कोई कोई तारीखों से, दिनाङ्कों से, मासों से भविष्य को बतलाते हुए हुए देखे गए हैं। उनसे भी यही पूछा जाये, क्या ई० सन् के ये १२ मास प्रारम्भ में जब थे ही नहीं तब क्या ज्यौतिष भी नहीं रहा होगा? इससे पूर्व समुल्लास में इसकी समीक्षा की है, वहीं देख लें। पुनः लिखना पिष्टपेषण है।

युद्ध न करें—मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर ने भारत पर आक्रमण किया। युद्ध प्रारम्भ होने ही वाला था। एक तथाकथित फलितज्ञ ने आकर बाबर से कहा कि अभी आप युद्ध न करें। इस समय युद्ध करने पर आपको सफलता नहीं मिल सकती। अमुक समय में युद्ध करेंगे तो आपको सफलता मिलेगी। तब बाबर ने उनसे पूछा कि आपको यह कैसे पता चला कि अब युद्ध करने से सफलता नहीं मिलेगी? इसका उत्तर फलित वाले ने यह दिया कि 'मैं भविष्यत् को जानता हूँ। इसलिए मैंने बतला दिया।' बाबर ने उनसे पूछा कि 'आप अभी कितने वर्ष तक जीवित रहेंगे?' उसका उत्तर यह था कि 'अभी मैं ३७ वर्ष जीवित रहूँगा।' बाबर ने अपने सेनापतियों और मन्त्री आदि को सम्बोधित करते हुए कहा कि "ये भविष्यद्वक्ता हैं इनका कहना है

कि हम अभी युद्ध न करें यदि करेंगे तो असफलता मिलेगी।" इतना कहकर म्यान से तलवार खींचा और ज्योतिषी जी का सिर धड़ से अलग कर दिया। आगे कहा कि जो "यह कहता था कि 'मैं अभी ३७ वर्ष तक जीवित रहूँगा।' जिसको अपने भविष्यत् के विषय में अगले क्षण का पता नहीं, वह इतने लोगों का क्या भविष्य जान सकता है? उसकी बात कैसे सत्य हो सकती है?" बाबर ने युद्ध किया। इतिहास इस बात का साक्षी है कि बाबर जीत गया।

पृथिवी का अन्त—हिन्दी साप्ताहिक "धर्मयुग" (बम्बई) के २४ जुलाई, १६६० के अङ्क से पता चलता है कि सन् १६२० ई० में अमेरिका के रहस्यवादियों ने यह भविष्यवाणी की थी कि उसी वर्ष के मई मास में अमुक तारीख को पृथिवी का अन्त हो जायेगा और मजे की बात यह हुई कि उस दिन वहां के सुप्रसिद्ध दैनिक पत्र "वर्ल्ड" ने बड़े बड़े टाइपों में यह समाचार प्रकाशित भी कर दिया था कि पृथिवी का अन्त होगा। दैनिक पत्र का वही सम्पादक अधिक चतुर माना जाता है जो केवल सम्भावना के आधार पर भी क्यों न हो, एक दिन पहले समाचार छाप दे क्योंकि एक दिन पहले छपा हुआ समाचार पाठकों के हाथों में दूसरे दिन पहुँचता है और वे समझते हैं कि यह आज की ही ताजी घटना है। वे सम्पादक की स्फूर्ति और कार्यकुशलता पर लट्टू हो जाते हैं। भविष्यवेत्ताओं की वाणी पर विश्वास करके 'वर्ल्ड' के सम्पादक ने भी वैसा समाचार प्रकाशित कर दिया था। परन्तु ऐसा मालूम होता था कि प्रलय के भय से उसकी बुद्धि इतनी अस्थिर हो गई थी कि उसे यह भी सूझ न सका कि कल पृथिवी का अन्त होने वाला है, तब इस पत्र के इस समाचार को पढ़ेगा भी कौन?

बेचारे 'वर्ल्ड' के सम्पादक की और उन रहस्यवादियों की उस दिन कैसी दुर्दशा हुई होगी, जब उन्होंने यह देखा होगा कि भविष्यवाणी के अनुसार पृथिवी का अन्त नहीं हुआ, वह ज्यों की त्यों आबाद है; और यह जाना होगा कि 'वर्ल्ड' का प्रत्येक पाठक उस समाचार को पढ़ पढ़ कर मुस्कुरा रहा है, हंस रहा है, खिलखिला रहा है। 'फलित के अन्धविश्वास' से

पानी निकलेगा—"बात है सन् १६५३-५४ की। एक भविष्यवेत्ता थे। न जाने किस तरह वे यह बता दिया करते थे कि जमीन में खुदाई करने पर अमुक जगह पानी निकलेगा और अमुक जगह नहीं। हजारों भविष्यवाणियों में से दस पांच कहीं सच्ची निकल गई होंगी। इसलिए इस विषय के वे एक अलौकिक सिद्ध पुरुष मान लिए गए। असली नाम उनका

चाहे जो रहा हो पर वे "पानी महाराज" के नाम से ही पहचाने जाने लगे। धीरे २ इनकी प्रशंसा मध्यभारत [जो सन् १६५६ से मध्य प्रदेश कहलाने लगा है] की सरकार के कानों तक जा पहुँची। इस प्रदेश को उन दिनों पानी की बहुत अधिक आवश्यकता महसूस हो रही थी, इसलिए पानी महाराज का काफी सत्कार किया गया और उनके कहने से यह विश्वास कर लिया गया कि अमुक जगह खुदाई की जाय पर्याप्त पानी मिल सकेगा। फिर क्या था सरकार ने उस २ स्थान पर खुदाई करने के लिए तुरन्त ७८ हजार रुपयों की मशीनें खरीद लीं। इतना ही नहीं बल्कि पानी महाराज के द्वारा बताये हुए स्थान में खुदाई पर लगभग १६८००० रुपये भी खर्च कर डाले परन्तु पानी का कहीं पता नहीं लगा और आखिर यह सारी रकम बट्टा खाते में चढ़ा दी गई। इस तरह बड़ी बड़ी सरकारें तक जब भविष्यवाणियों पर अन्धविश्वास करके धूर्तों के जाल में फँस जाती हैं और भयङ्कर नुकसान उठाती हैं तब जनसाधारण की तो बात ही क्या? वही पुस्तक

यदि पानी महाराज की कुछ बातें सत्य निकली भी हों तो इसमें भविष्यद्वाणी का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। हां भौतिक लक्षणों को देखकर प्रयत्न करें तो 'पानी कहां निकल सकता है' इसका पता चल सकता है। इसके अतिरिक्त इसमें कोई आश्चर्य जैसी बात नहीं।

प्रलय की घोषणा—कोरे मेयूर (इटली) के निवासी भविष्यवेत्ताओं में मुखिया माने जाते हैं......डा० एलियो बियांका। उन्होंने २ जुलाई, १६६० ई० को अपनी इस भविष्यवाणी की घोषणा के द्वारा सारे विश्व को आतंकित किया था कि दिनाङ्क १४ जुलाई, १६६० ई० के दिन शाम को ६ बजकर १५ मिनट पर प्रलय हो जायेगा। इतना ही नहीं उन्होंने यह भी निश्चित रूप से बता दिया कि प्रलय किस क्रम से होगा। उनके सारे वक्तव्य का सारांश यह था कि सबसे पहले तो पारमाणविक विस्फोट होंगे, जिनके प्रभाव से एक घण्टे की छोटी सी अवधि में ही पृथिवी ध्वस्त हो जायेगी फिर प्रचण्ड भूकम्प होगा और भयङ्कर समुद्री ज्वार आएंगे। अन्त में शीत का ऐसा प्रकोप होगा कि जहाँ भी जितना भी पानी होगा वहां सब जगह बर्फ की तरह जम जाएगा। इतना होने पर भी कुछ लाख स्त्री पुरुष तो बच ही जायेंगे जिनसे फिर नई सृष्टि का प्रारम्भ होगा। डा० एलियो बियांका ने ७१५० फुट ऊंचे स्थान पर एक सुरक्षा शिविर भी बनवा लिया था। अपने चुने हुए १०० अनुयायियों को लेकर उस दिन प्रातःकाल ही वे उस पर चले गए थे—आत्मरक्षा के लिए भी और विश्व-प्रलय का भीषण

दृश्य देखने के लिए भी। परन्तु दुनिया का बच्चा-बच्चा जानता है कि डा० बियांका की उस भविष्यवाणी की घोषणा के अनुसार कोई घटना नहीं हुई। बल्कि स्वर्गीय डा० बियांका को ही लज्जित होकर उस दिन दुनिया की सारी जनता से अपनी झूठी भविष्यवाणी के लिए हाथ जोड़कर क्षमा-याचना करनी पड़ी थी।

वही पुस्तक

पुनः कभी प्रधान मन्त्री पद पर नहीं—"सायन और निरयन मिथुन इन्दिरा गांधी जी का लग्न है। 'यदि ज्योतिष मस्तिष्क वाले पाठक देखें कि मिथुन का उत्थान समस्या के उपयुक्त है और इन्दिराजी की जीवन घटनाओं से मेल खाता है तब राजयोग की समाप्ति कब है?' लेखक ने कहा—'श्रीमती गान्धी की अपनी जन्मकुण्डली में सूर्य वृश्चिक राशि में और शनि सिंह राशि में एक अधूरा वर्ग बना रहे हैं।' हमने भविष्यवाणी की।' १९७० और १९७१ के वर्ष में शनि वृषभ में जायेगा। अतः सूर्य और शनि के वास्तविक वर्ग की पुनरावृत्ति और वह **इन्दिरा गान्धी को प्रशासन से बाहर कर देगा। और वे पुनः कभी प्रधान मन्त्री पद पर नहीं आएंगी।** १९७१ और १९७२ के वर्ष में शनि मिथुन में प्रवेश करेगा।'······मैंने कहा, '**कभी प्रधान मन्त्री पद पर नहीं आएंगी।**' जन्म लग्न सायन मिथुन है। **वे प्रधान मन्त्री पद पर बृहस्पति के मिथुन में जाने पर आई थीं।** (यह सत्य है कि कामराज और उसके साथी सिण्डिकेट के सदस्यों ने उन्हें इस पद पर लाने में सहायता दी और यदि मेरी भविष्यवाणी सार्थक है तो कामराज और उसके साथ सिण्डिकेट, उसे गठजोड़ से नीचे खेंच लेंगे। और उसी कारण से मैं विश्वास करता हूँ कि **शनि का मिथुन में जाना प्रधान मन्त्री इन्दिरा गान्धी को रोग लायेगा और उसे शारीरिक रूप से इस उच्चतम पद पर पुनः आने के लिए अयोग्य कर देगा।**"

दि एस्ट्रोलोजिकल मैगजीन, जनवरी, १९७०

समी०—इस भविष्यवाणी के विषय में टीका-टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं। पाठक स्वयं जान लेंगे कि यह शत प्रतिशत कल्पित है और निराधार है।

फोर्ड जीतेंगे—बम्बई २४ अक्तूबर, अमरीका के अध्यक्षीय चुनाव में डेमोक्रेटिक उम्मीदवार जिम्मी कार्टर तथा रिपब्लिकन पार्टी के उम्मीदवार राष्ट्रपति फोर्ड के मध्य जो कड़ा मुकाबला है, उसके परिणाम के बारे में भारत के प्रसिद्ध 'अस्ट्रालोजिकल मैगजीन' ने भविष्यवाणी की है कि इस चुनाव में फोर्ड फिर से प्रधान चुने जायेंगे तथा वे मामूली बहुमत से जीत पायेंगे। पत्रिका ने दोनों उम्मीदवारों की ग्रह चाल और नक्षत्रों की तुलना की है तथा कहा कि शुरू में दिखाई देता कि कार्टर की विजय की संभावनाएं हैं परन्तु बाद में फोर्ड को अकस्मात् समर्थन मिल जायेगा।"

दैनिक पंजाब केसरी, अक्टूबर, २५।१०।१९७६

समी०—भविष्यद्वाणी के अनुसार फोर्ड को विजयी होना था किन्तु यह लोकविदित है कि फोर्ड नहीं जीते।

अष्टग्रही—फरवरी १९६२ ई० में तथाकथित अष्टग्रही योग के फल-स्वरूप होने वाले भयङ्कर दुष्परिणामों की झूठी घोषणाएं करके बड़े २ ज्योतिषियों ने भारतीय जनता को किस प्रकार आतंकित किया था सो पाठक-पाठिकाओं से छिपा नहीं है। फिर भी उदाहरण के लिए कुछ भविष्य-वाणियां यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ—

"फरवरी १९६२ में विश्व के ग्रह कुछ ऐसी स्थिति में आ रहे हैं जैसे पिछले १५००० वर्षों में नहीं आए थे। इसलिए ४ फरवरी, १९६२ का दिन विश्वविनाश का दिन होगा।"

जूनमार्स डेन (एक फलितज्ञा विदुषी, आस्ट्रेलियन महिला)

'अष्टग्रही के फलस्वरूप १६ जनवरी, १९६२ से १२ फरवरी, १९६२ ई० के अन्दर-अन्दर मुजफ्फरपुर में ऐसा भूकम्प होगा जिसकी भीषण संहारकता सन् १९३४ ई० के भूकम्प से भी बढ़कर रहेगी।'

आचार्य कृष्णमुरारी [सेक्रेटरी अस्ट्रानामिकल सोसायटी आफ इण्डिया]

"प्रजा का पारस्परिक संघर्ष पराकाष्ठा पर पहुँचेगा। जाति, वर्ग, समाज, कुटुम्ब और आत्मीय जनों में भी अविश्वास और वैमनस्य की भावना बढ़ेगी भावी चुनाव को लेकर कई स्थानों पर अवांछनीय काण्ड होंगे। पंजाब, काश्मीर, आसाम, उड़ीसा, बंगाल और बिहार में अष्टग्रही का परिणाम कष्टप्रद रहेगा।"

श्री हरिदेव शर्मा त्रिवेदी [सम्पादक "ज्योतिष्मती" सोलन (हिमाचल प्रदेश)

इस अष्टग्रही का मोटा फल भूकम्प, भयङ्कर अग्निकांड, अत्यन्त शीत और पाला, अतिवृष्टि, उपलवृष्टि (आसमान से काले पत्थरों की बरसात), सवारी दुर्घटना, महामारी, दुर्भिक्ष, राज्य परिवर्तन, सभी चीजों में विशेष तेजी, अन्न का अभाव······जनधन की अपार क्षति होगी······"

पं० श्री मदनलाल पोद्दार मुंगेर के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी)

इनके अतिरिक्त उज्जैन के एक ज्योतिषाचार्य पं० मोरेश्वर शास्त्री तो स्वयं वैज्ञानिकों को ही उपदेश देने की गुस्ताखी कर बैठे। आपके शब्द ये हैं "अष्टग्रहीकाल में सभी वायुमण्डल दूषित रहेंगे। सभी धातुओं में और तत्त्वों में विक्रान्ति होगी। ग्रहों के योग से अन्तरिक्ष में ही जब अराजकता रहेगी तब उस पृथिवी पर जो स्वयं सौरमंडल की अनुगामिनी है, क्या स्थिरता रह सकती है? आकाशीय ग्रहों का पृथिवी के साथ जो सम्बन्ध है आज के वैज्ञानिकों का कर्तव्य है उस पर विचार करके भूमि सरंक्षण का उपाय करें।......"

"पृथिवी के ग्रह करोड़ों अरबों मील दूर हैं। वे अपने २ स्थान से हट कर एक स्थान पर एकत्रित नहीं हो सकते। वे प्राकृतिक नियमानुसार अपने २ वृत्तों पर भ्रमण करते रहते हैं।" पं० मंगलदेव शास्त्री

......गणित ज्योतिष के अनुसार अष्टग्रही योग बनता हो चाहे न बनता हो परन्तु इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि उसका पृथिवी पर ऐसा कोई दुष्प्रभाव नहीं हो सकता कि विश्वयुद्ध या भूकम्प जैसी विशाल दुर्घटनाएं हो जायें। कहा जाता है कि लगभग छः हजार वर्ष पहले वृश्चिक राशि पर अष्टग्रही हुई थी और उससे महाभारत युद्ध हुआ था। सन् १६३४ ई० में माघ मास की अमावस्या को मकर राशि पर सिर्फ सवा दो दिन के लिए सप्तग्रही हुई थी और उससे प्रचण्ड भूकम्प हुआ था। परन्तु ऐसा कहने वालों को सोचना चाहिए कि सन् १६६२ ई० में भी माघ मास में उसी मकर राशि में २४ जनवरी से ६ फरवरी तक लगातार सत्रह दिनों तक सप्तग्रही रही और उसी के अन्तर्गत ३ फरवरी के अपराह्न से ५ फरवरी के सांयकाल तक अष्टग्रही योग भी रहा। ४ फरवरी को अमावस्या भी थी ही। फिर न कोई भूकम्प हुआ और न विश्वयुद्ध। इसके अतिरिक्त बिना अष्टग्रही के भी सन् १६१४ ई. से १६१८ ई. तक पहला विश्वयुद्ध हुआ था जिसमें मानव जाति के लगभग ५८ करोड़ रुपये प्रतिदिन खर्च होते रहे और सन् १६३६ से १६४५ ई० तक जब दूसरा विश्वयुद्ध हुआ जिसमें दुनिया के लगभग ढाई तीन अरब रुपये प्रतिदिन स्वाहा होते रहे; तब भी आकाश में अष्टग्रही का पता नहीं था। इन दोनों महायुद्धों में से प्रत्येक की भीषणता महाभारत युद्ध से भी कई गुना अधिक थी। इससे यह भली-भांति सिद्ध हो जाता है कि भूकम्प या विश्वयुद्ध का ग्रहों के साथ कार्यकारण सम्बन्ध नहीं है।

भूकम्प होते हैं अपने प्राकृतिक कारणों से और विश्वयुद्ध होते हैं

राष्ट्रों की आपसी तनातनी से। ग्रहों को ऐसी दुर्घटनाओं का कारण मानने में सिवाय अन्धविश्वास के और कुछ नहीं है।" वही पुस्तक

मृत्यु न आनी थी न आई—'लाला दीवानचन्द जी मलहोत्रा, शेखपुरा निवासी रावलपिण्डी के हेल्थ आफीसर डा० हरबन्शलाल के पिता थे। उनका फलित ज्योतिष पर बड़ा विश्वास था। उनकी आयु लगभग साठ वर्ष की थी। लाला जी को एक ज्योतिषी ने बतलाया था कि उनका अमुक दिन, समय स्वर्गवास हो जाएगा। यह जान लाला जी ने अपने सारे मित्रों और सम्बन्धियों को सूचना दे दी, दान किया मृत्यु की प्रतीक्षा होने लगी। भूमि पर लेट गए, सप्ताह भर पड़े रहे, शरीर दुर्बल हो गया परन्तु मृत्यु उस घड़ी तक न आई न आनी थी। लाला जी ने आए हुए बन्धुओं से क्षमा मांगी। धन्यवाद सहित सब को विदा किया परन्तु कई दिन लोगों का दिल बहलावा बना रहा।" मनसाराम कृत "भारत की अधोगति के प्रधान कारण"

इस लड़के के दो विवाह होंगे—आर्यसमाज के प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ के बारे में ज्योतिषी जी ने उनके पिता जी को बतलाया कि "तुम्हारे लड़के के दो विवाह होंगे।" परन्तु स्वामी जी साधु बन गए। आजन्म ब्रह्मचारी बने रहे। स्वामी जी ने बतलाया कि "हम दो मनुष्यों को जानते हैं जिनका जन्म एक ही गांव में एक ही समय हुआ। उनका नाम भी एक ही रखा गया। परन्तु एक रलाराम तो पांच हजार मासिक पर मन्त्री बना और दूसरा रलाराम आयु भर साठ रुपये मासिक से अधिक नहीं ले सका। वही पुस्तक

सारे ज्योतिषी धरे रह गये—आप में से बहुत से भाइयों को याद होगा और बहुतों ने सुना होगा कि सन् १६१२ में दिल्ली नगर के अन्दर लार्ड हार्डिंग पर किसी ने बम गिराया था तब अंग्रेज सरकार ने एक लाख रुपये का इनाम रखा था कि जो मनुष्य बम गिराने वाले का पता देगा उसको यह इनाम मिलेगा। तब एक लाख रुपया प्राप्त करने को एक भी ज्योतिषी सामने न आया। हालांकि यदि किसी की जूती खोई जाए और दो पैसे इनके पत्रे पर रख दिए जायें तो पूरी पचास गप्पें मारेंगे कि ऐसी पगड़ी वाला और ऐसी कमीज वाला चोर पूर्व दिशा को ले गया है। जिस मनुष्य ने बम गिराया था उसका नाम रासबिहारी बोस था। उसने जापान में जाकर एक पुस्तक लिखी कि "बम गिराने के बाद मैं एक वर्ष तक भारत में रहा और अनेक बार ऐसा हुआ कि जिस गाड़ी में मैं होता था उसी में सी. आई. डी. के आदमी होते थे परन्तु मेरा कोई पता न लगा सका।" अब

भी कई भगोड़े ऐसे होते हैं जिनके पकड़वाने के लिए सरकार इनाम की घोषणा करती है परन्तु पोथी, पत्रा वाले उनका पता बताकर क्यों धन प्राप्त नहीं करते ? वही पुस्तक

हम पृथिवी निवासियों को सीध में एक रेखा पर आते हुए दीखने वाले ग्रह परस्पर करोड़ों मील दूरी पर हैं, इससे पृथिवी को न कोई लाभ है और न हानि है। इनकी दूरी एक निश्चित अनुपात में है। उससे न अधिक हो सकती है न ही न्यून। पृथिवी का और उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। केवल पृथिवी सूर्य और चन्द्र का सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध अब का नहीं है। ये तीनों मास में दो वार एक सीध में आते रहते हैं। न्यूनातिन्यून वर्ष में ३,४ वार बुध सहित ये चारों एक सीध में आते हैं, शुक्र को मिला लें तो ५ हो जाते हैं। ये पांचों वर्ष में एक, दो वार भी एक सीध में आ जाते हैं, इससे क्या अनर्थ होता है ? ये ग्रह पृथिवी के लिए नहीं हैं न पृथिवी ही इनके लिए है। इसके कारण पृथिवी पर कोई प्रभाव पड़ता हो ऐसा सिद्ध नहीं हुआ। केवल कल्पनाएं हैं। सूर्य में सदा विस्फोट होते रहते हैं, उसकी लपटें कभी २ लाखों मील तक आती हैं किन्तु पृथिवी पर ऐसा कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जो भी पड़ता हो वह भी सम्पूर्ण पृथिवी पर एक समान पड़ता है। अलग २ प्रकार का नहीं। कभी २ पृथिवी पुच्छल तारों की पूंछ में से होकर निकलती है। इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ, न होने का प्रमाण है। मनुष्य के कार्यों के साथ ग्रहों का सम्बन्ध आज तक कोई सिद्ध नहीं कर सका।

प्रश्न—जैसा चन्द्रमा से समुद्र पर ज्वार-भाटा आता है वैसे ग्रहों से प्रभाव होता है।

उत्तर—इसका उत्तर "सप्तदश समुल्लास" में आ गया है वहीं से पढ़ लेवें। चन्द्र अति निकट होने से पृथिवी को खींच लेता है उसी प्रकार पृथिवी चन्द्र को आकृष्ट कर लेती है। सूर्य पृथिवी को आकृष्ट करता है पृथिवी सूर्य को, किन्तु इससे अतिरिक्त अन्य ग्रह पृथिवी को आकृष्ट कर लेते हों ऐसा अब तक सिद्ध नहीं किया जा सका। ज्वार-भाटा जो आता है वह ग्रह मन्त्र के जाप से पूजा, पाठ और दान आदि से दूर नहीं होता। न ही पूजा-पाठ करने से दूर किया जा सकेगा। यह सब चतुर लोगों का भोले लोगों को ठगने का ढंग है।

"**कर्मकुण्डली**—राजा बलदेवदास बिड़ला से किसी पहुँचे हुए ज्योतिषी ने कहा—"अमुक समय आपकी मृत्यु हो जाएगी। यह आपकी जन्मकुण्डली की सूचना है।" यह सुनकर राजा बिड़ला ने व्यापार धन्धा अपने पुत्रों को सौंप दिया और काशी में निवास कर ईश्वर चिन्तन करने लगे। ज्योतिषी का बताया समय निकल गया। राजा बिड़ला भोजन और जीवन-व्यवहार में परिवर्तन करने के कारण अब पहले से अधिक स्वस्थ हो गए थे।

उन्होंने ज्योतिषी को अपने पास बुलाया। उसने फिर से जन्मकुण्डली को ध्यानपूर्वक देखकर कहा, "सेठ साहब ! गणित करने में थोड़ी सी मेरी भूल रह गई थी।" अब मैं कहता हूँ कि आपकी मृत्यु अमुक समय अवश्य हो जाएगी।" ज्योतिषी की यह संशोधित भविष्यवाणी भी सर्वथा असफल रही। आखिर राजा बिड़ला ने उस ज्योतिषी को फिर से बुलवाया और स्वयं ही उससे कहा—"महाराज आपने बड़ी मेहनत करके मेरी जन्मकुण्डली तो देख ली; परन्तु कर्मकुण्डली नहीं देखी। यही कारण है कि आपकी बात (भविष्यवाणी) खाली गई।" फ० अ०

इस बनी हुई घटना के आधार पर सावित होता है कि जन्मकुण्डली के आधार पर भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

वापस आऊंगा—सन् ५१४ ई० में हांग न्यू (चीन) के महामन्दिर में अपने प्राण छोड़ने से पहले वहां के एक पहुँचे हुए महात्मा ने यह भविष्यवाणी की थी कि मैं वापस आऊंगा। उस दिन से आज तक उनके स्वागत के लिए उनके खाली पलंग पर प्रतिदिन एक नई चादर बिछाई जाती है, सदियां गुजर जाने पर भी वहां के लोगों का अडिग विश्वास है कि महात्मा जी अवश्य लौटेंगे।

चौदह सदियों का लम्बा समय बीत जाने पर भी परलोक से आज तक न महात्मा जी स्वयं आये और न पत्र तार या फोन से उनका कोई सन्देश ही आया। फिर भी पुजारियों के बहकावे में आकर वहां के निवासी उस झूठी भविष्यवाणी पर विश्वास रखते ही हैं। स्वार्थी पुजारी तो लोगों को अंधेरे में रखना चाहेंगे ही जिससे महात्मा जी के स्वागत के बहाने प्रति-दिन बिछाई जाने वाली एक नई चादर दूसरे दिन उनमें से किसी को प्रसाद के रूप में मिलती रहे। पुजारियों की यह शैतानियत जनता की हैवानियत और नित नई चादर चढ़ाने के रूप में होने वाला यह घोर अपव्यय। ये सब उस भविष्यवाणी के ही भयंकर दुष्परिणाम हैं।

अष्टग्रही के अनर्थ—सन् १९६२ ई० में अष्टग्रही के नाम पर अनिष्ट भविष्यवाणियां करके संसार भर के ज्योतिषियों ने जनता को किस प्रकार

महीनों पहले से आतंकित कर दिया सो किसी से छिपा नहीं है।...यातायात ठप्प हो जाने से वाहन के मालिकों को और सरकार को करोड़ों रुपयों की आर्थिक हानि उठानी पड़ी। यात्रा न कर सकने के कारण यात्रियों के भी बहुत से आवश्यक कार्य रुके पड़े रहे। अष्टग्रही योग के महीनों पहले भारत की भोली जनता का मारे भय के खून सूखने लग गया था, लाउडस्पीकर के माध्यम से प्रकट होकर दिन रात कान फाड़ने वाली भजनपूजा, कीर्तन जाप और शास्त्र पाठ की आवाज से भलेमानसों की नींद हराम हुई। छात्रों के अध्ययन में बाधा पड़ी। इन अनर्थों की जिम्मेदारी किस पर है। उस अन्ध-श्रद्धा पर जो फलितशास्त्रियों की भविष्यवाणियों के प्रति जनता के हृदय में परम्परा से पाई जाती है।

ये आत्महत्याएं—कोरे मेयूर (इटली) निवासी सुविख्यात भविष्य-वेत्ता डा० एलियो वियांका ने १४ जुलाई, १९६० को विश्व प्रलय होने की जो भविष्यवाणी कई दिनों पहले कर दी थी उससे सारे संसार में एक प्रकार की हलचल तो मच गई थी, न जाने कितनों की जानें तक चली गई थीं। उन दिनों दैनिक-पत्रों में छपे समाचारों के अनुसार कलकत्ता में वहां के कई भावुक नवयुवकों ने इसलिए आत्महत्याकर ली थी कि वे उस दिन (१४ जुलाई, १९६०) के विश्व प्रलय का चीत्कारमय करुण, भीषण दृश्य अपनी आंखों से देखना नहीं चाहते थे। घोषणा के अनुसार आखिर प्रलय तो हुआ नहीं। परन्तु भविष्यवाणी पर किए गए अन्धविश्वास ने बेचारे निर्दोष युवकों के प्राण छीनकर उनकी पत्नियों को जीवन भर के लिए वैधव्य की आग में जलती रहने को मजबूर जरूर कर दिया। उनके बच्चों को अनाथ जरूर बना दिया। उनके मां बाप को पुत्रहीन जरूर बना दिया। इन पंक्तियों के पाठकों से और पाठिकाओं से मैं पूछना चाहता हूँ कि ऐसी घटनाएं पढ़-सुन कर भी किसी की भविष्यवाणी पर विश्वास करने को क्या कभी किसी का जी चाहेगा?

मां को भूखों मारा—पता नहीं उस ज्योतिषी का रोमन बादशाह विटेलियस की माता से क्या द्वेष था जिसने यह क्रूर भविष्यवाणी की थी कि यदि बादशाह की माता का देहान्त तुरन्त हो जाए तो उसकी गद्दी चिरकाल तक सलामत बनी रहेगी। इधर बादशाह का अन्धविश्वास भी गजब का था कि सिंहासन के लोभ में पड़कर अपनी ममतामयी मां को भूखों मार डाला और अपने कुकार्य पर तनिक भी लज्जा न आई। अब सोचिए कि भविष्यवाणी के अन्धविश्वास ने उस दिन बादशाह को कैसा शैतान बना दिया था? कैसा बेवकूफ, कितना क्रूर?

सिर काट डाला--१९ सितम्बर, १९५९ ई० की घटना है। खेड़ा (पश्चिम भारत) के अमृतलाल जोशी नामक एक ३२ वर्ष के ज्योतिषी ने पेटलवाड़ की रहने वाली एक बुढ़िया को सलाह दी कि यदि वह अम्बा को एक मानव की भेंट चढ़ा दे तो उसके सन्तानहीन पुत्र के सन्तान हो जाएगी। अन्ध-विश्वास के चंगुल में फंसी हुई भोली बुढ़िया ने एक अबोध बालक का सिर काटकर अम्बा के चरणों पर चढ़ा दिया। पुलिस द्वारा पकड़े जाने पर ज्योतिषी ने अपना (झूठी सलाह देने का) अपराध स्वीकार कर लिया। वहां के सेशन जज ने उसे आजीवन कारावास की सजा दे दी है। आजीवन (कारावास दी हुई) सजा की जानकारी से कुछ समय के लिए मां बाप के आंसू भले ही थम जायें परन्तु उस अबोध बालक का कटा हुआ सिर तो फिर जुड़ नहीं सकता।

पत्तियां तोड़ने के बदले सरकार को चाहिए कि वह जड़ पर कुठारा-घात करे। जिन फलितशास्त्रों में ऐसे हिंसक क्रूर विधान हैं उन्हें ढूंढकर अजायब घर में रख दे या जलाकर राख कर दे। अन्यथा ज्योतिषियों के द्वारा जनता को ऐसी सलाहें मिलती ही रहेंगी और ऐसी हत्याएं होती ही रहेंगी। सजा के डर से खुले आम न हो सकीं तो छिपकर होंगी और समझ-दार लोग चिल्लाते ही रहेंगे कि अमुक ने ज्योतिषियों के चक्कर में आकर अमुक का सिर काट डाला।

पूर्व अफ्रीका के युगाण्डा प्रान्त के राजा मतेसा की माता नमेसोल के एक दांत में अचानक दर्द होने लगा। वहां के समझदार ओझाओं ने बताया कि 'वूमा' नामक प्रान्त के सभी निवासियों को मौत के घाट उतार दिया जाए। आखिर राजा के हुक्म पर 'वूमा' के लगभग २५००० पच्चीस हजार स्त्री पुरुषों और बच्चों को भेड़-बकरियों की तरह हांक कर विक्टोरिया झील में डुबो दिया था। इतिहास कहता है कि ऐसा करने पर भी राजमाता के दांत का दर्द ठीक नहीं हो पाया था।

मनुष्य कितना स्वार्थी कितना अनुदार कितना अविवेकी और कितना अन्धविश्वासी हो सकता है इसका यह एक नमूना है। सौजन्य को सुलाकर रौद्रता को भी रुलाने वाला दानवता को भी दहलाने वाला क्रूरता को भी कम्पित करने वाला यह ऐतिहासिक घोर हत्याकाण्ड शैतान के भी रोंगटे खड़े कर सकता है। भविष्यवाणियों की अविश्वसनीयता, असफलता, निस्सा-रता और भयंकरता को प्रबलतापूर्वक प्रमाणित करने के लिए मैं समझता हूँ अकेला यही उदाहरण पर्याप्त होगा।"

राजमाता की निर्मम हत्या—यह घटना आर्यसमाज शिवाजी कालोनी उतज के एक आर्य सज्जन ने मेरे ज्यौतिष के व्याख्यान के उपसंहार में बताई थी और कहा था कि यह किसी दैनिक पत्रिका में छपी थी। उसका सारांश है कि बंगाल के राजा की पत्नी सगर्भा थी। राजा ने फलित वालों को बुलाकर उनसे आगामी सन्तान के भविष्यत् के विषय में जानना चाहा। उन्होंने बतलाया कि यदि अमुक समय में बालक का जन्म होगा तो दरिद्र, आधीन, निस्तेज और निर्बुद्धि बनेगा। यदि इसके पश्चात् अमुक समय में जन्म लेगा तो शूरवीर, तेजस्वी, बुद्धिमान् बन जायगा। तब फलित वालों के परामर्शानुसार अभीष्ट समय तक प्रसव को रोकने के लिए सगर्भा के पैरों को बांधकर उलटा लटका दिया गया जिससे प्रसव से पूर्व ही वह मर गई।

इन्दौर के राजा—आर्यसमाज इन्दौर में एक आर्यबन्धु ने एक घटना बतलाई थी। घटना इस प्रकार की है। एक बार इन्दौर के राजा घोड़े पर बैठ जा रहे थे। सड़क के किनारे कुछ लोग बैठे हुए थे। वे मनुष्यों के भविष्य को बतलाने का धन्धा करते थे। राजा ने बुलाकर उनसे पूछा कि तुम क्या करते हो? उन्होंने उत्तर दिया कि हम भविष्य की बात बतलाते हैं। राजा ने उनसे कहा कि "मैं तुमसे कल दिन के १२ बजे राजसभा में बात करूंगा। दूसरे दिन वे तथाकथित भविष्यवेत्ता १२ बजे राजसभा में पहुँच गए। बैठे २ थाते रहे। राजा २ बजे सभा में पहुँचकर उनको देखते हैं। उनके आने का कारण पुछवाया। उन्होंने उत्तर दिया, "आपने हमें आदेश दिया था कि मैं कल १२ बजे सभा में बात करूंगा। इसलिए हम आपके आदेश का पालन करने पहुँच गए।" तब राजा ने उनसे पूछा कि आप यदि भविष्यत् को जानते हो तो क्या आपको इस बात का पता नहीं था कि मैं सभा में दो बजे पहुँचने वाला हूँ? राजा के इस प्रश्न को सुनकर फलितवाले भयभीत हुए।

राजा ने भृत्यों को आदेश दिया कि इन ढोंगियों का मुंह काला करके गधे पर पूंछ की ओर मुंह करके बैठा कर गले में जूतों का हार पहनाकर नगर में घुमा कर छोड़ दो और यह भी कह देना कि आगे ऐसा कृत्य छोड़ देवें।

इससे स्पष्ट है कि भविष्य का जान सकना जानना सब पाखंड है। मार्ग के दोनों ओर हस्तरेखा का चित्र टांग कर बैठ जाते हैं। यह भी लिखकर लगा देते हैं कि "जो पूछो सो बतला दिया जायगा" इसी प्रकार चिकित्सालय के मार्ग में भी बैठ जाते हैं। भविष्यत् सत्य है वा असत्य इसको जानने के

लिए उनसे एक, केवल एक प्रश्न पूछिए उसी से आपको सब पता चल जायेगा। प्रश्न यह है "श्रीमान् जी आप यह बतलाइए कि धन्धे में आपको आज दिन भर में कितने रुपये पैसे मिलेंगे?" इस प्रश्न को सुनकर बौखला जायेंगे और सम्भव है वे आप से ही पूछ बैठें कि "क्या आप आर्यसमाजी हैं?"

सूर्य नारायण जी व्यास—ये उज्जैन के प्रसिद्ध ज्योतिषी माने जाते थे। इन्होंने सहस्रों लोगों का भविष्य बतलाया होगा किन्तु उनके घर में बहुत बड़ी चोरी हुई थी। यह हमने पूर्वत्र लिख दिया है। भविष्य की बात बतलाने वाले व्यास जी को अपने घर में होने वाली चोरी का पता ही नहीं। जब उनसे यह प्रश्न किया जाता है कि आपको भविष्यत् के ज्ञान के होने में क्या प्रमाण है जब कि अपने भविष्यत् का आपको पता नहीं? इसका उत्तर वे यह देते हैं कि जो दूसरों के भविष्यत् को बतलाते हैं उनको अपने भविष्य का ज्ञान नहीं होता। जैसे नाई अपने सिर के बाल नहीं काट सकता और वैद्य अपनी चिकित्सा नहीं कर सकता। इनका यह हेतु हेतु नहीं है, हेत्वाभास है। इस पर विचार करिए। इनके कथनानुसार भविष्यत् को जानना एक विद्या है। अपना हो वा अन्यों का विद्या से ज्ञात हों जाना चाहिए। विद्या स्वार्थ और परार्थ होती है। क्या नाई अपने सिर के बाल नहीं काट सकता है? अनुभव यही कहता है कि काट सकता है। यदि नहीं काट सके तो भी यह हेतु नहीं बन सकता। क्योंकि नाई जिस प्रकार दूसरों के सिर के चारों ओर अपने हाथ घुमा सकता है उस प्रकार अपने सिर के चारों ओर नहीं घुमा सकता है। किन्तु इस प्रकार जन्मपत्रिका नहीं होती। जैसे हम दूसरों का जीवन पढ़ सकते हैं वैसे अपना भी पढ़ सकते हैं। अपनी जन्मपत्रिका हो अथवा दूसरों की, सबको पढ़ा जा सकता है। अपनी पत्रिका वैसी ही होती है जैसी दूसरों की ग्रहों वा राशियों की संख्या वा स्वभाव वही है। भाव वे ही हैं उतने ही हैं। ऐसी कोई भिन्नता नहीं जैसे कि नाई को दूसरों के सिर के चारों ओर घुमाने वा अपने सिर के चारों ओर घुमाने में हाथों में अन्तर पड़ता है।

वैद्य अपनी चिकित्सा नहीं कर सकता। यह भी प्रत्यक्ष-विरुद्ध है। सभी वैद्य अपनी चिकित्सा आप ही कर लेते हैं। केवल कुछ अवसर ऐसे होते हैं जिस समय वैद्य अपनी चिकित्सा स्वयं नहीं कर पाता। मस्तिष्क के असन्तुलन, शरीर की निर्बलता आदि कारणों से करने में असमर्थ होता है। अर्थात् साधनों में अन्तर पड़ जाता है। दूसरों की चिकित्सा करते समय जैसा मन सन्तुलित वा शरीर स्वस्थ होता है वैसा अपनी चिकित्सा के समय नहीं

होता। किन्तु एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि जिस समय वैद्य अपनी चिकित्सा नहीं कर पाता उस समय दूसरों की चिकित्सा भी नहीं कर सकता। इसलिए यह दृष्टान्त विषम है। ठीक इससे विरुद्ध मनुष्य अपने भविष्य को जैसा जान सकता है वैसा दूसरों के भविष्य को नहीं जान सकता। अपनी प्रवृत्ति का दूसरों की प्रवृत्ति से अधिक ज्ञान मनुष्य को रहता है। क्या कोई ऐसी विद्या है जिससे जानने वाले को उसका लाभ न हो और दूसरों को हो ? क्या कोई ऐसा मुनीम है जो घर का लेखा नहीं लिख सकता हो और दूसरों का लिखता हो ? क्या कोई ऐसा पाचक है जो दूसरों को रोटी पकाकर खिलाता हो और अपने लिए रोटी नहीं पका सकता हो ? क्या कोई ऐसा मिस्त्री होगा जो दूसरों की दीवार बनाता हो और अपने लिए नहीं बना सकता हो ? नहीं, कदापि नहीं ! विद्या अपने लिए जैसी उपयोग में आती है वैसी दूसरों के लिए नहीं अर्थात् कुछ न्यून उपयोग में आती है, यह सबकी बुद्धि में आने वाली बात है। इससे सुतरां स्पष्ट है कि भविष्यत् की बात नहीं जानी जा सकती। भविष्यत् की बातों पर विश्वास करना अपने को और दूसरों को धोखे में रखना है। कर्म सिद्धान्त का गला घोंटना है। भविष्यत् के विषय में बतलाने वाले सन्दिग्ध, बह्वर्थक श्रोता की इच्छा और स्थिति-गति को देख २ कर बात बतलाते जाते हैं। इन बातों को न समझने वाले ज्योतिषियों के विषय में दूसरों के समक्ष बढ़ा-चढ़ाकर कहते हैं। वे भी अन्यों के समक्ष इसी प्रकार अपनी रुचि के अनुकूल थोड़ा सा बढ़ा-चढ़ाकर कह देते हैं। इस प्रकार बात तिल की पहाड़ जैसी बन जाती है। साधारण भोले-भाले लोग इन सब बातों को सत्य मान लेते हैं। इन सब बातों को दृष्टान्त देकर बतलाने का स्थान नहीं है। आवश्यकता भी नहीं है। दो चार बार इनके पास जाकर इनकी बातों को सुनते रहें तो इनकी चाल कुछ २ समझ में आ सकती है। इनकी बातें सिद्ध साधकों के रूप में फैलाई जाती हैं। इन बातों का प्रचार पैसे देकर पत्र-पत्रिकाओं में नाम देकर कराया जाता है। बड़ी युक्ति से ये बात ऐसी करते हैं जिनको तीव्र बुद्धि वाले ही समझ सकते हैं। एक प्रसिद्ध भविष्यवक्ता की युक्ति को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करता हूँ। "एक व्यक्ति ने अपनी गर्भवती स्त्री के विषय में पूछा कि इससे पुत्र होगा कि पुत्री ? उन्होंने कहा मैं लिखकर दे देता हूँ। बाद में मिलान करके देख लेना। ऐसा कहकर एक कागज पर 'क' लिखकर कागज पेटी में रख, ताला लगाकर पेटी अपने पास रख ली और चाबी ग्राहक को दी। प्रसव के पश्चात् ग्राहक आया और कहने लगा कि आपकी कृपा से पुत्र हुआ। भविष्यद्वक्ता ने तुरन्त कागज निकलवाकर पढ़वाया। उसमें लिखा था 'क' उसको हाथ में

लेकर कहने लगे कि मैंने पहले लिख रखा है। 'क' का अर्थ कंवर साब। ग्राहक भी उनकी भविष्यद्वाणी को सुनकर गद्गद् हो गया। अब उनकी जहां तहां प्रशंसा करने लगता है। अपने भाई-बन्धुओं को भी प्रेरित करता रहता है। यहां से भविष्यद्वक्ता की प्रसिद्धि प्रारम्भ होती है। यदि लड़का न होकर लड़की होती तो भविष्यद्वक्ता 'क' का अर्थ कन्या ही कहते यह तो सुस्पष्ट है।

इसको दूसरे प्रकार से भी लिखते हैं कहते हैं "लड़की न लड़का" इसका अर्थ तीनों प्रकार से बन सकता है। पहला—लड़की होगी लड़का नहीं। दूसरा—लड़की न होगी लड़का होगा। तीसरा—न लड़की न लड़का। इस प्रकार का इनका बनाया हुआ जाल है जिसमें आंख के अन्धे गांठ के पूरे लोगों को फंसाकर प्रसिद्धि और धनैश्वर्य=भोग प्राप्त कर लेते हैं।

अब इनकी भविष्यद्वाणी का प्रकार बतलाया जाता है जिससे सत्या-सत्य का पता चलेगा, "अगले तीन वर्ष भारत के लिए बहुत अधिक खराब हैं। देश में खूनखराबा, अराजकता और राजनीतिक उथल-पुथल की सम्भावना है। अगले तीन वर्षों में बहुत कुछ हो सकता है।"......यह दिल्ली के प्रसिद्ध ज्योतिषी पं० हवेलीराम की भविष्यद्वाणी है।[1]

"अगले ढाई वर्षों में विश्व युद्ध होगा और यह विश्वयुद्ध कैसे कब और क्यों होगा, इसकी ज्योतिषीय विवेचना करते हुए बड़े विश्वास से उन्होंने कहा, विक्रम संवत् २०३२ शनिवार को शुरू हुआ है। शनि इस वर्ष का राजा है। और मिथुन में है। इसलिए काल पुरुष है। साथ ही मकर और कुम्भ राशि का अधिपति है। शनि पृथिवी से अन्तिम है। इसलिए इसका नाम अन्तिम काल है। शरीर के हिसाब से शनि वृद्ध माना जाता है। काल और वृद्ध होने के कारण यह और भी अधिक खराब है। मिथुन राशि यानी सम्भोग के समय यदि काल आ जाय तो आमोद-प्रमोद को वह नष्ट कर देता है। अतः मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि इस समय दुनिया दो दलों में विभा-जित होगी। भारत में भी दो दल उभरेंगे। इस सारी स्थिति का बीजा-रोपण १५ जुलाई, १९७५ तक हो जायगा...।"

यह दिल्ली के विद्वान् वा वयोवृद्ध ज्योतिषी के नाम से प्रख्यात पण्डित रामेश्वर प्रसाद धम्साना की भविष्यद्वाणी है।

श्री जगन्नाथ जी भसीन जो फलित के जानकार, सुलझे हुए माने जाते हैं उनकी भविष्यद्वाणी निम्नलिखित है—

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान' २८ वैशाख, २०३२ के अनुसार।

"अगले तीन वर्ष भारत के लिए आशावान् हैं शनि के कारण जनता के मन में भेदभाव तो रहेगा लेकिन मुझे कोई अनिष्ट नजर नहीं आता···" इन तीनों के विचारों का कोई सामञ्जस्य नहीं। पं० हवेलीराम जी जहां अस्पष्ट सन्दिग्ध सम्भावना व्यक्त करते हैं वहां धम्साना जी दृढ़तापूर्वक कहते हैं। जहां हवेलीराम जी भारत के लिए ही अनिष्ट बतलाते हैं वहां धम्साना जी विश्वयुद्ध की घोषणा करते हैं किन्तु भसीन जी इन दोनों से भिन्न प्रकार से कहते हैं। अब किसकी बात सत्य मानी जाय और किसकी असत्य ? और इसमें प्रमाण क्या है ?

जिसको फलित ज्यौतिष कहा जाता है उसका यह स्वरूप है। इसके कारण मनुष्य का मस्तिष्क जर्जरित हो गया है। हृदय निर्बल हो गया है। शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, आर्थिक और सामाजिक उन्नति रुक गई है। मनुष्य मानसिक दासता में जकड़ा हुआ है। नैतिकता, पुरुषार्थ, सच्चरित्रता, त्याग, परोपकार, दया, सत्सङ्ग, स्वाध्याय, जप, तप, तितिक्षा, धैर्य, शूरता, वीरता और देशभक्ति आदि शुभगुणों से हाथ धो बैठा है। इसके विरुद्ध भीरुता, भाग्यवादिता, विद्या विज्ञान शून्यता, मूर्खता, क्रूरता, कृतघ्नता, शठता, अत्याचार, मातृ, पितृ, गुरु, देश-भक्ति शून्यता, आदि दुर्गुणों से आक्रान्त हो चुका है। भारत की पराधीनता का एक बहुत बड़ा कारण फलित है। इसने कितने निरपराध बच्चों को जन्म लेने के साथ ही माता-पिता से बिछुड़वा दिया। कितने दुधमुंहे बच्चों की निर्मम हत्याएं करा दीं। इससे कितनी स्त्रियां विधवाएं हुईं। कितने पुरुष, मृतस्त्रीक हुए। कितने सुखी परिवार नरकधाम बन गए। कितने पति-पत्नी सदा के लिए बिछुड़ गए, कितनी कन्याएं अविवाहिता रह रहकर जीवन भर आंसू बहाती रहीं, न जाने कितने युवक आंसू बहाते रहे। भीषण नरसंहार हुए इसका इतिहास नहीं। ये भयंकर कृत्य आज भी होते हैं और आगे भी होते रहेंगे। यदि इनका क्रमबद्ध इतिहास लिखकर सुनाया जाये तो हृदय कांपेगा। पत्थर जैसे कठोर हृदय वाला भी पिघल जायेगा। कसाई भी बिना आंसू बहाए नहीं रह सकता।

फलित के नाम से अच्छा व्यवसाय हमारे देश में और अन्य देशों में भी चलता है। ग्राम २ और नगर २ में चतुर लोगों ने अन्यों को मूर्ख बनाकर ठगने के लिए ही इसे चला रखा है। कहीं नवग्रहों का नाम लेकर भय दिखाकर उनके क्रूर प्रभाव को अनुष्ठानों द्वारा दूर करने के नाम पर लोगों से हजारों रुपये एंठ लेते हैं। कहीं चुराई और खोई वस्तुओं का पता लगाने के नाम से अपार धन वैभव को प्राप्त करते है। सन्तानोत्पत्ति के नाम से मृत्यु

भय से मुक्त करने के नाम से, अनिष्ट से निवृत्ति के उपायों द्वारा, अभियोगों में विजयी होने के लिए, शत्रुओं को जीतने के उपायों के नाम से और उनको मारने का अनुष्ठान वा उपाय द्वारा, सफलता-असफलता के नाम से, क्रय-विक्रय के मुहूर्त बतलाने के रूप में, वर-वधू के विवाह की स्वीकृति देने के नाम से अथवा अनिष्ट बताकर जप, पूजा, पाठ, दान आदि करवाने के रूप में, जन्म समय के नक्षत्रों का नाम लेकर उनकी क्रूरता की शान्ति के उपाय बतलाने के रूप में, भविष्यद्वाणियों आदि के द्वारा ये मनुष्यों के भाग्य-विधाता बने हुए हैं। इतना ही क्या चोर डाकू शराबियों को चोरी डकैती वा शराब पीने के लिए भी यही मुहूर्त वा दिशा बताने वाले हैं। जुआ खेलने वालों के दावों वा सट्टेबाजों के सट्टे की संख्या की भविष्यवाणी भी इन्हीं के द्वारा की जाती है। क्रय-विक्रय के विषय में लाखों व्यापारी मूर्ख बनाये जाते हैं।

इसके प्रचारक पाधा, पुरोहित, मन्दिरों के पुजारी जोशी (ज्योतिषी) भड्डर या भड्डुरी इस देश के ग्राम २ में और नगर २ में छाए हुए हैं। बड़े-बड़े नगरों वा नामधारी तीर्थों में मार्गों पर अपना जाल बिछाये ये भाग्यविधाता आपको सर्वत्र दीख पड़ेंगे। इनका यह व्यापार शिक्षित-अशिक्षित, धनी-निर्धन, वकील, डाक्टर, सरकारी कर्मचारी और चपरासी से लेकर राष्ट्रपति तक व्याप्त है। सब ही अपना भविष्य जानने की अभिलाषा में इनके द्वार खटखटाते हैं। इस प्रकार ये मनुष्यों के मानस के स्वामी बने हुए हैं।

प्रश्न—यह फलित का अन्धविश्वास कब से चल पड़ा ?

उत्तर—महाभारत युद्ध के लगभग दो सहस्र वर्ष पश्चात् यत्र तत्र इस का बीज दीखने लगता है। किन्तु पुराणों की उत्पत्ति के साथ यह फैलता गया। वराहमिहिर के पश्चात् यह अधिक मान्य होने लगा। वराहमिहिर के मन में यह बात आई कि इस विद्या से म्लेच्छों की पूजा होती है तब देव सदृश द्विजों की पूजा और भी अधिक होगी। इसलिए उन्होंने इस पर अपनी शक्ति लगाई। तब से यह भारत में लोक-व्यवहार में जनसामान्य तक पहुँच गया। इसने विद्या के पद को प्राप्त किया। उत्तरोत्तर इसका प्रचार-प्रसार होता गया और होता ही जा रहा है।

प्रश्न—यह नामधारी फलित कहां से चल पड़ा ?

उत्तर—अरब आदि विदेशों से। विदेशियों से लेकर अपनी मूर्खता को साथ में जोड़ दिया। जोड़ तोड़कर इसको नया रूप दे, मत्स्यग्रहरों के समान जाल बनाकर मनुष्यों को फंसाने लगे। यह अनेक प्रमाणों से सिद्ध है,

यहां केवल एक प्रमाण 'ब्राह्मण समाज के ३ महापातक' से उपस्थित किया जाता है। ज्यौतिषाचार्य बबुआ मिश्र लिखते हैं—'**मन्यते च सर्वैः साम्प्रतिकैस्ताजको ग्रीसदेशीयानां भारतागमनसमयतोऽनन्तरं तत्सहवासादुपलब्धस्तदीयफलित ज्योतिषं रूप इति।**' आजकल के सब विद्वान् मानते हैं कि ताजक ग्रीस देश निवासियों के भारत में आने के पश्चात् उनके सहवास से प्राप्त हुआ यही फलित ज्यौतिष का रूप है।

वेदोपवेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, वेदाङ्गोपाङ्गोपनिषद् आदि आर्ष ग्रन्थों में कहीं इसका नाम नहीं आता है। जब से इसने भारत में स्थान पाना प्रारम्भ किया उसी समय से तत्कालीन साहित्य में इसको और इसके द्वारा जीविका चलाने वालों को बहिष्कार्य और पातकी समझा है। परिणामतः जिन नामधारी ब्राह्मणों ने इसे अपनी जीविका का साधन बनाया उनको बहिष्कृत किया। आज के जोषी, भड्डुर अथवा भड्डुरी उन ही की सन्तान हैं। ये आज भी यही करते हुए अपनी पूजा करवाते और पेट भरते हैं। किन्तु इनको ब्राह्मणों के समान मान्यता नहीं दी जाती। अति संक्षेप में कुछ प्रमाण प्रस्तुत किए जाते हैं।

अथ ये चान्ये राक्षसभूतगणपिशाचोरगग्रहादीनामर्थं पुरस्कृत्य शमयाम इत्येवं ब्रुवाणा वैदिकेषु परिस्थातुमिच्छन्ति तैः सह न संवसेत् प्रकाशभूता वै ते तस्करा अस्वर्ग्या इति॥ मैत्र्युपनिषद् ७।८॥

अर्थात्—बहुत से लोग यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, नाग, ग्रहादि का नाम लेकर उनको शमन करने को कहते हैं······वैदिकधर्मियों में घुसना चाहते हैं। इनके साथ निवास न करें। वे प्रत्यक्ष तस्कर (चोर, डाकू) हैं और सुखशान्ति को नष्ट करने वाले हैं।

कुशीलवो देवलको नक्षत्रैर्यश्च जीवति।
ईदृशैर्ब्राह्मणैर्भुक्तमपाङ्क्तेयं युधिष्ठिर॥ म० भा० अनु० अ० ६०॥

अर्थ—देवमन्दिर में पूजा से जीविका चलाने वाला (पुजारी) और नक्षत्रों का फल बताकर जीनेवाले ये सभी ब्राह्मण पङ्क्ति से बाहर रखने योग्य हैं।

इससे स्पष्ट है कि इस मध्यकाल में ब्राह्मण नामधारियों ने फलित की लीला को अपनी जीविका का साधन बनाया। उस समय वेदज्ञ ब्राह्मणों ने इस अवैदिक क्रिया को निन्दनीय कहा और जिन्होंने इसे लोभवश अपनाया। उन्हें च्युत करके ब्राह्मणों में से बहिष्कृत कर दिया। किन्तु खेद है अपने को

सनातन धर्मी कहनेवाले उन लोगों पर जिन्होंने इसको वैदिक वा वैज्ञानिक सिद्ध करने का प्रयास किया और करते हैं। उनको अपना मान्य वैदिक सिद्धान्त क्या है इसका पता नहीं है। स्वार्थी दोषं न पश्यति।

हे परमपिता परमात्मन्! आप मनुष्य समाज के इस फलित नामक भयंकर रोग को शीघ्रातिशीघ्र दूर कर दीजिए जिससे संसार के समस्त मानव धनधान्य से सम्पन्न हो पूर्ण सुख एवं शान्ति को प्राप्त करें।

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।

तपस्ये सौरपञ्चभ्यां रदशून्याब्धिवैक्रमे।
माघेऽसितत्रयोदश्यां ग्रन्थः पूर्तिमगादयम्॥

इति ब्रह्मचारिणा वेदव्रतेन मीमांसकेन विरचितो ज्यौतिषविवेकः सम्पूर्तिमगमत्।

ओम् नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्। ऋतमवादिषम्। सत्यमवादिषम्। तन्मामावीत्। तद्वक्तारमावीत्। आवीन्माम्। आवीद्वक्तारम्॥

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

ज्योतिष विवेक
प्रथम संस्करण

प्राप्ति स्थान :-

१. श्री विध्याबुक डिपो
आर्यसमाजकेसामने, सुल्तान बाजार,
हैदराबाद - ५०००११५

२. आर्षगुरुकुल, कामारेड्डि,
वडलूर, आ.प्र.